विश्व के कीर्ति स्तम्भ

नवगजरथ

द्वितीय संस्करण

प्रकाशक

सर्वोदय महासमिति

★

श्री दिगम्बर जैन पंचायत एवं सकल दि. जैन समाज

ललितपुर (उ.प्र.)

प्रसंग . श्री 1008 श्री मज्जिनेन्द्र चतुर्विंशति तीर्थङ्कर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं विश्व के इतिहास में प्रथमवार अभूतपूर्व नवगजरथ महोत्सव एवं विश्वशांति महायज्ञ

गजरथ मोनो राजीव जैन, ललितपुर
(नव गजरथो का दृश्य)

प्रतिया 1000

सस्करण प्रथम 1993
द्वितीय 1995

मूल्य 151/-

प्राप्तिस्थान . श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अटामंदिर
सावरकर चौक, ललितपुर (उ प्र)

-: सान्निध्य एवं आशीर्वाद :-

प. पू. आचार्य संत शिरोमणि विद्यासागरजी महाराज के परमशिष्य आध्यात्मिक संत
मुनि श्री सुधासागरजी महाराज, क्षु. श्री गम्भीरसागरजी, क्षु. श्री धैर्यसागरजी महाराज

-: प्रधान सम्पादक :-

★ बा. ब्र. श्री अजित जी "सौंरई"

-: उप सम्पादक :-

श्री लालचन्द जी जैन (हिन्दी प्रवक्ता) वर्णी इन्टरकॉलेज
ललितपुर (उ.प्र.)

-: प्रकाशक :-

सर्वोदय महासमिति

ललितपुर (उ.प्र.)

-: मुद्रक :-

निओ ब्लॉक एण्ड प्रिन्टस

पुरानी मण्डी, सुभाष गली
अजमेर ✆ 422291
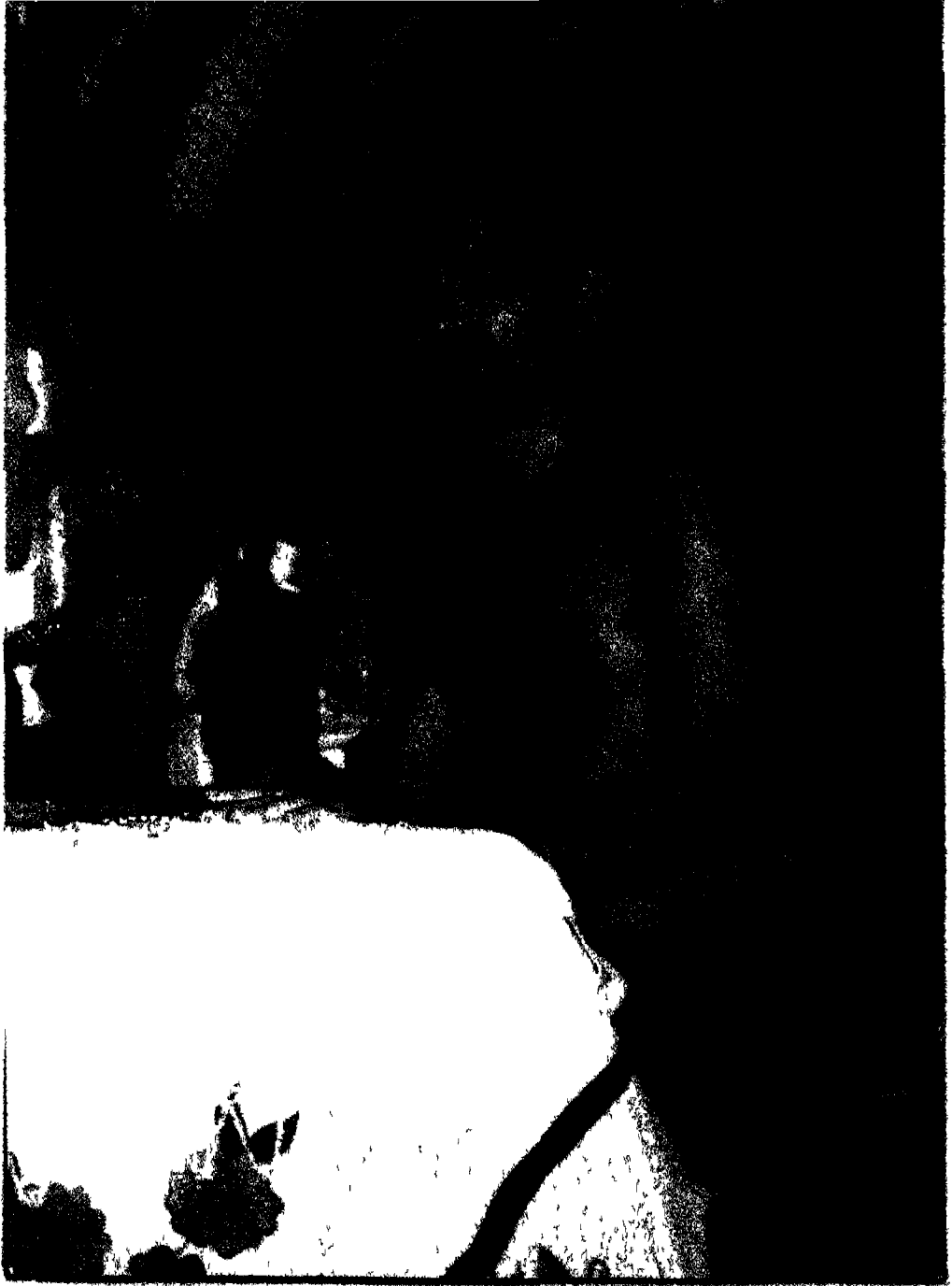
संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज

आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

क्षु. श्री गम्भीर सागरजी

ब्र. सजय भैय्या

प्रकाशकीय समर्पण

卐
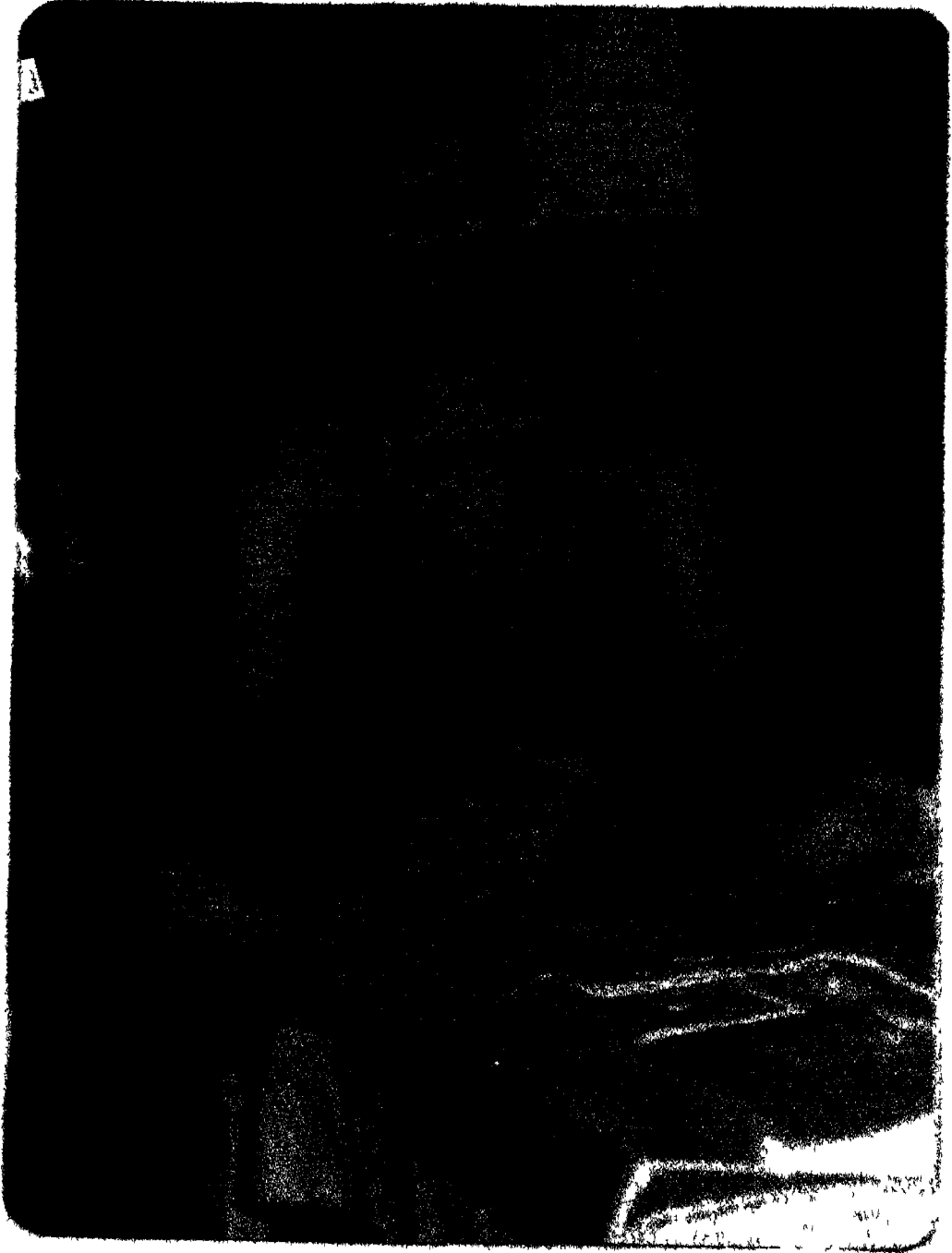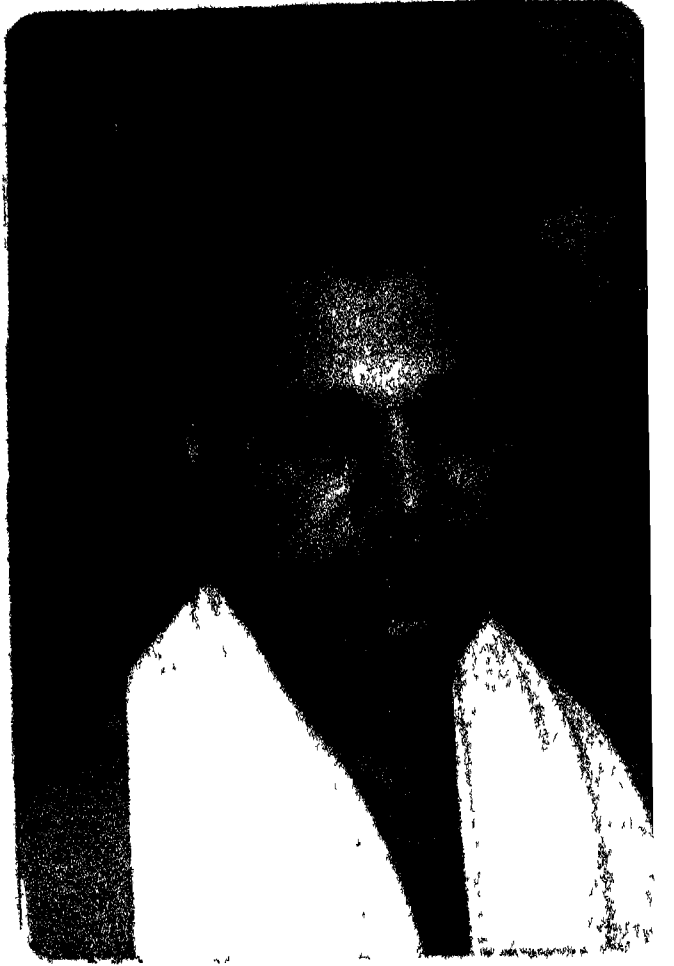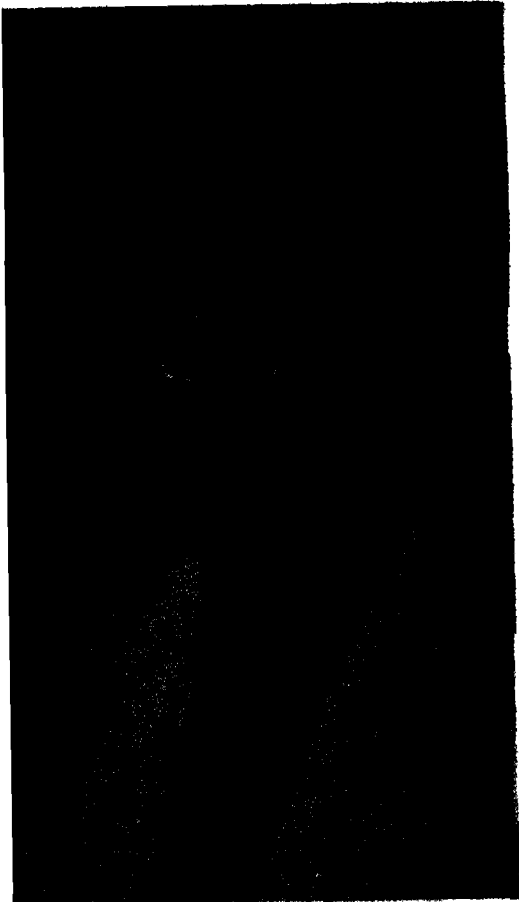
पचाचार युक्त
महाकवि, दार्शनिक विचारक,
धर्मप्रभाकर, आदर्श चारित्रनायक, कुन्द-कुन्द
की परम्परा के उन्नायक, संत शिरोमणि, समाधि सम्राट,
परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज के कर कमलों में
एवं
इनके परम सुयोग्य
शिष्य ज्ञान, ध्यान, तप युक्त
जैन संस्कृति के रक्षक, क्षेत्र जीर्णोद्धारक,
वात्सल्य मूर्ति, समता स्वाभावी, जिनवाणी के यथार्थ
उद्घोषक, आध्यात्मिक एवं दार्शनिक संत मुनि
श्री सुधासागर जी महाराज के कर कमलों में सर्वोदय महासमिति
सकल दि. जैन समाज एवं दिगम्बर जैन पंचायत
ललितपुर (उ.प्र.) की ओर से

सादर समर्पित ।

अरुणकुमार जैन
शास्त्री व्याकरणाचार्य

भारत भूमि पर सदा-सदा से युग पुरूषो सन्तों की दैदीप्यमान आभा आलोकित होती रही है इन्हीं सन्तों की साधना-निष्पन्न सफल प्रेरणा से प्रभावित जनता ने नाना उपक्रमो के माध्यम से देश के सांस्कृतिक गौरव की वृद्धि की हे, साथ ही ऐसे कार्यक्रमो/ उपक्रमो के माध्यम से व्यक्ति दृश्य से अदृश्य की ओर जाकर अपने अन्दर विद्यमान अपनी परमात्मशक्ति की पहिचान करता रहता है । इन्हीं कार्यक्रमों में कुछ आदर्श बन कर अनुकरणीय बन जाते हैं और ऐसे उपक्रमो की स्मृतियो से भविष्य को सजाने हेतु मन ललक उठता है ।

उपर्युक्त कथनानुसार भारत देशान्तर्गत उत्तर प्रान्त में अतिभव्य आध्यात्मिक संस्कृति वास्तुकला के रूप में बिखरी पडी हे । इस आध्यत्मिक दिगम्बर सस्कृति स्थापना निक्षेप के बल से मूर्तिकला के रूप में दृष्टि गोचर होती है । लेकिन कभी-कभी इतिहास के काले कारनामो ने उच्च स्थान पर विरासित भारतीय सस्कृति के स्वरूप को उसकी पुरातत्व सम्पदा को क्षत विक्षत भी किया है । देवगढ़ क्षेत्र के मन्दिरों ने, यहाँ की स्थापत्य निधि ने अति साम्प्रदायिक घृणित तत्त्वा के अत्याचारो को एवम् कराल काल कुठाराघातों/वेदनाओ को सहन किया है।"नीर्गच्छत्युपरि गच्छति चक्रनेमिक्रमेण" कालिदास की प्रकृत पक्ति के अनुसार इतिहास मे कुछ उज्ज्वल पृष्ठों के सार्थक एवम् समर्थ निर्माता महनीय पुरुषों का भी उद्भव होता हे । देवगढ़ क्षेत्र मे कीर्ण विकीण कलाकृतियो के भी भाग्यादय हुए, इनके पुनरुत्थान का समय आया ओर सुदीर्घ काल की उनकी पुकार को सुनकर इस पवित्र धरा की उपेक्षा को दूर करने देवदूत बनकर एक महान् कला-पारखी एवम् कला उद्धारक पुरुषोत्तम का स्वागमन हुआ, इन महान् कला पारखियो के पावन पदार्पण एवम् दृष्टिपात से जर्जरित निर्जीव कलाकृतियाँ मानो जीवन्त होकर बालने लगी । भारतीय सस्कृति के हर उपेक्षित अग को अपेक्षित सम्मान देने/दिलाने वाले इस महामनीषी आध्यात्मिकता के व्यक्तित्व का नाम है । पू मुनिप्रवर सुधासागर जी महाराज, जो पचमकाल को चतुर्थ काल में परिणत करने में उद्यत परम प्रभावक विद्यासागर जी के महान् शिष्य है । अपने गुरु-प्रवर्तित दिगम्बराचार्य सरणि का अनुसरण करते हुए और उनकी भावनाओ को मूर्त बनाने के लिये योग्य गुरु के याग्य शिष्य पू मुनिपुङ्गव सुधासागर जी महाराज की तपोबल की सबल प्रेरणा एवम् आशीर्वाद से 40 मन्दिरों एवम् लगभग पाँच सौ जिनबिम्बो, सहित सम्पूर्ण क्षेत्र का जीर्णोद्धार एवम् पुन स्थापना का एक वृहद् यज्ञ सम्पादित हुआ । विशाल समुदाय की समुपस्थिति में पच गजरथ प्रवर्तन सहित पचकल्याणक महोत्सव के द्वारा कराल काल के गाल मे गलित होने को आतुर इन प्राचीन पुरावशेषों में । जिन बिम्बों मे प्राण फूकें गये, मूर्तियों में पुन पूज्यता की स्थापना की गयी ।

समाज की उपेक्षा के शिकार अतीत के देवगढ़ को देखकर हर कला एवम् सस्कृति प्रेमी का दिल रो उठता था और जीर्णोद्धार प्राप्त एवम् विकसित आज के देवगढ़ की सुषमा को देखकर हर सहृदय के चक्षु हर्षाश्रुओं से पूरित हो जाते हैं । पू मुनिपुगव के ज्ञान, ध्यान-साधना संचित पुण्य-प्रताप एवम् श्रद्धालु श्रावकों की गुरुभक्ति ने क्षेत्र का ऐसा कायाकल्प किया कि अनायास मुख से निकल पड़ता है "क्या यह वही क्षेत्र है जो पहिले ।

हाँ प्रतिक्रियावादी, प्रतिगामी, यथास्थितिवादी संकीर्णमना जनो को अवश्य क्षेत्र प्रगति असह्य हो गयी, और मिथ्या प्रचारों की असफल दुरभिसन्धियाँ भी रची गयीं, सो ठीक है क्योंकि जोंक अमृतोपम दुग्ध को छोड़ दूषित रक्तपात से ही सन्तुष्ट होती है । इन निन्दकों की दूषित प्रवृत्तियों से निन्दकों का भले ही कर्म बन्ध हुआ हो परन्तु इन्हीं निन्दकों की कृपा से क्षेत्र का बहुमुखी प्रचार भी हुआ है, विरोध भी तो प्रचार का माध्यम होता है, क्षेत्र के स्वस्थ विचारक कार्यकर्त्ता और पदाधिकारी उन विरोधियों के प्रति भी अपना आभार प्रेषित करते हैं ।

मेरी मान्यता तो यह है कि लोग तटस्थाचित होकर हुए की आँखें खोल देवगढ़ के जीर्णोद्धार के प्रति अपना मस्तक झुकाकर स्वय को गौरवान्वित करें और इस जीर्णोद्धार से प्रेरणा प्राप्त कर देश के समस्त उपेक्षित जीर्ण क्षेत्रों के पुनरुद्धार की योजना बनावें ।

इस अतिशय क्षेत्र का जीर्णोद्धार एवम् प्रतिष्ठा क्यों कैसे और कब हुई वस्तुस्थिति ज्ञापित कराने हेतु उपलब्धियों का विवरण इस ग्रन्थ मे अंकित किया गया है ।

उक्त सकल विकास की योजनाओं की पूर्णता एक सिद्ध पुरुष के बिना संभव नहीं थी, दैवयोग से पूज्य मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी महाराज की कृपा मे सम्पन्न महद्यज्ञ ने दीर्घकाल के लिये भारत की महान् पुरा-सम्पदा को संरक्षण प्रदान किया ।

किस प्रकार सुधावर्षक मेघ एक स्थान की धरती की प्यास मिटाकर सकल क्षेत्र को आप्यायित करने आगे बढ जाते हैं, जिस तरह नदी निरन्तर कलकल करती आगे बढ़ती रहती है उसी तरह जन-जन की धार्मिक आकांक्षाओं के पूरक एवम् धर्मायतनो के जीवनदाता पूज्य मुनिश्री का मध्यप्रान्तस्थ गुना जिले के अशोकनगर मे पदार्पण हुआ। पूज्य मुनिवर तो इतिहास निर्माता हैं अत यहाँ भी आपश्री के मङ्गल आशीष एवम् प्रभामयी प्रेरणा से भारतवर्ष में अद्वितीय ऐतिहासिक नयनाभिराम त्रिकाल चौबीसी मन्दिर का निर्माण हुआ यह मन्दिर विश्व के धर्मायतनो मे सर्वोच्च स्थान पर प्रतिष्ठित होकर धर्मध्वजा को फहरा रहा है । यह त्रिकाल चौबीसी की रचना अतिशय मनोज्ञ एवम् चित्ताकर्षक है, इनके दर्शन भक्तजनो के लिये सातिशय पुण्य के कारक हैं ।

मन्दिर जी की प्रतिष्ठा के समय सप्त गजरथों का आयोजन पाच-सात लाख के श्रद्धालु जन समूह ने देखकर नेत्रानन्द का प्राप्त किया । उक्त भव्य महोत्सव का संक्षिप्त विवरण एव झलकियो का सन्निवेश प्रकृत ग्रन्थ का शोभादायक है ।

पूज्यश्री विहार करते हुए उत्तरप्रदेश के ललितपुर नगर में पधारे । मुनिश्री के पदार्पण होते ही दिगम्बर जैन अटामन्दिर के पचकल्याणक महोत्सव की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयीं पूज्य प्रवर के सान्निध्य एवम् उनके चामत्कारिक प्रभा मण्डल के प्रभाव इस महोत्सव ने सफलता की सभी सीमाओं को ऐसा लाँघा कि यहाँ विश्व के इतिहास में प्रथम बार नव-नव गजरथों का प्रवर्तन एक साथ हुआ, जिसे 8 से 10 लाख के विशाल जन सम्मर्द ने देखकर महोत्सव की अनुपम शोभा की ख्याति को दिग्दिगन्तों में प्रसृत कर दिया। महोत्सव जन मानस की दृष्टि में, आदर्श था तथा ''न भूतो न भविष्यति'' ने उक्ति को चरितार्थ करने वाला था, अत ललितपुर की समाज ने इस महान् सांस्कृतिक ग्रन्थ के प्रकाशन का निर्णय लिया।

जिनकी महत्पुण्य-प्रभावना के कारण उक्त महोत्सवों ने साफल्य-शिखरों का स्पर्श किया ललितपुर समाज ने ऐसे लोकोत्तर चारित्र, तीर्थों के महान् सरक्षक एवम् निर्माता प्रज्ञा पुरुष मुनिश्री की जीवनचर्या एवं लोकव्यापी व्यक्तित्व का गुणवन्दन प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णित कर अपने पापकर्मों की निर्जरा की है एव परम्पुण्य का संवर्द्धन किया है । ग्रन्थवर्णित श्रमणचर्या के उक्त चित्र दिगम्बरत्व की पताका के रूप मे लहराते हुए श्रमणसंस्कृति के इतिहास के अमिट शिलालेख बनेंगे ।

जिन-जिन नगरों मे उक्त आयोजन सम्पन्न हुए उन नगरों की ऐतिहासिक दिगम्बर संस्कृतिक के केन्द्रों की वस्तुपरक जानकारी को ग्रन्थ में संगृहीत किया गया है । जिससे यह ग्रन्थ अतीत पुरातत्व की नींव पर प्राचीन स्वरूप की रक्षा करते हुए वर्तमान के नूतन प्रासादों का निर्माण करता है और भविष्य के लिये आदर्शपट्टिका सिद्ध होता है ।

इस महद्ग्रन्थ का विमोचन पूज्य मुनि प्रवर श्री के ऐतिहासिक अजमेर चातुर्मास के अवसर पर विश्वविख्यात सोनी जी की नशियाँ मे भारत के सुप्रसिद्ध उद्योगपति श्री शबुकमार कासलीवाल (S lumar,s Group) के करकमलों द्वारा सम्पन्न हुआ। और उन्होंने ग्रन्थ के पृष्ठों को उलटा, इसकी समाग्री को अवलोकित किया तो अति प्रसन्न तथा गद्गद् होकर समाज के समक्ष घोषणा की कि उनकी ओर से इस ग्रन्थ की 1000 प्रतियाँ पुन प्रकाशित की जाकर पूरे भारत के मन्दिरों /पुस्तकालयों एवम् विद्वानों के पास पहुँचायी जावें । तदनुसार इस ग्रन्थ का द्वितीय संस्करण समाज

के सामने संशोधित, संवर्धित एवम् परिवर्तित रूप में प्रस्तुत किया जा रहा है। प्रथम संस्करण में ललितपुर स्थित जिनमन्दिरों के जिनबिम्बों की सारिणयाँ दी गयी थीं, अब द्वितीय संस्करण में सर्वोपयोगी नहीं होने उनके स्थान पर मुनिश्री के पावन सानिध्य में सम्पन्न राजस्थान प्रान्त के तीन, 'ज्ञानरथ' (अ भारतीय 3 विद्वत् संगोष्ठियों) एवम् अजमेर चातुर्मास से सम्पादित व्यापक धर्म-प्रभावना का विवरण प्रस्तुत करने का निर्णय विद्वानों एवम् समाज द्वारा लिया गया।

पूज्य मुनिश्री के तत्वाधान में यक्षरक्षित भूगर्भ स्थित सांगानेर के रत्नमयी जिनबिम्बों का दर्शन कराया गया। एवम् आ ज्ञान सागर की साहित्यिक साधना पर डॉ. शीतलचन्द जैन व डॉ कस्तूरचंद कासलीवाल के संयोजन में अ भारतीय विद्वत् संगोष्ठी हुयी, जिसमें विभिन्न स्थानों के 35 विद्वानों ने आ ज्ञानसागर की कृतियों पर समीक्षात्मक निबन्धों का पाठन किया। इसी तरह वीरोदय ग्रन्थ पर डॉ श्रेयांस कुमार जैन एवम् डॉ अशोक कुमार जैन के संयोजकत्व मे अजमेर चातुर्मास में एक विशाल स्तर पर अ भा विद्वत् संगोष्ठी आयोजित हुई जिसमें लगभग अर्द्धशतक जैन अजैन विद्वान सम्मिलित हुए तथा पूज्य मुनिवर श्री के ब्यावर शीतकालीन योग के अवसर पर आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रिय संगोष्ठी की आयोजना लघुत्रयी (सुदर्शनोदय, दयोदयचम्पू, एवं समुद्रदत्त चरित्र) पर डॉ. जयकुमार जैन एवम् अरूण कुमार शास्त्री, ब्यावर के संयोजकत्व के हुयी। उक्त तीनों संगोष्ठियों में आचार्य ज्ञानसागर के महाकवित्व पर विशद् प्रकाश डालते हुए विद्वानों द्वारा आचार्य ज्ञानसागर द्वारा प्रवर्तित ज्ञान रथ को संप्रेरणा प्रदान की गयी। उक्त तीनों विद्वत संगोष्ठियों की पृथक्-पृथक् स्मारिका प्रकाशित की जा रही हैं परन्तु गजरथों के उपक्रम में ज्ञान रथ के समायोजन का यह उपक्रम प्रस्तुत ग्रथ की उपयोगिता को चातुर्गुणित करेगा, इसी आधार पर इस बहु आयामी प्रकाशन को समाज के समक्ष प्रस्तुत किया जा रहा है।

आशा है सहृदय पाठक इस ग्रन्थ का पाठन कर भारतीय सांस्कृतिक एवम् साहित्यिक गौरव से परिचित होकर इनके संरक्षण एवम् सवर्द्धन मे प्रवृत होकर सातिशय आह्लाद एवं पुण्य को प्राप्त होंगे।

अरुणकुमार शास्त्री
निदेशक
आचार्य ज्ञानसागर वागर्थ-विमर्श केन्द्र
ऐ प दि जैन सरस्वती भवन
नशियाँ, ब्यावर (राज)

❑ ❑ ❑

सम्पादकीय

श्री महावीर भगवान के अनादि निधन विशुद्ध-शासन मे ससार दु:खो से संतप्त प्राणियों को अपूर्व सच्चिदानन्द स्वरूप की उपलब्धि मे मुख्य कारण सम्यग्दर्शन बतलाया है । उस की प्राप्ति मैं गुरूपदेश, वेदनानुभव आदि निमित्त कारण बतलाये गये है । उनमे प्रधान जिनेन्द्रदेव का दर्शन कहा गया है । जिन जीवो के विशिष्ट पुण्य का उदय होता है वे विदेहादि उत्कृष्ट क्षेत्रो मे जन्म धारण करके निरन्तर साक्षात् जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन करके सहज ही सम्यक्त्व को प्राप्त कर लेते है ।

भरतक्षेत्र एव ऐरावत क्षेत्र मे जिनेन्द्र देव के साक्षात् दर्शन सतत् नही मिला करते है । प्रत्येक तीर्थंकर के समय के बाद चाहे थोड़े भी समय के लिए क्यो न हो, परन्तु उनकी व्युच्छित्ति पाई जाती है । हाँ, जिनेन्द्र भगवान् की प्रतिमाओं का सद्भाव सतत् बना रहता है जिनके पुनीत दर्शनों से असंख्य भव्य प्राणियों का कल्याण होता है । इसीलिये जिन शासन जिनेन्द्र भगवान् की अपेक्षा उनकी प्रति मारका का अनतगुणा माहात्म्य बतलाया गया है । जिन बिम्ब-प्रतिष्ठा का उद्देश्य मिथ्यात्व का नाश और अपने धन का सदुपयोग कहा है । आचार्य श्री जयसेन के प्रतिष्ठा पाठ का यह पद्य उल्लेखनीय है—"अस्मिन् महे राज्य सुभिक्ष सपदाधो हि हेतु' कथितो मुनीन्द्रै " इस प्रकार, जिनेन्द्र पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा द्वारा राज्य मे सुख, शान्ति और सुभिक्ष की प्राप्ति आचार्यों ने बताई है । जिन मन्दिर या वेदी, समवशरण व गध कुटी का रूप है । इसी शुभकामना, आराधना से प्रतिष्ठा की जाती है । प्रतिदिन की पूजा के अन्तिम शान्तिपाठ मे हम यही भावना भाते है—"क्षेम सर्व प्रजानाम्" समस्त प्रजाजनो का कल्याण हो । तीर्थंकर पद भी जगत्कल्याण की भावना से ही प्राप्त होता है । धातु वा पाषाण की सर्वांग सुन्दर मूर्ति मे मन्त्रो द्वारा गुणो का आरोपण करने पर पूज्यता का भाव उत्पन्न होता है। मूर्ति वीतरागता का आदर्श होती है । अत' ऐसी कल्याणकारिणी प्रतिमाओं की स्थापना यदि विशुद्ध परिणामो से की जाये तो प्रतिष्ठापक का तो कहना ही क्या, पचकल्याणक महोत्सव द्वारा दर्शको मे भी सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है । यदि किसी एक भव्य जीव को इस समारोह से सम्यक्दर्शन हो गया, तो उसका अनन्त ससार कट गया । ऐसे कार्यों मे खर्च किया हुआ असख्य द्रव्य भी सार्थक होता है, चाहे इसका प्रत्यक्ष तत्कालीन फल किसी को नही भी दिखे तो भी उसका परोक्ष फल आत्म लाभ तो है ही ।

इसलिये सकल दिगम्बर जैन समाज ने परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी से जिज्ञासा प्रकट की कि चौबीस तीर्थंकरो की प्रतिष्ठा, नव गजरथ के साथ हो । मुनि श्री सुधासागर जी ने जिनशासन धर्म प्रभावना के लिये आशीर्वाद दिया तथा समाज के प्रमुख लोगो ने सकल्प लिया । नव-गजरथ का आनन्द रस इस स्मारिका के दूसरे खण्ड मे मिलेगा ।

श्रद्धापूर्वक स्मरण—

बुन्देलखण्ड के धर्म-प्राण चारित्र चक्रवती, सत शिरोमणि गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज, के ओजस्वी प्रभावनामयी वाणी के कुशल वक्ता मुनि श्री सुधासागर जी महाराज, वात्सल प्रेमी क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी, स्नेह प्रेमी क्षु श्री धैर्य सागर जी खुशी के प्रेमी ज्येष्ठ ब्र संजय को सादर त्रिकाल नमन ।

[illegible]
[illegible]

मेरे जीवन में अपूर्व अवसर—

मुनिश्री सुधासागर जी महाराज ने ललितपुर नगरी मे चातुर्मास किया । बीच चातुर्मास मे समस्त जैन समाज को संयम में बदलने वाला महापर्वराज पर्यूषण आया । इस पर्वराज में मुनि श्री ने प्राचीन परम्परा को साकार करने के लिये एक सयम-साधक शिक्षण-शिविर आयोजित किया जिसमें १३१ महानुभावों ने भाग लिया । सयम मार्ग मे संस्कार देने के लिये शिविर का सचालन कार्य-प्रभार मुनि श्री ने मुझे दिया । एव नव गजरथ महोत्सव की सुन्दर व्यवस्था के लिये कार्यालय-अध्यक्ष बनाया ।

संयम मार्ग मे संस्कार देने के लिये दो साल का ब्रह्मचर्य व्रत के संकल्प सहित १०६ नव-युवक भाईयो का अकलंक-निकलंक प्रभावना सघ' एव १०६ तरुण बहिनो का 'ब्राह्मी-सुन्दरी प्रभावना सघ' का सम्पूर्ण कार्य करने का प्रभार मुनि श्री ने दिया । इन तीनो कार्यों मे मुनि के आशीर्वाद से मेरी सहभागिता भी सफल रही ।

अलौकिक दृश्य—

दोनो प्रभावना सघो के भाई-बहिन धवल वस्त्र (धोती दुपट्टा-धोती) एव धवल ही ध्वज धारण किये हुये रथ-फेरी-परिक्रमा मे चल रहे थे । तब का दृश्य आलौकिक था, इसका यह अतिशय था कि चार लाख के लगभग जनता का समूह सातो फेरी तक इस दृश्य को देखता रहा । मैंने अपने जीवन में भी अनेक गजरथ देखे परन्तु ऐसा आनन्दमय दृश्य अन्यत्र नही पाया ।

स्मारिका-प्रकाशन कीभाव भूमि—

नव-गजरथ महोत्सव ऐतिहासिक आयोजन हुआ, इसकी सुखद स्मृतियाँ अत्यन्त प्रेरणास्पद हैं । इसकी बचत आय का ४०% श्री सुधासागर कन्या इण्टर कालेज के लिए दिया गया है । यह गजरथ गौरवमय इतिहास का रूप धारण करे, एतदर्थ नव-गजरथ सर्वोदय समिति ने प्रकाशन का कार्य-भार भी मेरे नाजुक कधो पर सौंप दिया, मुनि श्री सुधासागर जी ने विशेष आशीर्वाद दिया । तब हमारी मूल भावना यह रही है कि स्मारिका का प्रकाशन न केवल इस अपूर्व पञ्च कल्याणक नव-गजरथ कि मधुर स्मृतियो को सजोये रखे, वरन् भविष्य मे यह इस कार्य के लिये एक सन्दर्भ ग्रन्थ के रूप में मार्ग दर्शन भी दे सके।

स्मारिका की विशेषता—

ललितपुर की ललित नगरी मे नव (९) गजरथ चले इसलिये इस स्मारिका मे प्रत्येक स्थान पर नौ के अक का ध्यान रखा गया है वैसे भी ९ का अंक अखण्ड है जैसे आप ९ का पहाड़ा पढ़ेंगे तो ९० तक पूर्ण ९ रहेंगे । एतदर्थ इस स्मारिका में नौ-खण्ड है—प्रथम खण्ड— मे पञ्चकल्याणक गजरथ महोत्सव के महत्व एव उपयोगिता पर समाज के जाने माने विद्वानो के लेख दिये गये हैं । द्वितीय खण्ड - नव गजरथ महोत्सव ललितपुर इसमें पाँचो कल्याणकों पर पूज्य मुनि सुधासागर जी के मार्मिक प्रवचनो का सार एवं नव गजरथ की विस्तृत जानकारी दी है । तृतीय खण्ड - अयोध्यापुरी - नव गजरथ स्थल की चित्रावली यह

अपने आप मे चित्र-विचित्र खण्ड है इसमे ललितपुर के अभूतपूर्व पचकल्याणक चतुर्विंशति जिनबिम्ब प्रतिष्ठा एव नव गजरथ की विस्तृत चित्रावली रखी गयी है जो अयोध्यापुरी की सपूर्ण कथा-वार्ता अपनी मूख भाषा मे मुखर होकर कह रही है । **चतुर्थ खण्ड** - नव गजरथ महोत्सव ललितपुर के प्रति पुष्पाजलि - इसमे स्थानीय और बाहर के कवियो की रचनाये है जो पचकल्याणक एव नव गजरथ की महिमा का गान करती है । **पंचम खण्ड** - मुनि श्री सुधासागर महाराज के प्रति भावाजलियाँ स्थानीय और बाहर के विचारक भक्तजनो द्वारा अर्पित की गयी है । **सप्तम खण्ड** मे विश्व के इतिहास मे प्रथम बार पच गजरथ अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जी और सप्त गजरथ महोत्सव अशोक नगर के गौरव पूर्ण उल्लेख सचित है । **अष्टम खण्ड अलौकिक श्रमण काव्य** - इसमे परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज एव देवगढ़ जीर्णोद्धार मुनि श्री सुधासागर एव क्षु. धैर्य सागर महाराज की अलौकिक, आध्यात्मिक रचनाओं की झाँकी सजोई गयी है । स्मारिका का अन्तिम **नवम खण्ड** - मे लेख-विविधा इसमे विद्वत्ता पूर्ण विविध रोचक लेखो का सकलन किया गया है इस प्रकार स्मारिका के नौ खण्ड नव-गजरथ की महिमा को स्थापित करने की दृष्टि से माला रूप गुम्फित किये गये है । जिसकी सुगन्ध धर्म-प्रेमी बन्धुओं के हृदय को अहलादित करेगी इस विश्वास के साथ स्मारिका सकल समाज के कर-कमलो मे समर्पित है ।

उत्साहि नव-युवक—

विशेष उल्लेख के रूप मे मुझे अपने उत्साहित नव-युवक भाइयो का सहयोग हमेशा स्मरणरहेगा। जिनके परिश्रम से मै सुन्दर कार्य कर सका ।

स्मारिका मे सहयोग—

प्रूफ आदि मे विशेष योगदान श्री लालचन्द जी हिन्दी प्रवक्ता का रहा है । अपने उत्साही भाई श्री ब्रह्मचारी वीरेन्द्र जी "सवेग पाँचवा" श्री अरूण जैन बुखारिया, श्री नरेन्द्र जैन (छोटे पहलवान), श्री नरेन्द्र जैन (चूना वाले), श्री सजय जैन, श्री गिरीश जैन, श्री धर्मचन्द (सतभैया), बहिन सुनीता जैन दर्शनाचार्य, ने जो सहयोग दिया उसका स्मरण नही भूला सकता ।

नव गजरथ सर्वोदय समिति तथा मुद्रक मे आबू प्रिन्टर्स प्रेस को धन्यवाद ज्ञापित करता हूँ।

अन्त मे अनुरोध—

इस स्मारिका के सम्पादक का गुरूत्तर दायित्व हमे सौपकर नव-गजरथ सर्वोदय समिति निवृत्त हो गई । इससे साधन जुटाने, मुद्रण व्यवस्था सम्हालने और सामग्री व्यवस्थापन मे अकेले ही जूझना पड़ा है । प्रेष से प्रूफ आदि समय से नही आने के कारण इससे कार्य सम्पादन मे अनपेक्षित विलम्ब भी हुआ है । परन्तु मुनि श्री सुधासागर जी के आशीर्वाद से यह कार्य भी पूर्ण किया ।

शुभकामनायें

मुलायम सिंह यादव

सचिवालय एनेक्सी
लखनऊ

मुख्य मंत्री
उत्तरप्रदेश

दिनाक. १७ दिसम्बर, १९९३

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यत प्रसन्नता हुई कि श्री दिगम्बर जैन पचायत, ललितपुर, उ.प्र के तत्वावधान में आगामी १८ से २३ दिसम्बर तक ललितपुर मे नव- गजरथ महोत्सव समता, शांति एव विश्व मैत्री, महायज्ञ का आयोजन किया जा रहा है, जिसमे देश के कोने- कोने से लगभग ५ लाख जैन धर्मावलम्बी श्रद्धालुजन भाग लेने आ रहे है। मुझे यह भी बताया गया कि यह महायज्ञ भारत में लगभग २५०० वर्ष बाद उत्तर प्रदेश के जनपद ललितपुर मे परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में सम्पन्न हो रहा है, इसकी भी मुझे बड़ी खुशी है।

आज के माहौल मे जब हिसात्मक गतिविधिया देश व समाज में पनप रही हैं, भगवान महावीर का सदेश और अधिक प्रासगिक हो गया है। उन्होने जीवन पर्यन्त शाति, अहिंसा व सद्भावना का उपदेश जन- जन तक पहुचाया। दिगम्बर जैन पचायत उनके इन्ही सदेशों को आज भी जन- जन तक पहुचाने के लिए प्रयासरत है।

यह बहुत बड़ा और पुनीत आयोजन है। मै इसके लिए परम पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी, क्षुल्लक श्री धैर्य सागर जी, ब्रह्मचारिणी बहिनों एव दिगम्बर जैन पचायत, ललितपुर के सभी पदाधिकारियो को हृदय से धन्यवाद देता हू, जिन्होंने इस वृहद आयोजन की जिम्मदारी अपने ऊपर ली है। ललितपुर जनपद की सारी जनता और जिला प्रशासन भी इस पुनीत आयोजन में सहयोग करने के लिये धन्यवाद के पात्र है।

शासन -स्तर से जो कुछ सहयोग मुझसे बन पड़ा है, मैंने किया है और भविष्य में भी जो सहयोग आवश्यक होगा करने का प्रयास करुंगा।

मैं अपने इस सदेश को अपने प्रतिनिधि, श्री उत्तम सिंह चौहान, प्रातीय महासचिव, समाजवादी पार्टी, उत्तर प्रदेश द्वारा भेज रहा हू। मेरा अनुरोध है कि मेरे प्रतिनिधि के रूप में श्री चौहान इस सदेश को पढ़कर महायज्ञ में उपस्थित समस्त जैन धर्मावलम्बियों तक पहुंचायेंगे।

परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरणों में सादर समर्पित।

(मुलायम सिंह यादव)
मुख्यमंत्री, उ०प्र० शासन

प्रथम खण्ड

पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव विद्वानों की दृष्टि में

अनुक्रमणिका

धार्मिक उत्सवो में पच कल्याणक उत्सव का स्थान सर्वोपरि है। गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान और निर्वाण ये पाच "पच कल्याणक" के नाम से प्रसिद्ध है। उक्त कल्याणक, उस महान आत्मा के होते है, जो दर्शन विशुद्धि आदि सोलह भावनाओ के द्वारा अपने आपको अत्यन्त पवित्र बना लेता है। दर्शन विशुद्धि के काल मे अपायविचय धर्म ध्यान के द्वारा जब यह आत्मा लोक कल्याण की शुद्ध भावना से युक्त होता है, तब उस शुभ राग के फलस्वरुप उसे तीर्थकर प्रकृति का बध होता है, तीर्थकर पद की दुर्लभता इसी से आकी जा सकती है कि समस्त अढ़ाईद्वीप मे जहा पर्याप्तक मनुष्यो की सख्या २९ अंक प्रमाण है वहा तीर्थकरो की सख्या अधिक से अधिक १७० ही बतलाई गई है। इससे अधिक तीर्थकर एक साथ नही हो सकते।

तीर्थकर, तीर्थ अर्थात धर्म के प्रवर्तक कहलाते है। अपनी दिव्यध्वनि के द्वारा मोक्षमार्ग का उपदेश देकर ससार के प्राणियो को शाश्वत सुख का मार्ग प्रदर्शित करते है। तीर्थकर की महिमा वचनागोचर है। वे इन्द्रशत वन्दनीय होते है। स्वकाल में वे ससार के समस्त प्राणियो के द्वारा पूज्य होते है और निर्वाण के पश्चात प्रतिमा रूप से भी सदा पूजित रहते है। अर्हन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, जिनधर्म, जिनागम, जिनप्रतिमा और जिनमदिर इन नौ देवों मे जिनप्रतिमा अतर्गत है। प्रतिष्ठाशास्त्र के अनुसार जिसका निर्माण हुआ है, ऐसी वीतराग प्रतिमा ससार मे अनादिकाल से पूज्य मानी जाती रही है। अकृत्रिम चैत्यालयों में जिन प्रतिमाए आदिकाल से स्वप्रतिष्ठित है। भरत क्षेत्र में भी जब भगवान आदिनाथ का सकेत पाकर इन्द्र कर्मभूमि की रचना करता है तब उसमें अर्हन्त भगवान की प्रतिमा विराजमान करता है। भावशुद्धि के लिए गृहस्थ को प्रतिमा पूजन की अत्यन्त आवश्यकता है। जो गृहस्थ वीतराग मुद्रा के दर्शन कर अपने वीतराग स्वभाव की ओर दृष्टिपात करता है, उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। इसीलिये पूज्यपाद स्वामी ने जिनबिम्ब दर्शन को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का बाह्य साधन बतलाया है। गृहस्थ का उपयोग विषय- कषाय के साधनो मे निरन्तर सलग्न रहता है। इसलिये उस ओर से निवृत्त कर आत्म स्वरूप की ओर उसका उपयोग ले जाने के लिये प्रतिमा -पूजन अपना खास स्थान रखती है। प्रतिमा, तीर्थंकर की बनाई जाती है, और चूकि तीर्थकर गर्भादि पचकल्याणकों से सहित होते है, इसलिये स्थापना- निक्षेप से उनकी प्रतिमा मे भी पचकल्याणक की स्थापना की जाती है। पचकल्याणक प्रतिष्ठा के द्वारा ही प्रतिमा मे पूज्यता आती है। प्रतिष्ठा के बिना प्रतिमा पूज्य नही मानी जाती। विधिपूर्वक प्रतिष्ठा होने से प्रतिमा मे अनेक अतिशय अवतीर्ण होते हैं, जिससे प्रतिष्ठा कराने वाले सज्जन तथा दर्शक और पूजक महानुभाव सभी सुख- समृद्धि को प्राप्त होते हैं। तीर्थंकरो के सिवाय अन्य मुनि, जो निश्चित रूप से मोक्षगामी हुए है तथा जिनके जीवन में विशिष्ट घटनाए घटी है उनकी प्रतिमाए भी निर्मित होती आई है, जैसे सजयन्त

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का महत्त्व एवं आवश्यकता

□ पं. [illegible]

धार्मिक उत्सवो मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा-महोत्सव अपना सर्वोपरि स्थान रखता है । जव भी इस उत्सव के देखने का सौभाग्य प्राप्त होता है, तव अन्त करण मे आनन्द एव परिणामो का परिवर्तन हुए विना नही रहता । स्मरण होता है कि यहाँ पचकल्याणक को परोक्ष रूप से करते हैं तब तो इतना विशिष्ट आनन्द होता है किन्तु जब समय ऐसा होगा कि साक्षात् तीर्थंकरो के कल्याणक का उत्सव देखने को मिलता होगा तो उसका आनन्द तो वर्णनातीत होता ही रहा होगा । आगम मे पञ्च कल्याणक उत्सव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति मे कारण कहा है ।

धवला पुस्तक ६ मे "जिन विम्ब दर्शन विना सम्यकत्व की उत्पत्ति को असम्भव लिखा है" जिन विम्व दशणेहि विणा उपज्जमाणणइसग्गिय पढ़म सम्भतम्य असम्भवादो" और जिन विम्वदर्शन मे पञ्चकल्याणक को जिन-महिला के नाम से गर्भित किया है ।

यह पञ्चकल्याणक उत्सव उन महान् आत्माओं के होते हैं जिनका जन्म-मरणस्वरूप पञ्चपगवर्तन ससार का अन्त होने वाला है । जिन्होने आत्म पुरुषार्थ की प्रवलता द्वारा आत्मानुभवरूप सम्यग्दर्शन प्राप्त किया है और जिन्होने सासारिक गतियो के अभाव हेतु एव यथार्थ गति प्राप्ति की पवित्र भावना की हो, जैसा श्री कुन्दकुन्दाचार्य कृत मूलाचार ग्रन्थ पृष्ठ ४५ मे कहा है—

जावदी अरहंताण णिष्ठिदट्ठाण च जागती ।
जावदी वीत मोहाण सामे भव दुस्सदा ।। (५२)

तीर्थंकर प्रकृति का वध करने वाले जीवो की उत्कृष्ट सख्या १७० तक हो सकती है । अर्थात् भरत क्षेत्र ५, ऐरावत क्षेत्र ५, विदेह क्षेत्र १६० इस प्रकार १७० क्षेत्र है । इन्ही क्षेत्रो मे तीर्थंकर प्रकृति के बध करने वाले जीव तीर्थंकर होते हैं । जिन्होने सोलह कारण भावनाओं का चितन भगवान् केवली या श्रुत केवली के पाद मूल मे किया हो एव धर्म ध्यान के अपाय विचयनामक ध्यान से लोक कल्याण की भावना उत्पन्न की हो, ऐसा ही जीव तीर्थंकर प्रकृति का बध करता है । मुनि श्रावक अवस्था वाले तीनो सम्यक्त्व की भूमिका मे इस पुण्य प्रकृति तीर्थंकर नाम कर्म का बध करते है । ससार मे मनुष्यो की सख्या २९ अक प्रमाण है । किन्तु तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बध करने वाले जीवो की सख्या है ।

इसलिये आचार्य इसका गौरवगान करते हुए लिखते है—

"सर्वातिशायि तत्पुण्य त्रैलोक्याधिपतित्व कृत" इस तीर्थकर सातिशय पुण्य प्रकृति का बद करने वाला जीव तीन लोग का अधिपति बनता है । यह पुण्य सर्वश्रेष्ठ है ।

जैसा कहा भी है—जस्सरण कम्मस्स उदयेण सदेवासुरमाणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्ज्ञा पूजणिज्ज्ञा वदणिज्ज्ञाणम सणिज्ज्ञा धम्मतित्थयरा जिणा केवली (केवलिणो) भवन्ति" इस तीर्थंकर प्रकृति के उदय से जीव तीन लोग मे पूज्यनीय होता हुआ धर्म तीर्थंकर प्रकृति के उदय से जीव तीन लोग मे पूज्यनीय होता हुआ धर्म तीर्थकर केवली भगवान् होता है । इन उत्कृष्ट सोलह कारण भावनाओं का वर्णन करते हुए श्री अकलक स्वामी ने तत्वार्थराजवार्तिक मे इस प्रकार लिखा है —"तान्येतानि षोडसकारणानि सम्यक् भाव्यमानानि व्यस्तानि समस्तानि च तीर्थंकर नाम कर्मणस्तत्र कारणानि प्रत्येतव्यानि ।" इन भावनाओं

काम पड़े पर जानिये, जो नर जैसा होय ।
ज्यों तो काम पड़े बिना, भला बुरा सब कोय ॥

केवली तथा बाहुबली स्वामी आदि की। इन प्रतिमाओ के ज्ञान और निर्वाण दो ही कल्याणक होते हैं। प्रतिष्ठा के समय विधिनायक तथा अन्य आगत तीर्थंकर प्रतिमाओ के पच कल्याणक होते है, पर बाहुबली आदि सामान्य अर्हन्तो की प्रतिमा के दो ही कल्याणक होते है। अकृत्रिम चैत्यालयो मे सामान्य अर्हन्तो की प्रतिमाए रहती है। श्रवण बेलगोला म स्थित बाहुबली की प्रतिमा देखकर उत्तर भारत मे भी जहा तहा उनकी प्रतिमाए स्थापित की जाने लगी है।

पच कल्याणक पूजा को इन्द्रध्वज पूजा कहते है। इनमे पूजक अपने आप मे इन्द्र की कल्पना कर भक्ति विभोर होता हुआ पूजा करता ह। यदि विशुद्ध भावो से यह पूजा की जाती हे तो सातिशय पुण्यबन्ध का कारण होती है। आजकल एक ओर मे यह आवाज उठाई जाती है कि पच कल्याणक प्रतिष्ठा अनावश्यक है खर्चीली है तथा समय के अनुरूप नही है इसलिए बद होना चाहिए। पर जब मं यह देखता हू कि गृहस्थ लोग रागरगो के कायो म पैसा पानी की तरह बहाते है देश विदेश के भ्रमण म तथा घर की साजसज्जा मे पैसा खर्च करते हुए उन्ह कोई रोकने का साहस नही करता, तब इस धार्मिक कार्य केरोकने मे ही रोकने वालो को कान सा लाभ दिख रहा है ? धार्मिक कार्यों में गृहस्थ का जो पैसा खर्च होता है, वह सार्थक ही है, निरर्थक नही है। इतना अवश्य है कि आयोजन ख्याति लाभ की दूषित इच्छा से नही

होना चाहिये। पच कल्याणक जैसे महान आयोजन पैसे के बल पर किसी एक के द्वारा किये जाने पर सफल नही हो सकते। इसके लिये सहधर्मी तथा अन्य भद्र परिणामी सहयोगियो की आवश्यकता रहती है। इसलिये सबका सहयोग प्राप्त कर ही ऐसे महान आयोजन किए जाने चाहिय।, इन आयोजनो के समय आगत जनता के लिए कुछ यथार्थ लाभ पहुचे इस बात का ध्यान भी रखना चाहिये। ऐसे अवसरो पर जैन धर्म के मुख्य सिद्धात जनता को सरलता से समझाये जा सकते है। हमारे आयोजनो का बहुत समय आगत जनता से पैसा सचय करने मे ही निकल जाता है ।यदि उस ओर से दृष्टि हटाकर हम लोग उस समय का उपयाग जैन सिद्धात के गूढ़तत्वा के समझाने मे कर सके तो उससे आगत जनता को ठोस लाभ हो सकता है। यदि उत्सव मे सम्मिलित होने वाले व्यक्तियो मे कुछ लोग ही अपने मिथ्या श्रद्धान को छोड़कर सम्यकश्रद्धान को प्राप्त कर लेते है तो सबसे बड़ा लाभ कहा जा सकता है।

जैन धर्म से पृथ्वी स्वर्ग हो सकती ह

(डा० चार्ो लोटा फौज मस्कृत प्रो० बर्लिन यूनिवर्सिटी)

जैन धर्म के सिद्धान्तो पर मुझे दृढ़ विश्वास है कि यदि सब जगह उनका पालन किया जाय तो वह इस पृथ्वी को स्वर्ग बना देगे। जहाँ तहाँ शान्ति और आनन्द होगा।

जैन वीरो का इतिहास और हमारा पतन अ० पृ०

मे दर्शन विशुद्धि का स्वरूप विचार करने पर उसकी मुख्यता स्पष्ट रूप से प्रतिभासमान होती है । तीर्थंकर प्रकृति रूप धर्मकल्पतरु पूर्ण विकसित होकर रत्नत्रय के फलो मे समलकृत होते हुए भी पुण्यरूपी पुष्पो मे अगणित भव्यो को अवर्णनीय आनन्द तथा शान्ति प्रदान करता है । इस धर्मतीर्थ के प्रवर्तक भगवान् के पाँच, तीन दो-कल्याणक वाले तीर्थंकर होते है और विदेह-क्षेत्र मे पाँच कल्याणक, तीन कल्याणक, दो कल्याणक, वाले तीर्थंकर होते है । आगमानुसार तीर्थंकर पुण्यप्रकृति का उदय तेरहवे गुणस्थान म होता है । जब कि वहाँ वीतराग दशा प्रकट हो जाती है । किन्तु यह सातिशय पुण्य प्रकृति इतनी महान् है कि उदय आये बिना सत्ता मे रहते हुए ही फल की प्राप्ति होती है । जैसे जिनेन्द्रपुरी (अयोध्यापुरी) की सर्वोत्कृष्ट रचना, १५ माह तक रत्नवृष्टि देवियो द्वारा माता की सेवा और स्वर्ग के आभरण वस्त्रो से माता पिता का सम्मान गर्भ कल्याणक, जन्मकल्याणक, तपकल्याणक के अद्वितीय अलौकिक उत्सवो का मनाया जाना यह सब तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का प्रभाव है । इस प्रकृति के साथ तीन अतिशय विशेष होते है

(१) भाग्य अतिशय (२) आत्म अतिशय और (३) वचन अतिशय । इनका तीर्थंकरो के होने वाले पाँचो कल्याणको मे समावेश निम्न प्रकार होता है—अर्थात् गर्भकल्याणक व जन्मकल्याणक के प्रत्येक उत्सव भाग्य अतिशय के प्रतीक है तपकल्याणक ज्ञानकल्याणक के उत्सव आत्म अतिशय के प्रतीक और दिव्य ध्वनि (धर्मोपदेश) वचन अतिशय का प्रतीक माना है ।

पश्चात् योगनिरोधपूर्वक वह भगवान् आत्मा अनन्त आनन्द रूप मोक्ष स्थान प्राप्त करता है ।

पाँचो कल्याणको की विशेष क्रिया का वर्णन

(१) गर्भकल्याणक

तीर्थंकर प्रकृति को बध करने वाली आत्मा का गर्भावतरण होने के लिए जब ६ माह शेष रहते है तब सौ धर्मेन्द्र का आसन कपित होता है । वह अवधिज्ञान के द्वारा तीर्थंकर के गर्भावतरण का समय सन्निकट जानकर कुवेर को आज्ञा करता है कि यथाशीघ्र अयोध्या नगरी की सौन्दर्यपूर्ण अनुपम रचना स्वर्गपुरी सदृश करो । तब कुवेर भक्ति से प्रेरित होकर अयोध्यापुरी की (जिनेन्द्रपुरी) अद्वितीय रचना करता है जिसका वर्णन श्री जिनसेन स्वामी ने महापुराण ग्रथ मे किया है

स्वर्गस्येव प्रतिच्छन्द भूलोको स्मित निधित्सुभि ।
विशेषरमणीयेव निर्ममे सामरै-पुरी (१२) ७१ ।।

कुवेर ने नगरी का विशेष मनोहर बनाया । उस समय ऐसा प्रतीत होता था कि कुवेर की यह इच्छा थी कि मध्य लोक मे स्वर्ग की एक प्रतिकृति रही आवे । उस नगरी के मध्य मे महाराज नाभिराय के निवास हेतु सुरेन्द्र-भवन से स्पर्धा करने वाले नरेन्द्र-भवन की रचना की गयी थी । जिसकी दिवालो मे विचित्र मणि लगाये गये थे । स्वर्णमय स्तम्भो से वह समलकृत था । मूँगा, मुक्तादिकमालाओं से सुशोभित था । हरिवशपुराण मे उस राज-भवन के सर्वतोभद्र नाम से लिखा है ।

जैसे

सर्वतोभद्रसशोऽसौ प्रासाद सर्वतोमत ।
सैकाशीतपद-शाल, वाप्युद्यानोपलकृत. ।।८-४।।
शातकुम्भमयस्तम्भो, विचित्रमणिभित्तिक ।
पु ष्पविद्रुमु मपु क्तादि, मालाभिरुपशो भित· ।। ३ ।।

भगवान् का जिस नगर मे जन्म होता है वहाँ स्वर्ग से देवदेवेन्द्र निरतर आते ही रहते हैं । अत उसकी रचना

चटकीला रंग रूप लख, गहो न वस्तु सुजान ।
काहा रम्य इंद्रवारुण फल, भीतर कटुक महान ।।

मे किचित् मात्र सदेह के लिए स्थान नही पाया जाता क्योंकि यह सर्व कार्य देवो द्वारा हुआ था ।

महापुराण मे आचार्य जिनसेन स्वामी ने वर्णन किया है—

> **सूत्रामासूत्रधारोस्या. शिल्पिन, कल्पजा' सुरा. ।**
> **वास्तुजातमहीकृत्स्ना, सोद्धानास्तु कथंपुरी ।।७५।।**

उस जिनेन्द्रपुरी के निर्माण मे इन्द्र सूत्रधार थे । कल्पवाही देवशिल्पी थे एव निर्माणर्थ समस्त पृथ्वी मौजूद थी फिर भी वह नगरी सुन्दर नही होगी, ऐसा असभव है । बारह योजना प्रमाण विस्तार युक्त रमणीय नगरी की रचना की गई थी और महाराजा नाभिराय एव महारानी मरूदेवी को समृद्धि सयुक्त जिनेन्द्रपुरी मे निवास कराया गया था । फिर इन्द्र ने स्वर्ग के वस्त्र एव आभरणो द्वारा उनकी पूजा की थी । भगवान् के जन्म से पन्द्रह मास पूर्व उस नगरी मे प्रात , मध्याह्न, सायकाल और अर्धरात्रि मे चार वार साढ़े तीन करोड़ रत्नो की वर्षा होती थी । इस प्रकार चौदह करोड़ रत्नो की वर्षा प्रतिदिन पन्द्रह महीने तक होती रही । वह रत्न याचको को दिये जाते थे । इन्द्र की आज्ञानुसार कुण्डलगिरि द्वीप मे निवास करने वाली (१) चूलावती (२) मालनिका (३) नवमालिनका (४) त्रिशिरा (५) पुष्पचला (६) कनकचित्रा (७) कनकादेवी और (८) वारूणीदेवी यह अष्ट दिक्कन्याये तथा कल्पवासी की १२, भवनवासी की २०, व्यतरकी १६, ज्योतिष्क की २, कुलाचलवासिनी ६, यह सब छप्पन देवियाँ माती की सेवा करती है । इनमे श्री, ह्री धृति, कीर्ति, बुद्धि, और लक्ष्मी यह छह देवियाँ माता के गर्भ का शोधन करती हैं । छह मास बाद जिनेन्द्र जननी रात्रि के अन्तिम पहर मे अद्भुत सोलह स्वप्नो का अवलोकन करती हैं और प्रात.काल अपने पतिदेव से स्वप्नो का फल जानकर अत्यधिक आनन्द को प्राप्त होती है । जिनका सविस्तार वर्णन पुराणो में एवं गर्भकल्याणक पाठ में पाया जाता है ।

> **"सुर कुंजर सम कुजर धवल धुरंधरो ।**
> **केहरि केशरि शोभित नख शिख सुन्दरी ।**
> **कमला कलश हवन दुइ दाम सुहावनी ।**
> **रवि शशि मडल मधुर मीन जुगपावनी ।**
> **पावनि कनक घट जुगम पूरण, कमल कलित सरोवरो ।**
> **कल्लोल माला कुलित सागर, सिंहपीठ मनोहरो ।।**
> **रमणीक अमर विमान फणपति, भुवन रवि छवि छाजई ।**
> **रुचि रतन राशि दिपन्त दहन, सुतेज पुंज विराजी ।।**

इस प्रकार वह सोलह स्वप्न है ।

भगवान् के जन्म से १५ महीना पूर्व रत्न-वृष्टि होती रही थी । इस कारण पृथ्वी को रत्नगर्भा कहा गया है । जैसा कि महापुराण मे आचार्य देव ने कथन किया है—

> **रत्नगर्भा धरा जाता हर्षगर्भा सुरोत्तमाः ।**
> **क्षोभमायाजगद्गर्भो, गर्भाधानोत्सवेविभो ।।**

भगवान् के गर्भ कल्याणक के उत्सव समय पृथ्वी रत्न वर्षा के कारण रत्नगर्भा हो गयी थी । देवतागण हर्षगर्भ अर्थात् हर्षपूर्ण हो गये थे । पृथ्वी-मण्डल क्षोभ को प्राप्त था । भगवान् के गर्भावतरण की चर्चा जगत् विख्यात हो गई थी । माता की विविध प्रकार की सेवा करती हुई देवियाँ रहस्मय अनेक जटिल प्रश्न करती थी और माता सहज ही प्रश्नो का उत्तर देकर सबको हर्षित करती थी । इस प्रकार समस्त देव और इन्द्रों द्वारा गर्भकल्याणक महोत्सव मनाया गया था और गर्भ का पाचन समय पूरा होते ही भगवान् का जन्म होता है ।

जन्मकल्याणक

> **मति श्रुत अवधि विराजित जिन जब जन्मियो ।**
> **तिहुँ लोग भयो क्षोभित, सुरगन भरमियो ।**
> **कल्पवासि घर घंट अनाहत बज्जिया,**
> **ज्योतिष घर हरिनाद सहज गल गज्जिया ।।**

बजिया महजहिं संख भावन, भुवन सबद सुहावने ।
बिंतर निलय पटु पटह बजहि कहत महिमा क्यो ने ।।
कपित सुरासन अवधि बल, जिन जनम निहचै जानिये ।
धनराज तब गजराज मायामयी निरमय आनियो ।।

इस प्रकार जन्म-कल्याणक का मगलपाठ मे वर्णन आया है । जब मगलमय पावन शुभ लग्न एव शुभ दिन ज्ञान संयुक्त जन्म के दश अतिशयो सहित भगवान् तीर्थंकर का जन्म हुआ तो देवताओं के यहाँ अनहतवादित्रो की ध्वनि हुई, इन्द्रासन कपनित हुआ और इन्द्र के सिर पर लगा रत्न मुकुट स्वयमव नम्रीभूत हो गया । तब इन्द्र ने अवधि ज्ञान के बल से जाना की भगवान् का जन्म इस वसुन्धरा के मानवो के अनन्त कल्मष विकारो के प्रक्षालन कर मोक्षमार्ग बतलाने हेतु हो गया। तब "जयस जिन इत्युक्त्वा प्रणनाम कृताजलि," सिहासन छोड़ सात पद चलकर परोक्ष नमस्कार किया। भगवान् के जन्म होते ही ससार म सर्वत्र आनद छा गया । यहाँ तक कि नरक पर्याय म जहाँ की जीवो को क्षणमात्र भी शांति नही मिलती यहाँ भी एक अन्तमुहूर्त के लिए शाति का अनुभव हो गया था । प्राकृतिक वातावरण अत्यन्त रमणीय हो गया वायु-मण्डल स्वच्छ था, मन्द सुगन्धित पवन का सचार था, आकाश से सुगन्धित पुष्प वर्षा हो रही थी, जिसका वर्णन आचार्य देव ने शास्त्रो मे निम्न प्रकार किया है —

दिश प्रसतिमासेदु आसीन्निर्मलमम्बरम् ।
गुणा नामस्य वैमल्य, अनुकतोमिव प्रभो ।। १२/५
अनाहता पृथुध्वाना दध्वनुर्दिवजानका ।
मृदु सगधि शिशशिदो मरुन्मन्द तदाबवौ ।। १३/७

इस प्रकार सौन्दर्यपूर्ण वातावरण हो गया था । तब भक्ति से प्रेरित इन्द्र देवा सहित भगवान् का जन्म कल्याणक मानाने के लिए १ गज, २ तुरग ३ रथ ४ वृषभ ५ पैदल ६ गन्धर्व और ७ नृत्यकारिणी— इन सातो प्रकार की सेना के साथ स्वर्ग से चलने को तैयार हुआ । उस समय गधर्व देवो द्वारा साढ़े बारह करोड़ वादियो की मधुर ध्वनि से आकाश गूँज उठा । सौ धर्मेन्द्र शची सहित मायावती ऐरावत हाथी पर चला। यह हाथी एक लाख योजना विस्तार का एव पच्चीस हजार योजन का ऊँचा था, जिसके बत्तीस मुख थे, प्रत्येक मुख मे आठ-आठ दाँत थे, प्रत्येक दाँत पर एक-एक सरोवर था, प्रत्येक सरोवर मे एक-एक कमलिनी थी, जिसमे बत्तीस-बत्तीस कमल थे, प्रत्येक कमल मे बत्तीस-बत्तीस पत्ते तथा प्रत्येक पत्र पर ३२-३२ देवागनाये नृत्य कर रही थी । इस प्रकार २५६ दाँत, ८१९२ कमल २६२१४४ कमलपत्र, ८३८८६०८ देवागनाये नृत्य करती थी । जिसका वर्णन मुनिसुव्रत काव्य मे है ।

द्वा त्रिंशदास्यानि मुखेऽष्टदता, दन्तेऽब्धिरब्धो ।
बिसनी बिसन्या ।
द्वा त्रिंशदब्जानि दलानि चाब्जे, द्वात्रिंशदिन्द्राद्विरद
स्य रेजु ५ २२ ।

जन्म कल्याणक मगलपाठ मे ऐरावत हाथी का और ही विशेष वर्णन आया है ।

जो जन लाख गयद, वदन सौ निरमये ।
बदन-बदन वसुदत देत सर सहये ।।
सर सरस सौ नवबीस कमलिनी छाजहीं ।
कमलनि कमलनि कमल पचीस विराजही ।।
राजहि कमलनी कमल अठोतर सौमनोहर दल बने ।
हलहलहिं अपछर नटहि नवरस हाव भाव सुहावने ।।

एरावत का स्वरूप चिन्तन करते ही बुद्धिजीवी मनुष्य भी आश्चर्य उत्पन्न किये बिना नही रहेगा । किन्तु विचार किया जाय कि जैसे स्थूल पदार्थ एक छोटे से दर्पण मे दीखता है । अथवा छोटे से कैमरा से बड़ी वस्तु का चित्र लिया जाता है, उसी प्रकार दैविक विक्रिया का चमत्कारिक रूप था । विक्रिया

पहिले गुण अरु दोष का, करके पूर्ण विचार ।
ग्रहण कीजिये गुणन को, करो दोष परिहार ॥

शक्तिसम्पन्न देवो मे कल्पनातीत शक्ति रहती है । इस अद्भुत हाथी पर इन्द्र-शची-सहित सवार होकर भगवान् की जन्मपुरी अयोध्या की ओर समस्त देव-देवियो के साथ प्रस्थान करता है। प्रथम नगरी की तीन प्रदक्षिण करता है, पश्चात् राजप्रासाद के बाहर खड़ा होकर शची को प्रसूति-गृह मे भेजता है कि प्रिये तुम यथाशीघ्र तीर्थंकर कुमार को लावो, मेरा मन उनके दर्शन करने को आकुलित है लेकिन यह ध्यान रखना की माता को चिंता न हो जाये । अत माता को सुखमयी निद्रा मे निमग्न कर एक मायामयी बालक को समीप सुलाकर तीर्थंकर कुमार को ले आना । तब शची इन्द्र की आज्ञानुसार अन्त पुर मे प्रवेश करती है और सर्वप्रथम माता एवं जिनेन्द्रकुमार की तीन प्रदक्षिणा करती है । फिर बाल-स्वरूप तीर्थंकर कुमार का दर्शन करती है। उस समय जो आनन्द मिला उसका वर्णन कर सकना सरस्वती द्वारा भी सम्भव नही । फिर नमन करती है पश्चात् माता को निन्द्रा मे सुला, मायामयी बालक पास लिटाकर, जिनेन्द्रकुमार को बहुत ही प्रमोद एव आदर से अपने करपल्लव मे उठाते हुए जो आनन्द प्राप्त किया उसका वर्णन जिनसेन स्वामी ने निम्न प्रकार किया है—

तद्गात्रस्पर्शमासाद्य सुदुर्लभमसौतद,
मन्ये त्रिभुवनैश्वर्य स्वसात्कृतमिवाखिलम् । १३-१३

बाल जिनेन्द्र के शरीर का स्पर्श कर शची को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानो तीन लोग का ऐश्वर्य ही अपने आधीन कर लिया हो । इन्द्रानी कुमार को प्रसूति-मंदिर से बाहर लाती है और प्रतीक्षा मे जहाँ इन्द्र खड़ा था, वहाँ आकर बाल प्रभु की अनुपम सौन्दर्य मनोज्ञ रूप राशि का दर्शन कर तृप्त नही होती इन्द्र तब सहस्त्र नेत्रो द्वारा अवलोकन करता हुआ आनन्दित होता है । भगवान् की सुन्दरता का वर्णन श्रीमानतुंग आचार्य ने भक्तामर स्तोत्र मे इस प्रकार किया है—

यै: शान्तरागरुचिभि: परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रिभुवनैकललामभूत।
तावन्त एव खलु तेप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं नहि रूपमस्ति । ।

जिन पुण्य परमाणुओं से भगवान् के शरीर का निर्माण हुआ था वह सर्वोत्कृष्ट परमाणु अपने ही थे, इसलिए ससार मे भगवान् जैसा सौन्दर्य दूसरा प्राप्त नही कर सका था । तदनन्तर जिनराज को इन्द्रराज गजराज पर बिठाकर गिरिराज की ओर जन्माभिषेक करने समस्त देवगण-सहित चल देता है । सुदर्शन मेरु के ऊपर १०० योजन लबी ५० योजन चौड़ी और ८ योजन मोटी अर्द्धचन्द्राकार पाण्डुक शिला है जिस पर रत्नो के तीन सिहासन अनादि से निर्मित है । वहाँ बीच के सिहासन पर बाल जिनेन्द्र को विराजमान करके समीप मे बने एक सिहासन पर सौधर्म इन्द्र, दूसरे सिहासन ईशान इन्द्र खड़े होकर क्षीरसागर से जल भर कर एक हजार आठ कलशो से अभिषेक करते है । कलशो का प्रमाण मगल पाठ मे लिका है कि—

बदन उदर अवगाह कलश गत जानिये,
एक चार वसु योजन मान प्रमानिये ।

कलश आठ योजन गहरे, चार योजन उदर युक्त और एक योजन मुख वाले थे, जिनके द्वारा दोनो इन्द्रो ने अभिषेक किया था ए सनतकुमार व माहेन्द्र कुमार नाम के इन्द्र भगवान् पर चवर ढोल रहे थे । शेष इन्द्र और देव लोग जयजय-कार बोलते हुए सातिशय पुण्य लाभ ले रहे थे । जन्मकल्याण का विशद वर्णन तत्वार्थ राजवार्तिक, तिलोयपण्णत्ति महापुराण, त्रिलोकसार आदि ग्रन्थों मे किया गया है। वहाँ से ज्ञात करें ।

[illegible]

भगवान् जन्म से ही अतुबलशाली होते है, अत एक सहस्त्र आठ विशाल कलशो का अभिषेक भी कोई वाधा नही कर सकता । इस जन्मकल्याणक की अनुपमेय विभूति को देखकर अनेक मिथ्यादृष्टि देवो ने सम्यक्त्व प्राप्त कर लिया था । जिनसेन स्वामी ने कहा है —

दृष्ट्वा तदार्तनिर्मूर्ति कुदृष्टि मरुतो परे,
सन्मार्गरुचिमातेनु इन्द्रप्रमाव्यमास्थिता । १३-६३

अभिषेक के पश्चात् इन्द्रानी ने भगवान् का मृदुल वस्त्र से प्रक्षालन किया और स्वर्ग से लाये अलौकिक वस्त्र और आभरण पहिनाए, माथे पर तिलक लगाया और नेत्रो मे अजन लगाया । फिर पाण्डुक शिला से भगवान् को अयोध्या नगरी लाते है और शची माता के पास बाल जिनेन्द्र को लेकर जाती है । तव इन्द्र ने तीन लोक को आश्चर्य करने वाला ताण्डव नृत्य किया । महाराज नाभिराय ने पुत्रोत्सव मनाया । याचको को इच्छित दान दिये । इस प्रकार जन्म कल्याणक का उत्सव मनाया गया ।

तपकल्याणक

भगवान् की बाल्यावस्था के क्षण स्वर्ग मे प्राप्त भोगोपयोगी भोग के प्रचुर साधनो के साथ निकले और योवन अवस्था मे प्रवेश हुआ । राज्य एव प्रजा-पालनका कार्यक्षेत्र प्राप्तकर साधनहीन, प्रजाजना की समस्याओं का हल करना आवश्यक था क्योंकि भोगभूमि नष्ट होते ही कल्पवृक्ष समाप्त हो चुके थे, कर्मभूमि प्रारम्भ हो गई थी । इसलिए प्रजा को असि, मसि, कृषि, शिल्प, विद्या और वाणिज्य इन षट् कर्मों द्वारा आजीविका करने का उपदेश दिया । एव वन-प्रदेश मे लगे हुए अनाज को लाने और अग्नि द्वारा पकाकर खाने, गृह बनाने, व्यापार आदि करने का ज्ञान प्रजा को बतलाकर चिता से मुक्त किया । उसी समय आपस मे होने वाले अपराधो के लिए दण्डसहिता बनायी । (१) हा-(हाय तुमने बुरा किया), (२) मा (अब बुरा कार्य मत करना) (३) धिक् (बुरा कार्य करने से तुम्हे धिक्कार है) इन तीनो प्रकार के दण्ड की व्यवस्था बनायी गयी थी ।

राज्य का सचालन करते-करते जब अधिक समय व्यतीत हो गया तब इन्द्र ने वैराग्य उत्पन्न करने के लिए राज्य-सभा मे नृत्य करने हेतु नीलाजना देवी, जिसकी आयु अन्तर्मुहूर्त मात्र थी, भेज दी । वह नृत्य करते-करते आयु समाप्त होते ही विलीन हो गई । दूसरी नीलाजना नृत्य करने लगी । भगवान् तो जन्म से ही अवधि ज्ञानी थे, अत नीलाजना की मृत्यु जानकर आत्म चितन के साथ बारह भावनाओं का स्वरूप विचारकर ससार शरीर और पचेन्द्रियजन्य भोगो से विरक्त हुए क्योकि मोह-निद्रा का अत होकर आत्मस्वरूप की जागृति हो चुकी थी । अब तो चैतन्य आत्मा के सिवाय वेभाविक विचारो से भी दृष्टि हटते ही अन्य पदार्थों से भी दृष्टि समाप्त हो गई । तब ही पाँचवे ब्रह्म स्वर्ग के अन्त मे रहने वाले लौकान्तिक देव आये और वैराग्यवर्द्धक स्तुति कर प्रार्थना करने लगे --"वर्तते कालो धर्मतीर्थप्रवर्तने" अर्थात् अब धर्म, तीर्थ प्रवर्तन का समय आ गया है । भगवान् तो स्वयबुद्ध है किन्तु यह देवो का नियोग मात्र था, लौकान्तिक देव अपने स्थान चले गये तब स्वर्गलोक से सौधर्मादिक इन्द्र एव देवगण सुदर्शन पालकी लेकर आये और चैतन्य आत्मा मे रमण करने वाले एव दिगवरत्व धारण करने के इच्छुक भगवान् का प्रथम अभिषेक किया और सुन्दर वस्त्र-आभरण पहिनाकर पालकी मे विराजमान कर सिद्धार्थ दीक्षावन की ओर चले । वहाँ पहुँचते ही पालकी उतार दी "तब भगवान् पालकी से स्वय उतरे । उसका कथन हरिवश पुराण मे आचार्य देव ने किया—

घिसें कटें तपले पिटें, स्वर्ण परीक्षा जान ।
क्षमा शील आचार गुण, सो नर परखा जान ॥

अवतीर्णः स सिद्धार्थी, शिविकाया स्वयं यथा
देवलोकशिरस्थायाविवःसर्वार्थसिद्धितः ।।६-६१।।

सिद्धात्मा बनने वाले सिद्धार्थी भगवान् ऋषभनाथ देवलोको के सिर पर स्थित पालकी से स्वय उतरे जैसे कि स्वार्थसिद्धि से अवतीर्ण हुए है । वहाँ चन्द्रकान्ता शिला पर बैठकर समस्त वस्त्राभरणो का त्याग किया। फिर 'ओम् नम; सिद्धेभ्यो' कहकर पञ्चमुष्ठि से केशो का लुचन कर दिगम्बर निग्रन्थ-मुद्रा-धारण कर, महाव्रतधारण कर मनपर्ययज्ञानी बन गये । इन्द्र ने केशो को रत्नमजूषा मे रखकर क्षीरसागर मे विसर्जन किया । फिर भगवान् ने जगत् के क्षणिक भौतिक साम्राज्य को छोड़कर आत्मा के अखण्ड अविनाशी साम्राज्य को प्राप्त करने के लिए निर्विकल्प ध्यान मुद्रा-धारण की ओर आत्मसाधना मे निमग्न हो गये ।

तव श्रेणी आरोहण करते हुए क्रमश कर्मों का क्षय निम्न प्रकार करने लगे ।

जैसा तपकल्याणक मे कहा है—

खिप सातवे गण जतन बिन तहँ तीन प्रकृति जो बुधि बढिउ,
करि करण तीन प्रथम सुकल बल, खिपक सेनी प्रभु चढिउ
प्रकृति छत्तीस नवे गुण थान विनासिया ।
दशवे सूक्ष्म लोभ प्रकृति तहँ नासिया ।
सकल ध्यान पद दूजो, पुनि प्रभु पूरियो,
बारहवें गुण सोलह प्रकृति चुचूरियो ।।
चूरियो त्रेसठ प्रकृति यह विधि, घातिया कर्मनि तणी ।
तन कियों ध्यान प्रयत्न बारह विधि त्रिलोकशिरोमणि ।।

भगवान् के गुण स्थान के क्रम में सातवे गुण स्थान मे -७, आठवे मे -३, नवमे मे ३६, दशवे मे -१, बारहवे मे १६ । इस प्रकार ६३ प्रकृतियो की निर्जरा होते ही केवलज्ञान की उत्पत्ति हो गई ।

केवलज्ञान कल्याणक

केवलज्ञान प्राप्त होते ही आत्मा का सम्पूर्ण वैभव प्राप्त हो गया । वीतरागता, सर्वज्ञता एवं हितोपदेशिता के साथ ही परमौदारिक शरीर हो गया था । अनन्त चतुष्टय, केवलज्ञान के अतिशय और देवकृत अतिशय अपने आप प्रकट हो गये थे तथा भगवान् का परमौदारिक शरीर पाँच हजार धनुष ऊपर हो गया जिसका वर्णन 'तलोयपण्णति' ग्रन्थ मे आचार्य देव ने किया—

जादे केवलणाणे परमोरालं जिणाण सव्वाण ।
गच्छदि उवरिं चाव पच्च सहस्साणि वसुहावो ।।४।७१०५।

केवल ज्ञान होते ही पाँच हजार धनुष २०००० हजार हाथ शरीर पृथ्वी से ऊपर चला जाता है । तब कुबेर लोकोत्तर अनुपम विभूति से बाहर योजना प्रमाण समवसरण (धर्मसभा) की रचना करता है जिसमे स्वर्ण निर्मित बीस हजार सीढ़ियाँ होती हैं । दर्शक अन्तर्मुहूर्त मे ही उन सीढ़ियो को पार कर भगवान् केवली के दर्शन करते और दिव्य ध्वनि का श्रवण करते है । लेकिन उपदेश श्रवण कौन नही कर सकते अर्थात् समवसरण मे कौन जीव नही पहुँच पाते इसका आगम मे कथन पाया जाता-जैसे मुनि सुव्रत काव्य मे कथन है —

मिथ्यादृदशः सदसि, तत्र न सति मिश्रा ।
सासादन पुनरसंज्ञावदप्य भव्याः ।।
भव्याः पर विरचिता जलया सुविज्ञाः ।
तिष्ठिन्ति देववदनाभिमुखंगणोपि ।।

जिनेन्द्र देव की धर्मसभा मे अभव्य, मिथ्यादृष्टि, सासादन मिश्र गुण स्थान वाले जीव नही रहते । द्वादश सभा निर्मल चित्त वाले भव्यजीव ही हाथ जोड़े हुए जिनेन्द्र देव के समक्ष रहते हैं । तिलोयपण्णति मे भी कथन आया है—

मिच्छाइट्ठी अभव्वा, ते सुपसण्णीण होति कइआइ ।
तहय अणज्झ वसाय, संदिद्धा विविहाविवदी य ।।

इन कोठो मे मिथ्यादृष्टि अभव्य, और असज्ञी जीव कदापि नही होते तथा अनध्यवसाय से युक्त,

सन्देह से युक्त विविध प्रकार की विपरीतताओं से सहित जीव भी नही होते है । समवशरण की रचना सक्षेप मे निम्न प्रकार है—

मानस्तम्भाः सरासि, प्रविमलजल सत्‌वाटिका पुष्पवाटी ।
प्राकारो नाट्यशाला द्वितीय मपवन वेदिकात ध्वताया ।।
शाल कल्पद्रुमाणें सुपरिवृतवन स्तूप हर्म्यावलोच,
प्राकारा स्फाटिकोऽन्तर्नृसुर मुनि सभा पीटिकाग्रो स्वयम ।

समवशरण के बाहर सर्वप्रथम रत्नो की धूलि से निर्मित परकोट था जिसे धूलिसाल कहते है । इस धूलि शालि की चारो दिशाओं मे स्वर्णमय स्तम्भो से अवलंबित चार तोरणद्वार शोभायमान थ । फिर चारो दिशाओं मे चार मानस्तम्भ थे जो मानियो के मानभग को करते जिनके मूल मे स्वर्णमय प्रतिमाये विराजमान थी जिनका अभिषेक क्षीरसागर के जल से करके, इन्द्रलोक पूजा करते थे । प्रत्येक मानस्तम्भ की चारो दिशा मे चार सरोवर थे । जल पूरित चार परिखा थी और चार पुष्प वाटिका थी । तदनन्तर कोट जहाँ नाट्यशालाये थी । सामान्यत रचना निम्न प्रकार थी—(१) चैत्यभूमि (२) खातिका (३) पुष्पवाटिका (४) अशोकवृक्ष वाटिका (५) ध्वजाभूमि, (६) कल्पवृक्ष (७) नवस्तूप (८) बारह सभाये पश्चात् पीढका (गधकुटी) जिस पर स्वयभू भगवान् अरहत देव विराजमान है । (१) उनकी दाहिनी बाजू मे गणधरदेव आदि सात प्रकार के मुनिराज (२) कल्पवासी देवियाँ (३) आर्यिकाये व श्राविकाये (४) ज्योतिषी देवियाँ (५) व्यतर देवियाँ (६) भवनवासी देवियाँ (७) भवनवासी देव (८) व्यतरदेव (९) ज्योतिषीदेव (१०) कल्पवासी देव (११) मनुष चक्रवर्ती विद्याधर राजा (१२) तिर्यंच यह बारह सभाएँ है, जहाँ बैठकर भगवान् वीतराग के धर्मोपदेश को सुनकर अपनी आत्मा के विकारो का अभाव करते है। जिस पीठका पर भगवान् अरहत विराजमान रहते हैं, उसे महापुराण मे जिनसेन स्वामी ने अध्याय २२ श्लोक २८१ मे लिखा है कि—

सत्यं श्री मण्डव सऽयं यत्रासे परमेश्वरः ।
नृसुरासुरसाक्षिन्ये, स्वीचक्रे त्रिजगच्छ्रियं ।।

वह मडल श्री मडप था जहाँ पर परमेश्वर ऋषभदेव ने मनुष्य सुर-असुर के सामने तीनो लोगो की लक्ष्मी स्वीकार की थी । वह श्री मण्डप कितना बड़ा था उसका चित्रण किया है—

योजनप्रमितेयास्मिन् सम्मनुर्नृसुरासुरा' ।
स्थिता सुखमसबाव महोमाहात्म्यमीशितु. ।। २८-२८६

श्रीमडप एक योजन लम्बा चौड़ा था, उसमे मनुष्य सुर-असुर आदि सब जीव सुखपूर्वक निर्बाध रूप से रहते थे । यह भगवान् का माहात्म्य था । इस मण्डप मे तीन कटनी युक्त गन्धकुटी थी । जिनकी प्रथम कटनी पर अष्ट मगल द्रव्य रखे और यक्षदेव अपने सिर पर धर्मचक्र लिये खड़े थे । देदीप्यमान एक हजार आशाओं से सुशोभित ऐसे प्रतीत होते थे जैसे फीका रूप उदायचल मे सूर्य उदित हुआ हो ।

सहस्रणि तान्युद्यद्रत्नरश्मी निरेजिरे ।
भानुबिंबानि वोयति पीठकोदय पर्वतात् ।। २२-२६३

दूसरी कटनी पर आठ चिन्ह सयुक्त आठ रत्नमयी ध्वजाएँ थी जो पवन मे लहराती थी । महापुराण मे कहा है—

चक्रेभवृषभाँभोजवस्त्रसिंहगरुत्मता।
मालास्य च ध्वजादेजु., सिद्धाष्टगुणनिर्मल ।। २२-२६६

उन ध्वजाओं पर क्रम से चक्र, हाथी, बैल कमल, वस्त्र, सिह, गरुड और माला-चिह्न बने हुए थे । वे अत्यन्त निर्मल थी । अत' सिद्धो के आठ गुणो समान पड़ती थी । पश्चात् तीसरी कटनी भी रत्नो की बनी थी । वह तीन कटनी सहित थी जिस पर रत्नमय सिहासन था । उस पर रत्नो का कमल बना था । भगवान् चार अगुल ऊपर विराजमान थे । महापुराण मे कहा भी है—

तिष्ठंत वर्ष चके, भगवानादि तीर्थकृत,
चतुर्भिरंगुलै स्वेन भन्नि स्पृष्ट तततः ।। २१-२६७

भगवान् अरहंत परमात्मा के समवशरण मे केवल ज्ञान के दश अतिशय, देवकृत १४ अतिशय, अष्ठ प्रातिहार्य, चार अनन्त चतुष्टय, पील्ले के जन्मकृत १० मिलाकर सब ४६ गुण थे तिन मे से आत्मश्रित ४ व देहाश्रित ४२ थे । बारह सभा के जीव त्रिकाल मे मिलने वाले धर्मोपदेश को सुनकर मोह को नाश कर आत्मकल्याण करते है । आपकी दिव्यध्वनि १८ महाभाषा, ७०० लघुभाषा तथा जो जिस भाषा को जानने वाला होता है तदरूप परिणती हुई अनेक प्रश्नो का समाधान करती है । दिव्यध्वनि निरक्षर मेघगर्जना रूप खिरती है । दिव्यध्वनि की स्तुति करते हुए आचार्य देव लिखते है—

गम्भीरं मधुर मनोहरतर, दोषव्यपेत हित ।
कंठौष्टादि वचो निमित्त रहित, नो वातरोधोद्गत ।।,
स्पष्ट तत्तदभीष्टवस्तुकथक निःशेषभाषात्मकं ।
दूरासन्न समे शमा निरूपमे, जैन वचः पातु न ।।

गमीर, मधुर, अत्यन्त मनोहर, निष्कलक कल्याणकारी कठ, ओष्ठ, तालु आदि वचन उत्पत्ति के निमित्त कारणो से रहित, पवन के रोध बिना उत्पन्न हुई, स्पष्ट श्रोताओं के लिए अभीष्ट तथ्यो का निरूपण करने वाली, सर्वभाषी, समीप तथा दूरवर्ती जीवो को समान रूप से सुनाई पड़ने वाली शान्ति रस से परिपूर्ण तथा उपमा रहित जिनेन्द्र भगवान् की दिव्यध्वनि हमारी रक्षा करे । यह वीतराग भगवान् की वाणी स्तोत्र, कर्ण, हृदय को सुखदायी तथा गम्भीर होती है और सलिल परिपूर्ण मेघध्वनि समान एक योजन तक पहुँचती है । कहा है—

ध्वनिरपि योजनमेक, प्रजायते श्रोत्रहृदयहारि गंभीर ।
ससलिलजलधरपटलध्वनितमिव प्रविततान्तरासावलयं ॥

जब भगवान् का विहार होता है, अन्धे देखने लगते हैं, बहरे सुनने लगते है, लूले चलने लगते हैं, गूँगे बोलने लँगते हैं, ऐसी वीतराग की अचिन्त्य महिमा कही है ।

भगवान् के पीछे भामण्डल होता है, जिसमें श्रोताओं एवं दर्शको को अपने-अपने सात भव दिखते हैं । तीन भव पिछले (भूतकालिक), तीन भव अगले (भविष्यत्) एव एक भव वर्तमान का दिखता है । इस प्रकार भामण्डल अलौकिक टेलीविजन है जो अचिन्त्य है । भगवान की दिव्य ध्वनि का आधार लेकर गणधर देव ने चार अनुयोग रूप कथन किया है । इनका कथन बहुत विस्तार सहित है । अत. ग्रन्थो का अवलोकन करे । समवशरण मे भगवान् नव वर्ष कम एक कोटि पूर्व तक विराजमान रहते हैं । यह उत्कृष्ट आयु का कथन है । जब आयु समाप्त होने का समय आता है तब योग निरोधपूर्वक शुक्ल-ध्यान के सबल से ८५ प्रकृतियो का अभाव करते हैं । समवशरण विघट जाता है । बारह सभा के जीव हाथ जोड़कर खड़े होकर भगवान् की स्तुती करते हैं । इस प्रकार ज्ञानकल्याणक की अनुपमेय विभूति होती हैं । इन्द्रादिक देवगण भक्ति से प्रेरित सारी व्यवस्था के साथ ज्ञानकल्याणक का उत्सव करते है ।

निर्वाण कल्याणक

जब अरहत परमात्मा तेरहवे गुणस्थान के अतकाल मे योग-नरोध करने के लिये सूक्ष्म क्रिया नाम के तीसरे शुक्ल ध्यान के द्वारा कायँयोग को रोकते है । अर्थात् इस ध्यान मे सूक्ष्म काययोग का भी अवलम्बन नही रहता । योगो के बिल्कुल निरोध होने पर चौदहवे गुणस्थान मे शुक्ल ध्यान का व्युवरत क्रिया नाम का चौथा ध्यान होता है । उस समय १८ हजार शील के भेदो का पूर्व स्वामित्व प्राप्त होता है । ८४ लाख उत्तर गुणों की पूर्णता प्राप्त होती है और अयोगी जिन होते ही तीन गुप्तियों का स्वामित्व प्राप्त

होता है । चारित्र की पूर्णता होते ही अन्त के दो समयो मे (प्रथम समय मे ७२ द्वितीय समय मे १३) पचासी (८४) प्रकृतियो का क्षय करके अ इ उ ऋ लृ इन पाँच लघु अक्षरो के उच्चारण मे लगने वाले अल्पकाल के भीतर अयोगी जिन आत्मा विकास की चरम सीमा अवस्था सिद्ध पदवी को प्राप्त करती है । अर्थात् समस्त कर्मों से रहित शुद्ध समयसार अवस्था प्राप्त हो जाती है । इसी का नाम मोक्ष है, जैसा कि तत्वार्थसार ग्रन्थ के अष्टम अधिकार मे श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

बध्नाति कर्म सवेद्य सयोगः केवली विदु ।
योगाभावादयोगस्य, कर्मबन्धो न विद्यते । ३ ।
ततो निर्जीर्णनि शेषपूर्वसचितकर्मणः ।
आत्मन. स्वात्मसंप्राप्तिर्मोक्ष सद्योवसीयते । ४ ।
"दग्धेबीजे यथात्यन्त, प्रादुर्भवति नाङ्कुर ।
कर्म बीजे तथा दग्धे न रोहति भवाङ्कुर· । ।"

जिस प्रकार बीज के अत्यन्त जल जाने पर अकुर उत्पन्न नही होता । कर्मबन्धन का अभाव होते ही मुक्तात्मा ऊर्ध्वगमन करके लोग के अग्रभाग मे विराजमान हो जाते हैं । उनका वहाँ से आगमन नही होता, जिसका वर्णन अमृतचन्द्राचार्य जी ने तत्वार्थसार मे किया है —

तथापि गौरवा भावान्न, पातास्य प्रसज्यते ।
वृत्तसम्बन्धविच्छेदपतत्याम्रफलगुरु । । १२ । ।

स्थानवान् होने पर भी गुरुत्व का अभाव होने के कारण मुक्तजीव के पतन का प्रसग नही आता क्योंकि डण्ठल के सम्बन्ध-विच्छेद होने पर गुरु (वजनदार) आम का फल नीचे गिरता है । गुरुत्व पुद्गल का स्वभाव है, आत्मा का नही । इसलिए मुक्तात्मा का मोक्षस्थान से पतन नही होता और उस पैतालीस लाख योजन के सिद्ध-क्षेत्र मे सवा पाँच सौ धनुष की उत्कृष्ट अवगाहना एव साढ़े तीन हाथ की जघन्य अवगाहना वाले सिद्ध परमात्मा कार्योत्सर्गासन और पद्मासन की स्थिति मे विराजमान हैं । एक सिद्ध परमात्मा की अवगाहना मे अनन्तानत सिद्ध भगवान अपनी-अपनी सत्ता मे शाश्वत अक्षय अनत आनन्द का भोग करते हैं । उस मोक्ष की उपमा नही दी जा सकती क्योंकि वह वचनातीत एव परमोत्कृष्ट है । तत्वार्थसार मे कहा है—

संसारविषयातीतं, सिद्धानामव्यय सुखम् ।
अव्याबाधमितिप्रोक्तं,परमंपरमर्षिभिः । । ४५ । ।

सिद्धो का सुख ससार के विषयो के अतीत, अविनाशी, अव्याबाध एव परमोत्कृष्ट है, वह अनुमान और उपमान प्रमाण का विषय न होकर अनुपम माना गया है । मुक्त जीवो का वह सुख अर्हन्त भगवान् के प्रत्यक्ष है तथा उन्ही द्वारा उसका कथन किया गया है । इसलिए "वह है" इस तरह विद्वानो द्वारा स्वीकृत किया जाता है । अज्ञानीजन उसे समझ नही पाते जैसा कहा है—

प्रत्यक्षं तद्भगवतामर्हतां तै· प्रभाषितम् ।
गृह्यते स्तीव्यत· प्राज्ञर्न च छद्मस्थपरीक्षया । । ५४ । ।

मोक्षप्राप्त होते ही ससार के परमाणु बिखर जाते है, मात्र नख, केश शेष रह जाते हैं तब इन्द्र आकर मायामयी शरीर बनाकर अगर-तगर, चन्दन, कपूर आदि पदार्थों द्वारा उनके शरीर का अन्तिम सस्कार करते हैं । उस समय अग्नि कुमार देवो के मुकुटो से अग्नि प्रज्वलित होती है और शरीर भस्म हो जाता है । उस समय चतुर्निकाय देव निर्माण कल्याणक की पूजा करते हैं और भावना करते हैं कि भगवान् हमे भी इस प्रकार का अवसर प्राप्त हो और हम पञ्च परावर्तन रूप ससार का अभाव करके निर्वाण अवस्था को प्राप्त हो ।

यह पञ्चकल्याणक उत्सव ससार के प्राणियों को सम्यग्दर्शन प्राप्त कराके भवस्थिति समाप्ति मे कारण हो, इसलिए श्रद्धापूर्वक इस उत्सव को करना चाहिए ।

गृहस्थ को आत्म कल्याण के लिए पंच-परमेष्ठी की स्तुति एव पूजा प्रतिदिन करना चाहिए। देवपूजा, गुरुपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान इन षट्कर्मो के आलम्बन नव देवता हैं।

अरहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, सर्वसाधु, जिनागम, जिनधर्म, जिनमन्दिर और जिनप्रतिमा ये नव देवता है। प्रात अपनी उपासना मे श्रावक इनकी आराधना करके वीतरागता और मानवता की शिक्षा ग्रहण करता है, जो इसके आध्यात्मिक और व्यवहारिक जीवन मे उपयोगी है।

उक्त नव देवो मे वर्तमान मे जहा हम निवास करते है उस क्षेत्र मे अरहत एव सिद्ध परमात्मा विराजमान नही है। अन्तिम तीन परमेष्ठी के दर्शन होते है, किन्तु उनकी प्रतिदिन अभिषेक एव पूजा का हम अपने यहा लाभ नही उठा सकते। उनका अभिषेक किया भी नही जाता। जिनमन्दिर, जिनागम और जिनधर्म का भी अभिषेक नही होता। सिर्फ जिनमन्दिर की प्रतिष्ठा के समय दर्पण मे उनके प्रतिबिम्ब का मत्र पूर्वक अभिषेक होता है। अब सिर्फ जिन प्रतिमा ही ऐसी है जिसका अभिषेक पूर्वक पूजन प्रतिदिन नियमित किया जा सकता है। और उसके द्वारा हम पच परमेष्ठी की पूजा कर सकते है। वह किसी भी तीर्थंकर की हो, वीतरागता का आदर्श होने से उनके माध्यम से सभी परमेष्ठियो की पूजा की जा सकती है। श्रावक के प्रतिदिन के कर्तव्य मे देव शास्त्र गुरुपूजा, चौबीस तीर्थकर पूजा, बीस विद्यमान विदेह-क्षेत्रवर्ती तीर्थकर पूजा, सिद्धपूजा, जिनालय, सिद्धक्षेत्र, नन्दीश्वर, दशलक्षण एव रत्नत्रयधर्म आदि की अष्टद्रव्य पूजा वा अर्घ हम चढ़ाते ही है। इतना लिखने का अभिप्राय यह है कि इनमें प्रतिमा ही प्रमुख आलबन है जिसमें हम पच परमेष्ठी की स्थापना कर पूजा करते हैं। उनमें अर्हन्त प्रतिमा की स्थापना मुख्य है। सिद्धप्रतिमा मे अष्ट प्रातिहार्य और चिन्ह नही होते जबकि अर्हन्त प्रतिमा मे होते हैं। हम जो जिनेन्द्र वेदी में पोल आकार की सिद्ध प्रतिमा देखते हैं वह प्रतिष्ठा शास्त्रोक्त नही है। अर्हत प्रतिमा के समान सागोपाग प्रातिहार्य रहित एव बिना चिन्ह की प्रतिमा सिद्ध प्रतिमा होती है।

आचार्य वसुनन्दि, जयसेन और आशाधर प्रतिष्ठापाठों में प्रतिमा लक्षण और माप प्राय समान है। श्रीवत्स से भूषित उदरस्थल, तरुणाग, दिगम्बर, नख-केश रहित, कायोत्सर्ग या पद्मासन, नासाग्रदृष्टि सुन्दर सस्थान वाली प्रतिमा होना चाहिए। खड्गासन प्रतिमा १०८ अगुल (भाग) प्रमाण हो जो नव स्थानो में विभाजित हो।

यहा अगुल द्वादशागुल या ताल माना जाता है। १०८ अगुल में १२ अगुल मूल, ४ अगुल ग्रीवा, ग्रीवा से हृदय १२ अगुल, हृदय से नाभि १२ अगुल, नाभि से लिंग १२ अगुल रहना चाहिये। लिग से गोड़ा २४ अगुल, गोड़ा ४ अगुल, गोड़ा से गुल्फ २४ अगुल, गुल्फ से पगथली ४ अगुल हो।

पद्मासन से आधा हिस्सा ऊंचाई रहती है। इसमे एक घुटने से दूसरा घुटना बायें घुटने से बाये कन्धे तक बाये घुटने से दाये कन्धे तक और पादपीठी से केशांत तक इस प्रकार चतुर सुमाप होता है। अभयनंदि तथा यशस्तिलक चम्पूकार आचार्य

सोमदेव तथा नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती रचित त्रिलोकसार के अनुसार १० ताल की प्रतिमा भी जिनेन्द्र प्रतिमा बताई है। इस दृष्टि से १२० भाग होते हैं।

इसी प्रसग मे यह सकेत करना आवश्यक है कि मन्दिर की वेदी मे प्रतिमा विराजमान करते समय मन्दिर के सामने द्वार की ऊचाई का ख्याल रखा जावे। द्वार की ऊचाई के ८ भाग करे। ऊपर का ८ वा भाग छोड़कर ७ वे भाग मे प्रतिमा की दृष्टि होना चाहिये। अथवा उक्त ७ वे भाग के ८ भागो मे से ५-३-१ वे भाग मे दृष्टि रहे। यह स्थूल रूप से बताया गया है। इससे विशेष ज्ञातव्य यह है कि द्वार के ९ भाग करे। नीचे के ६ भाग और ऊपर के २ भाग छोड़ दे। शेष ७ वें भाग के भी ९ भाग करे इसी के ७वे भाग मे वीतराग जिन प्रतिमा की दृष्टि होना चाहिये।

निजगृह के चैत्यालय मे (जो घर से बिल्कुल मिला हुआ हो) पाषाण की प्रतिमा न रखे। मदिर मे भी वेदी से बाहर अभिषेक व शान्तिधारा तथा जुलूस हेतु सर्वधातु प्रतिमा ही रखी जावे। अभिषेक वीतराग प्रतिमा ('पचपरमेष्ठी') का किया जाता हे। अत जन्म कल्याणक मानकर या जन्माभिषेक मगल बोलकर नही करना चाहिये। अर्हत्सिद्ध प्रतिमा जो दिगम्बर रूप मे है उसी का मत्र (दूरावनम् आदि व कर्मप्रबन्ध आदि मत्र) बोलकर करना उचित ह। अभिषेक का पवित्र जल शिर आदि ऊचे भाग म ही लगाना विनय है।

आजकल जिन प्रतिमा की पचकल्याणक प्रतिष्ठा नही होने का प्रचार कर बिना प्रतिष्ठा का, अन्य स्टेच्यु की भाँति अनावरण कराने की चर्चा समाचार पत्रों में चलाई जा रही है तथा अष्ट द्रव्य पूजा भी जैन धर्मानुकूल नही बताई जा रही है। ऐसे विचार वाले बन्धुओं को विचार करना होगा कि बिना विधि वा बिना मत्र सस्कार के प्रतिमा में पूज्यता नही आ सकती। जैसे फोटू वा स्टेच्यु जो कि कागज प्लास्टिक या पाषाण के होते हैं उनमें पूज्य बुद्धि नही होती, उसी प्रकार अप्रतिष्ठित प्रतिमा में पूज्यता लाये बिना उसकी पूजा अनिष्ट कारक होती है। जिस प्रकार मर्यादित और शुद्ध भोजन ध्यान के लिये उपयोगी होता है उसी प्रकार पाषाण या धातु से शास्त्रोक्त नियमानुसार सागोपाग तैयार की गई मूर्ति का महत्व है। वीतराग मूर्ति को द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की शुद्धता पूर्वक निर्माण कराने वाले व्यक्ति को सदाचारी होना आवश्यक है। चाहे जैसी मूर्ति वीतरागता का आदर्श नही हो सकती। मूर्ति के अगोपाग निर्माण मे न्यूनता का परिणाम अच्छा नही होता। प्रतिमा के प्रत्येक अग की न्यूनता के अलग-अलग दुष्फल बताये गये है।

सूत्र (धागा) सरसो, सुपारी, जल, कील आदि अचेतन पदार्थों को मत्रित कर उनका उपयोग करने से उनके रोग और विपत्तिया दूर होती देखी गई है। बिच्छू, सर्प आदि का विष मत्र से दूर हो जाता है। शरीर के वायुगोला, सिरदर्द आदि मत्र से ठीक हो जाते है। उसी प्रकार अचेतन पाषाण या धातु की मूर्तियो मे मन्त्र सस्कार से आकर्षण और चमत्कार उत्पन्न होता है।

शिशु के जन्म के पूर्व माता का गर्भाधान सस्कार, सीमन्त सस्कार तथा जन्म लेने पर बालक के जन्म एव विवाह आदि सस्कार किये जाते हैं जिनका बालकों के जीवन पर अच्छा प्रभाव पड़ता

है। सत्संस्कार सम्पन्न व्यक्तियों की विशेषता का दिग्दर्शन महापुराण आदि ग्रन्थों में भरतेश्वर आदि के उदाहरणों द्वारा कराया गया है। प्रतिष्ठा शास्त्र में लिखा है-

जहा पच कल्याणक मत्रों से अतद्गुण में गुणस्थापनारूप आरोप का विधान कर सर्वज्ञता की स्थापना की जाती है, वहा उस क्रिया के अनुष्ठान से स्थापना निक्षेप द्वारा उसका वैसा ही ज्ञान होता है। स्थापना निक्षेप द्वारा मूर्ति मे पचकल्याणक मत्रो से गुण स्थापन और सर्वज्ञता का आरोप करने से वह मूर्ति वीतराग और सर्वज्ञ तीर्थकर की कहलाती है। प्राणप्रतिष्ठा के मत्र से वह अचेतन से सचेतन मानी जाती है। इसमे आगे के पद्य मे आचार्य श्री ने लिखा है कि स्थापनाग प्रधान नाम निक्षेप द्वारा भावारोप के कारण वह भव्यों द्वारा मान्य होकर पूजा स्तोत्र के योग्य होती है। उस मूर्ति मे यदि ऋषभदेव की स्थापना मत्रो द्वारा की गयी है तो वह ऋषभदेव की कहलाती है। बिना प्रतिष्ठा वह पाषाण के समान है। आचार्य वसुनंदि ने स्थापना पूजा मे जिनेन्द्र गुणारोपण गाथा ४१८ के स्पष्टीकरण में पर्व ९६ से अनेक श्लोको मे लिखा है कि अर्हंत प्रतिमा में पचकल्याणक, अष्ट प्रातिहार्य, अनन्त दर्शनादिगुणारोपण करे। इनके लिये प्रतिमा के प्रत्येक अग में मत्रन्यास ४८ सस्कार स्थाप नेत्रोन्मीलन, श्री मुखोद्घाटन, सूरिमत्र, प्राण प्रतिष्ठा आदि मत्रो के द्वारा गर्भ से लेकर केवलज्ञान तक सस्कार होते है। जो बाह्यक्रिया में दर्शको को बताई जाती हैं, उन्हे ही पचकल्याणक प्रतिष्ठा का स्वरूप समझ लेना भूल है। इनके अतिरिक्त अन्तरगक्रिया में मत्र सस्कार हेतु की जाती है। गर्भ, जन्म कल्याणकों में जो प्रदर्शन होता है वे तीर्थकरों के जीवन की घटनाये हैं। वे वीतरागता के पूर्व पुण्य वैभव के रूप में दिखाई जाती हैं। पश्चात् उस वैभव का त्याग होकर वीतरागता का आदर्शग्रहण कराया जाता है। पचकल्याणक प्रतिष्ठा विधि आत्मा से परमात्मा बनने का विधान है। इसमें प्रारम्भ में किस प्रकार आत्मा का क्रमश उत्थान होकर मुक्ति प्राप्त होती है। तथा प्रथमानुयोग आदि चारों अनुयोगो का एक ही जीवन में किस प्रकार समन्वय होता है यह सब पचकल्याणकों के माध्यम से दिग्दर्शन कराया जाता है। साथ ही स्वप्न वा पूर्व भवो के वर्णन से कर्मसिद्धान्त का भी परिचय दिया जाता है। जिनबिम्ब दर्शन को सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का साधन माना गया है। पचकल्याणक व जिनबिम्ब स्थापन को आचार्य जयसेन ने सम्यक्त्व का उत्कृष्ट लाभ बताया है। जय प्रति० पृ० २६।

प्रतिष्ठा या अन्य पूजा विधानों में हवन (शान्ति यज्ञ) की परम्परा की आजकल कतिपय सज्जन हिसा कारण मानकर बन्द करना चाहते हैं और इसे भी वैदिक धर्म की नकल मानते हैं। सभी प्रतिष्ठापाठो और आदिपुराण आदि में आचार्यों ने तीर्थकर कुण्ड, गणधर कुण्ड और सामान्य केवलि कुण्ड की रचना करके ११२ आहूति मत्र बताये हैं। पूजा में चढ़ाये गये द्रव्य को हवन में क्षेपण का भी उल्लेख मिलता है। मन्दिर में गृहस्थ जब जल, पखा आदि का उपयोग करते हैं, स्नान आदि के लिये भट्टी जलाते हैं और बड़े-बड़े भोज देते हैं तब हवन का निषेध करना आश्चर्य का विषय है। अखण्ड दीपक, बिजली की रोशनी आरती आदि, अग्नि मे धूप खेना आदि कार्य भी होते है। हवन से अनेक रोग दूर

होकर शुद्ध वातावरण बनता है मत्र जाप के बाद उनसे आहूति देने पर मत्र की शक्ति बढ़ती है ।

इतिहास की दृष्टि से विचार करने पर कलिग नरेश खारवेल के ईस्वी पूर्व द्वितीयशती के हाथी गुफा वाले शिलालेख से प्रमाणित हैं कि नन्दवश के राज्यकाल ईसवी पूर्व चौथी पाचवी शताब्दी मे जिन मूर्तिया प्रतिष्ठित की जाती थी ।लोहानीपुर से प्राप्त आर्यकालीन जिन प्रतिमा पटना सग्रहालय मे सुरक्षित है । सिन्धुघाटी की खुदाई में मोहनजोदड़ो व हड़प्पा से प्राप्त प्रतिमायें श्रमण परम्परा की मानी गई हैं । मथुरा के सग्रहालय से एकत्रित कुषाणकालीन मूर्तियो पर पाचवे से नवे वर्ष तक का उल्लेख है ।

इस प्रकार मूर्ति और उनकी प्रतिष्ठा आत्म कल्याण के लिये प्रमुख साधन और वीतरागता की ओर बढ़ने में प्रेरणा प्रदान करती है । मूर्ति के द्वारा हम परमात्मा की उपासना करते है ।

पंचकल्याण - अकल्याण से छूटने का उपाय

जिस प्रकार जगत मे द्रव्य , क्षेत्र , काल , भव तथा भावात्मक ससार -परिभ्रमण स्वरूप पाच प्रकार के अकल्याण है । उसी प्रकार उनसे छूटने के लिये पच प्रकार के कल्याण भी मुनीद्रो ने बतालाये हैं । जिनेद्र भगवान का माता के गर्भ मे आना गर्भ कल्याणक है ।समस्त जगत के जीवों सुख और शाति प्रदान करने वाला दन देवाधिदेव का जन्मोत्सव जन्म कल्याण है । विवेक के जागृत होने पर इन्द्रियो की दास्ता को त्याग कर मोहनीय आदि कर्मो को जीतने के लिये उनका विशुद्धिप्रद तपोवन मे प्रवेश करना दीक्षा कल्याणक , तप कल्याण अथवा नि क्रमण महोत्सव कहा जाता है । आत्म शक्ति के द्वारा ज्ञानावरण, मोहनीय आदि कर्म शत्रुओ का नाश होने पर सर्वज्ञता रूप आत्मप्रकाश होता है । उसे केवल ज्ञान कल्याण कहते है ।

इस केवलज्ञान की अवस्था मे जिनेन्द्र भगवान अपनी दिव्य वाणी के द्वारा ससार- सिन्धु मे डूबते हुये समस्त जीवों को अविनाशी सुख तथा शाति का मार्ग बतलाते है । इसके पश्पात उत्कृष्ठ शुल्क ध्यान के प्रसाद से आघातिया कर्मो का अन्त कर वे सिद्ध भगवान बनते है ।इसी ही मोक्ष पुरूषार्थ की प्राप्ती की विधि में मन, वचन काय तथा कृत कारित अनुमोदना द्वारा भाग लेने वाला भव्य कर्मो की महान निर्जरा करता हुआ सातिशय पुण्य को प्राप्त करता है । इस दयामान महान यज्ञ के नायक होने के कारण जिनसेन स्वामी ने जिनेन्द्र भगवान को " पचकल्याण- नायक " के साथ " दयायाग " शब्द द्वारा स्मरण किया है ।

यह एक प्रश्न है कुछ समाजसेवको का ।

उनका कथन है कि मूर्ति की प्रतिष्ठा तो मात्र मत्रो द्वारा कोई प्रतिष्ठाचार्य कर सकते हैं। इसके लिए लाखो व्यक्तियों का मेला भरना और लाखो रुपया खर्च करना व्यर्थ व्यय है। वह रुपया खर्च होता ही है। साथ ही जो समाज लाखो की सख्या मे आती है उनका भी यात्रा-व्यय तथा अन्य व्यय भी लाखो रुपयो का हो जाता है। गजरथ प्रतिष्ठा मे यह व्यय और भी अधिक होता है। यह सब समाज के उद्धार मे अन्य मार्गो से लगाया जाय तो अधिक उपयोगी है।

प्रश्न और प्रश्न का उत्तर दोनो जिन समाजमेवियों द्वारा किया जाता है वह व्यर्थ नही है, कुछ अर्थ रखता है। वे नवनिर्माण तथा नव प्रतिष्ठा आदि के व्यय की दिशा मोड़ना चाहते है, तथापि इन कार्यो को व्यर्थ व्यय कहना तर्कसगत नही है। ये भी समाज व धर्म प्रभावना के एक विशिष्ट अग है।

मूर्ति-प्रतिष्ठा म लाखो लोगो द्वारा मूर्ति को मान्यता दी जाती है। सारे भारत मे जैन मूर्ति की मुद्रा की एक रूपता इन पचकल्याणक प्रतिष्ठानो के मेले के कारण ही है। समागत समाज भी दर्शन करती है और यह देखती है कि मूर्ति हमारी जिनागम की परम्परा के अनुरुप है या नही। यदि नही तो तत्काल समाज प्रश्न खड़ा कर सकती है। कि इस मूर्ति को जैन मूर्ति कैसे माना जाये। मत्र-प्रतिष्ठा के साथ लोक-प्रतिष्ठा भी आवश्यक है, अन्यथा मूर्तियो मे एक रूपता न होगी। यह प्रतिष्ठा का सर्वोत्तम लाभ है, जो बिना मेले के होना सभव नही है।

दूसरे समागत जनता अपनी भक्ति भावना को भी इन कार्यो से पुष्ट करती है। बाल-वृद्ध, युवा कन्यायें, मातायें,भगिनिया सब समान रुप से इसमें भाग लेकर धर्मभाव से प्रभावित होती है।

जिस प्रकार राजनैतिक देशो के अधिवेशन करोड़ों रुपया खर्च कर, प्रचार और प्रसार के लिये होते है, इसी तरह ये भी धर्म प्रचार व प्रसार के साधन है। यदि लाखो का व्यय है तो लाखो लोगों को लाभ भी मिलता है वह जनता ही प्रकारातर से देती है।

समाज का सभी वर्ग इसी दिशा में खर्च करता हो यह भी नही है। हजारों व्यक्ति छात्रवृत्तिया-जैन छात्रालय जैन विद्यालय -ग्रथ प्रकाशन, देश-विदेश मे धर्म प्रचार, गरीबो व विधवाओं की सहायता-स्कूल और कालेज आदि विविध क्षेत्रों में लाखो का व्यय करते है। यदि धर्म प्रचार-प्रसार के ये सब कार्य उपयोगी है प्रतिष्ठायें भी उपयोगी है। तथापि अनावश्यक निर्माण और अनावश्यक प्रतिष्ठाये न हो यह इष्ट है। मर्यादा होनी चाहिए तीर्थ क्षेत्रो पर प्राचीन की सुरक्षा तथा व्यवस्था आवश्यक है।

जैनेतर समाज इन गजरथ प्रतिष्ठाओं मे जैन जनसख्या से दस गुनी आती है। जैनो का कोई-कोई उत्सव इतना व्यापक नही होता जहा प्रदेश के कोने-कोने से अपढ़ जनता श्रद्धा वश या कुतूहल शमनार्थ एकत्रित होती हो। अत कम से कम एक धर्मोत्सव तो ऐसा है, जहा उक्त उद्देश्य की पूर्ति होती है।

जैन दर्शन के मान्यता है कि ससारी जीव अपने कर्म- बधन के कारण देव, मनुष्य, तियच और नरक इन चार गतियो मे भ्रमण करता रहता है। कर्मबधन से सर्वथा मुक्त होने पर जीवात्मा सिद्ध अवस्था को प्राप्त करता है और लोक के अग्रभाग मे जाकर स्थिर हो जाता है, तब उसे ससार मे पुन नहो आना पड़ता। इन सिद्ध आत्माओ की सख्या अनन्तानन्त है। सभी सिद्ध आत्माए मनुष्य योनि से ही सिद्ध अवस्था को प्राप्त करती है। तीर्थंकर भी उसी प्रकार सिद्ध अवस्था प्राप्त करते हे। वे देव जाति के नही होते, वे तो देवाधिदेव है, क्योकि मानव शरीर धारण करते हुए भी वे देवताओ द्वारा पूजित होत है, इसीलिये उन्हे देवाधिदेव कहा गया हे।

शास्त्रो के द्वारा अच्छी तरह जाने हुए तीर्थकरा के प्रति दर्शन पूजनादि आदररूप व्यवहार करने के लिये अमुक तीर्थकर हे ऐसा कह कर जो अपने भावो मे प्रकाशित भगवान की प्रतिमा मे स्थापना करना वह प्रतिष्ठा हे।

"मुक्त्यादौ तत्तवेन प्रतिष्ठिताया न देवतापास्तु।
स्थाप्येन च मुख्येय तदधिष्ठानाध भावेन ॥
"भवति च खलु प्रतिष्ठा निज भावस्यैव देवतादेशान् ॥"

मुक्त होकर लोकान्त जा विराजे हुए देवता स्थाप्य (मूर्ति) मे नही आ सकते अत साक्षात् देव की स्थापना तो नही है, परन्तु उपचार से देवता के उद्देश्य से निज भावो की ही मूर्ति मे प्रतिष्ठा होती हे।

कल्याण मन्दिर मे आचार्य श्री ने लिखा है-
आत्मामनीषिभिरय त्वदभेट बुद्धया।
ध्यातो जिनेश भवतीह भवत्प्रभाव ॥

हे भगवन्! जब बुद्धिमान पुरुष निज आत्मा को ध्यान के द्वारा आप से अभिन्न कर लेता है तो उसमे आपका प्रभाव आ जाता है। अस्तु!

अर्हत, सिद्ध, साधु और केवली प्रणीत धर्म इन चारो को जैन परम्परा मे मगल और लोकोत्तम माना गया है। साधु ३ प्रकार के होते है (१) आचार्य (२) उपाध्याय (३) सर्व साधु। इन पच परमेष्ठियो और श्रुतदेवता की पूजा करने का विधान प्राचीन जैन ग्रन्थो मे मिलता हे। वसुनन्दि श्रावकाचार मे आचार्य श्री ने लिखा है -

जिणसिद्ध सूरिपाठय साहूण ज सुयस्स विहिवेण।
कीरइ विविहा पूजा वियाण त पूजणविहाण ॥

आचार्य श्री जिनसेन के आदिपुराण मे पूजा श्रावक के निरपेक्ष कर्म के रुप मे अनुशसित है।

पूजा के छह प्रकार बताये गये है (१) नामपूजा (२) स्थापना पूजा (३) द्रव्यपूजा (४) क्षेत्रपूजा (५) कालपूजा (६) भावपूजा। इनमे से स्थापना के दो भेद सद्भावस्थापना और असद्भावस्थापना। प्रतिष्ठेय की तदाकार सागोपाग प्रतिमा बनाकर उसकी प्रतिष्ठा करना सद्भाव स्थापना है और शिला, पूर्णकुभ अक्षत, रत्न, पुष्प, आसन आदि प्रतिष्ठेय से भिन्न आकार की वस्तुओ मे प्रतिष्ठेय का न्यास करना असद्भावस्थापना हे। असद्भावस्थापना पूजा का जैनाचार्यो ने प्राय निषेध किया है, क्योकि वर्तमान काल मे लोग कुलिग- मति से मोहित होते है और वे असद्भावस्थापना से अन्यथा कल्पना भी कर सकते है।

ससारी प्राणियों के अभ्यतर मल को गला कर दूर करने वाला और आनन्ददाता होने के कारण मगल पूजनीय है। पूजा के समान ही मगल भी ६ प्रकार का जैनाचार्यो ने बताया है । (१) नाममगल (२) स्थापनामगल (३) द्रव्य मगल (४) क्षेत्र मगल (५) काल मगल (६) भावमगल। कृत्रिम और अकृत्रिम जिन बिम्बों की स्थापना मगल माना गया है। जय सेनाचार्य के अनुसार जिनबिम्ब का निर्माण कराना मगल है।

जिन प्रतिमा के दर्शन कर चिदानद का स्मरण होता है अत जिनबिम्ब का निर्माण कराया जाता है। बिम्ब मे जिन भगवान और उनके गुणो की प्रतिष्ठा कर उनकी पूजा की जाती है। आगम की मान्यता हे कि प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत पर बहत्तर जिन मन्दिरों का निर्माण करवाकर उनमे जिन प्रतिमाओ की स्थापना कराई थी और तब से जैन प्रतिमाओं की स्थापना विधि की परपरा चल रही है।

जैन प्रतिमाओ का निर्माण और उसकी स्थापना अति प्राचीन काल से चल रही है इस तथ्य की पुष्टि निश्शक- रूपेण पुरातत्वीय प्रमाणों और प्राचीन जैन साहित्य के उल्लेखो से होती है।

मंदिर निर्माण विधि -

मदिर कैसे स्थान पर निर्मित होना चाहिये ? इसके समाधान मे प्रतिष्ठा- पाठ के विशेषज्ञो ने कहा है कि नगर के शुद्ध प्रदेश मे, अटवी मे, नदी के समीप, पवित्र भूमि में मदिर बनवाना शुभ कहा गया है। मनोज्ञ स्थलों पर जिन मदिरों का निर्माण किया जाना चाहिये।

जिन मदिर के लिये भूमि का चयन करते समय अनेक उपयोगी बातों पर विचार करना होता है। जैसे- भूमि शुद्ध हो, रम्य हो, स्निग्ध हो, सुगध वाली हो, दूर्वा से आच्छादित हो, पोली नही हो, वहा कीड़े-मकोड़ों का निवास नही हो तथा श्मशान भूमि भी न हो। भूमि का चयन मदिर निर्माण विधि का सर्वाधिक महत्वपूर्ण अग है। योग्य भूमि पर निर्मित (प्रासाद) मन्दिर ही दीर्घकाल तक स्थित रह सकता है।

विभिन्न ग्रथकारो ने भूमिपरीक्षा के उपाय बताये है, जैसे-जिस भूमि मे मन्दिर निर्मित करने का विचार किया गया हो उस भूमि में १ हाथ गहरा गड्ढा खोदा जावे और फिर उस गड्ढे को उसी में से निकाली मिट्टी से पूरा भरा जावे। ऐसा करने पर यदि मिट्टी गड्ढे से अधिक पड़े तो वह भूमि श्रेष्ठ मानी गई है। यदि मिट्टी गड्ढे के बराबर हो तो भूमि मध्यम कोटि की होती है और यदि उतनी मिट्टी से गड्ढे पुन न पूरा भरे तो वह भूमि अधम जाति की होती है। वहा मदिर का निर्माण नही करना चाहिये। प्रतिष्ठा ग्रथो तथा वास्तुशास्त्रीय ग्रथों मे मदिर की भूमि शुद्धि आदि का विवरण मिलता है।

प्रतिमा निर्माण विधि -

प्राचीन काल मे मन्दिरो में प्रतिष्ठा कराने के लिये प्रतिमाओं का निर्माण किया जाता था। वे दो प्रकार की होती थी, प्रथम चल प्रतिमा द्वितीय अचल प्रतिमा। अचल प्रतिमा अपनी वेदिका पर स्थिर रहती है, किन्तु चल प्रतिमा विशिष्ट-विशिष्ट अवसरो पर मूल वेदी से उठाकर अस्थायी वेदी पर लायी जा सकती है। अचल प्रतिमा को ध्रुवबेर और चल

प्रतिमा को उत्सवबेर कहा जाता है। इन्हें क्रमश. स्थावर और जगम प्रतिमा भी कहते है।

वसुनन्दि प्रतिष्ठापाठ मे आचार्य श्री ने मणि, रत्न, स्वर्ण, रजत, पीतल, मुक्ताफल और पाषाण की प्रतिमाए निर्मित किये जाने का विधान कहा है। जयसेन आचार्य ने स्फटिक की प्रतिमाए भी प्रशस्त बतायी है। आचार्यों ने काष्ठ, दन्त और लोहे की प्रतिमाओ के निर्माण का किसी भी प्रकार से उल्लेख नही किया। पाषाण की प्रतिमाए निर्मित किया जाना सर्वाधिक मान्यता प्राप्त एव व्यावहारिक रहा है।प्रतिमा निर्माण के लिये शिला के अन्वेषण और उसके गुण- दोषो के विचार के विषय मे भी प्राचीन ग्रन्थों मे विवेचन मिलता है।

प० आशाधरजी ने लिखा है कि जब मन्दिर के निर्माण का कार्य पूरा हो जावे अथवा पूरा होने को हो तो प्रतिमा के लिये शिला का अन्वेषण करने शुभ लग्न, मगल मुहूर्त, शकुन मे इष्ट शिल्पी के साथ जाना चाहिये। मूर्ति बनाने वाले चतुर शिल्पी को साथ लेकर पवित्र स्थान मे स्थित खान पर जावे।वहा पर प्रतिमा के योग्य जो शिला होवे उसकी परीक्षा करने के लिये उसके ऊपर लेप करने के लिये शिल्पशास्त्र मे अनेक प्रकार के जो लेप लिखे है, उनमे से किसी का लेप करे तो पाषाण के भीतर रहे हुए दोष प्रगट हो जाते है, जैसे कि -

निर्मल काजी के साथ बेल वृक्ष की छाल का पीसकर पाषाण या लकड़ी के ऊपर लेप करने से मडल प्रगट हो जाता हैं।पाषाण या लकड़ी मे जो दाग देखने मे आते है वह किसी जतु विशेष से बने हुए होते है। ये रग आदि से पहचाने जाते है। तथा उन चित्रों के शुभाशुभ फल भी शिल्प शास्त्र म लिखे है। जैसे - मधु के रग जैसी रग वाली रेखा दिखे तो वह खघोत, भस्म के वर्ण की दिखे तो बालु, गुड़ के रग की दिखे तो मेढक, आकाश के रग की दिखे तो पानी, कबूतर के रग की दिखे तो छिपकली, मजीठ के रग की हो तो मेंढक, लाल रग की रेखा हो तो गिरगिट, पीले वर्ण की हो तो गोह, कपिल वर्ण की हो तो ऊषर, काले वर्ण की हो तो सर्प और अनेक प्रकार के रग की रेखा दिखे तो बिच्छू इत्यादि जन्तुओ से रेखा आदि दाग बने होते है। ऐसे दाग पाषाण या लकडी मे रहे हो तो सन्तान, लक्ष्मी, प्राण और राज्य का विनाशकारक है, परन्तु पाषाण के वर्ण की रेखा या दाग हो तो कोई दोष नही माना।

देव की प्रतिमा पुल्लिग, देवी की प्रतिमा स्त्रीलिग से, पादपीठ सिंहासनादि नपुसक शिला से बनाना लिखा है। इसकी परीक्षा आकृति और आवाज से की जाती है।

जो शिला एक ही वर्ण वाली सघन चिकनी मूल से लेकर अग्रभाग तक बराबर समान आकार वाली और गजघट के समान आवाज वाली हो वह पुल्लिग शिला जानना। जो मूल भाग मे स्थूल और अग्रभाग मे कृश हो तथा कासी जैसी आवाज वाली हो वह स्त्रीलिग शिला जानना।जो मूलभाग मे कृश और अग्रभाग म स्थूल हो एव बिना आवाज की हो वह नपुसक शिला जानना। शिला ऊधा मुख करके पूर्व दिशा पश्चिम या उत्तर दक्षिण लम्बी रहती है। इसमे दक्षिण और पश्चिम दिशा मे शिला का मूल भाग तथा पूर्व और उत्तर दिशा मे शिला का अग्रभाग रहता है। अग्र यह शिला भाग, मूल यह पैर समझना चाहिये। शिला निकालते समय उसमे चिन्ह कर लेना चाहिये, जिससे शिला का मुख, पृष्ठ, मस्तक और

पैर पहिचान हो सके और उसके अनुसार मूर्ति का मुख आदि बना सके। जहा शिला का मुख भाग हो उस भाग में मूर्ति का मुख और शिला का जहा पैर हो उस भाग मे मूर्ति का पैर बनाना चाहिये। शिल्प ग्रथों में शिला ऊधी सोती हुई लिखा है, इस शिला के नीचे के भाग का मुख और ऊपर के भाग का पृष्ठ भाग बनाना चाहिये।

इस प्रकार परीक्षा करके प्राप्त श्वेत रक्त, श्याम , मिश्र पारावत, मुद्गग, कपोत, पदम, मजिष्ठ और हरित वर्ण की शिला को प्रतिमा निर्माण के लिये उत्तम बताया है। वह शिला कठिन, शीतल, स्निग्ध, सुस्वादु, सुस्मर, दृढ़, सुगध युक्त, तेजस्विनी और मनोज्ञ होना चाहिए। बिन्दु और रेखाओ वाली शिला प्रतिमा निमार्ण कार्य के लिये वर्ज्य कही गई है। उसी प्रकार, मृदु विवर्ण दुर्गन्धियुक्त, लघु, रूक्ष, धूमिल और नि शब्द शिलाए भी अयोग्य ठहरायी गयी है।

इस प्रकार परीक्षा करने से प्रतिमा के लिये जो निर्दोष शिला प्राप्त हुई है उसका अच्छे शुभ दिन मे छेदन करे। जिस दिन छेदन करने का हो उसकी प्रथम रात्रि को जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फलादि सामग्री से - "हे शिले ! अमुकस्य देवस्य पूजनाय परिकल्पितास्ति नमस्ते" इस प्रकार मत्रोच्चारण पूर्वक पूजन करे। बाद मे वन देवता, क्षेत्र देवता, नव ग्रह, दिग्पाल आदि देवो का शिला मे विन्यास करके सुगन्धित द्रव्यादि से पूजन करे। शुभ मुहूर्त में महोत्सव पूर्वक शिला का छेदन करें, पीछे मगल मुहूर्त मे नगर मे शिला का प्रवेश करावे। आचार्यो ने लिखा है -

जैन चैत्यालय चैत्यमूर्ति निर्मापयन् शुभम् ।
वाञ्छन् स्वस्य नृपादेश्च वास्तुशास्त्र न लघयेत् ॥

मन्दिर वा प्रतिमा बनाने वाला यदि अपना और राजाप्रजा का भला चाहता हो तो उसे शुभ-अशुभ बताने वाले वास्तुशास्त्र के अनुकूल ही सब काम करवाना चाहिये। मूर्ति के पाषाण की शिला के लिये शातिविधानपूर्वक शुभ मुहूर्त में परीक्षा कर शास्त्रानुसार प्रतिमा का निर्माण कराना उचित है।

प्रतिमा ऐसे कारीगर से बनवाना ठीक है, जो *बालवृद्ध व सदोष शरीर वाला न हो, प्रतिमा निर्माण* मे अधिक चतुर हो। सदाचारी, पवित्रता से रहने वाला हो और अण्डे, मास, मदिरा, शहद आदि का त्यागी हो। जिसके परिणामो में शात छवि का आकार झलक रहा हो।

उक्त गुण वाले शिल्पी को घर पर बुलाकर शुभ लग्न मे सत्कार पूर्वक वह शिला बिम्ब बनाने के लिये दी जावें और जब तक उसको प्रतिमा तैयार न हो तब तक हर तरह से खुश रक्खा जावें। निर्मापक सदगृहस्थ को उचित है कि वह इस महान् कार्य में धन का सकोच नही करे। चादी सोने या बड़े आकार की या बहुत सी मूर्तिया न बनाकर चाहे वह पाषाण की छोटी सी एक ही प्रतिमा बनवाये, पर विधिपूर्वक उसका निर्माण हो। आजकल शिल्पशास्त्रो का अध्ययन न होने से कारीगर उपर्युक्त शिलापरीक्षा के नियमो को नही जानता है, इसीलिये मूर्ति के निर्माण मे दोष रहने की सम्भावना रहती है। यह सिर्फ कारीगर का दोष नही है, मूर्ति बनवाने वाला भी उपर्युक्त नियमानुसार नही बनवाना चाहता।

यह तो सस्ते दामों में जल्दी से तैयार हो जाय ऐसा पसद करते हैं, जिस मूर्ति के लिये हजारों रुपये

मन्दिर बनवाने मे और उसका प्रतिष्ठा के समय खर्च करते हे इतना ही नही जिसके आगे अपने मस्तक झुकाते है, उसको खिलौनो की तरह भाव जाचना कहा तक युक्तिसगत है यह वाचक विचार सकते है । जब तक प्रतिमा न बन चुके तब तक अपने परिणामो मे प्रतिमा विषयक भावना ही मुख्य रखे । देख-भाल मे प्रमाद व त्रुटि न करे । इस विषय मे शास्त्र की आज्ञाओ की विद्वानो से जानकारी जरूर कर ले ।

प्रतिष्ठाचार्यों का भी कर्तव्य है कि वे अपने व समाज के हितार्थ आत्मबल धारण करे । किसी के दबाव व लोभवश सदोष जिनबिम्ब प्रतिष्ठा के लिये स्वीकृत न करे ।

गृहपूज्य प्रतिमाए

निवास गृह मे पूज्य प्रतिमाओ की अधिकतम ऊचाई के विषय मे जैन ग्रन्थो मे वसुनन्दि आचार्य श्री ने द्वादष अगुल तक की ऊचाई की प्रतिमा को ही पूजनीय बतलाया है । प्रतिष्ठित प्रतिमाओ के दर्शन-वन्दन पूजन -भक्ति आदि करते रहने से परिवार म सुख- शाति मिलती है । मलिन, खण्डित, अधिक या हीन प्रमाण वाली प्रतिमाए भी गृह मे नही रखना चाहिये ।

अपूज्य प्रतिमाए

रूपमण्डनकार ने हीनाग और अधिकाग प्रतिमाओ के निर्माण का सर्वथा निषेध किया ह । शुक्रनीति मे हीनाग प्रतिमा को निर्माण कराने वाले की, और अधिकाग प्रतिमा को शिल्पी की मृत्यु का कारण बताया है । जेन परम्परा के ग्रन्थो मे भी वक्राग, हीनाग और अधिकाग प्रतिमा निर्माण को भारी दोषयुक्त माना गया हे ।

शास्त्रो मे लिखा है कि - श्रावक के लिए धन रूपी बीज बोकर उससे शुभ फल प्राप्ति के लिये जो सात क्षेत्र नियत किये गये हैं उसमे एक प्रतिमा-निर्माण भी है , पूजाके भेदो मे प्रतिमा बनवाना नित्यमह मे गर्भित है । कहा भी हैं कि -

चैत्यैश्चैत्यालयैर्ज्ञानैस्तपोभिर्विविधात्मकै ।
पूजा महोत्सवाद्यैश्च कुर्यान्मार्ग प्रभावनाम् ॥

जिन मन्दिर बनवाना, ज्ञान का प्रचार व उपदेश, करना, अनेक प्रकार के तपश्चरण पूजन और प्रतिष्ठा-महोत्सवादि कराकर जिन मत की प्रभावना करनी चाहिये ।

जिसमे श्री जिनदेव की स्थापना होगी जिसके दर्शन पूजनादि से अपना ही नही लाखो व्यक्तियो का हित होगा वह मूर्ति एक तरह का खिलौना नही है, जो चाहे जब कही जाकर जैसी मिले वैसी और सस्ती-सी खरीद लाई जावे ।

अथ बिम्ब जिनेन्द्रस्य कर्तव्य लक्षणान्वितम् ।
श्री वत्सभूषितोरस्क जानु प्राप्तकराग्रजम् ॥
प्रातिहार्याष्टकोपेत सम्पूर्णावयव शुभम् ।
प्रातिहार्यै र्विना शुद्ध सिहबिम्बमपीदृशम् ॥

इत्यादि श्लोको के अनुसार हथेली वा पगथली म सामुद्रिक शास्त्रोक्त शख-चक्र-पद्म आदि लक्षणो सहित, हदय पर श्रीवत्स से भूषित घुटनो तक लम्बे हाथो वाली, आठ प्रातिहार्यो की धारक शरीर के सब अवयवो से पूर्ण और शोभित प्रतिमा बनवाना चाहिए । सिद्धो का बिम्ब ८ प्रातिहार्यो से रहित होना चाहिये ।

दिगम्बर जैनाचार्यो ने सदोष प्रतिमा अशुभ बताई है । जैसे -

तिरछी दृष्टिनजर - धननाश, विरोध, भय करने वाली ।
नीची नजर- पुत्रनाश का कारण ।
ऊची नजर - स्त्री का मरण कराने मे निमित्त ।
स्तब्ध नजर - शोक, उद्वेग, सताप धननाश करने वाली ।
रौद्र - बनवाने वाले का नाश कराने वाली ।
दुबले शरीर वाली - धन नाश का कारण होती है ।
ओछे कद वाली - कराने वाले के नाश मे कारण होती है ।
चपटी - दु ख दाता ।
नेत्र रहित - नेत्र नाश मे कारण ।
छोटे मुख वाली - शोभा का नाश करने वाली ।
बड़े पेट वाली - रोग म निमित्त ।
दुबली छाती वाली - हृदय की बीमारी मे निमित्त ।
नीचे कन्धा वालो - भाई का मरण ।
दुबली जाघ वाली - राजा का अनिष्ट करने वाली ।
छोटे पग वाली - देशनाश मे कारण ।
दुबली कमर वाली - सवारी का नाश ।

यह वर्णन वसुनन्दि आचार्य ने किया है। वसुनन्दि ने ही जिन प्रतिमा मे नासग्रनिहित, शान्त, प्रसन्न, एव माध्यस्थ दृष्टि को उत्तम बताया । वीतराग की दृष्टि न तो अत्यन्त उन्मीलित हो और न विस्फुरित हो । दृष्टि तिरछी ऊची या नीची न हो इसका विशेष ध्यान रखे जाने का विधान है ।

आचार्य कल्प पडित प्रवर आशाधर जी और वर्धमान सूरि ने भी अनिष्टकारी, विकृताग और जर्जर प्रतिमाओ की पूजा का निषेध किया हे ।

भग्न प्रतिमाओ की पूजा नही की जाती । उन्हे सम्मान के साथ विसर्जित कर दिया जाता है। मूलनायक प्रतिमा के मुख, नाक, कान, नेत्र, नाभि, और कटि के भग्न हो जाने पर वह त्याज्य होती हे । ऐसा वास्तुसार प्रकरण मे वर्णन आया है। जिन प्रतिमाओ के अग और प्रत्यगों के भंग होने का फल बताया है कि नखभग होने से शत्रुभय, अगुली-भग से देश में भय अराजकता, बाहु भग से बन्धन, नासिका नष्ट होने से कुलनाश और चरण भग होने से द्रव्यनाश होता है । किन्तु "वास्तुसार" ग्रन्थकार का ही यह भी मत है कि जो प्रतिमाए सौ वर्ष से अधिक प्राचीन हो और महापुरुषों द्वारा स्थापित की गयी हो, वे यदि विकलाग भी हो जावे तब भी पूजनीय है । उन्होने उन प्रतिमाओ को केवल चैत्य मे रखने योग्य कहा है, गृह मे पूज्य नही ।

जिन प्रतिमा के लक्षण

जैन प्रतिष्ठा ग्रन्थो और वृहत्सहिता, मानसार, अपराजितपृच्छा, देवमूर्ति प्रकरण, रूपमण्डन आदि ग्रन्थों मे जिनप्रतिमा के लक्षण बताये गये है । जिन प्रतिमाए केवल दो आसनो मे बनायी जाती हैं ।एक तो कायोत्सर्ग आसन जिसे खड़गासन भी कहते है और द्वितीय पद्मासन । इसे कही कही पर्यक आसन भी कहा गया है ।इन दो आसनो को छोड़कर किसी अन्य आसन मे जिन प्रतिमा निर्मित किये जाने का निषेध किया गया है ।

प्रतिष्ठा चन्द्रिका मे कहा है -

शान्त नासाग्रदृष्टिं विमल गुणगणैर्भाजमान प्रशस्त -
मानोन्मानं च वामे विधृतकरवरं नाम पद्मासनस्थं ।
व्युत्सर्गालम्बिपाणिस्थल निहित पदाम्भोज मानत्वकम्बु -
ध्यानारूढविदैन्यं भजत मुनिजनानदकं जैनबिम्बं ॥

जिनबिम्ब को शान्त नासग्रदृष्टि प्रशस्तमानोन्मानयुक्त, ध्यानारूढ एव किन्चित् नम्रग्रीव बतायी- है ।कायोत्सर्ग- आसन मे हाथ लम्बायमान रहते हैं तथा पद्मासन प्रतिमा में वाम हस्त की हथेली दक्षिण हस्त की हथेली पर रखी हुई होती है । जैन प्रतिमा (दिगम्बर) श्रीअशोक वृक्ष युक्त,

नखकेशविहीन, परमशान्त वृद्धत्व तथा बाल्यत्व रहित, तरुण एव वैराग्यगुण से भूषित होती है। आचार्य वसुनन्दि और आशाधर पडित जी ने भी जिन प्रतिमा के उपर्युक्त लक्षणो का निरूपण किया है। विवेक-विलास मे कायोत्सर्ग और पद्मासन प्रतिमाओ के सामान्य लक्षण बताये गये है।

सिद्धपरमेष्ठी की प्रतिमाओ मे प्रातिहार्यो नही बनाये जाते।अरहतप्रतिमाओ मे उनका होना आवश्यक हैं। अर्हत् और सिद्ध दोनो की मूल प्रतिमाए बनायी तो समान जाती है पर अष्ट प्रातिहार्यों के होने अथवा न होने की अवस्था म उनकी पहिचान होती हे। अर्हत् अवस्था की प्रतिमा मे अष्टप्रातिहार्यों के साथ दायी ओर यक्ष और बायी ओर यक्षी ओर पादपीठ के नीचे (जिनका लक्षण) भी दिखाया जाता है। तिलोयपण्णत्ती मे भी सिहासन तथा यक्ष युगल से युक्त जिन प्रतिमाओ का वर्णन है। ठक्कर फेरू ने तीर्थकर प्रतिमा के आसन और परिकर का विस्तार से वर्णन किया हे। मानसार मे भी जिन प्रतिमाओ के परिकर आदि का वर्णन प्राप्त हे। अपराजितपृच्छा मे यक्ष-यक्षी, लक्षण और प्रातिहार्यों की याजना का विधान है। सूत्रधार, मडन के ग्रन्थो मे जिन प्रतिमा को छत्रत्रय, अशोकद्रुम देवदुन्दुभि सिहासन, धर्मचक्र आदि से युक्त बताया गया है। प्रत्येक जैन तीर्थंकर प्रतिमा अपने लाछन से पहिचानी जाती है। वह लक्षण प्रतिमा के पादपीठ पर अकित होता है किन्तु कुछ तीर्थकरा की प्रतिमाओ मे उनके विशिष्ट लक्षण भी दिखाये जाते है- जैसे आदिनाथ प्रतिमा जटाशेखर युक्त होती है, सुपार्श्वनाथ के मस्तक पर सर्प के पाच फणो का छत्र तथा पार्श्वनाथ के मस्तक पर ७ या इससे ज्यादा फणो का नाग छत्र होता है।

प्रतिमा का मान प्रमाण

जैन और जैनेतर ग्रन्थों मे जिन प्रतिमा के मानादि का विवरण मिलता है। वसुनन्दि आचार्य ने ताल, मुख, वितहित और द्वादशागुल को समानार्थी बताया है और उस मान से बिम्ब निर्माण का विधान किया हे। प्रतिमा के मुख को एक भाग मानकर सम्पूर्ण प्रतिमा के नौ भाग किये जाने चाहिये, तदनुसार वह प्रतिमा नौ ताल या १०८ अगुल की होगी। इसे इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि नव ताल प्रतिमा का नवा भाग एक ताल और उसका १०८ वा भाग एक अगुल कहलावेगा।

वसुनन्दि ने नव ताल मे बनी ऊर्ध्व (कायोत्सर्ग आसन) जिन प्रतिमा का मान इस प्रकार बताया है।

मुख -१ ता ल(१२ अगुल)
ग्रीवाध भाग -४ अगुल
कठ से हृदय तक - १२ अगुल
हृदय से नाभि तक - १ ताल (१२ अगुल)
नाभि से मेढ़ू तक - १ ताल (१२ अगूल)
मेढ़ू से जानु तक - १ हस्त (२४ अगुल)
जानु - ४ अगुल
जानु से गुल्फ तक -१ हस्त (२४ अगुल)
गुल्फ से पादतल तक - ४ अगुल
योग १०८ अगुल = ९ ताल

प्रतिष्ठासार सग्रह मे वसुनन्दि ने प्रतिमा के अग उपागो के मान का विस्तार से विवरण दिया है। द्वादशागुल विस्तीर्ण और आयात केशान्त मुख के

तीन भाग करने पर ललाट, नासिका, और मुख (वचन) प्रत्येक भाग ४-४ अंगुल का होता है। नासिकारंध्र ८१/२ यव और नासिका पाली ४ यव प्रमाण होना चाहिये। ललाट का तिर्यक् आयाम आठ अंगुल बताया गया है। उसका आकार अर्धचन्द्र के समान होता है। पाच अगुल आयात केशस्थान में उष्णीष दो अगुल उन्नत होता है। जयसेन आचार्य के प्रतिष्ठापाठ में भी जिन प्रतिमा का ताल सम्बन्धी जो विवरण उपलब्ध है वह प्राय वसुनन्दि के समान ही है। जयसेन ने भ्रू- लता(भौह) को ४ अगुल आयात मध्य मे स्थूल, छोर में कृश अर्थात् धनुषाकार कहा है। नेत्रो की पलके ऊपर नीचे नदी के तटो के समान होती है। ओष्ठ का विस्तार ४ अगुल जिसका मध्य भाग १ अगुल उच्छित होता है। चिबुक ३ १/२ अगुल, उसके मूल से लेकर हनु तक का अन्तर ४ अगुल। कर्ण और नेत्र का अन्तर भी ४ अगुल आदि।

पद्मासन जिन प्रतिमा का उत्सेध कायोत्सर्ग प्रतिमा से आधा अर्थात् ५४ अगुल बताया गया है। उसका तिर्यक् आयाम एक समान होता है। एक घुटने से दूसरे घुटने तक दाये घुटने से बाये कधे तक, बायें घुटने से दाये कधे तक और पादपीठ से केंशात तक चारो सूत्रो का मान एक बराबर बताया गया है।

शिल्प ग्रथो के अनुसार मूर्ति के शुभाशुभ लक्षण इस प्रकार हैं।

प्रमाणोपेत सम्पूर्ण अवयवों वाली और शुभ लक्षण वाली मूर्ति आयुष्य और लक्ष्मी की वृद्धि करने वाली है। यदि मूर्ति का मस्तक छत्राकार हो तो धन धान्य की बृद्धिकारक है, अच्छे नयन और ललाट होतो निरन्तर लक्ष्मीप्रद है। अच्छे प्रकार की हो तो प्रजा सुखी होवे।

प्रतिमा बन जाने पर ही पूज्य नही होती है उसमे प्रतिष्ठाविधि के द्वारा पूज्यता लाई जाती है। अतएव जो जिन भक्त सज्जन इस प्रभावनावर्द्धक महान् पुण्य कार्य मे सद्‌भावो के द्वारा अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का सदुपयोग करता है उसको प्रतिष्ठापाठो में यजमान की पदवी दी गई है। सो ही कहा है-

पाक्षिकारसम्पन्नो धी सपद्वन्धुवन्धुर. ।
राज मान्यो वदान्यश्च यजमानो मत प्रभु ॥

प्रतिष्ठापक ऐसा व्यक्ति होना चाहिए जो पाक्षिक श्रावक के आचार को अच्छी तरह पालता हो, बुद्धिमान हो, सम्पत्ति का धारक हो। राजा व राज्य कर्मचारी जिसको आदर की दृष्टि से देखते हों, जिसके स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदि कुटुम्ब परिवार अच्छा हो, समाज या देश में बदनाम न हो, प्रतिष्ठा कार्य मे तन-मन-धन से योग देता हो वही व्यक्ति प्रतिष्ठा कराने का पात्र होता है।

प्रतिष्ठेय (मूर्ति) की प्रतिष्ठा कराने के लिये प्रतिष्ठापक इन्द्र, यजमान, स्थापक ऐसे सज्जनों की आवश्यकता पड़ती है जो अपने न्यायोपार्जित द्रव्य का शुभ भावो से पचकल्याणक महोत्सव कराने में सदुपयोग करना चाहता हो।

प्रतिष्ठापक- पाक्षिक श्रावक के आचरण को अच्छी तरह पालता हो, समाज मे आदरणीय हो, उत्तम वर्ण-जाति कुल व शरीर का धारक हो।

"देश जातिकुलाचारै श्रेष्ठोदत्तसुलक्षण ।"

जो शूद्र व बाल-वृद्ध न हो, उत्तम जाति व कुल में जन्मा हो, सम्यग्दृष्टि, अणुव्रती, मन्दकषायी, जितेन्द्रिय, व सुन्दर हो स्वय पूजनादि करता हो प्रतिष्ठाये जिसने कराई हो, ज्योतिष, मुहूर्त आदि का

ज्ञाता हो, मत्र, तत्र, यत्रादि का जानकार हो, पवित्रता मे रहने वाला हो, विनयी हो इत्यादि बहुत गुण जिसमे हो वही प्रतिष्ठाचार्य बनने के योग्य है ।

जैनागम मे प्रत्येक तीर्थंकर के जीवन काल के पाच प्रसिद्ध घटनास्थलो का वर्णन मिलता है । उन्हे पच कल्याणक के नाम से कहा जाता है, क्योकि वे अवसर जगत के लिये अत्यन्त कल्याणकारी व मगलकारी होते है । जो जन्म से ही तीर्थंकर प्रकृति लेकर उत्पन्न हुए है उनके तो पाच ही कल्याणक होते है, परन्तु जिसने अन्तिम भव मे ही तीर्थंकर प्रकृति का बध किया है । उसके यथासम्भव चार वा तीन वा दो कल्याणक भी होते है, क्योकि तीर्थंकर प्रकृति के बिना साधारण साधको को वे नही होते । नवनिर्मित जिनबिम्ब की शुद्धि करने के लिए जो पचकल्याणक प्रतिष्ठापाठ किये जाते है वह उसी प्रधानपचकल्याणक की कल्पना है,जिसके आरोप द्वारा प्रतिमा मे असली तीर्थंकर की स्थापना होती है । जम्बूदीपपण्णत्ति मे आचार्य श्री ने लिखा है -

गब्भावयारकाले जम्मणकाले तहेव णिक्खमणे ।
केवलणाणुप्पण्णे परिणिव्वाणम्मि समयम्मि ॥

जो जिनदेव गर्भावतारकाल, जन्मकाल, निष्क्रमणकाल केवलज्ञानोत्पत्तिकाल और निर्वाण समय इन पाच स्थानो मे पच महा-कल्याणको को प्राप्त होकर महात्रद्धियुक्त सुरेन्द्र इन्द्रो से पूजित है ।

पच कल्याणक महोत्सव का परिचय :

(१) **गर्भकल्याणक** - भगवान के गर्भ म आने से छह मास पूर्व से लेकर जन्म पर्यन्त १५ मास तक उनके जन्म स्थान में कुबेर द्वारा प्रतिदिन तीन बार ३ १/२ करोड़ रत्नों की वर्षा होती रहती है । दिक्कुमारी देविया माता की परिचर्या व गर्भ शोधन करती है । गर्भ वाले दिन से पूर्वरात्रि को माता को १६ उत्तम स्वप्न दिखते है, जिनसे भगवान का अवतरण निश्चय कर माता-पिता प्रसन्न होते है ।

(२) **जन्मकल्याणक**- भगवान का जन्म होने पर देवभवनो व स्वर्गों आदि मे स्वय घण्टे आदि बजने लगते है , और इन्द्रो के आसन कम्पायमान हो जाते है । जिमसे उन्हे भगवान के जन्म का निश्चय हो जाता है । सभी इद्र व देव भगवान का जन्मोत्सव मनाने को बड़ी धूमधाम से पृथ्वी पर आते है। अहमिन्द्रजन अपने-अपने स्थान पर सात पग आगे जाकर भगवान को परोक्ष नमस्कार करते है। दिक्कुमारी देविया भगवान के जातकर्म करती है। कुबेर नगर की अद्‌भुत शोभा करता हे । इन्द्र की आज्ञा, से इन्द्राणी प्रसूतिगृह मे जाती है, माता को माया निद्रा से सुलाकर उसके पास एक मायामयी पुतला लिटा देती है और बालक भगवान को लाकर इन्द्र की गोद मे दे देती है, जो उसका सौन्दर्य देखने के लिये हजारनेत्र बनाकर भी सन्तुष्ट नही होता। ऐरावत हाथी पर भगवान को लेकर इन्द्र सुमेरू पर्वत की ओर चलता है । वहा पहुचकर पाण्डुक शिला पर भगवान का क्षीरसागर से देवो द्वारा लाये गये जल के १००८ कलशो द्वारा, अभिषेक करता है। तदनन्तर बालक को वस्त्राभूषण से अलकृत कर नगर म देवो सहित महान उत्सव के साथ प्रवेश करता है । बालक को देवोपुनीत वस्त्राभूषण पहना कर ताण्डव नृत्य आदि अनेक मायामयी आश्चर्यकारी लीलाए प्रगट कर देवलोक लौट जाता है ।

तप कल्याणक

कुछ काल तक राज्यविभूति का भोग कर लेने के पश्चात् किसी एक दिन कोई कारण पाकर भगवान को वैराग्य उत्पन्न होता है। उसी समय ब्रम्ह स्वर्ग से लौकान्तिक देव भी आकर उनके वैराग्य की सराहना करते है। इन्द्र उनका अभिषेक करके उन्हे वस्त्राभूषण से अलकृत करता है। कुबेर द्वारा निर्मित पालकी मे भगवान स्वय बैठ जाते है। इस पालकी को पहले तो मनुष्य अपने कन्धो पर लेकर कुछ दूर पृथ्वी पर चलते है और फिर देव लोग लेकर आकाश मार्ग से चलते है। तपोवन मे पहुच कर भगवान वस्त्रालकार का त्याग कर केशो को लुचन कर देते है और दिगम्बर मुद्रा धारण कर लेते है। अन्य भी अनेक राजा उनके साथ दीक्षा धारण करते है। इन्द्र उन " केशो " को मणिमय पिटारे मे रखकर क्षीरसागर मे क्षेपण करता है। दीक्षा स्थान तीर्थ बन जाता है। भगवान बेला तेला आदि के नियम पूर्वक "नम सिद्धेभ्य" कह कर स्वय दीक्षा लेते है, क्योकि वे स्वय जगतगुरु है। नियम पूरा होने पर आहारार्थ नगर मे जाते है। और यथा विधि आहार ग्रहण करते है। दातार के घर पचाश्चर्य रत्नो की वर्षा होती है। आहार के बाद जगल की ओर चले जाते है तथा तपस्या करते हैं।

ज्ञान कल्याणक

यथाक्रम से तप, सयम आदि की साधना करते हुए ध्यान की श्रेणियो पर आरूढ़ होते हुए चार घातिया कर्मो का नाश हो जाने पर भगवान को केवलज्ञान आदि अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी प्राप्त होती है। तब पुष्प वृष्टि, दुन्दुभी शब्द, अशोक वृक्ष, चमर, भामण्डल, छत्रत्रय, स्वर्ण सिहासन और दिव्यध्वनि ये आठ प्रातिहार्य प्रगट होते हैं। इद्र की आज्ञा से कुबेर समवशरण रचता है,जिसकी विचित्र रचना से जगत चकित होता है।१२ सभाओं में यथा स्थान देव, मनुष्य, तिर्यच, मुनि, आर्यिका, श्रावक, श्राविका आदि सभी बैठ कर भगवान के उपदेशामृत का पान कर जीवन सफल करते है।

भगवान का बिहार बड़ी धूम-धाम से होता है। याचको को किमिच्छित दान दिया जाता है। भगवान के चरणो के नीचे देव लोग सहस्रदल स्वर्ण -कमलो की रचना करते है और भगवान इनको भी न स्पर्श करके अधर आकाश मे ही चलते है। आगे-आगे धर्मचक्र चलता है। बाजे- नगाड़े बजते है। पृथ्वी ईति भीति रहित हो जाती है। इन्द्र राजाओं के साथ आगे-आगे जय-जयकार करते चलते हैं। मार्ग मे सुन्दर क्रीड़ा- स्थान बनाये जाते है। मार्ग अष्ट मगलद्रव्यो से शोभित रहता है। भामण्डल, छत्र, चमर, स्वत साथ-साथ चलते है। ऋषि-गण पीछे-पीछे चलते हैं। इन्द्र प्रतिहार बनता है। अनेको निधिया साथ-साथ चलती है। विरोधी जीव बैर विरोध भूल जाते है। अन्धे- बहरो को भी दिखने-सुनने लग जाता है। हरिवश पुराण मे लिखा है -

मध्यदेशे जिनेशेन धर्मतीर्थे प्रवर्तिते।
सर्वेष्वपि च दिशेषु तीर्थ मोहोन्यवर्तते॥

मध्यदेश मे धर्मतीर्थ की प्रवृत्ति के उपरान्त सम्पूर्ण देशो में बिहार करके धर्म के विषय मे अज्ञान भाव का निवारण किया था। त्रिलोकीनाथ ने धर्म क्षेत्र मे सद्धर्मरुपी बीज बोने के साथ ही धर्मवृष्टि के द्वारा सीचा। इस प्रकार दिव्य सन्देश जन -जन को दिया।

निर्वाण कल्याणक

अन्तिम समय आने पर भगवान योग- निरोध द्वारा ध्यान में निश्चलता कर चार अघातिया कर्मो का भी नाश कर देते है और निर्वाण धाम को प्राप्त होते हैं। देव लोग निर्वाण कल्याणक की पूजा करते है। भगवान का शरीर कपूर की भाति उड़ जाता है। इन्द्र उस स्थान पर भगवान के लक्षणो से युक्त सिद्ध शिला का निर्माण करता है।

इस प्रकार पचकल्याणक विधि के द्वारा ही मूर्ति को पूजनीय बनाते हैं - पदम्नन्दि स्वामी ने लिखा है-

ये जिनेन्द्र न पश्यन्ति, पूजयन्ति स्तुवन्ति न।
निष्फल जीवत तेषा तेषा धिक् च गृहाश्रमम्॥
प्रातरुत्थाय कर्तव्य देवता गुरु दर्शनम्।
भक्त्या तद्वदना कार्या धर्म श्रुतिरुपासकै॥

जो जीव भक्ति से जिनेन्द्र भगवान का न दर्शन करते है, न पूजन करते हैं और न ही स्तुति करते है उनका जीवन निष्फल है तथा उस गृहस्थाश्रम को धिक्कार है।

मूर्ति प्रतिष्ठा, प्राण प्रतिष्ठा जैन धर्म के प्राण है यदि इनमें प्रतिष्ठाचार्य और समाज प्रमादवश-क्रियाओं का मंत्रों का जैसे - अग्नि - हवन- आरती - दीप आदि का निषेध करता है तो उसका दुष्परिणाम समाज को भोगना पड़ता है इसीलिये प्रतिष्ठा का अभिप्राय क्या है वो मै आपसे कहता हू -

प्रतिष्ठा मे स्थापना निक्षेप गर्भित है। गुणानुरोपण रूप-स्वरूप की विधिवत स्थापना करना प्रतिष्ठा का मूल प्रयोजन माना जाता है। श्री जयसेन आचार्य कहते है-

प्रतिष्ठान प्रतिष्ठा च, स्थापना तत्प्रतिक्रिया।
तत्समानात्म बुद्धित्वात्त भेद स्तवादिचु ॥

अर्थात-प्रतिष्ठान, प्रतिष्ठा, स्थापना, प्रतिक्रिया का भाव यह है कि उसी के समान अपनी बुद्धि हो जाय- वह भाव झलके कि यह वही स्तवन है तथा स्तवन प्रजादि मे इसकी आवश्यकता है इसी सन्दर्भ मे आचार्य श्री की मान्यता है कि -

यत्रारोपात पचकल्याण मत्रै, सर्वज्ञेत्वस्थापनता द्व्यानै
तत्कर्मानुष्ठाने स्थापनोक्त, निक्षेपण प्राप्यते ततयैव ॥

अर्थात जहा पचकल्याण सम्बन्धी मत्रो के द्वारा जिसमें वह गुण नही है उसमे उस गुण के स्थापन करने से तथा उस सम्बन्धी विधान के द्वारा सर्वज्ञपना स्थापित किया जाय वह प्रतिष्ठा है। पूजन- पाठादि क्रिया के साधन मे स्थापना निक्षेप के द्वारा उस वस्तु को वैसा ही समझ लिया जाता है। आशय यह है कि सर्वज्ञ की मूर्ति के दर्शन से सर्वज्ञ का भाव हृदय में अकित हो जाता है। वीतराग प्रभु के दर्शन करने से वीतरागता के भाव आते हैं। जिनबिम्ब उन जिनेन्द्र भगवान के रूप स्वरूप को दर्शाते है जो मोक्षमार्ग के प्रणेता हैं। ध्यान का स्वरूप अकित करने के प्रयोजन से ध्यानस्थ जिनबिम्ब की प्रतिष्ठा वाछनीय है, क्योकि उन्हे देखकर दर्शकों के मन में ध्यान का स्वरूप अकित हो जाता है।

जैन सस्कृति मे मूर्तियों की, मन्दिरो की तथा मान स्तम्भो की प्रतिष्ठा का विधान है। बिम्ब प्रतिष्ठा, वेदी प्रतिष्ठा, मदिर प्रतिष्ठा, कलश प्रतिष्ठा, ध्वजादण्ड-प्रतिष्ठा, मानस्तम्भ प्रतिष्ठा आदि प्रकारों से प्रतिष्ठाए होने की परम्परा अबाध गति से चली आ रही है। इन सब में पचकल्याणक प्रतिष्ठा जिसे बिम्ब प्रतिष्ठा कहते है वह धर्म प्रभावना की एक महत्वपूर्ण विधि हैं।

प्रतिष्ठाओं की परम्परा का सूत्रपात सर्वप्रथम आदि बहमा भ० ऋषभदेव के ज्येष्ठ पुत्र चक्रवर्ती सम्राट भरत ने किया था। उन्होंने सिद्ध क्षेत्र कैलाश पर ७२ जिन-बिम्ब स्थापित कर प्रतिष्ठा विधि को प्रकाश मे लाने की महत्वपूर्ण भूमिका प्रदान की। अकृत्रिमचैत्यालयों की प्रतिष्ठा नहीं होती क्योकि वे अनादि निधन स्वत ही प्रतिष्ठित है किन्तु कृत्रिम चैत्यालयो की प्रतिष्ठा होना आगम प्रमाण परम्परा है। कहते है भरत ने भ० बाहुबली की मूर्ति भी स्थापित की थी। तब से आज तक अनेक प्रतिष्ठाए हो चुकी हैं जैन सस्कृति में धर्म प्रभावनात्मक प्रतिष्ठा का इतिहास गौरव-गरिमा लिये हुए है। सिद्ध एव अतिशय क्षेत्रो पर स्थापित विशाल जिन मन्दिर प्रतिष्ठा परम्परा के महत्वपूर्ण प्रमाण है,

बड़वानी-बावनगजा की विशालकाय ८४ फीट उतग भ० ऋषभ-मूर्ति एव श्रवण-बेलगोला को ५७ फीट उतग भ० बाहुबली की मूर्ति प्रतिष्ठा की महत्ता प्रतिपादित करने के ज्वलन्त उदाहरण है।

प्रतिष्ठाओ की परम्परा ने जैन सस्कृति को गौरवान्वित किया। फलस्वरूप स्थापत्य कला की प्रगति हुई विशाल जिन मन्दिर-जिन मूर्तियाँ देखकर जैन सस्कृति की पुरातनता स्पष्ट होती है।

प्रतिष्ठा विधि को प्रशस्त करने वाले विद्वानो मे पूज्य आचार्य श्री जयसेन, श्रीनेमीचन्द्र, प० आशाधर, ब्र० शीतलप्रसाद जी के नाम उल्लेखनीय है। गुरु परम्परा मे प्रतिष्ठा विधि विधान होने के कई प्रमाण विद्यमान है। भट्टारको के तत्वावधान म प्रतिष्ठाओ की परम्परा चालू रही। भारत स्वतन्त्र होने के पश्चात साधनो की सुविधा होने से अनेक स्थानो पर नवीन जिन मन्दिर प्रतिष्ठित हुए। वैज्ञानिक युग मे मनोज्ञ मूर्तियो का निर्माण होने से कई स्थानो पर विशाल जिन बिम्ब स्थापित हुये है। प्रतिष्ठाओ की परम्परा मे भी प्रगति प्रतीत होती हे।

प्रतिष्ठाए विधि पूर्वक करने से जेन सस्कृति का अभ्युत्थान होता रहता है। अत प्रतिष्ठाओ मे मत्रो की उपेक्षा करना अवैधानिकता है। प्रतिष्ठाचार्य ऐसे होने चाहिये, जिन्हें प्रतिष्ठा विधि का सम्यक रुपेण ज्ञान, शास्त्रो की मर्मज्ञता, प्रभावी मन्त्रो का गाम्भीर्य जिनबिम्ब की बाहुल्यता, उदारता, सदवृत्तिपूर्ण निर्लोभता, एव साधु शासन विदुर आदि गुणो से अलकृत सुयोग्य प्रतिष्ठाचार्य ही प्रतिष्ठा विधि समुचित रुप से सम्पन्न करने में सक्षम होते हैं। ऊपरी दिखावट अथवा टीमटाम से होने वाली प्रतिष्ठा सच्चे अर्थों मे प्रतिष्ठा नही है। कल्याणकों के दृश्य-दिखाने का कौशल एव आन्तरिक विधि के प्रति सजगता नितान्त आवश्यक है। मत्रोच्चारण मे प्रमाद अक्षम्य है। प्रतिष्ठाचार्य का परम कर्तव्य है कि वह विधिनायक के अतिरिक्त सभी प्रतिष्ठेय प्रतिमाओं मे कल्याणको के आरोपण की पूर्ण विधि श्रद्धा-भक्ति से सम्पन्न करे। मूर्तियो मे अकन्यास, सस्कारारोपण, नयनोन्मीलन, सूरिमन्त्र एव प्राण प्रतिष्ठा विधि पूर्वक होना वाछनीय है। अपूर्ण विधि से प्रतिष्ठा सदोष रहती है। जिससे प्रतिमा मे स्थापना निक्षेप की सम्भावना सदिग्ध रहती है। एतदर्थ प्रतिष्ठाचार्य का उत्तरदायित्व वहन करने मे किसी भी प्रकार का शैथिल्य या मायाचारी नही करनी चाहिये। अकन्यास, सूर्यमत्र, आदि की विधि दिगम्बर मुनि आदि ही करते है। यदि दिगम्बर मुनि का समागम न हो तो स्वय प्रतिष्ठाचार्य एकात मे समस्त वस्त्र उतार कर स्वय सूर्यमन्त्र देता है। वैसे तो आगम का उल्लेख है प्रतिष्ठा कराने के दो माह पूर्व किसी दिगम्बर आचार्य को प्रतिष्ठा मे आमत्रित करना चाहिये और आदर पूर्वक जाकर के प्रमाण कर प्रतिष्ठा मे लाना चाहिये। यदि प्रतिष्ठा हो रही हो और पास मे कोई मुनिराज हों उन्हे श्रीफल भेट कर आर्शीवाद नही लिया और प्रतिष्ठा मे आगमन हेतु उन्हे निमत्रित नही किया तो यह प्रतिष्ठाचार्य का अक्षम्य अपराध है।

पंच कल्याणकों में व्यर्थ अर्थ व्यय पर एक विचार

आज के भौतिक वातावरण मे धार्मिक, नैतिक व सामाजिक जागरण के लिए व धर्म की प्रभावना के लिए पचकल्याण महोत्सव ही एक विशाल उपक्रम है अन्य नही । इसी निमित्त से दिन रात पाप मे प्रवृत्त जन समूह धर्मोन्मुख होता है । लोगो मे धर्म के प्रति रूचि तथा धार्मिक पूजा पाठ दानादि मगल अनुष्ठानो को जानने समझने की जिज्ञासा उत्पन्न होती है । लाखो लोग बड़ी भक्ति भावना से पुण्य का अर्जन करते है। धार्मिक सत उपदेशामृत, गुरूओं के दर्शन तथा दूर-दूर से पधारे विद्वान पण्डितो के विचार, मनोरजन आदि का लाभ प्राप्त होता है । परस्पर समाज के लोगो मे सबध, मैत्री व भाई-चारे की भावना प्रवल होती है । समाज की तात्कालिक समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया जाता है । महापुरुषो व आचार्यों का कथन है कि जब जब धार्मिक अनुष्ठान होते है तो उन अनुष्ठानो मे भव्यात्मा जीव तो पुण्य का अर्जुन अपने परिणामो को निर्मल कर, कर लेते है । लेकिन पापी मिथ्यादृष्टि जीव उन मगल धार्मिक अनुष्ठानो मे भी पुण्य का लाभ न लेकर पाप का ही अर्जन करते है यही तो है सम्यक्दृष्टि व मिथ्यादृष्टि की दृष्टि मे अन्तर है । पचकल्याणदि धार्मिक अनुष्ठानो मे भव्यात्मा जीव अपने परिणामो को निर्मल कर पुण्य का अर्जन करते है लेकिन पापी मिथ्यादृष्टि उनका विरोध विघ्न डाल कर पाप का ही अर्जुन करते है यही सम्यक् दृष्टि व मिथ्यादृष्टि मे अन्तर है । यह लेख पठनीय है जहाँ एक ओर सम्यक् दृष्टि जीव ससार, शरीर व भोगो से विरक्त होने का प्रयत्न करता है, वही मिथ्या दृष्टि जीव ससार, शरीर व भोगो की सयोजना मे ही सदा तत्पर रहता है । मिथ्या दृष्टि जीव को हजारो जीवो के लिए जो कल्याण का निमित्त होता ऐसा वह पचकल्याणक महोत्सव भी मात्र अर्थ व्यय हेतु दिखाई देता है । ससारी प्राणी अपनी भोग विलासता की पूर्ति मे ऐशो आराम के साधन जुटाने मे, फाइव स्टार होटलो मे, पार्टियो मे, शादी विवाहो मे लाखो रुपया पानी की तरह बहा देता है । तब उसमे उसे व्यर्थ अर्थव्यय नही दिखता । सदा जुआ, लाटरी, आतिशबाजी, होली, दशहरा आदि मे लाखो रुपया व देश को खोखला बनाने रुप कामो मे व्यर्थ खर्च किया जाता है तब भी उसे इन व्यर्थ के कार्यों मे किये गये अर्थ व्यय का बोध नही होता, स्वीमिगपूल, झूले, बड़ी-बड़ी आलीशान बिल्डिग आदि बनाने मे भी व्यर्थ अर्थ व्यय महसूस नही होता । बड़ी विचित्र बात है कोई दान देकर अपना अर्थ धार्मिक अनुष्ठानो मे, भगवान् भक्ति, पूजा, उपासना मे खर्च करता है तो किसी को कष्ट होता है, ईर्ष्या होती है ऐसे लोगो पर व्यग करते हुऐ किसी ने ठीक ही कहा है कि —

"कोई होम करे और किसी के हाथ जले ।"

यह ससार है इसमे अनेक प्रकार की चित्र विचित्र धारणाओं वाले जीव होते है कोई पच इन्द्रिय के भोग और अहकार की पुष्टि मे व्यर्थ अर्थ व्यय कर अपने को धन्य समझते हैं । और कोई पच पापो से बचने के लिए दान, पूजा, धर्म प्रभावना, आदि सत् कार्यों मे अर्थ व्यय कर अपना जीवन धन्य करते है । इसमे से भला क्या है - पच इन्द्रीय के भोगो मे व अहकार की पुष्टि मे व्यर्थ व्यय करना श्रेष्ठ है । इस बात को ससार के किसी भी आस्तिक भव्य विवेकी पुरुष से पूछा जाय तो वह यही कहेगा कि पच पापों से बचाने रूपदान, पूजा, धर्म, प्रभावना आदि धर्म अनुष्ठान ही श्रेष्ठ है अन्य पाप व अहकार को बढ़ाने वाले पच इन्द्रिय के विषय कदापि श्रेष्ठ नही कहे जा सकते,

क्योंकि इन का मोक्ष व धर्म के मार्ग मे कोई प्रयोजन नहीं है । पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव एक महत्वपूर्ण धार्मिक अनुष्ठान है जिसमे लाखो लाखो लोग एक साथ पुण्य, धर्म का अर्जन करते है । यह बात अलग है कि कोई भोगी विलासी नास्तिक व्यक्ति यह कहे कि पचकल्याणक धर्म विरूद्ध है या अन्य इसी प्रकार से मात्र अर्थ व्यय का हेतु है । लेकिन यह बात तथ्यहीन है क्योंकि आज कोई भी कार्य किये जाते है तो क्या वे सब बिना अर्थ व्यय के ही किये जाते है तो क्या वे सब बिना अर्थ व्यय के ही सम्पन्न होते है ? नही कहना होगा कि जिस प्रकार से दशहरा का रावण पुतला जलाने मे व होली मे लकड़ियाँ जलाने आदि मे देश की जो विकट हानी होती है वह अन्य किसी पचकल्याणक मे नही होती, ना ही हो सकती है । क्योंकि लाखो नही करोड़ो रुपयो के पुतले देश मे बनाए जाते है पुन उनमे बहुमूल्य आतिशबाजी आदि बी लगाई जाती है और फिर उसको आग लगा दी जाती है । देखते ही देखते क्षण भर के मनोरजन के लिए देश की करोड़ो रुपये की सम्पत्ति इन रावण के पुतलो को जलाने मे व्यर्थ व्यय की जाती है ऐसा कहा जाय तो कोई अति उक्ति नही होगी, क्योंकि जब तक अपने अन्दर वैठ हुआ, पाप वासना रूपी रावण नही जलता है तब तक इस रावण के पुतले को जलाने का नाटक किसी काम का नही मात्र राष्ट्र की व समाज की सपत्ति को नष्ट करना ही है । राम जैसी पवित्र आत्मा स्वय को बनाने के लिए हमे मरे हुए रावण के पुतले जलाने से क्या प्रयोजन ? हमे तो हमारी आत्मा मे वैठे विषय, वासना, कषाय रूपी रावण को जलाना होगा तभी हमारा जीवन राम जैसा पवित्र व पावन बन सकेगा । मात्र मरे हुए रावण के पुतले जलाने से नही ।

जहाँ तक कि व्यर्थ व्यय का सवाल है तो इसी प्रकार से होली की भी स्थिति है जबकि सारा देश परेशान है आज ईधन की सुरक्षा के लिए ।

जहाँ एक ओर होली के नाम से सारे देश मे जगह जगह पर किटलो लकड़ियाँ व्यर्थ ही जला कर खाख कर दी जाती है वही बहुत से गरीब लोग ही नही मध्यम वर्ग के लोग भी लकड़ियो के लिए मुहताज देखे जाते है । लोग लकड़ियो की प्राप्ति के लिए भारी अर्थ व्यय कर भी परेशानियाँ उठाते है वही इस होली के नाम से भारी कीमती लकड़ियाँ भी बेमूल्य जला दी जाती है । अपने अन्दर बैठी हुई विषय वासना को जलाना ही वास्तविक होली है, राष्ट्र की ईधन व्यवस्था को छिन्न-भिन्न करने मे अग्रणीय उपक्रम को पर्व होली कैसे कहा जा सकता है ? क्योंकि पर्व का अर्थ होता है वत पावन दिवस जिसमे पापो को नष्ट किया जाता है, उछल कूद, हुडदग मचाकर राष्ट्र के बहुत से ईधन को नष्ट कर देने मे कौन से पापो का क्षय होता है ? मेरी दृष्टि से तो यह कहा जाये कि वर्तमान मे होली जलाने का कार्य जो है वह किसी गरीब के हाथ की रोटी छीन कर नष्ट करने से कम नही है । क्योंकि ईधन के क्षेत्र मे आज भारत कम गरीब नही है और ऐसी परिस्थिति मे भारी कीमती है जो ईधन उसे व्यर्थ नष्ट करना कोई पर्व नही बल्कि पाप को बढ़ाने वाला, देश की ईधन व्यवस्था को दुर्वल बनाने का उपक्रम ही है होली ।

यह तो हुई वर्तमान मे व्यर्थ अर्थ व्यय के विषय मे दशहरा व होली की बात, अब हम पुन पंचकल्याणक महोत्सव की बात पर विचार करते है तो ज्ञात होता है कि इस प्रकार का कोई उपक्रम पंचकल्याणक महोत्सव मे नही किया जाता है । जिस से राष्ट्र की राशि का व्यर्थ व्यय हो । पचकल्याणक मे होली और दशहरा आदि की

भाषा, वेषा, भोजनादि, [illegible] आचार ।
देश, वेश, कुल, धर्म की, [illegible] जाय ॥

तरह व्यर्थ ही कोई वस्तु का निर्माण कर आग नही लगाई जाती है ना ही किसी वस्तु को तोड़फोड़ कर नष्ट भ्रष्ट किया जाता है ।

पचकल्याणको मे धार्मिक पूजा आदि अनुष्ठानो के साथ जहाँ तक अर्थ व्यय का प्रश्न उठाया जाता है तो वह है सास्कृतिक कार्यक्रम, पडाल, आइटिग आदि मे तो यह कोई अर्थ मे व्यर्थ आग लगाना नही है । यह सभी तो कुछ दिन के लिए किराये पर लिये जाते है तथा पुन वापिस लौटा दिये जाते है । इस मे व्यर्थ राशि जैन समाज की, स्वय की, मेहनत की होती है न कि अन्य की, तब फिर इस खर्च से दूसरे को आपत्ति होने का हेतु क्या हो सकता है ? आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने अपने प्रवचनो मे कहा था कि चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय वाली बात जैनो मे नही है, धार्मिक व राष्ट्रीय पर्वों के लिए चमड़ी जाय व दमड़ी जाय वाली बात है यदि किसी मे है तो वह है एकमात्र विश्व धर्म जैन मे । जैनियो ने किसी के आगे हाथ फैलाना नही सीखा है । राष्ट्र व धर्म सकट की घड़ियो मे जैनियो ने उदार भाव से अपना कोष राष्ट्र व धर्म हित मे लगाया है । इतिहास साक्षी है इस बात के लिए कि जैनियो ने समय समय पर राजाओं को भी राष्ट्र सकट की घड़ियो मे अपनी मेहनत से उपार्जित अर्थ समर्पित कर राजा व राष्ट्र को भी उपकृत किया है । अब रही बात वह जो पचकल्याणक गजरथो मे ओगन की जगह घी डाला जाता है तो इसमे भी कोई बहुत आश्चर्य या दु ख व्यक्त करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जब सेठ लोग अपनी स्टेडर्ड की गाड़ियो मे स्टेडर्ड का आयल आदि डाल सकते है तो क्या तीन लोग के नाथ के रथ मे घी नही डाला जा सकता ? अर्थात् डाला जा सकता है । पूर्व काल मे भी जब सस्ता था तब अधिक डाला जाता रहा होगा लेकिन वर्तमान में तो वर्तमान के अनुसार कम ही डाला जाता है अत किसी प्रकार का व्यर्थ अर्थ व्यय पचकल्याणको मे नही होता है यह सिद्ध ही है और आचार्यों का कथन है कि धार्मिक अनुष्ठानो के द्वारा ही धन की प्राप्ति होती है । इसीलिए धार्मिक अनुष्ठानो मे किया गया खर्च व्यर्थ व्यय नही कहा जा सकता । भारतीय सस्कृति के विरूद्ध जो भारत मे बूचड़खानो का निर्माण किया जा रहा है, कत्ल-खाने खोले जा रहे है मछली व मुर्गी पालन के इन सभी कामो मे राष्ट्र का करोड़ो रुपये की सम्पत्ति व्यय की जा रही है, जो हिसा, पाप, प्रदूषण का प्रमुख कारण है उसे कोई व्यर्थ का व्यय नही कहता यही पचमकाल का विकट आश्चर्य है ।

अनादिकाल से जो कर्म आर्जित है, वह भी एक बार नमस्कार, स्तुति करने से नाश हो जाते है, जैसे बहुत सारे कचरे को दियासलाई से जरा जलाने पर वह जल कर राख हो जायेगा और उस राख को भी हवा उड़ा कर ले जाएगी । हालांकि नमस्कार स्तुति का फल मिलता है, वह फल ससार वृद्धि का कारण न होना चाहिये । हमे विषय-वासना आदि के लिये स्तुति, उपासना नही करनी है ।

[illegible]

जैन संस्कृति में जीर्णोद्धार प्रतिष्ठा

छात्रा संस्कृत महाविद्यालय
ब्र सुनीता जैन (जैन दर्शनाचार्य) ललितपुर

प्रत्येक प्राणी को अपने उपास्य देव से वात्सल्य अनिवार्यत होता है । येन केन प्रकारेण अपने आदर्शों के एव स्नेही पदार्थों के संरक्षण में कटिबद्ध रह कर क्रिया किये जाने की नीति बताने वाले रहीम दास ने मुक्ताहार को फिर पिरोहने की शिक्षा देकर जीर्णोद्धार का समर्थन किया है । नैसर्गिक संस्कृति के चरण, देव शास्त्र गुरु, अनद्यतन परम्परा रही है और पुराजन जैन सस्कृति एव परम्परा के उपास्य भूत स्थापत्य कला के प्राण मूर्तिया हैं । उनका सरक्षण-सवर्धन एव परिवेष्ठन करने के भावो को गति देने वाले चरण को पुरातत्व विभाग सज्ञा दी गई है । इसका अर्थ है मूल वस्तुस्थिति के प्राचीन प्रारूप को कायम बनाये रखाना एव आगमी काल तक चिर संचित रखना ऐसा बाह्य परिवेश एव व्यवस्थित दशाये निर्मित करना। मूल धर्म की प्राण रूप क्रियाओ को प्ररूपित करने वाली प्रतिष्ठित मूर्तियो की वीतरागता को सरक्षम देना, जिनालयो की यथा स्थिति बनाये रखना, क्षेत्रो की नींव को सुदृढ एव अक्षुण्ण करना आदि भी पुरातत्व विभाग की क्रियायें हैं ।

आर्ष सस्कृति मे भगवान और भक्त-दो सरक्षण के स्तम्भ हैं, जिनके भावना पूर्ण आचरणो से सस्कृति आगामी पीढियो की ओर प्रयास करतीहुई सद्योजात रहती है । विकासशील होती हैं ।

अराजकता के परिवेष्ठनो से जब उपासक के उपास्य देव-देवालयो को अवगुठित करने का समय आता है तो उपासक को प्रतिष्ठा-सकल्प प्रेरित करता है । प्राणपण न्यौछावर कर धर्म का डका बजाने के लिये और अवगुठन काल का तिरोहित करके जीर्णोद्धारक जैसे आयामो का बहाना कर स्वय को तवे से तपते पत्थरों पर खडा कर उपासक स्वय को मन-वाणी काया का कन्धा दे कर उच्वासनामीन है कटिबद्ध हो जाता है । भक्त की अन्त वेदना पुनरुद्धार की वादनी ले गुजन करने को कहती है । क्योंकि -

"जिन बिम्ब दसणेण विर्णिति णिकाचित कम्करवयहोदू"
वीरसेन स्वामी ने "श्री धवल" पहली पुस्तक में अकाट्य कर्म क्षय का एक मात्र स्थान प्रतिष्ठित जिन प्रतिमा को बताया है। अकाट्य कर्म-निर्जरा भी जिन-बिम्ब-दर्शन से सम्यक्‌दायिनी हो जाती है । उनका विकलांग रूप होना, भूल-भूसरित पडा रहना पग-चाप के समतल भूमि स्थल पर यद्वा-तद्वा बिखरी रहना भक्त की खुली आँखें देखे और अन्त करण में टीस न भरे ये असभव बात है । यह स्थिति जीर्णोद्धार सूत्र निर्मित कर जैनत्व संरक्षण करने व्याकुल कर उठती है । उस उपासक की ये भावनायें मन गढन्त नहीं, बल्कि प्रतिष्ठा-विधि-विधानानुकूल चतु अनुयोग प्रमाण सापेक्ष कही गई हैं । जिनवाणी मे इतिहास-पुराण मे मदिर एव जिनबिम्बो के प्रतिष्ठा-विधान एव जीर्णोद्धार हाते आये, इसका प्रसंग-सगत उल्लेख प्राप्त है ।

काल-कवलित धातु पाषाण के जिनबिम्बो को सग्रहालयो में अवशेष रूप मे सग्रहीत कर प्रदर्शन का केन्द्र तीर्थ-क्षेत्रो को बनाना पुरातत्व सरक्षण समझना बुद्धि का विभ्रम है । द्रव्य, क्षत्र, काल, भाव परिस्थिति स्थिति आदि मे समरूपता रखते हुये एकरूपता से वीतरागता को कायम रखने वाली मुद्रा बनाना एव देवालयो को शान्ति दायक स्थल बनाना ही पुरातत्व सरक्षण का सही अर्थ है । अनादि अनिधन आर्ष-परम्परा के प्रतीक जिनबिम्बो-प्रतिमाओ को यथाजात दर्शनयोग्य मूल वीतरागता की पोषक एव वीतरागतादायी भावों को बनाये रखना ही पुरातत्व संरक्षण विभाग का कार्य है । यही पूर्व प्राचीन सस्कृति रूप इस सरक्षित धरोधर का सरक्षण है । हमारी प्राचीन निधि की रक्षा करते हुये देव धर्म एवं आदि परम्परा को अवर्णवाद व चोराहों, गली, मुहल्लों का विषय नहीं बनने देना ही भक्त, भगवान की आराधना, उपासना, आस्था नाम पाकर सरक्षण रूप बनती जाती है, ओर स्वात्मानुशासन के बलबूते पर स्वत संरक्षण कार्य पूर्ण सम्भव होता है । इस प्रकार की अवर्णवाद रक्षक तत्वो के सग्रह करने वाले विभाग को पुरातत्व नाम दिया जाता है ।

प्रति-स्था अर्थात् प्रतिष्ठा, यानि मन्त्रो के आरोपण से आरोपित करना, पत्थर में परमात्मा की स्थापना का महोत्सव ही प्रतिष्ठा है ।

जिन प्रतिमा को साकार रूप में देवत्व के सस्कार आरोपित कर मत्रों की साक्षी पूर्वक उपास्य बना प्राणवत्

संरक्षण का संकल्प ही प्रतिष्ठा है । अन्य रूप से अपनी भावनाओं को प्रत्यक्ष से साक्षात् जोडने के माध्यमों को कल्पना से हटकर श्रद्धा-ज्ञान का विषय बनाने वाली, महत् पूजा विधि ही प्रतिष्ठा है । अवतार बाद के पृथक् रूप से सशरीरी आत्मा से पुरुषार्थ के बल पर उपादान निमित्ताश्रयी परणति के परिणमन का प्रारूप प्रदर्शन पचकल्याणक-प्रभावना, गजराथ अश्वरथ, वृषभरथ आदि के साथ बताना ही प्रतिष्ठा महोत्सव कहा जाता है ।

साक्षात् जिनदेव की स्थापना प्रतिमा में प्रतिमा के रूप को धारण करने वाले यथाजात मुद्राधारी दिगम्बर मुनियों द्वारा सूर्य मंत्र विधि वत् कल्याणक आदि में करना, एक परम्परा को कल्पना से परे आगामी जैन जन में साकार रखना, इन प्रतिष्ठाओ का महत्व एव लाभ है । और सर्वमुख्य इन विभाव-भावो से हटाने वाली क्रियाओ मे शुभ परिणाम रहते हैं । उल्लास एव आनन्द के साथ आत्म-प्रतिष्ठा की परणति जाग्रत होती है ।

आज वर्तमान परिवेश मे सम्पन्न होने वाली पचकल्याणक प्रतिष्ठाओ मे अबाल वृद्ध को भरत चक्री ने कैलाश पर्वत पर रत्नमयी जिन बिम्बो से आनन्द लिया होगा यह ज्ञापित हो जाता है । रेवती रानी ने जिन रथ आगे चलाकर कैसे धर्म प्रभावना की होगी इसकी कल्पना साकार हो जाती है ।

प्रतिष्ठान-मंत्रों के द्वारा प्रतिमाओ मे अतिशय आता है । जैसे जैसे विशुद्धि के साथ आराधक महत् पृजा-विधान करता है । वैसे-वैसे प्रतिमा में अतिशय एव चमत्कार आता है ।

वर्तमान अर्थपूर्ण व्यवस्था में मात्र ऐतिहासिक अवशेषो की सुरक्षा एव चमक पेन्ट आदि करवाने को जीर्णोद्धार मान लिया । अधिक से अधिक वीतराग के आलय, जिनालय एवं जिन-बिम्ब जीर्ण-शीर्ण दशा को प्राप्त हो म्लेच्छो के कोतुक-प्रदर्शन मात्र बने रहे, और भक्त जाकर जिन्हें नमोस्तु करने के भाव न कर सके । वह समीचीन दर्शन के भावों को लेकर जाय और गंति सुख अर्जित करके लाये। इस योग्य जिनालय एवं जिनबिम्ब बनाये रखना ही समीचीन जीर्णोद्धार कार्य एवं प्रतिष्ठा महोत्सव है ।

स्थापत्य हमारी मूल संस्कृति, विभिन्न भारतीय कलाओं के क्षेत्र में दिगम्बर जैन मूर्ति-कला, अप्रतिम रूप दर्शाती है । बुन्देलखण्ड की धरा पर अनेक तीर्थक्षेत्रों में अनगिनत जिन-मुर्तियाँ स्थापत्य कला के अपूर्व भण्डार हैं, जो संस्कृति के क्षेत्र में समृद्धि के अचल प्रमाण हैं । बुन्देलखण्डी पुरातत्व के महत कोष रूपँ भक्त उपासक को शांतिप्रदायक तीर्थ क्षेत्रों के रूप में देवगढ़, सेरोन, चन्देरी (खन्दारगिरि) बजरंगढ आदि उपलब्ध हैं । यंत्रतंत्र बिखरी जैनेश्वरी प्रतिमाओं को उच्चासन पर विराजमान कराना, त्रिकाल चौबीसी के रूप में विराजमान करते हुये यथा क्रम देना, सहस्त्रकूट चैत्यालय का अबोध प्राप्त कराना, उपाध्याय परमेष्ठी के मूलगुण पठन-पाठन जैसे चर्या के दर्शन देने वाले तलहटी पंच परमेष्ठी जिनालय को प्रतिष्ठित जीर्णोद्धार कराके उच्चासनासीन करना ही वर्तमान जीर्णोद्धार का महत् उपयोगी रूप है ।

देवगढ में आज वज्र वृषभ नाराच संहनन धारियों की तपस्या में तल्लीन नख केश तक बढकर अतिरूप पर पहुँच गये ऐसी प्रतिमाओ के भव्य दर्शन धनञ्जय की-सी भक्ति को प्रेरित करते हैं । श्रावकों को, और आदिनाथ बाहुबली, पार्श्वनाथ सी एकाग्रता जगाते हैं । सयम-साधक विद्या वाटिका महाव्रतियों को ।

ऐसे इन तीर्थ क्षेत्रों के दर्शन को आये सहज साधक विद्या वाटिका के प्रहरी मुनि श्री ने अपनी चर्या में तल्लीन रहते हुये प्रज्ञा रूपी छैनी से आचरणवान ललित कलाओं के ज्ञाता शिल्पी को आगमानुकूल निर्देश देते हुये जैठ की गर्म लू तवें से तपते पाषाणो पर खड़े रहकर निर्वस्त्र मुद्रा धारी गुरूवर श्री सुधासागर जी महाराज ने खुले आकाश में जिनबिम्बों की मुद्रा को साकार रूप बना पुज्यता दी।

मुनि श्री सुधासागर एवं ऐलक निशक सागर की प्रेरण पाकर सहस्त्रो वर्षों से अवनत वीतरागता की पोषक जिनप्रतिमाओ को जिनत्व रूप मिला अध्यात्म-वाटिका के पुष्प मुनि श्री ने आगम के अनुचिन्तन से संरक्षण कार्य विधिवत सम्पन्न कराया । वास्तव में महावीर की यथाजात मुद्रा के इन जिन बिम्बों को उनके लघुनन्दन ही संरक्षण दे सकते हैं । जिनके अग उपांग ही महावीर रूप होने को उद्यत हैं, वे सस्कृति एव पुरातत्व वेत्ता कहे जाने लायक हैं ।

आत्मा-परमात्मा साक्षात्कार को उद्यत सिद्धान्त वेत्ता आगम-प्रतिष्ठा-पाठ-अनुचिन्तक सन्त ही सच्चे संस्कृति संरक्षण हो सकते हैं । जिनने स्पष्ट रूप से जन सामान्य के अवलोकन का विषय बना दिया हो । संस्कृति के अभ्युदय का अपरिमेय कृत्य सस्कृति के सवर्धन का महत् कार्य करके दिखाया ऐसे साधक की साधना का फल ही सही जीर्णोद्धार नाम का संस्कृति की सुरक्षा का कदम है ।

वर्तमान में जो मुनि श्री के आर्शीवाद से जीर्णोद्धार आगमानुसार वीतरागता को दशनि वाले हो रहे हैं, वे अप्रामाणिक नहीं कहे जा सकते । इतिहास परम्परा के प्रतीक शिलालेख प्रशस्तिया आदि समय-समय पर पुनरुत्थान-परिमार्जन रूप में इसके साक्षी हैं । पं कैलाशचन्द्र शास्त्री ने ऐतिहासिक प्रमाणों से धार्मिक प्राचीनता के सुदृढ़ प्रमाण के अभाव का कारण शिलालेख एवं प्राचीन प्रतिमाओ की असुरक्षा बताया है । अन्य पुरातत्व-शास्त्रियो ने तीर्थ क्षेत्रो की उपेक्षा, एवं प्रतिमाओ का पुर्न व्यवस्थापन न होना सस्कृति के ह्रास के कारण कहे हैं । इसलिये पुरातत्व सरक्षण मे सस्कृति की धरोहरों को संरक्षित करना अनिवार्य लगता है । पुन परिमार्जन करके आगम सम्मत प्रतिष्ठाओ के द्वारा जीर्णोद्धार-कार्य नितान्त आगामी काल के लिये महती आवश्यकता का वरदान प्रद कार्य है, ऐसा कहा जा सकता है ।

वर्तमान समय मे हमारी अचल सस्कृति के प्रतीक स्तम्भ, तीर्थ-क्षेत्रो के जिनायतन अपनी जीर्णशीर्णता पर विलख रहे हैं । गर्त मे पडे हैं, ओझल हो रहे हैं । पुन काल के तूफानों से धराशायी इस विरासत के द्रव्य-रूप प्रदान कर प्रण-निक्षेपण-प्रतिष्ठाओ, पचकल्याणक पूजाओ गजरथ वृषभरथ आदि प्रभावना कारी उत्सवो से जिनत्व रूप मे विराजमान व पुन पूज्य किया जा सकता है ।

पुरातत्व कर्मचारियो द्वारा सस्कृति का व्यवस्थापन मात्र प्रदर्शन हो सकता है, भाडे का धर्म कहला सकता है ।

श्रद्धा और गुणज्ञता के युक्त श्रावक के द्वारा अपने आवश्यको के रूप में देवत्व की उपासना ही जीवन है, ऐसा माना जाता है । उसी के शक्ति-आश्रित विश्वास एव भक्ति भावना से धर्मायतनो का उद्धार पूर्ण हो सकता है। यथावश्यक जीर्णोद्धार आगम उल्लेख पूर्वक करते हुये प्रतिमाओ की यथाजात वीतरागता कायम रखते हुये प्रमोद भाव मे उच्चासन पर स्थापित करना ही सही भक्ति पूर्ण श्रद्धा का केन्द्र देव-जीर्णोद्धार है ।

मुनिश्री के सकेतो से देवगढ के जिनालयो में रवि-किरण-पुञ्ज के प्रवेश से खगचारी निवास बने मन्दिर, वर्तमान जिनालय, सुख-सान्ति के प्रकाश को विकीर्ण कर रहे हैं। यह कार्य साधकों की साधना का अवर्णणीय जीवों को ऐसे जिनालयो की भव्यता सम्यक्तोत्पत्ति का कारण सहज ही होती है । पचम काल मे चतुर्थ काल के से महावीर के लघुनन्दन अपने देव-मदिरों के द्वार पर बँधे तो तोरण बन्धन धार की तरह मोक्ष-अर्गला को खोल, तीर्थ क्षेत्रो को सिद्ध भूमि, बना, शान्ति के स्थल में साधना में लीन रहते हैं । इससे स्पष्ट हो रहा है कि जिनबिम्ब-दर्शन ही सातिशय पुण्य बन्ध के कारण है । प्रतिष्ठा पूजा, विधान-धर्म-परम्परा के मार्ग में ध्वज हटाने वालो के पूज्य वर्धम के महोत्सव है । भक्त भगवान पूण्य पूजकता के महोत्सव हैं ।

वादिराज स्वामी ने जिनदेव की भक्ति को उद्घाटित करते हुये प्रतिष्ठित प्रतिमाओं का महत यहाँ तक निरूपित किया है ।

"शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वरयनीचा भक्तिनेचिदन वधिसुखावञ्चिका कुन्चिकेयम"

अर्थात् हे भगवान ! निर्दोष ज्ञान पवित्र आचरण होने पर भी यदि तुम्हारे प्रति उत्कृष्ट भक्ति नहीं, तो मिथ्यात्व रूपी ताला कैसे खुलेगा । अर्थात् मिथ्यात्व गालन हेतु जिन-प्रतिमा प्रधान निमित्त कहा गया है । जिन पचकल्याणको से इन्द्र सागरो पर्यन्त की आयु को धार्मिक चर्चा से व्यतीत करते हैं और मिथ्यादृष्टि अनन्त ससार को चुल्लूभर जल के समान अन्त कोडा कोडी कर लेता है । लौकान्तिक एक भवावतारी शची एक भवावतारी हो जाती है । ऐसी धर्म-क्रिया जैन सस्कृति का अपूर्व बलिदान कारी महामहोत्सव का रूप चरण ही सस्कृति के सरक्षण का रूप है । आज भी हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख किसी भी मजहब का पुजारी क्यो न हो, आपसी मत भेद भूल मंगल आनन्ददायी महोत्सव मनाता है । आपसी वेर-भाव को भूल, साक्षात् समवशरण वत् बैठकर धर्म-श्रवण करे हैं ।

इन विश्वशान्ति महायज्ञो के रूप मे होने वाले महत् पूजा-महोत्सवो की सप्त-परिक्रमा सप्त-तत्वो मे सारभूत सप्तम मोक्ष तत्व ही पूर्णता का प्रतीक है, इसकी याद दिलाता है । जीव पाच परावर्तन करता हुआ सप्त धाराओ से उठने पर ही आनन्द अनुभूति पाता है, आदि विषयो की ओर उन्मुख करता है ।

जीर्णोद्धार भी जबतक अस्तित्व गुण हैं तब तक सत्ता कायम रहेगी और पुन पुन उसका परिमार्जन महत सत्ता मे न मिलने तक होता रहे इसके प्रतीक रूप धर्म-परम्परा के उत्थान एवं सस्कृति संरक्षण के सोपान चलते रहे और चिर सचित वीतरागता की ध्वजा को आगामी काल तक धर्म पताका फहराये यही संस्कृति का सरक्षण प्रतिष्ठा एवं जीर्णोद्धार के कार्यों का जन प्रेरणा कार्य एव पुरातत्व संवर्धन क्रिया का उत्थान कारी चरण है । ❑❑❑

समवशरण : एक सर्वोदय तीर्थ

मन वचन काय के आँकलन से परे अनादि कालीन ये रचना है समवशरण या यूँ कहा जाय कि जब से ये सूर्य चन्द्रमा पृथ्वी आदि हैं, सृष्टि के मुख्य घटक के रुप मे प्राणी मात्र है तब से यह समवशरण सभा लगती आई है और सीमातीत अनन्त के गवाक्ष मे देखे तो दृष्टि थक जाती है कही कोई ठहराव नही, कही कोई जमाव नही, कही कोई रुकाव नही दिखता समवशरण के अभाव के लिये ।

आखिर ऐसा क्या है समवशरण मे जिसके पेट मे अनादि अनन्त समा गये हो ? आखिर ऐसा कौन सा आकर्षण है समवशरण मे जिसकी रचना पुन होती है ? और फिर कब कहाँ कैसे कैसी होती है समवशरण की रचना ? ये प्रश्न उठ खड़े होते है सहिज मे ।

आओ देखे इन सब प्रश्नो की दृष्टि से उन पृष्ठो को जिन पृष्ठो पर लिखा है जिन्होने उनको ही लखा है जो सृष्टि को साक्षात् देखने वाले थे, अनुभूत करने वाले थे, बताने वाले थे । और बताने वाला बड़ा होता है प्रामाणिक होता है क्योंकि जिसने सब कुछ जान लिया हो हस्तावलबवत जो निर्देशन देने वाले हो तो वो बड़ा और प्रामाणिक होता ही है तो आओ उनकी ही आँखो से देखे

समवशरण क्या है ?—

अखिल भूमण्डल मे समवशरण वह पवित्र स्थान है जहाँ पर प्राणी मात्र के कल्याणार्थ धर्मोपदेश होता है, यह यह पावन सद्धर्म सभा है जहाँ पर प्राणी मात्र आपसी वैर भाव एव जाति पाति के भेद भाव को छोड़कर सोहार्दमय वातावरण मे बैठकर धर्मोपदेश रुपी अमृत का पान करते है और आलौकिक आनन्द एवं शाति की अनुभूति करते हैं ।

समवशरण एक सर्वोदय तीर्थ है, जहाँ पर सर्वहितकारी सबके उदय के मार्ग प्रशस्त करने वाला तीर्थंकरों का धर्मोपदेश होता है चौरासी लाख जीव योनियो के जीवो को जिसने अभय दिया, वैर, विद्वेष, काम वासना, कषाय परिणति के चक्रवात मे चक्कर खाते हुये प्राणियों को इसने परित्राण और आत्म कल्याण के स्वर दिये तथा श्रेयोमार्ग पर लगाया है । इसकी सर्वोदयता विश्वप्राणी मैत्रीत्व ने, जीवदया के मार्ग पर अतीत काल से अद्यावधि जितना हित साधन किया है वह इतिहास की साक्षी मे अनुपम है । इसकी उद्घोषणा करने वाले प्राचीन तार्किक विद्वान आचार्य समन्तभद्र कहते हैं कि —

सर्वान्तवत्तद् गुण मुख्य कल्पं
सर्वान्त शून्य च मुथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकर निरन्तं ।
सर्वोदयंतीर्थमिदंतवैव ।।

वास्तव मे जिनेन्द्र देव की वाणी सर्वोदयी है क्योंकि उनके सान्निध्य को पाकर के प्राणीमात्र को आत्म सतोष, साम्यभाव, नि:कषायत्व प्राप्त होता है । भगवान किसी जाति विशेष के, वर्ग विशेष के, समूह विशेष के नही होते है वो तो उसके होते है जो हृदय कमल के आसन पर विराजमान करता है और श्रद्धा सुमन समर्पण करके उनकी भक्ति करता है । कबीर जी कहते है कि भगवान तो उनका होता है जो उनको भजता है—

जाति पाति पूछे नहीं कोई ।
हरि को भजे हरि को होई ।।

इसी धर्म समभाव का प्रतीकात्मक होता है समवशरण । यदि विश्व मे कोई सर्वोदय तीर्थ है तो

एक मात्र जिनेन्द्र देव की सद्धर्म सभा समवशरण ही हैं जहाँ पर कोई किसी भी प्रकार का मत भेद नही है किसी भी प्रकार की मनभेद की कोई रेखा नही है, प्राणी मात्र भगवान का बनकर रहता है ।

समवशरण एक ऐसा ज्ञान का सागर है जिसके अथाह गहन अनुभूतियों को पाने के लिये विभिन्न वैचारिक धारायें अपने अह को गलाकर उस अनन्त मे विलीन हो जाती है और सम्यग्ज्ञान रुपी नवनीत को पाकर के एक ताजगी का अनुभव करती हैं क्योंकि समवशरण मे सभी ज्ञान धाराओं मे एकता जग जाती है । वैषम्यता की तद्रा टूट जाती है और एक धारा प्रवाह ज्ञान का झरना बहता है ।

समवशरण वह सर्व सामान्य शरण है जहॉ पर प्राणी मात्र को शरण मिलती है, देव मनुष्य तिर्यञ्चो का यह अद्भुत सगम है इससे बढ़कर सहिष्णुता तीन लोक मे और कही दृष्टव्य नही है ।

समवशरण क्या है इसको जानने के लिये सक्षिप्त मे यही कहा जा सकता है कि प्राणी मात्र के हितार्थ एक सार्वभौमिक पर्याय है समवशरण ।

समवशरण की रचना क्यो ? किसके लिये ? किसके द्वारा ?

सासारिक प्राणी ८४ लाख योनियो मे भटकता हुआ अतिशय दुख को उठाता है और मृत्यु भय । असुरक्षाभय । अशरण भय आदि से प्रतिक्षण भयभीत रहता है ।

जिस व्यक्तित्व ने पूर्व भव मे प्राणी मात्र के कल्याणार्थ सौलह कारण भावनायें भाई और फलस्वरुप तीर्थकर नाम कर्म को बाधा वही तीर्थकर केवली होता है कहा भी है—

"जस्स इण कम्मस्स उदयेण सदेवासुर माणुसस्स लोगस्स अच्चणिज्ञा पूजणिज्ञा वदणिज्ञा णमसणिज्ञा धम्म तित्थयराजिणा केवली भवति"।

तीर्थ शब्द को विशलेषित करते हुये आचार्य प्रभाचन्द जी लिखते हैं कि "तीर्थमागमः तदाधारसघश्च" अर्थात् "जिनेन्द्र कथित आगम तथा आगम का आधार साधु वर्ग तीर्थ है" तीर्थ शब्द का अर्थ "धाह" भी होता है अतएव तीर्थ करोतीति तीर्थंकर इसका आशय यह है कि जिनकी वाणी के द्वारा ससार सिधु से जीव तिर जाते हैं वे तीर्थ के कर्ता तीर्थंकर कहे जाते है । जिस प्राकार से सरोवर मे घाट बने होते है और उन घाटो से मनुष्य सरलता पूर्वक बाहर निकल जाते हैं उसी प्रकार से तीर्थंकर भगवान के द्वारा प्रदर्शित नयालम्बी सापेक्षवाद रुपी घाट का अवलम्बन लेने वाला जीव ससार सिन्धु मे न डूबकर चिन्तामुक्त हो तर जाता है अथवा तरण तारण बन जाता है ।

प्राणी मात्र सुख शाति चाहता है इसलिए उनको अक्षय सुख की उपलब्धि हो इस भावना से समवशरण की रचना होती है क्योंकि जिसके अन्दर करुणा का सागर लहरा रहा हो और जिन्होने जान लिये हो उन उपायो को जिनसे अक्षय सुख शाति की उपलब्धि होती है तो वो ही बतला सकते है उन उपायो को इस कारण से उनके दिव्य उपदेश का लाभ सभी को हो सके इसके लिये सौधर्म इन्द्र के आदेशानुसार धनपति कुबेर समवशरण की रचना करते है जहाँ पर सभी को अवकाश मिलता है ।

और दूसरी बात ये भी है कि समवशरण एक द्रव्य तीर्थ है क्योंकि द्रव्य तीर्थ के लक्षण प्रतिलक्षित होते हैं । मूलाचार जी मे द्रव्य तीर्थ के बारे मे इस प्रकार से उल्लेख मिलता है कि—

दाहोपसमण तण्हा-छेदो-मलपंक पवहणं चेव ।
तिहिं कारणेहिं जत्तो तम्हा तं दव्वदो तित्थं ।।

५५६ / /मूला.

द्रव्य तीर्थ मे ये तीन गुण होते हैं । प्रथम तो सन्ताप शान्त होता है और द्वितीय तृषणा का विनाश

होता है तथा तीसरे कर्म मल पक की शुद्धि होती है और समवशरण में दिव्य ध्वनी खिरती है वह भी द्रव्य तीर्थ हैं —

शास्त्रों में उल्लेख मिलता है कि —

"सुदधम्मो एत्थपुण तित्थं"

श्रुत (शास्त्र) रुप धर्म को तीर्थ कहा है । क्यो कि जिनवाणी रुपी गगा मे अवगाहन करने से संसार के सारे सन्ताप शान्त होते हैं , विषयो की लालसा दूर होती है तथा आत्मा मे लगे हुये द्रव्य कर्म भाव कर्म रुप मलिनता का निवारण होता है ।

और जिनसे समवशरण एव दिव्यध्वनि एक द्रव्य तीर्थ की सज्ञा को प्राप्त हुये वो जिनेन्द्र देव भाव तीर्थ कहलाते है—

दंसण-णाण-चरित्तेण्णिजुत्ता जिणवरा दु सव्वेपि ।
तिहि कारणेहि जुत्ता तम्हा ते भावदो तित्थ । ।

५६० / /मूला

जो द्रव्य तीर्थ मे कारण है और जो सम्यकदर्शन, सम्यक ज्ञान, सम्यक चरित्र की पूर्णता को प्राप्त कर चुके है ऐसे भाव तीर्थ का सान्निध्य कौन प्राप्त करना नही चहेगा ? वस्तुत देखा जाय तो द्रव्य तीर्थ मे जो गुण है वो जिनेन्द्र देय की महिमा का ही प्रभाव है इस सबध मे तिलोपण्णति मे लिखा है—

आतंक रोग मरणुप्पत्तीओ वेर काम बाधाओ ।
तण्हा छुह पीड़ाओ जिणमाहप्पेण ण हंवति । ।

६३१ //

जिन भगवान की महिमा के कारण वहाँ जीवो को आतक रोग, मरण, उत्पत्ति वैर, कामबाधा, पिपासा, तथा क्षुधा आदि की पीड़ा नही होती है । उन महामना जितेन्द्रिये परमात्मा का सान्निध्य एव दिव्यध्वनि रुप सदुपदेशों का लाभ प्राणी मात्र उठा सके इस हेतु धनपति कुबेर द्वारा समवशरण की रचना होना सार्थकता रखता है ।

समवशरण की रचना कब ?

समवशरण की रचना कई जन्मों की भावनाओं की साधना का सुफल है । जिसने स्व के लिये नही पर के लिये ही जीवन जिया हो, जिसका प्राणी नही वरन् प्राणी मात्र अपना हो जो प्रत्येक जीवन मे परमात्मा के दर्शन करना चाहता हो,जो सृष्टि को प्रकृति की आँखो से देखना चाहता हो, जो जीव मात्र के गुणो के प्रति नम्रीभूत हो; जो पर के दुखों को हृदय मे सहेज कर रखना चाहता हो, जो अपने जीवन को जीव मात्र के कल्याणार्थ लगाना चाहते हो, ऐसे व्यक्तित्व के वो घटक जो कि पूर्वोक्त भावनाओं को साकार रुप लेने मे बाधक थे ऐसे कर्मो का राजा मोहनीय ज्ञान-दर्शन के अवरोधक ज्ञानावरणी, दर्शनावरणी औरअनन्त सुख के लाभ को छीनने वाला अन्तराय कर्म के सम्पूर्ण नष्ट हो जाने पर जब केवल ज्ञान रुपी सूर्य प्रकाशित हो जाता है और जीवन के सम्पूर्ण रहस्य प्रकट हो जाते हैं तब उस आत्मा को आत्मा से आत्मा मे आत्मा के द्वारा, आत्मा, का साक्षात्कार हो जाता है और प्राप्त होता है अनुपम आलौकिक आनन्द । तब समस्त लोक मे हलचल मच जाती है इसका उल्लेख महापुराणकार ने किया है—

अथ घातिजये जिष्णोरनुष्णीकृत विष्टपे ।
त्रिलोक्यामभवत् क्षोभः कैवल्योत्पत्ति वात्यया । ।

अर्थात् जब जिनेन्द्र भगवान ने घातिया कर्मो पर विजय प्राप्त की उस समय ससार भर का सताप दूर हो गया । केवल ज्ञान की उत्पत्ति रुपी महान वायु के द्वारा तीनों लोकों मे हलचल (क्षोभ) मच गई ।

समस्त देव लोक में स्वत· ही मगल वाद्य मन्त्र बजने लगते हैं एव इन्द्रो के आसन काम्पायमान होने लगते है यह देख देवो का समूह आश्चर्य चकित हो जाता है और तब देवों का स्वामी सौधर्म इन्द्र को अवधि ज्ञान से ज्ञात होता है कि समस्त संसार अकस्मात आनन्द से भर उठा है और सम्पूर्ण भूमण्डल

धूलिरहित हो गया है, मन्द सुगन्ध पवन बह रही है, दशो दिशाये निर्मल हो गई है पूर्वोल्लिखित चिन्हो से इन्द्र भगवान के केवल ज्ञान की उत्पत्ति को जान कर परम हर्ष को प्राप्त होता है और तभी शीघ्र ही धनपति कुबेर को आदेश प्रसारित करता है कि धनपाल जाओ भूमण्डल पर परमहर्ष व्याप्त है भगवान को तीनो लोको के समस्त पदार्थों की त्रिकाल वर्ती पर्यायो को एक साथ जानने रुप केवल ज्ञान की प्राप्ति हुई है, शीघ्र जाकर धर्मोपदेश के लिये सद्धर्म सभा रुप समवशरण की रचना करो ।

परम ऐश्वर्य शाली सौधर्म इन्द्र के आदेश से धनपति कुबेर सर्वज्ञ जिनेन्द्र देव की दिव्य अनुभूतियो का दिव्य केवल ज्ञान का प्राणी मात्र लाभ उठा सके इस हेतु समवशरण की रचना करता है ।

समवशरण की रचना कहाँ . ?

जहाँ पर प्राणी मात्र के लिये जीवन जीने की कला बतलाई जाना हो, जीवन के रहस्य उदघाटित होना हो । जिनके चरणो मे प्राणी मात्र जीवन की सार्थकता एव वास्तविक आनन्द को प्राप्त करने के लिये शरण चाह रहा हो । जिनके लिये "वसुधेव कुटुम्बकम्" वसुधा ही कुटुम्ब बन गई हो अर्थात् जिनके लिये पृथ्वी मात्र ही परिवार के समान हो गई हो तो फिर परिवार के प्रत्येक सदस्य के यथा योग्य स्थान मिल सके भगवान के श्री चरणो मे इस हेतु समवशरण रुप सद्धर्म सभा की रचना होती है, वहाँ पर जहाँ पर तीर्थ करत्व रुप केवल ज्ञान का उदय होता है ।

समवशरण की रचना कैसे और किस प्रकार ?

समवशरण की रचना दिव्य परम शुद्ध परमाणुओं से होती है जिसका समायोजन देवो के द्वारा ही सम्भव है मनुष्यो के द्वारा नही क्योंकि इतनी विशाल रचना अन्तमुर्हत मे सुव्यवस्थित निर्मित करना दिव्य शक्ति से ही सम्भव है अत समवशरण देवोपनीत विक्रिया का रुप है ।

अत करण मे पवित्रता की प्रतिष्ठा होने पर बाह्य प्रकृति दासी के समान पुण्ययान की सेवा क्रिया करती है । इसका प्रतीक है समवशरण आदि विभूति । जोकि सौन्दर्य, वैभव तथा श्रेष्ठ कला का अद्भुत सगम ही है । महापुराणकार कहते है–

सुरेन्द्र नील निर्माण सम्वृत्त तदा बभौ ।
त्रिजगच्छी मुखालोक-मगंलादर्श विभ्रमम् ।।

अर्थात् इन्द्र नीलमणि निर्मित तथा चारो ओर से गोलाकार वह समवशरण ऐसा लगता था मानो त्रिलोक की लक्ष्मी के मुख दर्शन का मगलमय दर्पण ही हो ।

समवशरण के बाहर रत्नो की धूलि से निर्मित परकोटा होता है जिसे धूलीसाल कहते है । इस धूलीसाल के बाहर चारो दिशाओं मे सुवर्णमय खम्भो के अग्रभाग पर अवलम्बित चार द्वार शोभायमान होते है । धूली साल के भीतर जाने पर कुछ दूरी पर चारो दिशाओं मे एक-एक मानस्तम्भ होते हैं वे मानस्तम्भ महाप्रमाण के धारक एव चामर तथा ध्वजाओं से शोभायमान होते है ।

उन स्वर्णमय मान स्तम्भो के मूलभाग में जिनेन्द्र भगवान की सुवर्णमय प्रतिमाये विराजमान रहती हैं । उन मान स्तम्भो का प्रतिमाओं के मस्तक पर तीन छत्र तीन लोक के नाथत्व को घोषित करते हुए सोभायमान होते है ।

मानस्तम्भो के चारो ओर सरोवर फिर निर्मल जल से भरी हुई परिखा, फिर पुष्पवाटिका उसके आगे पहला कोट उसके आगे दोनो ओर दो-दो नाट्य शालाये उसके आगे अशोक आदि पेडो का बगीचा और उसके आगे वेदिका तदनन्तर ध्वाजाओं की

पंक्तियाँ, फिर दूसरा कोट, उसके आगे वेदिका सहित कल्पवृक्षो का समूह, उसके बाद स्तूप और स्तूपो के बाद भवन की पंक्तियाँ आगे स्फटिकमणि मय तीसरा कोट जिसमे ३२ सभाये होती हैं तदनन्तर पीठिका होती है जिसके अग्र भाग पर स्वम्भू भगवान अहरत देव विराजमान होते हैं ।

सर्वोदय की प्रतीक द्वादश सभाये ऐसी लगती है। जैसे जीवो मे कोई प्राकरान्तर है ही नहीं, प्रथम कोठे मे गणधर देवादि मुनीन्द्र विराजमान होते है, दूसरे मे कल्पवासियो देवो की देविया, तीसरे मे आर्यिकार्ये तथा मनुष्यो की स्त्रियाँ चौथे मे ज्योतिषी देवियाँ पाँचवे मे व्यन्तर देवो की देवियाँ छटवे में भवनवासिनी देवियाँ, सातवे मे भवनवासी देव, आठवे मे व्यन्तरदेव, नवमे मे ज्योतिषी देव, दसवे मे कल्पवीसी देव, ग्यारहवे मे पुरुष वर्ग तथा बारहवे मे पशुगण बैठते हैं ।

जिस पीठिका के अग्रभाग पर स्वम्भू भगवान विराजमान होते है वो वैडूर्यमणि की बनी होती है और यह श्री मडप के बीचो बीच स्थित होती है । प्रथम पीठिका पर अष्ट मगल द्रव्य रुपी सम्पदाये और यक्षो के उन्नत मस्तको पर स्थित धर्म-चक्र ऐसे लगते थे, मानो पीठिका रुपी उदयाचल से उदय होते हुये सूर्य बिम्ब हो । उस प्रथम पीठिका पर सुवर्ण निर्मित प्रकाशमान दूसरा पीठ होता है ।

उसके ऊपर चक्र, गज, वृषभ, कमल, वस्त्र, सिह, गरुड़, और माला के चिन्ह युक्त धवल ध्वजाये शोभायमान होती हैं । दूसरे पीठ पर तीसरा पीठ विविध रत्नो से निर्मित होता है वह तीन कटनियों से युक्त और ऐसा सुन्दर लगता है मानों पीठ का रुप सुमेरू पर्वत ही हो और उस सुमेरु पर्वत पर जिनेन्द्र देव विराजमान हो ।

उनकी वह गन्ध कुटी ऐसी सुशोभित होती कि मानों भद्रशाल वन नन्दन वन, सौमनसवन और पाडंक वन के ऊपर सुमेरु की चूलिका ही सुशोभित हो रही हो । चारो ओर लटकते हुये स्थूल मोतियों की झालर से वह ऐसी सुशोभित होती है कि मानो समुद्रों ने उसे मुक्ताओं का उपहार ही अर्पण किया हो । वह गन्ध कुटी की सब दिशाओं मे फैलती हुई सुगध से ऐसी मालूम होती की मानों सुगध के द्वारा ही निर्माण की गई हो । सब दिशाओं मे फैलती हुई धूप से वह ऐसी प्रतिभासित होती मानो धूप से ही बनी हो । वह सब दिशाओं मे फैले हुये फूलो से ऐसी लगती मानो वह पुष्प निर्मित ही हो ।

गन्ध कुटी के मध्य में एक रत्न जटित सिहासन सुवर्णमय होता है उस सिंहासन पर अष्टप्रात्यहार्यो से सुशोभित प्रभु विराजमान होते है किन्तु उस सिहासन से चार अगुल ऊपर ही ।

समवशरण की सर्वोदयता का प्रमाण —

उपर्युक्त वर्णन से समवशरण की सर्वोदयता का प्रमाण मिलता है कि जिस सौधर्म इन्द्र ने इतनी विशाल और भव्य समवशरण की रचना धनपति कुबेर से करवाई और स्वय इन्द्राणी एव सैकड़ो इन्द्रो के साथ दिव्य सामग्री से करके उत्कृष्ट पूजा की है जैसा की महापुराणकार कहते हैं —

अथोत्थाय तुष्ट्या सुरेन्द्राः स्वहस्तैः
जिनस्याङ्घ्रिपूजां प्रचक्रुः प्रतीताः ।
सगन्धैः सुमाल्यैः सुधूपैः सदीपैः
सदिव्याक्षतैः प्राज्यपीयूष पिण्डैः ॥२३-१०६ ॥

महापुराण

इतनी उत्कृष्ट पूजा करने के बावजूद भी भगवान उससे किञ्चित आकृष्ट या खुश होते हो सो बात नही है वो तो प्राणी मात्र से खुश रहते हैं अर्थात् वो प्राणी मात्र के हितार्थ उपदेश देते हैं । इसका स्पष्टीकरण महापुराण कार इस प्रकार से कहते हैं ।

इतीत्थं स्वभक्त्या सुरैरर्चितोऽर्हन्

किंते पितृ कृत्यं कृतार्थस्य भर्तुः ।
विरागो न तुष्यत्यपि द्वेष्टि वासौ
कथंचित्त्व भक्तानहो योगुधीति ।।२३-१२५।।

महापुराण

भक्ति पूर्वक देवो ने अर्हन्त भगवान की पूजा की किन्तु भगवान तो कृतकृत्य थे इस पूजा भक्ति से उनका क्या प्रयोजन मोह का क्षय होने से वे वीतरागी है अत किसी से न सतुष्ट होते हैं और न ही अप्रसन्न होते हैं तथापि अपने भक्तो को (प्राणीमात्र को) इष्ट फलो से युक्त कर देते है यह आश्चर्य की बात है। समवशरण के स्वामी जिनेन्द्र देव की स्तुति करते हुये इन्द्रो का समूह कहता है कि —

त्व मित्रं त्वमसि गुरुस्त्वमेव भर्ता
त्वं स्रष्टा भुवन पिता महस्त्वमेव ।
त्वां ध्यायन् अमृति सुखं प्रयाति जन्तु
प्रायस्त्व त्रिजगदिदं त्वमयपातात् ।।२३-१४३।।

अर्थात् है प्रभो इस जगत् में आप ही प्राणी मात्र के मित्र है । आप ही गुरु हैं । आप ही स्वामी है । आप ही विधाता है । आप जगत के पितामह हैं । आपका ध्यान करने वाला जीव अमृत्यु के आनन्द को प्राप्त करता है । इसलिए है देर्वाधदेव भगवन् ! आज आप तीन लोकों के ससार सिन्धु मे पतित जीवो की रक्षा कीजिये ।

प्रस्तुत स्तवन से पता चलता है कि प्राणी मात्र को दिशा दर्शन । मार्ग दर्शन । जीवन दृष्टि । जीवन की वास्तविकता से परिचय और जीवन को सार्थकता प्रदान करने के उपायो का लाभ हो सके इस हेतु सर्वोदय समवशरण की रचना सौधर्म इन्द्र करवाता है क्योंकि जिनकी दृष्टि निर्मल और विशाल हो गई है । रागद्वेष से रहित निरपेक्ष स्यद्वादमयी हो गई है । जो केवलज्ञान नैत्र द्वारा समस्त विश्व को जानते हैं, कर्मभूमि रुप जगत के निर्माता होने से विश्वसृट हैं । विश्व अर्थात् समस्त गुणों के समुद्र है क्षय रहित है जिनका शासन जगत का कल्याण करने वाला है ।ऐसे विश्व गुरु की सर्वोदय वाणी का लाभ प्राणी मात्र उठा सके इस हेतु सार्वभौमिक सभा रुप समवशरण की रचना अपने आप मे सार्थकता रखता है ।

ऐसे समवशरण के प्रतीक ये जिनालय हैं जहाँ पर स्थापना निक्षेप से जिन बिम्ब की स्थापना की गई है जो आज भी उसी सर्वोदय शासन की महती प्रभावना कर रहे है और कह रहे है कि जगत मे कही भी सुख नही है, तुम तो स्वय आनन्द एव शाति के अजस्र स्रोत हो । खुद मे लगाओ एक डण्डा तो खुदा बन जाओगे । तो आओ ऐसे जिनालय की शरण और कुछ खोने की कला और कुछ होने की कला सीखे ।

द्वितीय खण्ड

सुधावृष्टि

अनुक्रमणिका

अन्दर की आग

रास्ते का अर्थ है जिस पर चला जाये । रास्ता शब्द अपने आप मे गति सूचक है । लेकिन रास्ता है इसलिए कोई मजिल भी आगे होगी यह कोई नियम नही । जब भी आप मजिल पर जाओगे तब रास्ते पर से ही जाओगे । लेकिन रास्ते पर चल रहे हो, तो कोई निश्चित नहीं है कि आप निश्चित मजिल पर पहूँचोगे । जैसे, आप के पाडाल के सामने से एक रोड गया है, जिस पर आपके ललितपुर से कितने लोग चले । कुछ रास्ते मे रुक गये, कुछ आगे झाँसी, कुछ कानपुर आदि स्थनो पर आगे-आगे रुकते जायेगे । रास्ता एक ही था, लक्ष्य अलग-अलग थे, इसलिए यह कैसे कहा जा सकता है कि यह रास्ता एक निश्चित मजिल का रास्ता है । कुछ तो इस रास्ते पर विना मजिल के घूमने आते है—जैसे प्रात काल मे लोग टहलने जाते है लेकिन उनकी कोई निश्चित मजिल नही होती । परन्तु रास्ता होत है, गति होती है इसी प्रकार यह संसार का रास्ता है जिसमे बहुत भटकन है । मजिल की प्राप्ति हो जाय यह कोई नियम नही है । ससारी प्राणी की निगोद से यात्रा शुरू होती है, फिर एकेन्द्रिय आदि चौरासी लाख योनियों में घूमकर पुन' वही निगोद मे पहुँच जाता है । और फिर, भड़भूँजे के चने के समान कभी विशुद्धि वशात् वहाँ से निकलता है । फिर चौरासी लाख योनियो में टहलता है । इसी प्रकार एक आत्मा अनन्त काल से इस ससार के मार्ग पर टहलती टहलती कुछ ऐसे रास्ते को पहिचानने का प्रयास कर रही है जो किसी एक निश्चित मजिल को जाता है । मनुष्य जितना मंजिल के सम्बन्ध मे सोचता है, इतना अगर रास्ते के सम्बन्ध मे सोचें तो शायद कल्याण हो जावेगा । भटकन मजिल मे नही होती, रास्तो में होती है । दुनिया रास्तो में भटकती है, मजिल मे नहीं ।

आदिनाथ का यह जीव दश भव पूर्व अनन्त सागर मे भटकता हुआ जयवर्मा पर्याय मे आया । वहाँ पर पिता के द्वारा छोटे भाई को युवराज पद देने पर अपना अपमान समझकर वह वनवास चला जाता है । मान के अपमान की चोट खाया हुआ जयवर्मा जगलो में भटकता रहा । दु ख उसे यह नही था कि राज पद उसे क्यो नही मिला । दु.ख उसे यह था कि छोटे भाई को क्यो मिल गया । ससारी प्राणी दुखी इस बात से नही कि मेरा सम्मान क्यो नही हो रहा है, बल्कि दुखी इसलिए है कि दूसरो का सम्माने क्यो हो रहा है ।

इस प्रकार वह अपमान की आग मे जलता-जलता अधजला हो गया था । इसी बीच मे एक वीतरागी मुनिराज का दर्शन होता है । मुनिराज के दर्शन करते ही जयवर्मा अपने अन्दर की धधकती आग को शमन करने के लिए उनके चरणो मे निवेदन करने लगा । मुनिराज तो अनेकान्त धर्म के धनी होते हैं, सापेक्षवाद उनका रक्षा-कवच होता है । महाराज बोले कि बेटा तेरे पिता ने तेरा अपमान नही किया, बल्कि सम्मान किया है । छोटे बेटे को युवराज पद दिया, और तुझे युवराज पद न देकर महाराज-पद प्राप्त करने का मौका दिया है । युवराज पद यदि तुझे दे देते तो तू भी उसी परिग्रह की चपेट मे पड़ जाता, और परिग्रह नरक-आयु का कारण है । अत हे भव्य जीव—

कहा रच्यो पर-पद मे न तेरो,
पद यहै क्यो दुख सहै ।
अब दौल होऊ सुखी स्वपद रचि,
दाव मत चूको यहै ।।

अत' तुम्हारे लिए यह मौका मिला है, इसलिए सारे परपदो की ओर से दृष्टि हटा कर निज पद को प्राप्त करने का प्रयास करो । इस प्रकार अनेकान्त मयी

दृष्टि से वस्तु तत्व को समझने पर जयवर्मा वैरागी हो जाता है, और मुनिव्रत धारण कर लेता है । तदुपरान्त घोर तपस्या करके स्वर्गो मे ललिताग नाम का देव होता है । वहाँ उसकी प्रमुख देवागना स्वयप्रभा नाम की देवी होती है । दोनो मे परस्पर प्रेम बढ़ता है, और आयु पूर्ण कर वहाँ से मनुष्य गति मे आते है । जवान आवस्था प्राप्त करने पर दोनो एक दूसरे की अवलोकन करने मात्र से एक दूसरे से सम्मोहित हो जाते है, और दोनो दाम्पत्य जीवन स्वीकार कर लेते है । राग और द्वेष की अभिव्यक्ति प्राय पूर्व भव के सस्कार की ही देन मानी जाती है ।

कभी-कभी ऐसा होता है किसी अनजान व्यक्ति को देखकर राग उमड़ पड़ता है ऐसा भाव आता है कि इससे दो बाते करूँ । और कभी-कभी किसी आनजान व्यक्ति को देखकर द्वेष की आग जल उठती है, उसे फुटी आँख से देखने का भी मन नही करता। यही हुआ ललिताग देव और स्वयप्रभा के अनुराग का फल कि मनुष्य पर्याय मे भी एक दूसरे से अनुरागित हो गये । इस प्रकार इस पर्याय को पूर्ण कर यह आदिनाथ का जीव, स्वर्गादिक भोग-भूमिआदि पर्यायो के सुखो को भोगकर पुन मनुष्य पर्याय मे वज्रसघ नाम को प्राप्त होता है, और स्वयप्रभा का जीव स्त्री पर्याय को छेदकर वज्रसघ का पुत्र होत है । वज्रसघ अपने पुत्र से इतना अनुराग करता है कि वह २४ घटे उसे अपनी गोदी से नीचे नही उतारता । यदि चलते समय पुत्र को काटा लग जाय तो पिता को ऐसा महसूस होता है कि जैसे उसकी गर्दन पर तलवारे चल गयी हो । एक दिन वह अपने पुत्र को साथ लेकर पर्यटन के लिये वन मे गया । वहाँ पर एक बदरिया अपने बच्चे को सीने से चिपकाये हुये लाड़-प्यार कर रही थी । एकाएक पानी बरसने लग जाता है । वह बदरिया बच्चे सहित नालो के किनारे बैठी थी और नाला मे पानी बढ़ने लगा । लेकिन वह बच्चे में इतनी मोहित थी कि उसे बाढ़ के पानी का अहसास नही हुआ पानी एकाएक बढ़ता चला गया, और उस बदरिय के प्राण सकट मे आ गये । तब वह अपने बच्चे को जमीन पर पटक कर अपने प्राण बचाने के लिये अपने कलेजे के टुकड़े के ऊपर खड़ी हो गयी यह दृश्य वज्रसघ देख रहा था। उसकी आँखो पर बधी मोह की पट्टी खुल गयी । ससार की स्वार्थ मय अधता को धिक्कारने लगा । मोह की विचित्रता के रहस्य को समझ गया, और तुरन्त किसी प्रकार पुत्र को घर भेज, परम वैराग्य को प्राप्त होकर मुनि-दीक्षा को धारण कर लेता है ।

इसके बाद वज्रसघ का जीव देवगति मे जाता है, और वहाँ जाकर सुखो को भोगकर पुन वज्रनाभि नामक चक्रवर्ती पद को प्राप्त करता है । इस चक्रवर्ती के पिता तीर्थंकर पद को प्राप्त करते है । तब यह चक्रवर्ती अपने पिता के समोशरण मे जाकर सोलह कारण भावना को भाता है, और तीर्थंकर-प्रकृति का बध कर लेता है । भगवान से पूछता है कि मै आप जैसा अलौकिक वैभव को प्राप्त कर पाऊँगा तब ? भगवान कहते है कि हे भव्य जीव, जो विशुद्ध परिणाम है, इन विशुद्ध परिणामो के द्वारा तुझे तीर्थंकर-प्रकृति का बध हो गया है । तभी अगले तीसरे भव मे जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे अवसर्पिणी काल के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के नाम से इस समवशरण की विभूति को प्राप्त करोगे । यह सुनकर वज्रनाभि का जीव इतने आह्लादित होता है कि तुरन्त मुनि-दीक्षा धारण कर लेता है, और वन मे जाकर ६ माह का प्रतिमायोग धारण कर समाधिपूर्वक मरण करके सर्वार्थसिद्धि में देवत्व को प्राप्त होता है । इस प्रकार

आदिनाथ के जीव को अनन्त अतीत, का ससार के भटकते हुए रास्तों का, आज हमने निरूपण किया, क्यों जिसके तुम पंचकल्याणक मना रहे हो, उनके अतीत के बारे मे भी ज्ञान होना चाहिए ।

इस प्रकार से यह जीव अतीत मे पशु-जैसी पर्यायो को प्राप्त होता हुआ भटकता रहता है, और यही पशुपर्यायो मे भटकने वाला जीव परमेश्वर भी बन जाता है । आज हमने इस जीव की पशु पर्यायों का वर्णन किया, कल से परमेश्वर पर्यायों का वर्णन शुरु होगा । अर्थात् यह पंचकल्याण पशु से परमेश्वर, नर से नारायण बनने की एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है, यह पचकल्याणक एक आध्यात्मिक मेला है ।

आदिनाथ भगवान की जय ।

जब तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है, तब धूल-धूसरित रास्ता उज्जवल बनता जाता है और उनके अभाव मे वापस धूल से भर जाता है । प्राय: संसारी व्यक्ति को रास्ता बताने की जरूरत पड़ती है । जिस प्रकार आकाश मे अनेको पक्षी चलते है पर उनके पद-चिह्न नहीं पड़ते है, उसी प्रकार मोक्ष रास्ते मे अनेको व्यक्ति चलते है, पर चिन्ह नही पड़ते है । नमस्कार हमको किस लक्ष्य को लेकर करना है ? यह हमे देखना है । अनेक व्यक्ति रात दिन भगवान् का नाम लेते हैं, उपासना करते है । तन, मन, धन व वचन से नाम लेते हैं और इससे ऊपर भी एक चीज है, वह है लक्ष्य की ओर ध्यान देना, निदान की ओर ध्यान देना । जब तक रोग का निदान नही होगा, तब तक रोगी का रोग दूर नही होगा, उसी प्रकार हमें भी लक्ष्य को पहले देखना होगा । हमें यह देखना होगा कि जिस वस्तु (लक्ष्य) को हम चाह रहे हैं, उसको प्राप्त करने का रास्ता भिन्न तो नही है, हमारी गति दूसरी दिशा की ओर तो नही है ।

जाकी रही भावना जैसी

(गर्भ कल्याणक दिवस पर आयोजित प्रवचन)

आज इस पचकल्याणक महोत्सव का प्रथम दिन गर्भ-कल्याणक महोत्सव के रूप मे मनाया जा रहा है। आज इस कल्याण के निमित्त से मुझे एक उक्ति ध्यान मे आ रही है । उसी को ले करके मै आज का प्रवचन शुरू करूँगा । "जाकी रही भावना जैसी, प्रभु मूरत देखी तिन तैसी ।" इस उक्ति से आचार्य कुन्द-कुन्द स्वामी भी परिचित थे । उन्होने अपने समयासार ग्रन्थ मे प्राकृत भाषा मे इस युक्ति को लिखा है—

शुद्धमतु वियाणतो विसुद्धमेवप्पय लहदि जीवो,
जाणतो दु अशुद्ध अशुव-मेवप्पय लहदि जीवो ।

अर्थात् जो जैसी भावना करता है, उसे वैसे ही फल की प्राप्ति होती है । यह प्रसग यहाँ इसलिए ला रहा हूँ कि सर्वार्थसिद्धि से आदिनाथ का जीव मरूदेवी के गर्भ मे ही क्यो आया ? ससार मे और भी अन्य नारियाँ थी । उनके गर्भ मे क्यो नही आया ? शास्त्रो मे तीर्थंकर और मरूदेवी के पूर्वभव के सबध भी दृष्टिगोचर नही होते है, जिस कारण से मरूदेवी, नाभिराय एवं ऋषभदेव का सम्बन्ध बैठाया जा सके। मेरी दृष्टि से तो माता मरूदेवी के पुण्य एव पवित्र भावना के कारण से ही आदिनाथ मरूदेवी के गर्भ मे आये । मरूदेवी ने अपने जीवन मे ऐसा परिणाम किया था कि मेरी कोख मे वह जन्मे जो विश्व का कल्याण करने वाला हो । मैं भोग-वासना रूपी कीचड़ मे यदि बीज डालूँ तो वह ऐसा फूल बनकर महके कि सारा विश्व उसकी सुगन्ध ले सके । मैं ऐसे लाल को दूध पिलाऊँ जो विश्व का पालनहारा हो । मेरी गोद मे ऐसा लाल खेले जिसके चरणो मे सारी दुनिया शरणागत हो । मैं ऐसे लाल को सहारा दूँ जो सारे जगत का सहारा हो, इसी परिणामस्वरूप आज माता मरूदेवी ने सोलह स्वप्न देखे, जो इस बात का प्रतीक है कि माता मरूदेवी की पवित्र भावना फलीभूत हो चुकी है। महान् आत्माये जब आती है तो कोई न कोई सूचना देकर आती है । तीर्थंकर के सोलह स्वप्न इसके प्रतीक है । गर्भावतरण होने के छह माह पूर्व ही साढ़े दस करोड़ रत्न प्रतिदिन मरूदेवी के आँगन मे बरसने लगे थे । जब एक साधारण राष्ट्रपति कही पर जाते हैं तो उस नगर की सड़क लाइन पूर्व से ही सुनियोजित हो जाती है । फिर यहाँ तो तीन लोग के नाथ अवतरित हो रहे हैं । इसलिए सारी अयोध्या स्वर्णमयी बना दी सौधर्म इन्द्र के आदेश पर कुबेर ने आज वर्तमान मे इस भारत भूमि पर शुद्ध माता-पिताओं का अभाव है । तीर्थंकर का अभाव दुनियाँ मे नही है । तीर्थंकर की सत्ता लिए हुए असख्यात पुण्यात्मा स्वर्ग व नरक मे पड़े हुए है, जो किसी पवित्र माँ की कोख मे अवतरित होगे । आज के दम्पत्ति गर्भ धारण तो करते हैं, लेकिन बेहोशी के साथ, मात्र भोगो की वासना मे लिप्त होकर इन्द्रिय-सुख की क्षणिक लिप्त मे ही लिप्त रहते हैं । गर्भ धारण करने के लिए कितनी पवित्र भावनाये चाहिए वे इससे अनभिज्ञ हैं । महापुराण के अन्दर जिनसेन आचार्य ने गर्भधारण क्रिया का वर्णन बड़े अच्छे ढग से किया है कि जब किसी दम्पत्ति को सतान की इच्छा होती है तो कई माह पूर्व यज्ञानुष्ठान, धर्मानुष्ठान एव परिणामो की पवित्रता रखना शुरू कर देते हैं । फिर किसी शुभ मुहुर्त में शुभ दिन यशस्वी पुत्र की कामना करते हुए गर्भ क्रिया करते हैं । तीर्थंकर की माँ अपने जीवन मे एक बार ही पुष्पवती होती है, और पुष्पवती होने के छहः माह पूर्व से ही माता अपने जीवन को छप्पन कुमारियो और अष्ट कुमारियो के निमित्त से पावन बना लेती है । गर्भधारण करने के नौ माह तक देवो द्वारा धर्ममय वातावरण बन कर

गर्भस्थ शिशु पर संस्कार डाले जाते हैं । विचारणीय बात है, की तीर्थंकर जैसी पवित्र आत्मा के ऊपर क्या संस्कार डालना । लेकिन बन्धुओं, प्रकृति के जो नियम हैं उनको हर व्यक्ति के लिए पालन करना पड़ता है। सस्कार एक प्रकृति जन्य परिणामन को अपने अनुकूल ढालने का एक अमोघ अस्त्र है । नौ माह तक माँ के पूरे सस्कार बालक के ऊपर पड़ते है । माँ यदि रोती है गर्भस्थ अवस्था मे तो बच्चे की आँखे कमजोर होगी। माँ क्रोध करेगी तो बच्चा क्रोधी होगा । माँ यदि तीखा भोजन करती है तो बच्चा चर्मरोगी होगा । ऐसा आज के वैज्ञानिको का भी कथन है । यदि दम्पत्ति गर्भधारण करते समय वासना की दुर्गन्धि से ग्रसित है, तो पुत्र भी वासनायुक्त होगा । इस गर्भकल्याणक से आपको शिक्षा लेनी चाहिए कि गर्भ जैसी रक्षणीय वस्तु दुनिया मे कोई नही हो सकती । एक गर्भ की रक्षा करने के लिए स्वर्ग के देवता पृथ्वी पर उतर आये । इससे अनुमान लगता है कि गर्भ वस्तुत तीन लोग मे अमूल्य निधि है ।

लेकिन आज के माता-पिता गर्भ मे आई हुई आत्मा का गर्भपात करा देते है । कितना बड़ा पाप है । शरणागत को, और वह भी अपने बालक को जो बेटा बनने वाला है, उसकी अपने क्षणिक इन्द्रिय सुखों के लिए हत्या कर देते हैं । जो दम्पत्ति एक बार गर्भपात कराते हैं । वे हजारो भवो तक नपुंसक होते हैं । और हजारो भवो तक सम्मूर्च्छन पर्यायो में जन्म लेना पड़ता है । एक बालक के बड़े होने पर देश को कितना अधिक सम्भावनाये प्राप्त हो सकती हैं । उन सारी सम्भावनाओं का हत्यारा गर्भपात कराने वाला/वाली को होता है । गर्भपात कराना एक अपने पेट (अपने उदर) को बूचड़खाना बनाना है । जहाँ एक असहाय जीव को मार दिया जाये उसे बूचड़खाना कहते है । जिस स्थान पर किसी जीव की हत्या कर दी जाये, हजारो वर्षों तक हत्यारी वर्गणायें उस स्थान पर मिलती है ऐसा शास्त्रो मे उल्लेख है । और जिसके पेट मे एक शिशु की हत्या कर दी हो वह पेट एक पूरे जीवन-काल मे पवित्र नही हो सकता। फिर ऐसे अपवित्र पेट मे, बूचड़खाने मे तीर्थंकर जैसी आत्मायें कैसे अवतरित हो सकती है, नही हो सकती है ।

अत यदि अपनी कोख से महान् आत्माओं को जन्म देना है तो अपने गर्भ को पवित्र रखो । अपनी भावनाये पवित्र रखो । और, इस प्रकार की शिक्षा लेना ही गर्भ-कल्याणक की सार्थकता मानी जा सकती है।

महावीर स्वामी की जय !

संकल्प

गर्भपात के इस दैत्य का नाश हो, विश्व इससे मुक्त हो, गर्भस्थो को अभय मिले, माँ का मातृत्व, मानवता, जयवन्त हो, ऐसी कामना के साथ उन सभी को मेरी शुभ कामनाएँ जो इस दैत्य के खिलाफ आवाज उठाये उन सभी को हार्दिक बधाई और ईश्वर से उनकी क्षमता मे बढ़ोतरी की प्रार्थना है जो इस मानवी कुकृत्य के भयावह खतरों की समझ रखते है, इस धर्म-युद्ध में भाग लेने वाले प्रत्येक सदस्य को सुख शांति समृद्धता व पूर्ण स्वस्थ जीवन मिले इन्हीं शुभकामनाओं के साथ मैं उन समस्त बहनों-भाइयों से अपेक्षा करता हूँ कि वो इस अभियान मे प्रथम इकाई बनकर गर्भपात न करने व करवाने का संकल्प करलें ....!

जन्म–जन्म का कल्याण

(जन्म कल्याणक पर प्रवचन) ❖ मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

"ये तो सरे आम बैठ गये है, एक चिनगारी लेकर,
जो चाहे आकर अपने, दीप जलाकर ले जाए !

आज यह आत्मा सरेआम आ गई । इस आत्मा का जन्म जन्म कल्याणक के साथ हुआ है । तीर्थंकर की सत्ता उसी चिनगारी को लेकर सरेआम बैठ गई है । अब हर व्यक्ति अपने जीवन के बुझे दीपक जला सकता है । ससार मे कैसे जीना चाहिए यह इनके जीवन से सीख सकता है । अर्थात् ये सारी दुनियाँ के आदर्श बनकर जन्मे है ।

सारी दुनियाँ की मानवाकृतियाँ माता-पिता के रज और वीर्य से निर्मित होती है । तीर्थंकर जैसी महान् आत्मा का शरीर भी रज और वीर्य से बना है । लेकिन यह रज-वीर्य सस्कारित है । इसलिए सारी दुनियाँ का पथ-प्रदर्शक बनेगा इनका वचन, मन, काय -

"जाके जैसे नदिया-नारे उसई उके भरका
जाके जैसे बाप-मताई उसई उके लरका ।"

७५% पुत्रो पर माता-पिता के, कुल के सस्कार आते हैं । लोगो मे किवदती है कि कुन्द-कुन्द स्वामी की माँ जब दूध पिलाती थी तब कुन्दकुन्द को लोरी सुनाती थी कि "शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरजनोसि
यह लोरी का सस्कार था कि कुन्द-कुन्द इतने महान् अध्यात्मवादी बने । अत अपने बच्चो पर अच्छे सस्कार डालना चाहिए । बच्चो के सामने गदी हरकत नही करनी चाहिए । गन्दी बाते नहीं बोलना चाहिए । आपने देखा होगा कि बच्चे आँखो की टिमकार (झपकन) कम करते है, क्योंकि वह जिसे देखते है उसे वे एकाग्रता के साथ देखते है । आप कहते हो, बच्चा है, अज्ञानी है । लेकिन वह आपकी हर हरकत की वीडियो कैसिट बना रहा है । बड़ा होने पर उसी के अनुसार प्रवृत्ति करेगा, जैसा उदाहरण है कि एक दम्पत्ति ने अपने वृद्ध माता-पिता को टूटी-फूटी झोपड़ी मे रखा । उनका अपमान करते थे, और मिट्टी के बर्तनो मे रूखा-सूखा भोजन देते थे । एक बार वह मिट्टी के बर्तन टूट-फूट गये । तब उन दम्पति ने अपने छोटे पुत्र से कुम्हार के यहाँ से एक जोड़ी मिट्टी के बर्तन लाने को कहा । तो वह एक जोड़ी न लाकर दो जोड़ा लाया । उसके माता-पिता ने पूछा कि बेटा दो जोड़ी क्यो लाये हो । तो बच्चा बोला कि जब आप बूढ़े हो जायेगे तब तक बर्तन महँगे हो जायेगे । इसीलिए अभी से खरीद कर रख लिये है । जैसा आप दादा-दादी को खिला रहे हो, वैसा ही हम आपके वृद्ध हो जाने पर खिलायेगे । इससे यह सिद्ध होता है कि पुत्र माता-पिता के सस्कारो को अपने जीवन मे उतारने का प्रयास करता है ।

पुत्र को पैदा करना महान् कार्य नही है । लेकिन अपनी कोख से महान् पुत्र को जन्म देना महान्‌कार्य है । एक नीतिकार ने कहा है —

"नारिजने कै भक्त जन, कै दाता, कै शूर
नाहीं तो फिर बाँझ रह, मान्ती गाँवै नूर ।"

दम्पत्ति को अगर पुत्र उत्पन्न करना हो तो इस रज-वीर्य-रूपी कीचड़ मे मात्र तीन फूल खिलाना चाहिए या तो भक्त उत्पन्न करो या दाता उत्पन्न करो या फिर वीर उत्पन्न करो । अन्यथा बाँझ रहना ही उत्तम है । व्यर्थ मे अपने सौंदर्य को क्यो नष्ट करती हो । अर्थात् गाधारी के १०० पुत्रो की अपेक्षा कुती के ५ पुत्रो को जन्म देना सार्थक रहेगा ।

तीर्थंकर अपने माता-पिता की एक ही सन्तान होते है । इस सम्बन्ध मे भक्तामर पाठ मे आया है कि

"सौ-सौ नारी सौ-सौ सुत को जनती रहती सौ-सौ ठौर ।
तुमसे सुत को जनने वाली जनती रहती क्या है ओर ।।

तारागण को सर्व दिशाये धरे, नही कोई खाली ।
पूर्व दिशा ही पूर्ण प्रतापी दिनपति को जनने वाली ।।

'एक चन्द्र : तमो हन्ति'– अर्थात् संसारी सताने तारागण के समान अपना अस्तित्व कायम रखती हैं। जैसे तारागण चमकते तो हैं, प्रकाशति होते है, लेकिन प्रकाश नही देते । इसी प्रकार दुनियाँ की सन्ताने स्वय का जीवन ही जीती है । लेकिन सूर्य-चन्द्रमा के समान दूसरे को प्रकाश नही दे पाते । अर्थात् तीर्थंकर सूर्य-चन्द्रमा के समान है, जो स्वपर-प्रकाशी होते है । आज का यह जन्मा कल सारी दुनिया का पालक बनेगा । इस बालक की महिमा देखो कि जन्मते ही क्षायक सम्यक् दृष्टि सौधर्म इन्द्र परिवारसहित बालक की सेवा करने के लिए प्रस्तुत हो गया । अयोध्या नगरी की तीन परिक्रमा देकर नमस्कार करता है । फिर प्रसूतिका-गृह से शची द्वारा लाये हुए बालक के सौन्दर्य को देखने के लिए १००० नेत्र बनाकर देखता है । फिर ऐरावत हाथी पर बैठाकर मेरू पर्वत पर ले जाकर १००८ कलशो से अभिषेक करता है दुनियाँ के बालको के जन्म-दिन तो बहुत मनाये, लेकिन तीर्थंकर के जन्म-दिन मनाने का सौभाग्य मिला है । अपने आप को आप लोग सौभाग्यशाली समझे ।

जन्म के १० अतिशयो से सम्पन्न यह आत्मा है। तीर्थंकर जन्म से ही मल-मूत्र-पसीजा आदि नही करते। अर्थात् अहार तो करते है, लेकिन निहार नही करते है । अभिषेक के बाद वह इन्द्र बालक के १००८ लक्षणो मे से दाहिने पैर के अँगूठे पर जो लक्षण होता है, उसे चिन्ह घोषित कर बालक का नामकरण करता है । और बाद मे अयोध्या मे आकर नाभिराय के दरबार मे अभिषेक की खुशी मे ताण्डव नृत्य करता है । इस बालक के अभिषेख का जल सारे देवता लोग अपने माथे पर लगाते हैं, और अपने आपको धन्य मानते हैं । आज एक अद्भुत कल्याणकारी बालक का जन्म है, आओ सब मिलकर खुशियाँ मनाये ।

मुनि श्री १००८ श्री सुधासागर महाराज जी के जन्म कल्याणक के प्रवचन का सारांश •

गीत

सब मिल मनाये खुशियाँ, ललन माता को मिलेगे ।
जब प्रभु नगर माहि आवेगे नभ से रतन बरसेगे ।
तीन ज्ञानधारी जन्मेगे जग अज्ञान हरेगे । ललन माता को मिलेगे ।
प्रथम दरश इन्द्रानी करहे गोद मे मोद भरेगे ।
ललनाजी की छवि हरि देखन नेत्र हजार धरेगे ।
ऐरावत पर बैठा प्रभु को पाण्डुकवन मे चलेगे ।
एक हजार आठ कलशो मे ललना का न्हवन करेगे ।
पुन: सौंपकर माता-पिता को ताण्डव नृत्य करेगे ।
राज्यभोग्य वैभव त्यागेगे भेष दिगम्बर धरेगे ।
पाँच महाव्रत धारी होगे वन मे जाय बसेगे ।
चार घातिया नाश करेगे ज्ञान के दीप जलेगे ।
आठकरम को नाश प्रभुजी मोक्ष महल मे बसेगे ।

भाग्य पर नहीं बाहुबल पर जियो

(राज्य व्यवस्था पर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के प्रवचन का सारांश)

"वर्तना परिणाम क्रिया परत्वापरत्वा च कालश्च" आचार्य उमा स्वामी जी महाराज ने मोक्षशास्त्र मे यह सूत्र कहा है । इस सूत्र के अनुसार सारी सृष्टि यानि सारे द्रव्य स्थिरता को प्राप्त नही है परिवर्तन करते ही रहते हैं । द्रव्यक्षेत्र, काल, भव, भाव की अपेक्षा परिवर्तन इस सृष्टि मे चलता ही रहता है । यहाँ पर पाँच परिवर्तनो मे से काल-परिवर्तन प्रासगिक है । जम्बूद्वीप के भरतखण्ड मे छह कालो का निमित्त पाकर परिवर्तन चलता है । प्रथम तीन काल भोग-भूमि के माने जाते हैं (सुखमा-सुखमा, सुखमा, सुखमा-दुखमा)। इन तीनो कालो मे जीवो को षट्कर्म नही करने पड़ते। पुण्य के परिपाक-स्वरूप कल्पवृक्षो से प्राणियो को भोग-सामग्री उपलब्ध होती रहती है । लेकिन जैसे-जैसे दुखमा-सुखमा, दुखमा और दुखमा-दुखमा काल प्रारम्भ होते है तो व्यक्ति को अपनी भोग-सामग्री षटकर्म करके प्राप्त करनी पड़ती है, क्योंकि ये तीन काल कर्मभूमि के काल कहलाते है । इस नियत परिणति के कारण भोगभूमि का काल समाप्त हुआ, और कर्मभूमि का काल शुरू होना ही था कि पुण्य की हीनता के कारण कल्पवृक्षो ने भोग-सामग्री देना बन्द कर दिया । भोगी को भोग सामग्री न मिली तो वह व्यथित हो उठता है । अत चारो ओर त्राहि-त्राहि मच गयी । भाग्य ने सहारा देना छोड़ दिया, और कर्म करना जानते नही । जहाँ भाग्य और कर्म का अभाव हो जाता है वहाँ धर्म का भी अभाव हो जाता है । फिर अभाव मे समता-परिणाम धारण कराने वाला धर्म न होने से वे समता भी धारण न कर सके । धर्म-कर्म प्रतिकूलता को अनुकूलता मे बदल देता है अभाव को सद्भाव मे और, धर्म प्रतिकूलता मे साहस और समता का पाठ सिखाता है । उस समय न धर्म था, न कर्म। अत सारी प्रजा एकत्रित होकर अन्तिम कुलकर राजा नाभिराय के दरबार मे पहुँचती है, क्योकि यह नियम है कि भोगो को प्राप्त करने वालो के लिए राजा ही शरण देते है और धर्म को प्राप्त करने वाले के लिए पचपरमेष्ठी ही शरण होते हैं । नाभिराय के पास जाकर प्रजा करूण क्रन्दन मे कहती है त्राहि माँ, त्राहि माँ (रक्षा करो, रक्षा करो) । तब नाभिराय सात्वना देते हुए प्रजा से कहते है कि तुम मेरे पुत्र के पास जाओ । वह मुझसे अधिक ज्ञानी है । वह आपकी समस्या का निदान करेगा । बाप से बेटा सवाई होता है, यह युक्ति नाभिराय और राजकुमार ऋषभ देव मे घटित होती है । सारी प्रजा ऋषभ कुमार के पास पहुँचती है । समस्या को सुनने के बाद ऋषभकुमार ज्ञान के बलबूते पर जान लेते है कि कर्म-भूमि प्रारम्भ हो चुकी है । अत षट्कर्म करना पड़ेगे । अत षट्कर्म का उपदेश देते हुये कहते है कि अब आप लोग भाग्य पर न रहो, बाहुबल पर जीना स्वीकार करो षट्कर्म की विधि जिस प्रकार मै बताता हूँ, उस प्रकार षट्कर्म करो, और अपनी आजीविका यापन करो । पहला असिकर्म का उपदेश देते हुये कहा कि अपनी रक्षा करो । जीवन विनाश के लिए नही मिला । मनुष्य जीवन बड़ी दुर्लभता से मिलता है । अत आप लोग जीवन को सहार करने वाली शक्तियो को शस्त्र से भय दिखा कर अपनी रक्षा करो । अर्थात् क्षत्रियता का प्रतीक असि का उपदेश दिया ।

दूसरा उपदेश मसि का दिया कि अपने जीवन को कैसे व्यवस्थित करे, परस्पर मे व्यवहार कैसे करना चाहिए, क्योकि भोग-भूमि मे पति-पत्नि के अलावा कोई किसी से सम्बन्ध नही रखता था । अब कर्म-भूमि मे अन्य पड़ौसियो से भी मिलजुल कर रहना पड़ेगा । अर्थात् समाजवाद की व्यवस्था के लिये मसि का उपदेश दिया ।

[illegible]

तीसरे नम्बर पर कृषि का उपदेश दिया । जब रक्षा का कवच असि, व्यवस्था के समाजीकरण के लिए मसि का उपदेश दे दिया, तब तीसरे नम्बर आजीविका का साधन कृषि को बताया । आजीविका के साधन मे कृषि को प्रथम इसीलिए रखा कि इसमे भाव-हिसा कम है । इस बीसवी सदी के आदि आचार्य शातिसागर महाराज ने भी अपने कटनी चातुर्मास मे कहा था कि — "उत्तम खेती मध्यम वाग जघन चाकरी भीख निदान ।"

चौथे नम्बर पर वाणिज्य का उपदेश दिया । कृषि करने मे जो शारीरिक परिश्रम अधिक नही कर सकते वे व्यापार द्वारा अपनी आजीविका चलाये । वाणिज्य का अर्थ है एक दूसरे की आवश्यकताओं को एक-दूसरे स्थान से ले जाकर, वस्तुओं की पूर्ति करना ।

पाँचवा उपदेश विद्या का दिया । लौकिक ज्ञान की शिक्षा विद्या-कर्म के अन्तर्गत आती है । इस विद्या के अन्तर्गत उन्होने जनमानस को बहत्तर (७२) कलाओं का उपदेश दिया । यह विद्या सबसे पहले आदिनाथ ने अपनी पुत्रियो ब्राह्मी तथा सुन्दरी को सिखाई थी । अक्षर ब्राह्मी को और अक सुन्दरी को सिखाये थे । दाँयें हाथ से अक्षर और बाँये हाथ से अक विद्या सिखाई थी । इसलिए अक्षर बाहर की ओर से पढ़े जाते है, और अक विद्या बाँये हाथ से सिखाई थी इसलिए अक गणित इकाई दहाई उल्टे रूप से पढ़ी जाती है ।

छठवे नम्बर पर शिल्प का उपदेश दिया । जो दूसरो की सेवा करके अपनी आजीविका चलाये, सेवा के योग्य वस्तुओं का निर्माण करे, जैसे- जूता, धोबी का काम, नाई का काम, इस प्रकार स्वहस्त-क्रियाओं को करके पुण्यवानो की सेवा करना शिल्प के अन्तर्गत बतलाया गया था ।

इस प्रकार से षट्कर्म का उपदेश सुनकर प्रजा सन्तुष्ट हुयी । तभी नाभिराय ने सोचा कि हमारा पुत्र ऋषभकुमार प्रजा-पालन करने योग्य हो गया है । अत उन्होंने अपना राज्य ऋषभ कुमार को देने का सकल्प करते हुए राज्याभिषेक कर दिया, और अपने सिर पर मुकुट ऋषभ कुमार को पहना दिया । तब राजा ऋषभकुमार अपने राज्य की व्यवस्था का सचालन सुचारू रूप से करने लगे । उन्होने अपने राज्य की कानून-व्यवस्था के अन्तर्गत दण्ड देने की तीन विधियाँ बनायी । प्रथम गलती अथवा छोटी गलती पर "हाँ" कहकर के दण्डित करना । दूसरी गलती अथवा मध्यम गलती पर "मा" कहकर के दण्डित करना । तीसरी अथवा बड़ी गलती पर "धिक्कार" कहने पर दण्डित करना ।

इनकी दो रानियाँ थी—नन्दा और सुनन्दा । नदा के भरत आदि सौ पुत्र थे एव सुनन्दा के बाहुबली ब्राह्मी एव सुन्दरी नामक दो पुत्रियाँ थी । इस प्रकार, राजयोग मे रहते हुये राजसमाज की व्यवस्था समीचीन रूप से करते रहे । एक दिन सौधर्म इन्द्र ने सोचा कि आदिनाथ की उम्र अब कम बची हुयी है, और यह कर्म प्रवर्तन मे ही प्रवृत्त हैं । तब उसने एक ऐसी नृत्यागना नीलांजना को भेजा, जिसकी उम्र थोड़ी रह गयी थी। वह राजा ऋषभदेव के दरबार मे नृत्य करते-करते मृत्यु को प्राप्त हो गयी । राजा ऋषभदेव अवधिज्ञानी तो थे ही । सारे रहस्य को जानकर वैराग्य को प्राप्त हो गये । बारह भावना का चितन करने लगे ।

लौकान्तिक देव इनकी उन बारह भावनाओं की चिन्तन-धारा का अनुमोदन एव समर्थन करने हेतु अयोध्यापुरी मे आ गये । तभी राजा ऋषभदेव वैरागित हो पालकी में विराजकर जैनेश्वरी दीक्षा लेने के लिए वनवास की ओर प्रस्थान कर गये ।

वन प्रयाण

(दीक्षा कल्याणक पर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के प्रवचन का सारांश)

आज दीक्षा कल्याणक है । आज आत्मा ने एक ऐसे रास्ते को ग्रहण कर लिया है जो रास्ता ८४ लाख योनियो मे भटकने का साधन रूक जाता है । सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र का आधारभूत, २८ मूलगुणो से युक्त यह दिगम्बरत्व धारण कर लिया है, और समस्त परिग्रहो से रहित होकर ससारी प्राणियो के लिए सूचना दे रहे है कि बिना मुनि-मुद्रा को धारण किये हम तीर्थंकरो जैसो का भी कल्याण सम्भव नही है, फिर साधारण लोगो की बात तो दूर रही —

णवि सिज्झदि वत्थ धरो जइवि होई तित्थ्यरो ।
णग्गो विमोक्ख मग्गो सेसा उम्मग्गया होंति ।।

अर्थात् वस्त्र को धारण करने वाले तीर्थंकर भी सिद्धि को प्राप्त नही हुए है, क्योंकि मोक्षमार्ग नग्न-रूप है । दिगम्बरत्व के अलावा जितने भी मार्ग है वह सब उन्मार्ग है, खोटे मार्ग है ।

इस बात से यह सिद्ध होता है कि वस्त्र के साथ आत्मानुभूति की चर्चा करना, शुद्धोपयोग की उपलब्धि की बात करना, मात्र एक मृगमरीचका है । कल्पना है, थोथा अहकार मात्र है । पच इद्रियो के विषयो को भोगते-भोगते एव महलो मे रहते हुये भगवान आदिनाथ को ८३ लाख पूर्व हो गये, जो क्षणिक सम्यक्दृष्टि है, तीर्थंकर प्रकृति की सत्ता है, दो कल्याणक हो चुके हैं, मोक्ष जाना जिनका नियत है —लेकिन परिग्रह एव भोगो के विषयो को छोड़ बिना, अर्थात् मुनि बने बिना, कल्याण नही हुआ । भवन को छोड़ वनवास जाना मोक्षार्थी को नियामक है ।

सारे सस्कार नाभिराय एव मरूदवी ने तथा देव-देवियो ने डाले आदि कुमार पर, लेकिन दीक्षा के समय डाले जा रहे ४८ सस्कारो को वे नही डाल पाई माता-पिता मात्र शारीरिक ऊर्जा को पैदा कर सकते हैं, आत्मा की उन्नत शक्ति को नही ।

नाभिराय ससार-मार्ग के कुलकर थे, लेकिन ऋषभदेव मोक्षमार्ग के कुलकर थे । ससार-मार्ग का कुलकर परिग्रही होता है, और मोक्षमार्ग का कुलकर दिगम्बर होता है । आज ऐसे मोक्षमार्ग के कुलदीपक का जन्म हुआ है (दीक्षा हुई है), जो दिगम्बर होकर मोक्षमार्ग मे व्याप्त अधकार को दूर करेगा ।

प्रवचन सार चरित्र चूलिका मे कुन्द-कुन्द स्वामी कहते है —

हवदि व ण हवदि बन्धो मदम्मि जीवदकाय चे

जीव मरने पर बधन हो भी और नही भी, लेकिन परिग्रह का एक धागा भी है तो उसे निरन्तर नियम रूप से बध होता ही है । इसीलिये आज आदि कुमार ने परिग्रह का त्याग कर दिया है । यहाँ पर परिग्रह का भी विश्लेषण समझाते है । कुछ लोग कहते है मुनि-मुद्रा पूज्य वही है जो २४ प्रकार के परिग्रह से रहित हो । बन्धुओं, आज आदिकुमार ने दीक्षा ली, भाव-लिङ्गत्व को प्राप्त किया । लेकिन २४ प्रकार के परिग्रह का त्याग न करके मात्र १० बाह्य एवं १ आभ्यतर परिग्रह का त्याग किया है । अर्थात् ११ प्रकार के परिग्रह के त्याग करने पर भाव-लिङ्गत्व की प्राप्ति हो जाती है । २४ प्रकार के परिग्रह का त्याग तो मात्र ११वे एव १२वे गुण-स्थान मे प्राप्त होता है, और इन गुणस्थानो का समय अन्तर्मुहूर्त मात्र है । तीर्थंकर भी मुनि-दशा मे १३ प्रकार के परिग्रह सहित ही अहारचर्या करते है । चारो सज्ञाये, तीनो वेद, सज्वलन कषाय आदि मौजूद है, फिर भी पूज्यता के पद को प्राप्त हो गये हैं ।

जिसको कौन शरण है नाथ । पंच परमगुरु सदा सहाय ।
कौन तपस्वी भव दुख भरे । आतम अनुभव बिन तप करें ॥

कई लोग स्वाध्याय तो करते है, लेकिन अनर्थ को ग्रहण करने वाले कहते है कि ५ पाप एव परिग्रह आदि के साथ भी शुद्धोपयोग होता है । कहते है कि मोक्ष मार्ग सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र रूप है । दर्शन का अर्थ पदार्थों पर श्रद्धा, ज्ञान का अर्थ तत्व का निर्णय चरित्र का अर्थ अनुभूती यहाँ कहा जाता है कि २८ मूलगुण धारण करो, नग्न रहो, केश-लोच करो आदि-आदि क्रियाये कहाँ कही है, अत ये सब व्यर्थ है । ऐसा वही बन्धु कहते है जो श्वेताम्बर सम्प्रदाय मे जन्मे है, और दिगम्बर धर्म मे कच्ची शिक्षाये बिना गुरू के ले ली हैं ।

उन्हे इन तीर्थंकरो से शिक्षा लेनी चाहिए कि आज जो तीर्थंकर मुनि-दीक्षा ले रहे है, यह किसके अन्तर्गत आयेगी । ध्यान रहे, २८ मूलगुण चरित्र के आधार है । यहा कोई तीर्थंकर हुये बिना भी मोक्ष जाया जा सकता है । लेकिन मुनिव्रत धारण किये बिना नही जाया जा सकता है ।

२८ मूलगुण व्यवहार-मोक्षमार्ग हैं, तो सम्यकुचरित्र निश्चय मोक्षमार्ग है । सुरक्षा पहले किसकी ? इसे हम उदाहरण देकर के समझाते हैं कि—एक व्यक्ति सिर पर घड़ा रखे है घी का, और पैर स्लिप होने की सम्भावना है । तो वह घी को पकड़ेगा कि घड़े को ? तो इसका उत्तर यह है कि वह घड़े को सम्भालेगा, क्योंकि घड़े की रक्षा करने पर घी की रक्षा हो ही जायेगी । मुनि पद की रक्षा ही मोक्ष एव मोक्ष-मार्ग की रक्षा है ।

आज सब भावना भावे कि—

मेरे न चाह कछु ईश ।
रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश ।।

हमें मिथ्यात्व रूपी परिग्रह को छोड़ना पड़ेगा, यही जन्म मरण का कारण है । जन्म और मरण के बीच मे है "जरा" हमें इसका भी संहार करना है । भगवान ने जब इन तीनों को नहीं चाहा तो भक्त को भी इन तीनों को नहीं चाहना चाहिये । हमें तो मृत्युंजयी बनने की कोशिश करना चाहिये तो इस उद्देश्य को लेकर चलेगा, उसका रास्ता समीचीन बनता चला जायेगा । इस मिथ्यात्वरूपी परिग्रह को हमें गृहस्थाश्रम में ही छोड़ना है, बाकि परिग्रह तो बहुत जल्दी अपने आप छूट जायेंगे ।

भक्ति के भूखे थे - आदिनाथ

(भगवान की आहारचर्या के दिन का प्रवचन)

मुनि श्री सुधासागर जी

दीक्षा कल्याणक के उत्तरार्द्ध के प्रसग मे आज प्रवचन होगा । तीर्थंकर आदिनाथ दीक्षा लेकर वन की ओर चले गये आत्म-कल्याण करने के लिए । लेकिन यह क्या, आज वन से नगर की ओर लौट रहे हैं आहार लेने के लिए । ठीक भी है । महान् आत्माये दूसरो का कल्याण किये बिना अपना कल्याण नही कर सकती । मोक्ष के सस्थापक मोक्ष-मार्ग की स्थापना किये बिना मोक्ष नही जा सकत । जो महान् आत्माये है, वे दुनियाँ की हर समस्याओं को प्रायोगिक रूप मे सुलझा कर ही स्वतन्त्र हो सकती है । ये दुनिया बालक के समान है । बालक को 'अ'-अनार का समझाने के लिए मास्टर को भी ब्लैक बोर्ड पर अ-अनार का लिखना पड़ता है । तीर्थंकर आदिनाथ इस युग के लिए मास्टर थे । आगम का यह वचन है कि तीर्थंकर एक अन्तर्मुहुर्त मे केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त नही कर सकते, नियम से तीर्थकर को कम से कम वर्ष-पृथकत्व (तीन से नौ वर्ष तक) दुनिया के कल्याण के लिए उपदेश देना ही पड़ेगा ।

दूसरे जब असाता कर्म का विचित्रता देखते है तो आश्चर्य होता है कि इस क्षुधा-परिषह के घेरे मे आदिनाथ-जैसी पवित्र आत्माये भी आ गयी, यहाँ एक बात स्पष्ट करना चाहूँगा । जब तीर्थकर का अकाल मरण नही हो सकता तब वे जन्म से भोजन क्यो करते है, क्या आवश्यकता है ? इसका उत्तर मेरी दृष्टि से यह है कि अकाल मरण का अर्थ यह नही कि छद्मस्थ अवस्था मे वह भोजन न करे, तो भी उनका शरीर टिका रहेगा, बल्कि शरीर का सरक्षण-सवर्धन अन्न के द्वारा ही होता है, इसीलिए अन्न उन्हे ग्रहण करना ही होगा।

कई लोग इस आहार की क्रिया को पुण्य की क्रिया मानते है, और मैं कहता हूँ कि यह क्रिया मोक्ष की क्रिया है । शरीर गाड़ी है, आत्मा ड्राइवर, और आहार पेट्रोल है । यदि आहार-दान की क्रिया आदिनाथ ने न बतायी होती तो आज मोक्ष मार्ग का लोप हो गया होता । मात्र चौबीस तीर्थंकर ही मोक्ष जा पाते, और कोई आत्मा इस मुनि-धर्म को स्वीकार नही कर पाती । आज तक जो मुनि परम्परा चल रही है वह विच्छिन्न हो गयी होती ।

दूसरी बात यह है कि कुछ लोग कहते है कि आदिनाथ के अतराय कर्म का उदय था । लेकिन मै कहता हूँ श्रावको के दानातराय कर्म का उदय था । आप लोग नवधा भक्ति भूल गये थे, इसीलिए आदिनाथ आहार नही ले रहे थे । रहस्य की बात तो देखो की तीर्थकर आदिनाथ को आहार तो मिल रहा है, लेकिन भक्ति नही मिल रही है । महान् आत्माये आहार की भूखी नही होती, बल्कि भक्ति और सम्मान की भूखी होती है । यदि सम्मान के साथ रूखा-सूखा भोजन दिया जाये तो वह भी अमृत के समान प्रतीत होता है, और यदि बिना सम्मान के षट्रस भोजन दिया जाये तो वह जहर के समान प्रतीत होता है । यह भारतीय सस्कृति है । आज बफे-सिस्टम चल रहा है, जो भारतीय सस्कृति के विरूद्ध है । अपने हाथ से उठाकर खाना, यह तो म्लेच्छ पद्धति है । जब आज भी भारतीय घरो मे बिना कहे और बिना परोसे भोजन नही करते है, तब दूसरे के घर मे अपने हाथ से उठाकर कैसे खा सकते है ।

इस प्रकार से, आहार देने की और लेने की पात्र और दाता के बीच की क्या विधि होनी चाहिए यह

[illegible]

नवधा भक्तिपूर्वक बतायी थी । पद्मनन्दि पचविशति मे राजा श्रेयास को दान का प्रवर्त्तक कहा है । यदि आहार-दान की यह प्रक्रिया पहले से चलती होती तो आदिनाथ के समय से दीक्षित चार हजार साधु भ्रष्ट नही हुये होते । धन्य हैं राजा श्रेयास, जिनकी दान की परम्परा के कारण आज भी मुनि-धर्म स्थिरता को प्राप्त है ।

जीयाज्जिनो जगति नाभिनरेन्द्रसूनु श्रेयो नृपश्च कुल्योत्रग्रहप्रदीप ।
याभ्या बभूवतुरहि व्रतदानतीर्थे सारक्रमे परमधर्मरथस्य चक्रे ।

इस प्रकार आचार्यों ने दान-तीर्थ के प्रवर्तक राजा श्रेयास और धर्म-तीर्थ के प्रवर्तक आदिनाथ को कहा। कार्तिकेय स्वामी एव गुणभद्र आचार्य महाराज ने कहा है कि जो श्रावक नवधा भक्ति पूर्वक साधु को आहार-दान देता है, वह साधु को बारह तप दे रहा है, ऐसा मानना चाहिए । वस्तुत यथार्थ भी है कि श्रावक द्वारा दिये गये आहार से ही साधु छ आवश्यक 28 मूलगुण, तपश्चरण आदि क्रियाओं को करने की शक्ति अर्जित करते है । पचम काल मे यह शरीर अन्न का कीड़ा है । यदि आहार की विधि एव विधिवत् क्रिया आज तक न चली आ रही होती, तब कुन्द-कुन्द एव समन्तभद्र आचार्य जैसे साधुता को ग्रहण नही कर पाते, और उनके अभाव मे मोक्ष-मार्ग आज समाप्त हो गया होता । लोग आज कहते है कि मुनि-धर्म शिथिलाचारी हो गया है, और मैं कहता हूँ कि श्रावकधर्म शिथिलाचारी हो क्या, अनाचारता को प्राप्त हो गया है ।

आज के दिन राजा श्रेयास के यहाँ आदिनाथ का आहार देख कर चक्रवर्ती अपनी भूल को स्वीकार करता है, और कहा है कि मैं अपनी नवधा भक्ति से विस्मृत हो गया, इसीलिए आदिनाथ को छ माह तक निराहार रहना पड़ा । ज्ञानी व्यक्ति अपनी ही भूल स्वीकार करता है । चक्रवर्तियो ने यह नही कहा कि आदिनाथ के अन्तराय कर्म का उदय था, हम क्या करें । बल्कि अपनी भूल स्वीकार की, और अक्षय तृतीया के दिन यह नियम लिया कि मैं जब तक, गृहस्थ धर्म मे रहूँगा, तब तक प्रतिदिन साधु पड़गाहन के लिए अपने द्वार पर आतिथ्य करूँगा । कही अब पुन यह नवधा भक्ति विस्मृत न हो जाये, इसीलिए इसका अभ्यास करता रहूँगा । इस प्रकार वह चक्रवर्ती प्रतिदिन चार बजे उठकर सामायिक करता, तदुपरान्त स्नान आदि से निवृत्त हो धोती-दुपट्टा पहन कर, धुली हुई अष्ट द्रव्य से पूजन करता, इसके पश्चात् साधु-आहार-क्रिया के समय द्वारे पर पड़गाहन करने के लिए खड़ा होता । इस प्रकार मुनि-आहार-चर्या की विधि पूर्ण कर, स्वय आहार कर, तदुपरान्त छ खण्डो की राज्य-व्यवस्था को सम्हालाता है । यह है श्रावक का कर्त्तव्य, श्रावक का धर्म ।

नव गजरथ महोत्सव
२२-१२-६३, ललितपुर

जाकिट में पाकिट न हो

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

रत्नत्रय ?
यानी
महावीर के तीन रत्न
जो
बड़े मंहगे
और बडे सस्ते है
पर
ले सकेगा
जिसकी
जाकिट में/पाकिट न हो
और
वही/इन/तीनो को जोड़ सकेगा
लाकर/रख सकेगा
जिसकी तिजोडी मे
लाकर न हो
कपार न हो
क्योंकि वो
मुक्त/मुकता
मुफ्त मिलते है ।
पर किसी रहमा पुरुष को नहीं
महावीर को मिलते है

ललितपुर नव (९) गजरथ महोत्सव की विस्तृत आख्या

वर्षों की साधना आराधना एव प्रतीक्षा के उपरान्त अध्यात्मिक सत देवगढ़ जीर्णोद्धारक मुनि श्री सुधासागर जी महाराज एव क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर एव क्षुल्लक श्री धैर्य सागर जी महाराज का चातुर्मास हमारी नगरी ललितपुर को महान पुण्य के उदय से प्राप्त हुआ । चातुर्मास मे अनेक प्रभावनात्मक कार्य हुये, जिसका व्यौरा आपको एक पृथक् लेख मे दिया जा रहा है । इस चातुर्मास के दौरान सकल दिगम्बर जैन समाज द्वारा श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अटा मन्दिर मे चौबीसी की स्थापना का सकल्प १६००-६१ सन् मे किया गया था । दो साल से तो प्रतिमाये भी लाकर रखी गयी थी । लेकिन मूलत दिगम्बर जैन पचायत एव उसके मुख्य पदाधिकारियो (जैसे श्री अटा मन्दिर प्रवन्धक श्री शीलचन्द अनौरा, श्री रमेश चन्द नजा, पचायत अध्यक्ष श्री ज्ञानचद इमलिया, मत्री श्री कुशल चद वकील सालिल नजा आदि) का यह सकल्प था । कि जब तक पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का सानिध्य उपलब्ध नही होगा तब तक हम पचकल्याणक नही करेगे, चाहे कितने ही वर्षों प्रतिमाये अप्रतिष्ठित रखी रहे । इस सकल्प रूप दृढ़ प्रतिज्ञा को सजोये हुये ये पदाधिकारी बैठे थे । उनको विश्वास था कि मुनिश्री एक न एक दिन अवश्य आयेगे । यही आशाओं की किरणे इन कार्यकर्ताओं के अन्दर थी, और इनके 'राम' भी इनकी भक्ति रूपी डोर मे बधे चले आये चर्तुमास की स्थापना ललितपुर मे की गई । इसी चातुर्मास मे भगवानो की प्रतिष्ठा करने का विचार समाज ने रखा; साथ में यह भी आग्रह किया गया कि इस चौबीसी की प्रतिष्ठा ऐतिहासिक प्रभावना के साथ सम्पन्न कराना चाहते हैं।

अत पंचकल्याणकर के साथ-साथ 9 गजरथो के द्वारा परिक्रमा लगाकर महती प्रभावना करने की भावना है । महाराज ने अपनी मंद मुस्कान के साथ अमृतमयी वाणी से कहा कि जैन धर्म प्रभावना जितनी करो, उतनी कम है । आप लोगो ने जो विचार किया वह उत्तम है । कार्य महान् है और बड़ा है । और, वर्तमान में आपके प्रदेश में कोई सरकार नही है । राष्ट्रपति शासन चल रहा है । इसलिए बहुत कठिनाई अनुभव होगी । दान दातो को उदारता, का परिचय देना होगा । लेकिन आप लोगो की भक्ति भावना और गुरुओं के प्रति आस्था तथा लगन को देखते हुये मुझे विश्वास है कि आप अपने कार्यक्रम मे सफलता अवश्य हासिल करेगे । मेरी यही भावना है, यही आशीर्वाद है।

आशीर्वाद मिलते ही सारी जनता ने हर्ष ध्वनि के साथ जय-जयकार किया एव नव गजरथ महोत्सव की महती प्रभावना की कल्पना करने लगे । नगर-नगर डगर-डगर घर-घर मे अबाल वृद्ध मे चर्चा होने लगी । इन्द्र-इन्द्राणी बनने के लिये पति-पत्नी एक दूसरे को प्रेरित करने लगे । मुख्य इन्द्रो का कहना था कि राशि तो हाथ का मैल है । हमे तो मुनि श्री (सुधासागर) का आशीर्वाद चाहिये । सभी मुख्य पात्र एक माह पूर्व ही निश्चित हो गये । सौधर्म इन्द्र आदि सभी मुख्य पात्रों की घोषित राशि सर्वाधिक रही । आज तक इस भारत वर्ष में सैकडो सालो मे भी इतनी अधिक राशि की बोलिया नहीं लगायी गई । लगभग ४०० इन्द्र-इन्द्राणियो की लिस्ट थोडे ही समय में आ गई । समाज में इतना अधिक उत्साह था कि जल्दी ही कमेटी की "हाउस फुल" की घोषणा करनी पडी । ९ रथ

होते हुये भी इन्द्रो की संख्या इतनी अधिक हो गयी कि वे ९ रथ भी कम पड गयें ।

इस प्रकार यह उत्साह चातुर्मास मे बढता ही चला गया, और दीपावली के बैद २-११-९३ को प्रति छाचार्य पाडित शिखर चद जी भिन्ड द्वारा वेदी व मेला-स्थल की भूमि-शुद्धि की गयी । लगभग ५० एकड़ का यह मैदान मेला स्थल के लिये घोषित किया गया । यह मेलास्थल झासी रोड पर नवीन गल्ला मडी के सामने स्थित है । सम्पूर्ण मेलास्थल की सफाई सजावट आदि की व्यवस्था मे सारी कमेटी इसी दिन से लग गयी । नव (९) गजरथ महोत्सव की स्टेज को बनाने मे पूर्ण सहयोग वुन्देला-बन्धु ललितपुर का रहा, जिनके डम्फरो ने दो दिन के अन्दर स्टेज भरकर तैयार कर दी । स्टेज एव पाण्डाल की सजावट मे लगभग २लाख रुपयो मे एक ऐसा आकर्षण का केन्द्र बना कि सारी समाज उसे अयोध्यापुरी कहने लगी और ऐसा लगने लगा जैसे अयोध्यापुरी मे भगवान के आने के पूर्व ही नाभिराय का महल देवो द्वारा सजाया गया हो । पाण्डाल ४००×५०० मीटर का बनाया गया था, जिसका आकर्षण भी अपने आप मे अद्भुत था । आवास-व्यवस्था हेतु लगभग २००० टेन्ट लगाये गये। सारा मेला-प्रागण लाईट के डेकोरेट से सजाया गया। मेला-स्थल को ही नही सजाया गया बल्कि सारे नगर ललितपुर को ७दिन पहले से ही दुल्हन की तरह सजाया गया । घर-घर दरवाजो पर गेट वनाये गये, वदन वार बाँधे गये । झडिया लगाई गयी । सीरिज लाइट से डेकोरेट किया गया । प्रत्येक घर की छत पर स्वस्तिक वनी हुयी केसरिया रग की बड़ी-वड़ी हजारो ध्वजाये फहराती हुयी ऐसी प्रतीत होती थी जैसे मानो ललितपुर के प्रत्येक घर इन्द्रो के विमान वन गये हों नगर के समस्त मन्दिरों का पचायत द्वारा यडे सुन्दर ढग से डेकोरेट किया गया । श्री अटा मन्दिर का चौबीसी होल इस ढग से सजाया गया कमलासीन कि चौबीस तीर्थ करो की वेदियो पर समवशरण के मध्य जैसे कमलासीन साक्षात् तीर्थंकर बैठे हो। भगवान अष्ट प्रतिहार्यों से सुशोभित हो रहे थे । अर्थात् सारे चौबीसी-हैंल को समवशरण का रुप दिया गया । इस प्रकार चारो ओर चतुर्थ काल के कुबेर द्वारा रचित अयोध्या नगरी का जो वर्णन शास्त्रो मे मिलता है वही रुप इस ललितपुर नगरी ने धारण कर लिया । इस कार्यक्रम के प्रारभ मे कुछ परेशानिया महसूस हुयी क्योंकि उ प्र मे राष्ट्रपति शासन होने से प्रशासनिक व्यवस्थाये उपलब्ध नही हो पा रही थी । लेकिन बाद मे नई सरकार बनी, जिसके मुख्यमत्री सम्मान्य मुलायम सिह जी यादव बने । उनके पास जव एक डेयूटशन उत्तम सिह चौहान के नेतृत्व मे इस महोत्सव की आमत्रण-पत्रिका लेकर पँहुचा तव माननीय मुख्यमत्री महोदय पत्रिका को देखकर गद् गद् हो गये, और तुरन्त डी एम साहब ललितपुर को फोन करके कहा कि इस विश्वशान्ति के महायज्ञ मे प्रशासन की और से कोई कमी न रखी जाये । बस, माननीय मुख्यमत्री के थोड़े से सकेत से सारा प्रशासन इस महोत्तव की सुरक्षा एव व्यवस्था मे जुट गया । इस प्रकार समस्त अनुकुलताओ के परियेश मे दिनाक १५-१२-९३ को माननीय मुख्यमत्री द्वारा मवोनीत श्री उत्तम सिह चौहान ने लगभग १०-१५ हजार जन समुदाय की उपस्थिति में पूज्य गुरुवर की सान्निध्यता की छाया मे ध्वजा रोहण किया गया । ध्वजा रोहण के लिये ध्वजा मे बाँधे गये पुष्प ध्वजारोहण के बाद पूर्व दिशा मे गिरे । इस निमित्त को देखकर समस्त जन मानस मे हर्ष छा गया, क्योकि ध्वजा मे बाँधे गये फूल यदि ध्वजारोहण के वाद पूर्व दिशा में गिरे

तो समझना चाहिये कि कार्यक्रम सानंद सम्पन्न होगा । प्रतिष्ठा-शास्त्रो के अनुसार ध्वजा रोहण की सम्पूर्ण विधि सम्पन्न की गयी । तदुपरात ध्वजा रोहण का महत्व दर्शाते हुये मुनि श्री ने प्रजातत्र एव राजतत्र को ऐसे कार्यक्रमो मे आस्था एव व्यवस्था किस प्रकार की करनी चाहिये, इसके सबध में ऐतिहासिक राजतत्र एव प्रजातत्रो के उदाहरण देकर समझाया । (ध्वजा रोहण के महत्व का प्रवचन आपको पढ़ने हेतु पृथक् से प्रकाशित किया जायेगा । यह प्रवचन वर्तमान परिवेश मे बड़ा मार्मिक और महत्व पूर्ण है ।)

इस प्रकार से मेले की पूर्व-तैयारियाँ एव ध्वजा रोहण तक के सक्षिप्त कार्यक्रम आपकी जानकारी हेतु लिपिवृद्ध किया गया ।

घट-यात्रा का विशाल जलूस १६-१२-६३

ध्वजारोहण के उपरान्त दूसरे दिन अटा मन्दिर की चौबीसी मे ८१ मगल कलशो द्वारा ८१ मन्त्रो द्वारा एव ८१ सौभाग्यवती महिलाओं द्वारा वेदी-शुद्धि की गई । १६-१२-६३ को घट-यात्रा जलूस १००८कलशो द्वारा निकाला गया जो ललितपुर के इतिहास के पृष्ठो पर स्वरणाक्षरो से अकित हो गया । नगर घट-यात्रा मे दो वृषभ-रथ सहित तीन विमान जी मे जिनन्द्र देव की महिमा एव गरिमा के साथ मेला स्थल पर ले जाया गया । वहाँ पर मुनिश्री सुधासागर जी का प्रवचन हुआ । जनता के द्वारा निकाली गई घट-यात्रा की महिमा एव नव गजरथ महोत्सव के प्रति ललितपुर जनपत वासियो के उत्साह को प्रोत्साहित किया । मुनि श्री ने अपने प्रवचनों में कहा कि जिस प्रकार स्वांति नक्षत्र की बूँद को पान करने के लिये पपीहा इन्तजार करता रहता है, उसी प्रकार ललितपुर वासी चौबीसी प्रतिष्ठा महोत्सव का आनन्द पान करने के लिए इन्तजार कर रहे थे । और जैसे पपीहे को सारे बरसात का पानी निरर्थक होता हैं, अर्थात् उसकी प्यास बुझाने में कारण नहीं होता, उसी प्रकार ललितपुर वासियो का सकल्प था कि जब तक मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चातुर्मास का सान्निध्य नहीं मिलेगा, तब तक हम पचकल्याणक कार्यक्रम नहीं करेगे । यह संकल्प समाज ने लगभग ३ साल पूर्व किया था यहा के जनपदवासी सबनी के राम के समान, मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का तीन साल तक निरन्तर इन्तजार करते रहे । आज ललितपुर वालो के राम ४ महीनों से चातुर्मास की स्थापना कर अपने प्रवचनो द्वारा अपने भक्तो की बगिया का सिचन कर रहे थे। जिस उद्देश्य से ललितपुर वासी अपने राम का इन्तजार कर रहे थे, व उद्देश्य भी अब पूर्ण होना प्रारम्भ हो गया।

महाराज श्री ने अपने प्रवचन में एक छोटी-सी कथा सुनाते हुऐ कहा कि एक व्यक्ति १२साल के अकाल की अवधि मे भी प्रतिदिन खेत पर जाकर खुशी से घास खोदता था । लोग उसे पागल कहते थे, कि खेत में घास है ही नही, फिर यह क्या खोदता है ? क्यो खोदता हैं ? एक दिन सारे गाँव वालो ने उससे पूछा कि आप ऐसा क्यो करते हो । घास के अभाव मे खुरपी क्यो चलाते हो ? तो वह बोला कि १२ साल बाद जब पानी बरसेगा घास उगेगी तब तक मैं घास खोदना न भूल जाऊँ, इसलिए मैं प्रतिदिन जागरुकता के साथ अभ्यास करता रहता हूँ । इसकी लगन की चर्चा मेघदेव के पास पहुँची तो उसने सोचा कि देखो एक मानव कितना पुरुषार्थ शील हैं । और यह सोचते हुए मेघ देवता कहते हैं कि देखो इसको भय है कि मैं घास खोदना न भूल जाऊँ, इसी प्रकार मैं १२ वर्ष के अकाल के बाद पानी बरसाना न भूल जाऊँ ? इसलिए वह पारी बरसा देता हैं ।

उसी प्रकार ललितपुर वासी हमारे पास न जाने कितने बार आये होगे, गिनती नही बता सकता । और बार-बार आने का कारण यही था कि हम लोग अपने गुरु महाराज के अभाव मे गुरु की विनय करना न भूल जाये । तब मैने सोचा कि कही मै इन भक्तो के ऊपर कृपा करना न भूल जाऊँ, इसलिए मैने इस वर्ष पंचकल्यामक करने के लिये आशीर्वाद दे दिया। इस प्रकार घटयात्रा का कार्यक्रम समाप्त हुआ १७-१२-९३ को वेदी पर सजावट का कार्य एव यज्ञ मण्डल विधान का मॉडल बड़े सुन्दर ढग से बनाया गया । पाण्डाल को लगभग पाँच लाख रुपये से डेकारेशन लाइट से सजाया गया । स्टेज का पाण्डाल एव मुख्य पाण्डाल बगाली चुन्नट से सजाया गया, जो श्रावको के मन को मोह रहा था इसी दिन के प्रवचन मे मुनि श्री ने कह कि इतने बड़े कार्यक्रम को करने के लिए सबको सगठित होने की आवश्यकता है, और सभी को अपने व्यापार-धधे ५ दिन छोड़कर धार्मिक प्रभावना मे सहभागी बनना चाहिये। मुनि श्री के इस निर्देश को सारी समाज ने सिर-माथे लिया यहललितपुर की ऐतिहासिक घटना थी कि ५ दिन तक लगातार जैन समाज के समस्त व्यापारिक कार्य बद रहे, बाजार वन्द रहा ।

नवीन गल्लवा मण्डी १ दिन के लिए वन्द कर दी गई । प्रशासन के द्वारा समस्त शैक्षणिक सस्थाओं की छैमाही के पेपर जो इन दिनो पड़ रहे थे वे श्री जिलाधिकारी महोदय एव शिक्षाधिकारी महोदय के आदेश से, इस कार्यक्रम के लगभग ७ दिन बाद के लिए, स्थगित कर गये । समस्त प्रशासनिक कार्यालयो की औपचारिक अवकाश की घोषणा इस उद्देश्य को ध्यान मे रखते हुए कर दी गयी कि कोई भी व्यक्ति इस ऐतिहासिक कार्यक्रम के आनन्द को लेने से वचित न रह जाय । इसी दिन महाराज श्री ने इस ललितपुर नगर को एव मेला-स्थल को 5दिन के लिए अयोध्या नगरी घोषित किया । तब सारे नगर वासी आयोध्या(ललितपुर) को इस प्रकार से सजाने लग गये, जैसे कुवेर तीर्थंकर के गर्भ मे आने के 6माह पूर्व से ही अयोध्या नगरी को सजाने लग जाता है ।

प्रत्येक घर के दरवाजे पर गेट बनाये गये । बदन बार बाँधे गये । अपनी-अपनी गलियो मे रग-विरगे डेकोरेशन किये गये । सारी नगरी दुल्हन की तरह सज गयी थी । इस नगर-सजावट मे जैन हिन्दू, सिक्ख, ईसाई, मुसलमान-सभी ने साम्प्रदायिक मतभेद भुलाकर के अपने-अपने दरवाजो को सजाया था । इस महोत्सव मे यह सबसे बड़ी विशेषता थी कि जैन-अजैन मे कोई भेद नही था ।

इस प्रकार १७-१२-९३ का दिन बीतने पर प्रात काल से ही गर्भ कल्याणक की पूर्व-क्रियाये सम्पन्न की गयी । इसी रात्रि में १६ स्वप्नो का दृश्य एक आधुनिक पद्धति से स्लाइड़ बनाकर दिखाया गया था । यह बड़ा आकर्षक एव सम्मोहक था । बस, इस दिन से जनसमुदाय दिन-दूना रात-चौगना बढ़ने लगा । लगभग १५०० स्वय सेवक मेला की सुरक्षा-व्यवस्था के लिए अपने दल के साथ आ गये, और २४ घण्टे मेले की सुरक्षा व्यवस्था मे लग गये । प्रशासन के द्वारा पुलिस व्यवस्था मे लगभग ४०० पुलिस कर्मी तैनात किये गये । इस पुलिस व्यवस्था को लगभग १२ पुलिस चौकियो मे विभाजित किया गया । P A C के लगभग २००-३०० जवान तैनात किये गये । पुलिस व्यवस्था के लिये अस्थायी मेला थाने की व्यवस्था की गयी।

चारों तरफ वायर लेस सेट, फायर बिग्रेट, आदि अन्य सुरक्षा-साधनो का प्रबन्ध पुलिस प्रशासन ने किया । इस सारी सुरक्षा-व्यवस्था का कुशल सचालन

एस पी साहब श्री वी के वाजपेयी जी, मेला-प्रभारी श्री शुक्ला जी, मेला-थाना-इचार्ज श्री यादव एव राय साहब आदि के नेतृत्व मे हुआ ।

जल-व्यवस्था के लिए इजी रोशन लाल जी जैन ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर सहयोग किया, और किसी प्रकार से जल सम्बन्धी समस्या नही आने दी । विघुत व्यवस्था भी पूर्ण अनुकूल रही १९-१२-८३ के प्रभात काल से ही गर्भ-कल्याणक की पूजन की गयी, एव मध्यान्त काल मे सामन्तनी-क्रिया (सादे) वड़े उत्साह के साथ की गयी । यह दृश्य वड़ा रोचक था । लगभग १० हजार महिलाओं ने सादो का दस्तूर वड़े उत्साह व लगन के साथ पूर्ण किया । उस समय महिलाओं की भक्ति माता के प्रति ऐसी प्रतीत होती थी जैसे साक्षात् माता मरुदेवी की ही सेवा कर रही हो।

१९-१२-९३ की रात्रि मे छप्पने एव अष्ट कुमारियो द्वारा माता की सेवा की गयी । इस गर्भ-कल्याणक के प्रसग को लेकर महाराज श्री का प्रवचन बहुत ही मार्मिक एव सवेदनशील हुआ । मुनि श्री ने अपने प्रवचने मे कहा कि इस गर्भ-कल्याणक से गर्भवती माताओं को शिक्षा लेनी चाहिए कि गर्भस्थ अवस्था मे शिशु को कैसे सस्कारित करना चाहिए । मुनि श्री ने कहा कि गर्भधारिणी माता को संक्लेषित नही होना चाहिये रोना नहीं चाहिये । क्रोध नही करना चाहिए, तीखे पदार्थों का सेवन नही करना चाहिए तथा भाण्ड वचन नही बोलना चाहिए, क्योंकि माता के परिणामो का प्रभाव गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है । इस प्रभाव को एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट किया गया कि जब महाभारत में अर्जुन अपनी गर्भस्थ पत्नी सुभद्रा को चक्रव्यूह की रचना सुना रहे थे, उस समय सुभद्रा थोडी देर के लिए प्रमादवश सो जाती है । तो इसका परिणाम यह निकला कि जब उनका पुत्र अभिमन्यु होत हैं, और जब बाद में युद्ध में जाता है, तब वह चक्रव्यूह से निकलना भूल जाता है परिणाम स्वरुप अभिमन्यु को अपने प्राणो से हाथ धोना पड़ा था । मुनि श्री ने अपने प्रवचनों में यह भी बताया कि गर्भ धारण की क्रिया महापुराण से सीखनी चाहिये ।

गर्भ-धारण करने के पूर्व दम्पत्ती को किस किस प्रकार के धर्म के अनुष्ठान करने चाहिए एव गर्भाधान करते अथवा कराते समय किस प्रकार के पवित्र परिणाम रखने चाहिये-इन सब का वर्णन जिनसेन आचार्य ने महापुराण मे किया हैं । गर्भस्थ माता को उपन्यास, T V आदि नही देखना चाहिए । मुनि श्री ने अपने प्रवचनो मे कहा कि गर्भपात जैसे दुष्कृत्य को प्रोत्साहित किया जा रहा है । न जाने गर्भ मे कौन-सी महान् आत्मा आयी हो । और तुम उसे मार देते हो जो तुम्हारी शरण पाने आया । उसे तुम अपनी वासना की पूर्ति के लिए गर्भपात कराकर समाप्त करा देते हो । इस प्रकार अनेक दार्शनिक दृष्टियो से गर्भ कल्याणक की महिमा बतायी ।

२०-१२-९३ के प्रभात होते ही भगवान का जन्म हुआ । सारे नगर मे बधाइयां बजनी शुरु हो गयी । मगल-गीत गाये जाने लगे । इस दिन मेला-प्रागण में लगभग ३५-५० कुण्टल मिठाई वितरित की गयी । तदुपरान्त ऐरावत हाथी पर सवार होकर अयोध्या नगरी की तीन प्रदक्षिणाये देते हुये माता मरुदेवी के महल में इन्द्राणी द्वारा प्रसूतिका-गृह से बालक को लाकर इन्द्र को सोपना होता है । इन्द्र इस बालक को हजारों नेत्रों से देखने का प्रयास करता हैं । इस दृश्य को बड़े मोहक ढंग से प्रस्तुत किया गया ।

फिर बालक को ऐरावत हाथी पर सवार करके उसके पीछे ३१ हाथी, ३१ घोड़े, लगभग १५-२०

वाद्य, बैण्ड-बाजे ४-५ चाचड़ तथा गर्वा नृत्य करती हुयी बालिकाये, एक भव्य जुलूस-जिसमे लगभग एक लाख व्यक्ति सम्मिलित थे । यह जन्म कल्याणक का जुलूस ललितपुर की दृष्टि मे प्रथम ही था । लेकिन मेरी दृष्टि से तो भारत के सभी जन्म कल्याणको के जुलूसो से अधिक बड़ा एव प्रभावक था । जुलूस नवीन गल्ला मण्डी से घण्टा घर, अटा मन्दिर, तालाव पुरा, तुबन, क्षेत्रपाल होता हुआ वर्णी कालेज के ३५ एकड़ के प्लाट मे (चादमारी पर) ऐसे फैल गया जैसे नदी समुद्र मे जाकर फैल जाती है । ३५ एकड़ के प्लाट मे इतना जन-सैलाब था कि कही भी पैर रखने की जगह नही थी । मात्र सिर ही सिर दिख रहे थे । २ घण्टे तक यह जन्माभिषेक १००८ कलशो द्वारा किया गया । रात्रि मे जन्मकल्याणक के प्रसग को लेकर सास्कृतिक कार्यक्रम हुआ । जन्म कल्याणक पर मुनि श्री ने कहा कि—

नारि जने कै भक्त जन कै दाता कै सूर

नाहीं तो फिर बांझ रह मती गमावै नूर ।।

और कहा कि समस्त सासारिक नारियो के पुत्र आकाश के तारागणो के समान प्रकाशित तो है, लेकिन प्रकाश दे नही सकते । मरुदेवी का पुत्र सूर्य के समान स्वय प्रकाशमान है, और दूसरो को भी प्रकाश देता हैं ।

२१-१२-८३ को प्रात काल मे भगवान की बाल क्रीडाये दिखायी गयी । राज गद्दी का वैभव दर्शाया गया । षटकर्मो (असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, विद्या, शिल्प,) का भयभीत जनता के लिये उपदेश दिया ।

राजा आदिनाथ की ब्रह्मी, सुन्दरी नामक दो पुत्रिया थी एक दिन राज सभा मे आकर पिता श्री को प्रणाम करके पूछती है कि आप से बडा इस भू-मण्डल मे कोई है ? उत्तर मे पिता जी कहते हैं कि-हे पुत्री, जब तेरी शादी होगी तब दामाद होगे । दोनो पुत्रियां हाथ जोड़ कर कहती हैं कि हे पिता श्री ऐसा नही होगा । हम दोनों आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत से रहूँगी । इसी दृश्य को दर्शाने वाली ललितपुर नगर की दो ब्राह्मी और सुन्दरी (डॉ. कु सीमा जैन दर्शनाचार्य, कु मीना एम.ए) ने, यथार्थ रुप मे मुनि श्री सुधासागर से आजीवन ब्राह्मचर्य व्रत लिया। इस दृश्य को देखकर सारा मेला प्रागण जय जय कार के नारो से गूंज उठा ।

८३ हजार वर्ष पूर्व राजयोगावस्था निकलने पर इन्द्र ने अपने चितवन से एक अति सुन्दर नीलाजना राज सभा मे भेजी । वह बड़े रोचक ढग से नृत्य गान कर रही थी । परन्तु इसी बीच मे नीलाजना की मृत्यु हो जाती है । राजा आदिनाथ को यह देखकर वैराग्य हो गया कि ससार असार है । और भारत वाहुवली को राज्य देकर दीक्षा के लिए वन की ओर चले गये। भगवान के ऊपर दीक्षा का संस्कार मुनि श्री सुधासागर जी महाराज द्वारा किया गया । ४८ सस्कारो को एक-एक करके सम्पन्न कराया गया जो प्रतिष्ठाचार्य द्वारा सस्कृत मे बोले जाते थे और मुनि श्री अपनी तीक्ष्ण वुद्धि से तुरन्त हिन्दी रूपान्तर करके जन-समुदाय को समझाते जाते थे । अभी पच कल्याणको मे इन सस्कारो को स्पष्ट नही किया जाता था । अन्त मे दीक्षा कल्याणक पर मुनि श्री का प्रवचन हुआ । प्रवचन का साराश यह था कि दिगम्बर मुद्रा धारण किये बिना तीर्थंकर भी सिद्धत्व को प्राप्त नही हो सके, तो अन्य जनमानस की बात तो बहुत दूर है एव आज डनलप के गद्दो पर बैठकर परिग्रह को ग्रहण करते हुए भी शुद्ध आत्मानुभव करते हैं, वह मात्र गधे के सीग के समान निराधार तथा निरर्थक हैं ।

२२-१२-८३ को प्रभात काल मे भगवान की आहार-चर्या का कार्यक्रम हुआ । राजा श्रेयांस के यहाँ भगवान का आहार हुआ । इस पच कल्याणक मे बनने वाले (श्री ज्ञानचन्द्र इमलिया) राजा श्रेयांस का

तीव्र पुण्य होने के कारण भगवान का आहार तो हुआ ही, एवं तदुपरान्त मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का पड़गाहन एवं आहार-चर्या इन्ही राजा श्रेयांस के यहाँ हुयी । यह दृश्य देएखकर मेले मे उपस्थित लाखो जनसमुदाय ने राजा श्रेयांस के पुण्य की सराहना की।

दोपहर में मुनि श्री विधि नायक को सूरि-मत्र देकर, मेला प्रागण से ३ कि मी। चलकर श्री अटा मन्दिर जी आकर चौबीसी मे सूरि-मंत्र दिया । तदुपरान्त क्षेत्रपाल जी मे भरत-बाहुबली, आदिनाथ तथा पार्श्वनाथ की प्रतिमा मे तथा भोयरे मे प्राचीन जीर्णोद्धारित प्रतिमाओं को सुरि-मत्र देकर लगभग १० कि मी की सफर तय करके लगभग ४ बजे मेलाप्रागण मे समवशरण मे जाकर विराजमान हुये । वहाँ अपने वक्तव्यो में ६ द्रव्यो ७ तत्वो का निरुपण गणधर परमेष्ठी के समान किया । इस पचकल्याणक मे समवशरण की रचना अनौखी थी । आज तक देके गये पचासो पचकल्याणको मे इस प्रकार का आकर्षक समवसरण नही बनाया गया । समवशरण को देखकर ऐसा लगता था कि साक्षात् कुबेर ने इसकी रचना की है । लगभग ५० हजार रुपया समवसरण के डेकोरेशने मे खर्च किया गया । इसी समवशरण मे प्रवचन के दौरान अनूप जलोटा द्वारा सुन्दर भजन हुये । इस दिन क्षुल्लक गम्भीर सागर जी ने नव (९) गजरथ महोत्सव के ९ के अक को लेकर के गणितीय पद्धति से अपना ओजस्वी एव तर्क पूर्ण व्याख्यान दिया । क्षुल्लक धैर्य सागर जी ने भी समवशरण की रचना पर अपना व्याख्यान दिया । रात्रि में बम्बई से पधारे हुए प्रसिद्ध गायक अनूप जलोटा का जैन भजन सध्या के रुप मे लगभग दो-ढाई घटे सगीत मय भजन का कार्यक्रम हुया । इस कार्यक्रम मे लगभग ४-५ लाख का जनसमूह जैन भजन सुने के लिए उमड़ रहा था। इस कार्यक्रम के लिए पुलिस प्रशासन की ओर से विशेष व्यवस्था की गयी थी ।

१८ तारीख से ही प्रति रात्रि मे यथोयोग्य समयानुकूल ब्र सजय भैय्या, ब्र जिनेश जी, विदुषी ब्र. बहिन विमलेश दीदी, विदुषी बहिन पुष्पादीदी, विदुषी बहिन गीता दीदी के प्रत्येक कल्याणक पर मार्मिक एव हृदय ग्राही प्रवचने हुये ।

२३-१२-९३ को प्रभात काल होते ही चारों तरफ का वातावरण एक विशेष आकर्षण को लिये था । वेदी पर कैलाश पर्वत की बड़ी सुन्दर रचना की गयी थी जिस पर्वत पर आदिनाथ जी ने बैठकर, ध्यान रुढ़ होकर सिद्धत्व को प्राप्त किया । इस समय लगभग ४-५ लाख जनता का अपार जन समुह उपस्थित था। भगवान को मोक्ष होने के बाद भगवान के नख और केशों का अग्नि कुमार के द्वारा अग्नि सस्कार किया गया । तदुपरान्त गजरथ की तैयारिया शुरु हो गयी। नव (९) गजरथ की पूजा प्रतिष्ठाचार्य द्वारा की गयी। पूजा के उपरान्त ध्वजाओं की बोली चँवरो की बोली सारथियो की बोली लगाई गयी । इस समय जन समुदाय ने इतने उत्साह से बोली लगायी की बोलिया लाखो रुपयो मे सम्पन्न हुयी ।

सुबह आठ बजे से हाथियो का रथो मे जोतना शुरु हो गया । हाथियो को श्रृगारा गया । केशरिया कपडे हाथियो पर डाले गये । इन्द्र परिकर सजकर के श्री जी को रथ मे लेकर बैठ गयो । इस प्रकार ९ रथ सजकर तैयार होकर खडे हुये। रथो के आगे १०८ सफेद ध्वज लिए तथा सफेद वस्त्र पहिने बहिने चल रही थी । उसके आगे ब्र बहिने थी । उसके आगे मुनि श्री सुधासागर जी सघ सहित थे । उनके आगे नामदा का बैन्ड संगीत मय द्विव्य घोष कर रहा था । इसके आगे १०८ भाई सफेद वस्त्रो मे सफेद ध्वज लेकर चल रहे थे । इन सभी भाईयो एव बहिनो ने दो-दो साल का ब्रह्मचर्य व्रत लिया, तथा सप्त व्यसन का त्याग, अष्ट मूल गुण एव-देवदर्शन का नियम लिया। इस महोत्सव मे इन भैय्या-बहिनो की सफेद ध्वजाऐं

अलौकिक छटा बिखेर रही थी इन २६१ माई-बहिनो का सचालन आदरणीय ब्रह्मचारी भैया अजित जैन 'सौंरई' ने अति परिश्रम करके लग्नता से की । इनके आगे हाथी पक्तिवद्ध चल रहे थे । इसके आगे १०-१२ सेवादल अपने वाद्य यन्त्रो के साथ चल रहे थे । सिलवानी का सेवादल शस्त्र-प्रदर्शन करते हुये चल रहा था, जो विशेष आकर्षण का केन्द्र था । सागर की आराधना-मण्डल की बच्चियां गर्वा नृत्य करती हुयी चल रही थी, जो देवियो-सी प्रतीत हो रही थी । इस प्रकार लगभग एक कि मी का परिक्रमा पथ समस्त जुलूस के वाद्य यन्त्रो से परिपूर्ण हो गया । इस प्रकार से यह गजरथ परिक्रमा फेरी मुनि श्री के सामायिक से उठने के बाद ठीक डेढ़ बजे से प्रारम्भ की गयी ६-६ रथो की फेरी को देखने के लिए लगभग ८-१० लाख जनता एक साथ उमड़ पड़ी, और अपनी आँखो को धन्य मान रही थी । इन ६ रथो की फेरी देखकर चारो ओर जय-जयकार की ध्वनि एव जिनेन्द्र देव की महिमा का गुण गान हो रहा था । परिक्रमा मार्ग की कामेंट्री करने वाला बीच-बीच मे रवीन्द्र जैन द्वारा रचित पक्तिया दुहरा रहा था कि—

रथ हांको हौले हौले, रथ मे बैठे है भगवान

रथ हाको हौले हौले लगे न हिचकौले

हो, रथ में बैठे है भगवान रथ हाको हौले हौले ...

६ रथो की फेरी का दृश्य इतना आकर्षक था कि सातवी फेरी तक निरन्तर जनता अडिग होकर बैठी रही, अर्थात् डेढ़ बजे से लेकर के ४ बजे तक जनता अपलक रुप से ६रथो की परिक्रमा देखते हुये आनन्दित हो रही थी । फेरी के उपरान्त सफेद ध्वज धारी बालक-बालिकाये एंव इन्द्र- इन्द्रणी पाण्डाल के अन्दर नाच उठे । ऐसे नाच रहे थे जैसे इन्द्र ताडव नृत्य कर रहे हो । सबकी आँखो मे प्रसन्नता के आँसू थे । D M और S P भी गद् गद् होकर इस महोत्सव की सफलता की भूरि-भूरि प्रशसा करने लगे । ये दोनो प्रशासनिक अधिकारी कह उठे कि इतना बड़ा महोत्सव सानन्द और निर्विघन सम्पन्न होना गुरूओं के आशीर्वाद से किसी दैवी शक्ति का ही चमत्कार कहा जा सकता हैं ।

तदुपरान्त मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का आशीर्वादात्मक प्रवचन हुआ । मुनि श्री ने अपने प्रवचनो मे कहा कि इतना बड़ा महोत्सव मेरी दृष्टि मेरे जीवन मे पहली बार हो रहा है । अभी तक मे जितने भी गजरथो मे उपस्थित रहा हूँ उनमे इतना आनन्द नही आया जो इस नव (६) गजरथ महोत्सव मे आनन्द आया । वह वचनगोचर नही है । और कहा कि यह गजरथ-महोत्सव प्रतिष्ठा के अग भले न हो, सम्यदर्शन का अग प्रभावना जरूर है ।

आज की दुनिया शादी-विवाह आदि मे लाखो-करोड़ो रूपया खर्च कर देती है ।, चुनावो मे सरकार अरबो रूपया खर्च कर देती है । लेकिन ऐसे धार्मिक महोत्सव मे पैसा खर्च किया जाता है तो कोई इसको फिजूल का खर्च मानते हैं । ये इनकी विनाश काले विपरीत बुद्धि का ही परिपाक है । मुनि श्री ने कहा कि इन महोत्सवो की प्रभावना को देखकर लगता है कि अभी हमारा धर्म १८ हजार वर्ष तक सहजता से चल जायेगा । लोग कहते है कि आज अतिशय नही है धम मे और मै कहता हूँ कि पचम काल मे इतनी बड़ी महती प्रभवना होना सबसे बड़ा अतिशय और चमत्कार है । मुनि श्री ने अपना आशीर्वाद देते हुये कहा कि धन्य है ये श्रावक जिन्होने जिनेन्द्र देव की ऐसी प्रभावना नव गजरथ महोत्सव के माध्यम से प्रकट की । और कार्य-कर्ताओं को भी आशीर्वाद दिया जिन्होने अपने गृहस्थिक कारोबार को छोड़कर इस महोत्सव मे ४-६ महींने तक कठोर परिश्रम किया । इस कार्यक्रम को सफलका का कारण बताते हुए कहा कि यह सब भक्तो की भावना का ही परिपाक हैं ।

इस प्रकार से यह ऐतिहासिक कार्यक्रम इतिहास के पन्नो पर स्वर्णाक्षरो से अंकित करने योग्य हो गया। मात्र अब स्मृतिया शेष रह गयी । और ये स्मृतिया नगर के चौराहो पर संध्य आदि के समय इस महोत्सव की प्रशसा सुनने मे आती रहती है । जिन्होने अपनी आँखो से यह कार्यक्रम देखा उनकी आँखे धन्य हो गयी, जीवन धन्य हो गया ।

मैंने अपनी इन आँखो से इस महोत्सव को देखा और अपने साथियो के लिये, अर्थात् आने वाले धर्मावलम्बियो के लिये इतिहास आदर्श बने इस हेतु इस महोत्सव की कुछ झलकिया अपनी अल्प बुद्धि से लिपि बद्ध कर इस नव गजरथ स्मरिका मे दे रहा हूँ चाहता हूँ कि आपके लिये यह लेख भविष्य मे मार्गदर्शक बने । और लोग इस उत्सवको आदर्श मानकर इससे अधिक प्रभावक ढंग से गजरथ एवं पंचकल्याणक करते रहें ।

• बुन्देलखण्ड की यह ऐतिहासिक गजरथ महोत्सव की परम्परा जिस प्रकार से आज तक जीवित है, उसी प्रकार से जब तक आकाश मे सूरज, चाँद जब तक पृथ्वी पर मानवो का सचार है, तब तक जीवित एव जयवन्त रहे । इसी कामना एव मगलभावना के साथ, एव मुनिश्री के अतिम आदेश मे देश के नाम सदेश को स्मृत करता हुआ, इस लेख को विराम देकर भव्यजनो के लिए सौंपता हूँ ।

देश के नाम संदेश (मुनिश्री का)—

सुखी रहे सब जीव जगत के
कोई कभी न घबरावे,
बैर-पाप-अभिमान छोड़ जग
नित्य नये मगल गावे । शुभमस्तु

दृष्टि में (उपयोग में) समीचीनता है, तो वचनों में भी समीचीनता आ जाती है ! नमस्कार के लिये अन्दर का उपयोग जरूरी है, समय, क्षेत्र आदि का ज्यादा महत्व नहीं है । स्तुति, गुरु न होने पर भी फल देगी, क्योंकि गुरु तो हृदय मे बिराजते हुए हैं । गुरु प्रत्यक्ष में हों या न हों पर गुरु के प्रति विनय होनी चाहिये ।

ललितपुर का अद्वितीय पंचकल्याणक एवं गजरथ

भौतिक वादी युग में सन्मार्ग का एक विहंगम दृश्य

ब्र अजित 'सौरई'

जीवन शैली -

वर्तमान परिपेक्ष्य में मनुष्य की जीवन शैली भौतिकता से ओतप्रोत है । व्यक्ति अपनी इन्द्रिय लिप्साओ में फसा हुआ है और अपने अर्थ पुरूषार्थ द्वारा कमाये हुये धन को काम-भोगो में नष्ट कर देना ही व्यक्ति की अतिम नियति बन गई है । एक कवि ने इसी पर व्यग कसा है -

चल रही, चल रही, चल रही हो,
पछवाँ चल रही आज जगत में ।।ध्रुव।।

धर्म कमई घटता जाता है स्वार्थ, दम्भ बढता जाता है ।
पाप में दुनिया ढल रही हो ॥ चल रही ॥१॥

प्रेम स्नेह का नाम फना है,घर-घर में कुरुयुद्ध ठना है ।
द्वेष की अग्नि जल रही हो ॥ चल रही ॥२॥

भीमार्जुन-से वीर कहाँ है? मात्र शिखण्डी सभी यहाँ है ।
भोग में काया गल रही हो ॥ चल रही ॥३॥

कवि ने वर्तमान भारतीय जन-जीवन की धर्म कार्य से विमुखता का स्पष्ट चित्रण किया है । धर्म पुरुषार्थ को व्यक्ति विस्मृत करता चला जा रहा है ।

अर्थ का अपव्यय -

अफसोस है, आज शरीर को हृष्ट पुष्ट रखने के लिए खाने-पीने, पहनने-ओढने तथा साने-उठने आदि का पूरा ध्यान रखा जाता है, पुत्रादि के जन्म तथा विवाहादि प्रसगो पर वाहवाही लूटने के लिए अनाप-शनाप धन ग्र्वर्च करने में कोई कजूसी नहीं दिखाई जाती है, और भी अनेक प्रकार के व्यावहारिक कार्य शर्माशर्मी, देखादेखी या भय और प्रलोभन से किये जाते हैं, ऐसे कामो में अनेक प्रकार के बहाने किये जाते हैं, क्योंकि व्यक्ति धर्म-साधना से अनभिज्ञ होता जा रहा है । ऐसे समय में आवश्यकता है किसी ऐसे निर्देशक प्रणेता, उपदेशक की जो इन्हें अपनी मूल की भूल बताकर सन्मार्ग में लगा दें ।

दिवाकर का उदय -

इस प्रकार के प्रभावक, सन्मार्ग दिवाकर एव सच्चा निर्देशन देने वालों का अभाव सैकड़ों वर्षों से चला आ रहा है । लेकिन यह बीसवीं सदी के जन मानस का विशेष कर बुन्देलखण्ड वालों का सतिशय पुण्य ही कहना चाहिये कि-चारित्र चक्रवर्ति शान्ति सागर जी महाराज की परम्परा से उद्भूत प्रकाण्ड विद्वान् आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की विद्वता ने एक ऐसे प्रखर दिवाकर रूपी व्यक्तितत्व को उभारकर भटके हुए जन मानम के बीच में सत शिरोमणि, प्रखर प्रवक्ता, आचार्य श्री विद्यामागर जी महाराज को छोड दिया । जिनके व्यक्तितत्व की गोद मे पल पुमकर के निकलने वाली एक सूर्य की किरण बुन्देलखड के अनेक स्थानो मे अपनी आभा प्रतिभा से जिनशासन की प्रभावना करके जिन ध्वज को आलोकित करता हुआ । गजरथ प्रवर्तक, त्यागी वृतियो के लिए आज भी चतुर्थकालीन, जिन मन्दिरो की भव्यता का दर्शनीय बुन्देलखण्ड की धर्म प्राण नगरी ललितपुर मे परम पूज्य, देवगढ जीर्णोद्धारक, आध्यात्मिक सन्त श्री सुधासागर जी महाराज ससघ पधारे एव श्रावक-श्राविकायो को चातुर्मास करके अनुगृहीत किया ।

चातुर्मास मे मैने अनुभव किया कि साधू की अमृतवाणी साधक की दिनचर्या-जीवनचर्या को किस प्रकार परिवर्तन करा देती है । विषयो मे फसे व्यक्तियों को धर्मतत्व ऐसा हृदयगम कराया कि यावज्जीवन के लिये वो जिन श्रद्धानी बन गये ।

प्रवचन शैली में समन्तभद्र स्वामी जैसा जिन धर्म का जयघोष करने वाले । वहीं दूसरी ओर अपने ध्यान व आत्मचिंतवन में कुन्दकुन्दाचार्य जैसी आध्यात्मिकता पूज्य मुनिश्री के जीवन में पाई ।

प्रतिदिन आचार्य पद्मनन्दि द्वारा प्रणीत पद्मनंदि पचविशति का आधार लेकर जिनवाणी रूपी गहन सागर मे से रत्नों को निकालकर आठ बजे से साढ़े नौ बजे तक जन-जनता को बाटना, अर्थात् व्यवहार- निश्चय से समन्वित प्रवचन देकर नास्तिक को आस्तिक बना देना और आस्तिकों को सम्यग्दर्शन की त्रिवेणी का आनंद लेने के लिए उत्साहित करना ।

प्रवचन का प्रत्यक्ष प्रभाव मैंने जनता के ऊपर असरदार देखा, जैन-जैनतर इतनी अधिक संख्या में आये कि विद्यासागर हाल तथा क्षेत्रपाल का अंदर-बाहर का प्राङ्गण को छोटा महसूस होने लगा । अनेक जैन-जैनेतरो ने अपने जीवन को सप्त व्यसनों से मुक्त किया, तथा सैकड़ों निकट भव्यों ने प्रतिदिन अष्ट द्रव्य से पूजन-अभिषेक करने के नियम लिये । दूसरी और, काम-भोगों में खर्च करने वाले अपने अर्थ को धार्मिक कार्यों में लगाने के लिए दान के प्रवचनों को सुनकर इतने उत्साहित हुए मि मानों यह क्षेत्रपाल में देवों द्वारा रत्नो की वृष्टि की गई हो । अर्थात् इतना दान चातुर्मास में पहली बार ललितपुर में देखनें में आया ।

आत्म साधना पर्व -

चातुर्मास के मध्य जैन क्षावको की जीवन शैली को साधना में बदलने वाले दशलक्षण पर्व आये । दशलाक्षणी पर्व का यथार्थ रूप आज भी बुन्देलखण्ड के मन्दिरों और घरो मे देखा जा सकता है । अन्यत्र तो पर्व के दर्शन केवल मन्दिरो में ही पूजन और शास्त्र सभा के रूप में होते हैं। घरो में खान-पान का वही सनातन क्रम चला करता है, किन्तु बुन्देलखण्ड में पर्व लगने से पूर्व ही घरों का खान-पान नियंत्रित हो जाता है । इस दिन तक हरी शाक-सब्जी घरो मे नहीं आ सकती । दिन मे एक बार मौन सहित शान्ति के साथ भोजन किया जाता है । बाल बनवाना, साबुन लगाना, जूता तक पहिरना भी वर्जित होता है ।

दशलक्षण पर्व वस्तुत एक साधक को साधना बताने वाले होते हैं । श्रावक अपने बारहमासी जीवन मे सासारिक व पारिवारिक समस्याओ से ग्रसित रहता है । लेकिन वह इस सासारिक कीचड़ मे जल से भिन्न कमलवाली पद्धति को सीकने की जिज्ञासा रखकर दशलाक्षणी पर्वों को मनाता है । वर्तमान में दशालाक्षणी पर्वों का स्वरूप दूषित होता चला जा रहे हैं । लेकिन वास्तविक स्वरूप क्या है ? यह मुनि श्री ने अपने प्रवचनो मे बताया कि दश दिन श्रावकों को अनगारी बनकर रहना चाहिये इसलिये दशलक्षणी महापर्वराज पर संयम साधक शिक्षण शिविर की योजना बनायी गई । इस शिविर में विधि-पद्धति को, महाराज श्री ने प्राचीन गुरुकुल की पद्धति के अनुसार ध्यान में रखकर शिक्षण-प्रशिक्षण दिया ।

इस शिविर के सचालन की व्यवस्था का कार्यभार मेरे सौभाग्य से मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने मुझे दिया। मेरे जीवन में शिक्षण शिविर का द्वितीय प्रयास था परन्तु यह शिविर एक अलौकिक अद्भुत एवं जीवन शैली को बदलने वाला शिविर था जिसको मुनि श्री के मंगल आशीर्वाद से ही सुचारू रूप से संचालित कर सका ।

समाज की जिज्ञासा -

इस सभी प्रभावक कार्यक्रमों के बीच समाज की जो २-३ साल से जिज्ञासा थी कि चौबीसी का पंचकल्याणक की चर्चा को अर्चा के रूप में परिणत किया जाय, इसके लिए मुनि श्री का आशीर्वाद मिला । सारे ललितपुर की जैन समाज एवं पचायत उत्साहित-उल्लासित हो गई । पञ्चकल्याणक के साथ नव गजरथों को चलाने का संकल्प भी किया गया । अभी तक इतिहास में यह पहला गजरथ महोत्सव था कि जिसमें बिना बोली लगाये ही अधिक दान राशि देकर सौधर्म इन्द्रादि पद को ग्रहण किया गया । नवीन रथ का निर्माण श्री मंत सेठ रामप्रसाद शिखरचन्द्र सर्राफ द्वारा किया गया । रथों के नौ यज्ञ नायक बने, जिनको गजरथों की परम्परा के अनुसार श्री मन्त सेठस सेठ, सवाई सिंघई सिघई आदि की उपधि से पगडी बांधकर विभूषित किया गया । नौ यज्ञनायकों एवं परिवार के सदस्यों ने पगड़ी की रस्भ के रूप में समस्य जैन जैनेतर समाज को विशाल गजरथ के समापन पर भोज दिया । लगभग ३०,००० हजार व्यक्ति सम्मिलित हुआ ।

ऐतिहासिक जुलूस -

मैने पञ्चकल्याणक एव गजरथ महोत्सव अनेक देखे, लेकिन इस पंचकल्याणक में जो आनन्द रस का अनुभव किया वह अलौकिक था ।

ललितपुर के इतिहास में घट-यात्रा का दृश्य अद्वितीय रहा, जन्म कल्याणक के जलूस का तो मैं क्या कहूँ संपूर्ण जनपद आनन्द विभोर हो गया । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे साक्षात् सौधर्मेन्द्र असंख्यात देवों के परिकर सहित अयोध्यापुरी की परिक्रमा लगाकर तीर्थंकर बालक को पाण्डुक शिला पर जन्माभिषेक करने के लिये ले जा रहे हों ।

सारी ललितपुर नगरी दुल्हन की तरह सजी थी । सारे घरो मे मंगलाचरण हो रहे थे । मार्ग में जाते हुए अनेक प्रतिष्ठित इन्द्रगण एवं भक्तगण परम आनंदित हो आदिकुमार की बड़े आनद से नुति, स्तुति और कीर्ति करते हुये चल रहे थे ।

आदिकुमार के जन्म पर नगर के डगर-डगर पर तोरण-द्वार लगें हुये थे, बधाईयां हो रही थीं और मिठाईयां वितरित की जा रही थी । चारों ओर खुशियालियाँ छाई हुई थी।

आदि कुमार (तीर्थंकर आदिनाथ) को गोदी में लिये हुये ऐरावत सौधर्मेन्द्र ऐसा सुसोभित हो रहा था मानो निषध पर्वत के अंक में बाल सूर्य हो रहा हो । उस परम पावन दृश्य की क्षण भर अपने मन में कल्पना करने से भी हृदय में एक मधुर रस की धारा प्रवाहित हुये बिना न रहेगी। सौधर्मेन्द्र की गोद में त्रिलोकी नाथ हैं । ईशान धवल वर्ण का छत्र लगाऐ हैं । सनत्कुमार - महेन्द्र युगल देवाधिदेव (आदि कुमार) के ऊपर चामर ढूरा रहे थे साथ मे ३१ हाथी, ५१ घोड़े, ३१ सेवादलों के दिव्य घोष एव अनेक स्वय सेवक दल, एवं भजन मडलिया नांचती गाती बजाती हुई सड़को पर धूम मचा रही थी ।

जुलूस में बैण्ड वादक शहनाई वादक, गर्भानृत्य तथा ध्वज पताकाए अनेक बैनर अपूर्व छटा बिखेर रहे थे । लाउड स्पीकरो पर भी जयगान तथा भजन आदि हो रहे थे । दर्शनार्थी जुलूस का प्रारभ देखते और फिर अन्तिम छोर देखने के लिये उन्हे घन्टो प्रतीक्षा करनी पडती थी ।

इतना भव्य, इतना आकर्षण और इतना लम्बा जुलूस ललितपुर क्या बुन्देलखण्ड की सडको पर पहले कभी निकला हो ऐसा किसी को याद नहीं । सभी जनपतवासी जुलूस पर पुष्पवृष्टि कर रहे थे और कह रहे थे कि अभुतपूर्व शोभा यात्रा देखकर आँखे धन्य हो गई ।

जलूस सारे नगर मे भ्रमण करता हुआ श्री क्षेत्रपाल जी का प्रागण श्री वर्णी कान्वेंट स्कूल में फैल गया । वह ३५ एकड का मैदान भी उस समय छोटा पड गया था। इससे ही आप अदाज लगा सकते हैं कि जन्म कल्याण का जलूस कितना अलौकिक-अनुपम रहा होगा । मैने जो निर्देशन जलूस व्यवस्थापको को दिये उन्होंने लग्नता के साथ सक्रिय कार्य किया - श्री जिनेन्द्र कुमार सराफ, श्री छक्कीलाल दैलवारा, नरेन्द्र कुमार 'चूना' एव पंचयात के पदाधिकारी गणों का सहयोग सलाहनीय रहा ।

पाचो दिन अपार जन ममुदाय मेला प्राङ्गण में लगायें गये पाण्डाल को छोटा करता जा रहा था । विषय विस्तृत न करता हुआ मात्र फेरी का दृश्य आपके सामने रख रहा हूँ । इस दृश्य के सम्बन्ध में कितना कहूँ देश में अनेक शहरों का लगभग आठ-दस लाथ का भक्त समूह अयोध्यापुरी (नवगज स्थल) में एकत्रित हो गया । उनकी भक्ति का आदर करते हुए कन्ट्रोल करना एक देवो पुनीत अतिशय ही कहा जायगा ।

४५ एकड के प्राङ्गण में भक्त जनों के सिवाय कुछ नजर ही नही आ रहा था । जिसमें तीन-चार सौ पुलिस अधिकारी, पुलिस कर्मचारी तथा पन्द्रह सौ स्वय सेवकगणो की सुरक्षा के प्रति कर्तव्य निष्ठा सराहनीय थी ।

अनोखा दृश्य -

९०० मीटर परिक्रमा में आगे नागदा बैण्ड, श्री जैन वीर व्यामशाला ललितपुर का दिव्य घोष श्री जैन ऋषभ नव युवक कला मडल टीकमगढ का दिव्य घोष, श्री आदिनाथ महिला समिति द्वारा चाचाण ग्रुप एवं स्वयं सेवी संस्थाओं के बैण्ड आदि थे । उसके उपरांत आज तक जो कहीं देखने में नहीं आया, वह अनोखा दृश्य धर्म प्रेमी जनों में इस नव गजरथ परिक्रमा मे देखा । क्या ? **शुक्लाबर, हाथ में शुक्लध्वज लिये १०९ तरुण श्रावक संस्कार से संस्कारित अकलंक-निकलंक प्रभावना संघ चल रहा था ।** इसके बाद परम पूज्य देवगढ जीर्णोद्धारक, आधत्मिक सत मुनि श्री सुधासागर जी, क्षुल्लक द्वय श्री गम्भीर सागर जी, श्री धैर्यसागर जी चल रहे थे, तदुपरान्त **शुक्लाम्बर, हाथ मे शुक्ल ध्वज लिये १०९ तरूणी श्रावक संस्कार से संस्कारित ब्राह्ममी-सुन्दरी प्रभावना संघ चल रहा था ।**

इन दोनों सघो के २१८ भाई-बहिनो ने २ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत लेकर इस पचमकाल में सयम-साधना की धर्म ध्वजा को ऊपर उठाकर दृढता से फहराने का सकल्प लिया।

नव गजरथ फेरी परिक्रमा का सबसे बडा आकर्षण का केन्द्र सफेद ध्वजाये एव शुक्लाम्बर भाई-बहिन बने हुये थे । मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के आशीर्वाद से इन दोनो संघों का निर्देशन सचालन मैने ही किया । इसके बाद १९ हाथियो के समूह पर केशरिया ध्वजाए, पश्चात् नवगजरथ चल रहे थे । निर्विकल्प, निर्द्वन्द्व, निर्भीकता के साथ जिनधर्म की महिमा एवं जिनधर्म की ध्वजा को फहराने वाली नव जगरथ की सातों फेरियां सोल्लास संपन्न हुई। नव गजरथों में बैठाने की व्यवस्था का कार्य आदरणीय ब्र सजय जी पनागर ने बडी सजगता से सम्हाला । सातवीं फेरी पूर्ण होते ही भक्त जन (७० × १०५ वेदी ३५० × २५० पण्डाल की ओर दौड़ आया । मुनि श्री अमृतमयी प्रवचन हुये । विशेष उल्लेखनी - इस नवगजरथ महोत्सव में किसी भी व्यक्ति की किंचित भी दुखित घटना सुनने में नहीं आयी ।

•

सातिशय पुण्य -

इस प्रकार के उत्सवों को लेकर वर्तमान में कुछ अल्पबुद्धि वाले, तुच्छ हृदय वाले कूप-माण्डूकों एवं नास्तिकों द्वारा यह कुतर्कणायें प्रचारित प्रसारित की जाती है कि इन गजरथों में अर्थ का अनर्थ किया जाता है । वे महानुभाव यह नहीं सोचते कि आज मानव अपने अर्थ को ऐश-आराम में एवं भोग-लिप्साओ में कितनी तीव्रता के साथ अपव्यय कर रहा है । आज राजनीतिक चुनावो में जनता का अरबों रूपया खर्च होता है । जिससे देश बरबाद हो रहा है । लाटरी, जुआदि सप्त व्यसनो में जन मानस अपनी कमाई को व्यर्थ की नालियों में बहा देते हैं, और अपनी आर्थिक स्थिति का जर्जर कर देते हैं । अत इस प्रकार के अपव्यय से अधर्म की ही प्रभावना होती है । वे महानुभव यह नहीं सोचते कि धार्मिक आयोजन से धर्म की महती प्रभावना होती है जिससे सातिशय पुण्य अर्जन होता है । अत इससे बढकर धन का क्या सदुपयोग हो सकता है ? हे प्रभू उनकी सद्बुद्धि हो, धार्मिक कार्य मे रूचि हो, वे यदि दान-पुण्य कृत्य-कारित से नहीं कर सकते तो अनुमोदना से ही करने लग जायें ।

नव गजरथ महोत्सव में ऐसी ही देखा गया कि जो व्यक्ति गजरथ-पंचकल्याणक जैसे धार्मिक कार्यक्रम के विरोधी थे, वो इसकी महती प्रभावना देखकर (नवगजरथ) पंचकल्याणक महोत्सव की प्रशंसा करते हुये, यह कहते पाये कि वस्तुत पंचम काल में ऐसा महोत्सव जैनियों के जीवन का अग बन जाना चाहिये ।

गौरवान्वित अनुभव -

नव गजरथ महोत्सव में बहुत से व्यवस्था कार्य मुझे सौंपे गये । इन विशाल कार्यों की व्यवस्था भला में क्या कर सकता था किन्तु मुनि के आशीर्वाद से वा सबके सहयोग से इस विशाल आयोजन में जो भी योगदान दे सका उससें अपने को गौरवान्वित अनुभव करता हूँ । जीवन के वे कुछ दिन जो इस सेवा में काम आए मुझे सदैव स्मरण रहेगें ।

यह लेख- भविष्य में जिन धर्म-प्रभावकों के लिये आदर्श बने, पथप्रदर्शिका बने, इस भावना के साथ भारतवर्ष की सपूर्ण दिगम्बर जैन समाज के कर-कमलों में सादर समर्पित करते हूँ ।

शुभमस्तु

तृतीय खण्ड

घूमते कैमरे में नवगजरथ महोत्सव

क्र सं	विषय
1.	घटयात्रा
2	गर्भकल्याणक
3	राज्यव्यवस्था
4	वैराग्य की झलकियां
5	केवलज्ञान
6	गजरथ परिक्रमा
7.	ब्र का सम्मान
8	नौ यज्ञनायक उपाधि
9	परिशिष्ठ

घटयात्रा

घटयात्रा का महामंगल कलश

घटयात्रा का [illegible] कलश

घटयात्रा जलूस

घटयात्रा मे श्रीजी

घटयात्रा ध्वज
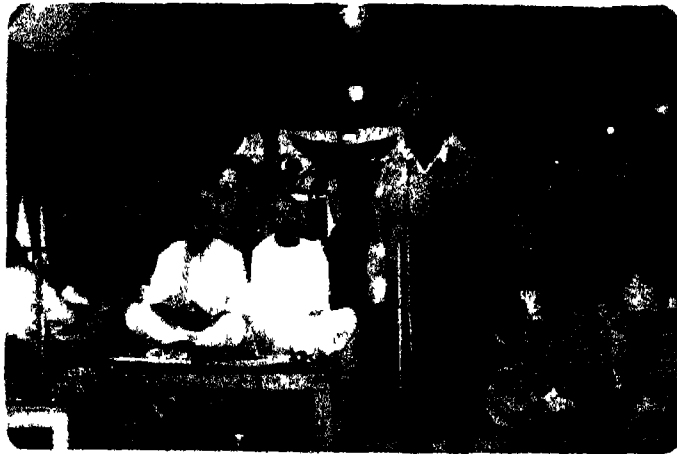
घटयात्रा समापन पर जिलाधीश का भाषण
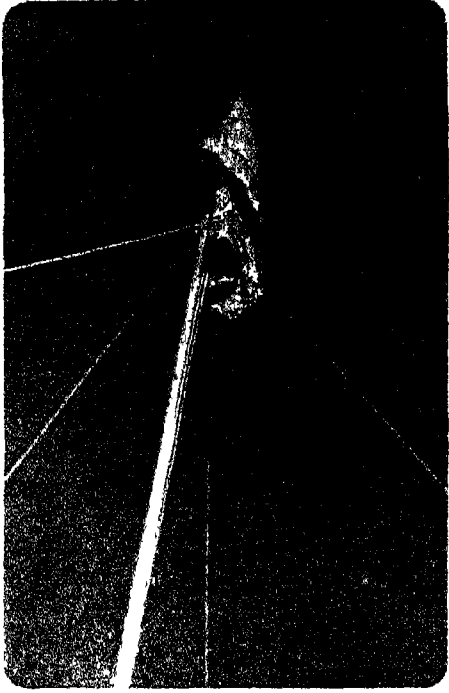
गजरथ महोत्सव का ध्वजारोहण

ध्वजारोहण के अवसर पर प्रवचन
देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

ध्वजारोहण के अवसर का दृश्य
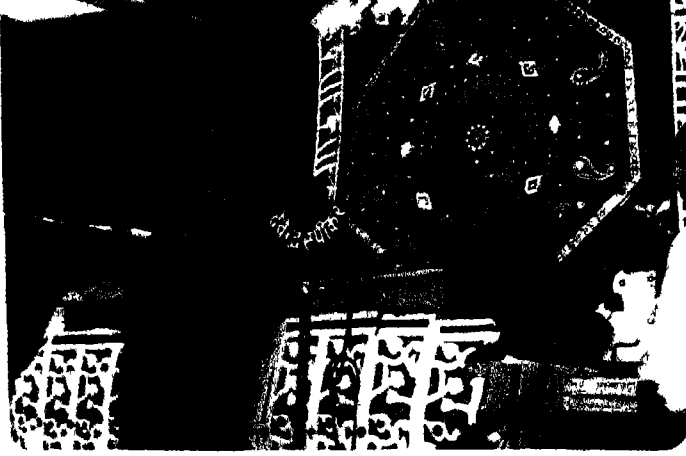
ग ग्रथ महात्सव का सफलता हेतु मुनि

श्री से निर्देशन लेते हुए जिलाधीश

ग्रथ व्यवस्था हेतु निर्देशन देते हुए
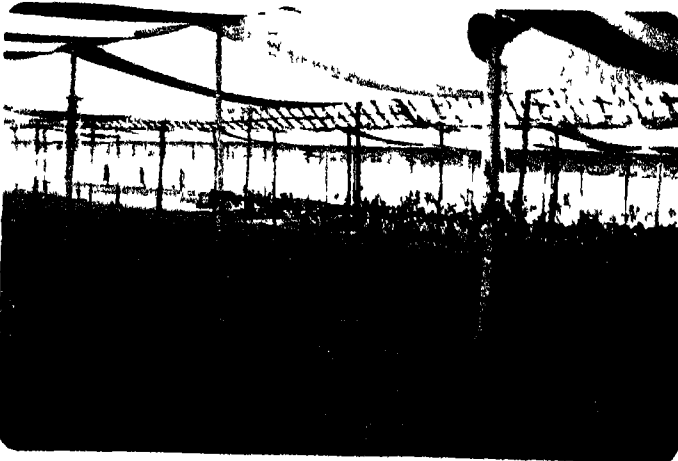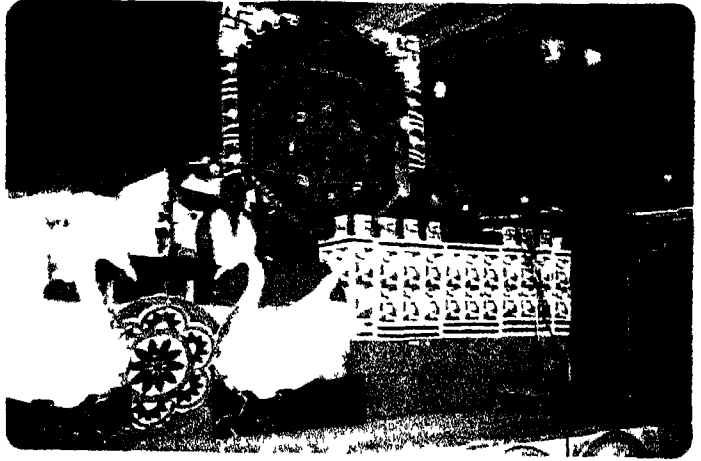
पुलिस अधीक्षक

निर्देशन ग्रहण करते हुए सेवादल

एवं पुलिसकर्मी

निर्देशन देते हुए उप पुलिस अधीक्षक

चर्चा करते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

एवं पुलिस अधीक्षक

जिलाधीश को मंगल कलश

देते हुए प्रतिष्ठाचार्य

गर्भ कल्याण के दृश्य

छप्पन कुमारियाँ माता की सेवा करते हुए

अष्ठकुमारियाँ मगल गान करती हुई

जन्म कल्याणक के दृश्य

सौधर्म इन्द्र एव इन्द्राणी

कुबेर द्वारा रत्नवृष्टि
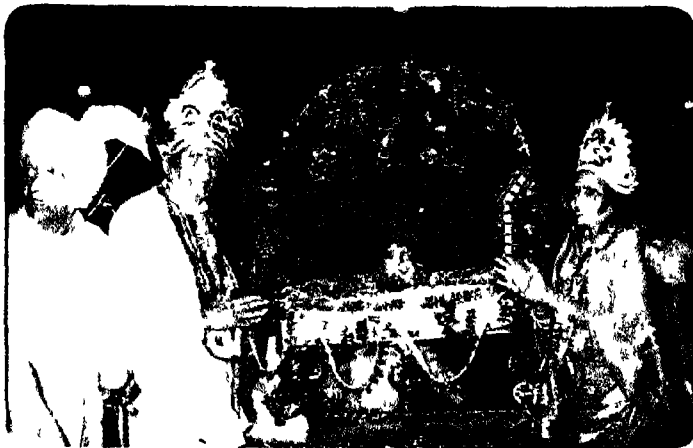
माता पिता द्वारा बालक ऋषभदेव का पालना झुलाना

राज्य व्यवस्था के दृश्य

राजानाभिराय ऋषभदेव को राज

मुकुट से सुशोभित करते हुए

राजानाभिराय ऋषभदेव को राज्य

व्यवस्था का प्रतीक "शस्त्र" देते हुए

राजदरबार का वैभव

राजा ऋषभदेव को सेनापतियों द्वारा सलाम
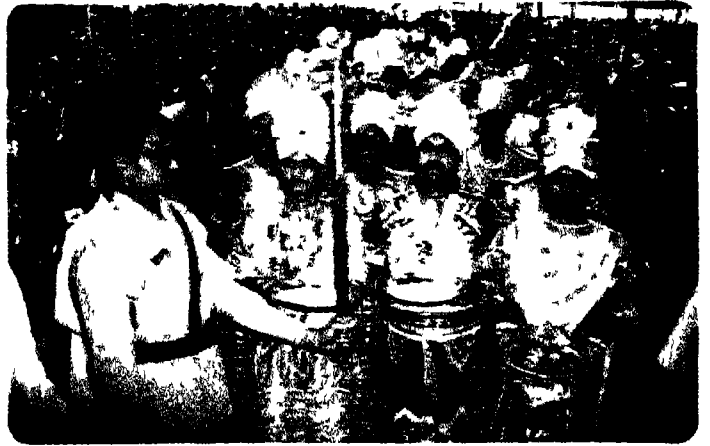
राजा ऋषभदेव के दरबार मे 32000 मुकुट बद्ध

राजा भेट समर्पण हेतु पधारते हुए

ब्राह्मी सुन्दरी राजदरबार मे आती हुइ

विधिनायक प्रतिमा पर सूरि मन्त्र देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

धातु निर्मित साढे पाँच फुट उत्तुंग ऐतिहासिक बाहुबलि प्रतिमा पर सूरि मन्त्र देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

श्री दिगम्बर जैन अटामन्दिर की चौबीसी मे आदिनाथ की प्रतिमा पर सूरि मन्त्र देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

गाबासा मे सूरि मन्त्र देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

समवशरण पीठिका

मुनि श्री सुधासागरजी चौबीसी मे सूरि मन्त्र देते हुए
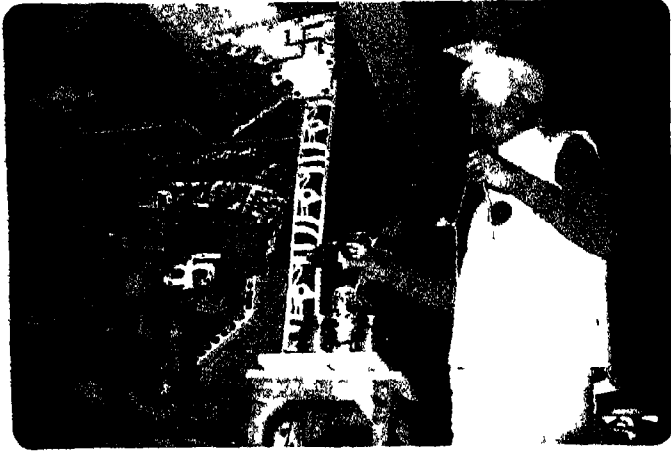
प्रतिष्ठाचार्य द्वारा दीक्षाकल्याणक की क्रियायें

मुनि श्री सुधासागरजी द्वारा

दीक्षाकल्याणक की क्रियायें

महामुनि ऋषभदेव

की आहारचर्या

केवलज्ञान की क्रियाये करते
हुये मुनि श्री सुधासागरजी
एव प्रतिष्ठाचार्य

केवलज्ञान की क्रियाये
करते हुए मुनि श्री मुनि श्री सुधासागरजी

नेत्रोनमीलन करते हुए
ब्र सजय भैय्या

ब्राह्मीसुन्दरी अपने पिता ऋषभदेव से प्रश्न करती हुई

(उत्तर) नीलांजना

मुख्य नीलांजना

वैराग्य की झलकियाँ
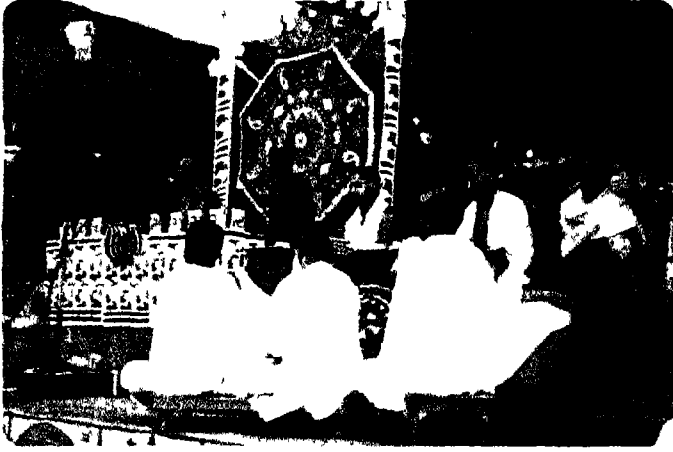
दीक्षाकल्याणक पर प्रवचन देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी ससघ

लौकाँतिक देवो का वैराग्य समर्थन

दीक्षा हेतु वन मे ऋषभदेव के लिये पालकी मे ले जाते हुए राजागण

केवल ज्ञान के दृश्य

केवल ज्ञान के दृश्य

समवशरण का विहगम दृश्य

समवशरण मे प्रवचन देते हुए

मुनि श्री सुधासागरजी

समवशरण मे अनूप जलोटा द्वारा मगलाचरण

जीर्णोद्धारित क्षेत्रपालजी के भौंरे की
प्रतिमाओ पर सूरि मन्त्र देते हुए
मुनि श्री सुधासागरजी

इन्द्रपरिकर पूजा करते हुए

इन्द्रपरिकरण्पूजा करते हुए

गजरथ परिक्रमा
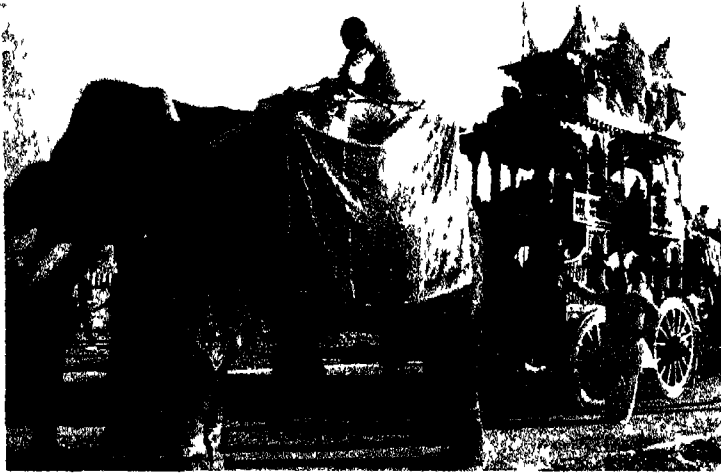
नो गजरथो मे से नव निर्मित

प्रथम गजरथ

गजरथ फेरी के समय जिलाधीश

पुलिस अधीक्षक एव पुलिसकर्मी

व्यवस्था करने हुए
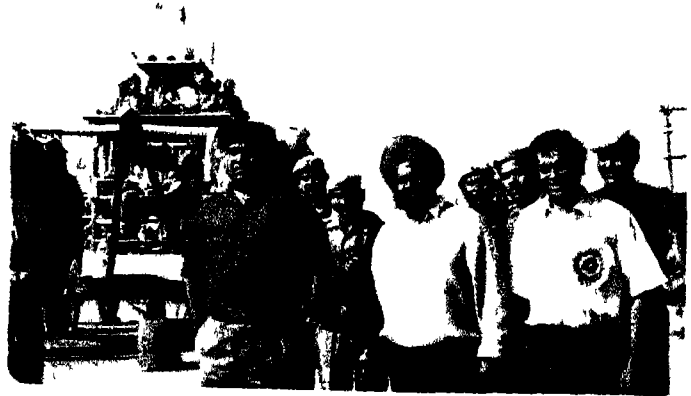
गजरथ फेरी के समय श्री रमेशसाह

एव समिति के पदाधिकारी

गजरथ फेरी की व्यवस्था करते हुए

पुलिस ऑफिसर
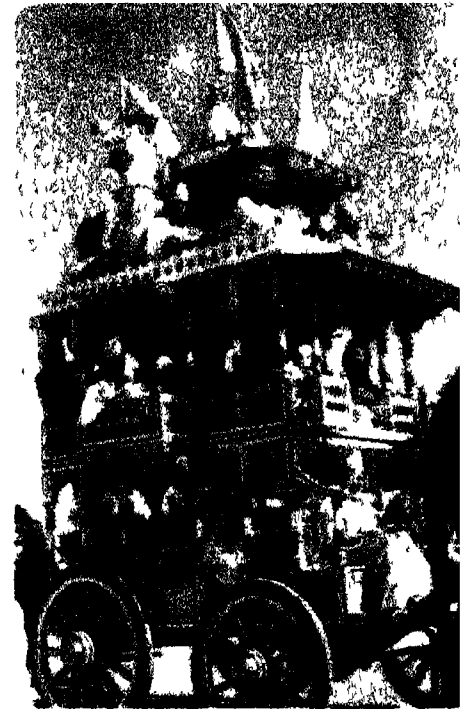
विशाल गजरथ
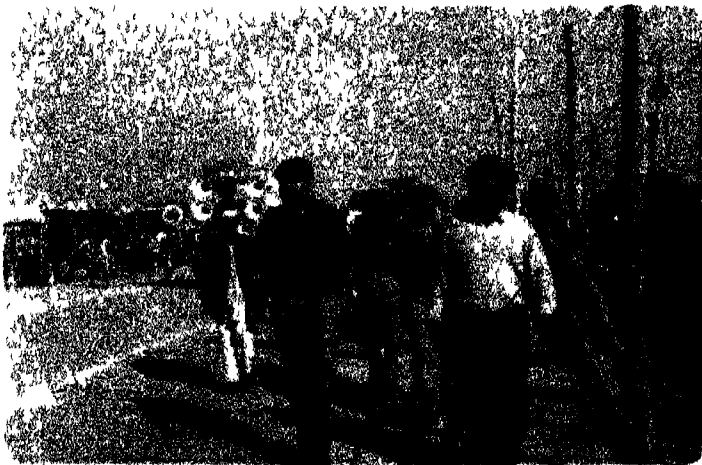
गजरथो के आगे जिलाधीश एव

पुलिस अधीक्षक

गजरथो के आगे धवल वस्त्र एव सफेद ध्वज के साथ अकलक निकलक प्रभावना सघ

गजरथो के आगे ब्रह्मचारिनी बहने एव धवल वस्त्र के साथ ब्राह्मी सन्दरी प्रभावना संघ

गजरथ परिक्रमा का दृश्य
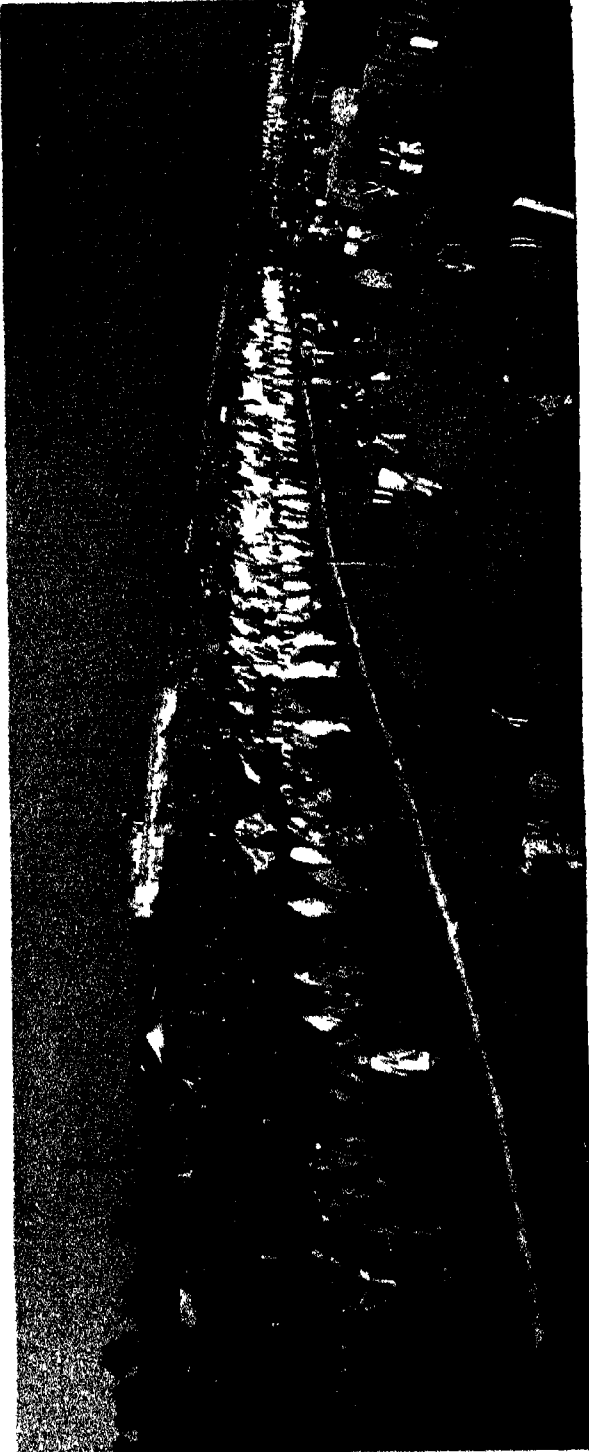
श्री गजरथ परिक्रमा के विहंगम दृश्य का अवलोकन करते हुए मुनि श्री सुधासागरजीं ससघ

गजरथो के आगे परिक्रमा मार्ग

पर मुनि श्री सुधासागरजी ससघ

परिक्रमा मार्ग पर मुनि सघ

गजरथ महोत्सव के अवसर पर मुख्यमत्री के

प्रतिनिधि मुख्यमत्री का सदेश सुनाते हुए

विविध

आगम ग्रन्थो को ताम्र पत्र पर उत्कीर्ण
कराने के लिये आशीर्वाद लेते हुए
दिल्ली निवासी जिनेन्द्र कुमार सपरिवार

ताम्र पत्र पर उत्कीर्ण आगम ग्रन्थो का
विमोचन करते हुये निरजनलाल बैनाडा
आगरा
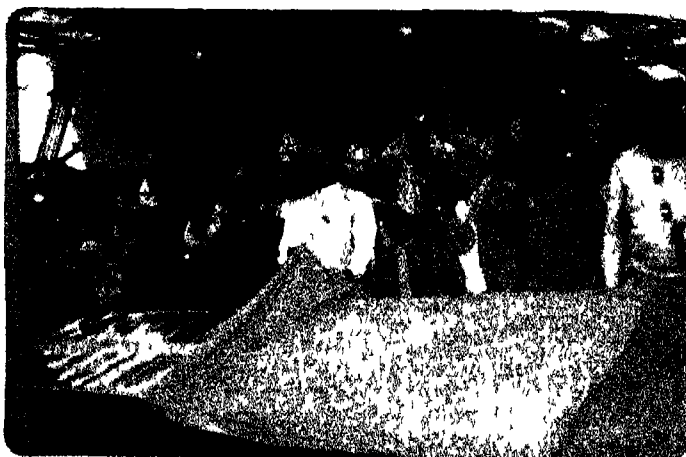
मुनि श्री सुधासागरजी द्वारा
रचित कृति का विमोचन कराते हुए
श्री सतीश कुमारजी नेता जबलपुर

गजरथ चलाने वाले यज्ञनायक सिंघई सवाई
सिंघई की पगडी स्वीकार कर
मुनि श्री सुधासागरजी से आशीर्वाद लेते हुए
(स्थान अटामन्दिर)

ब्र अजित भैय्या का सम्मान
करते हुए पदाधिकारीगण

सिंघई उपाधि पत्र सम्मान समारोह
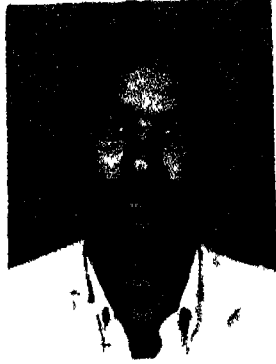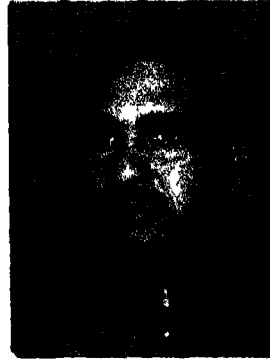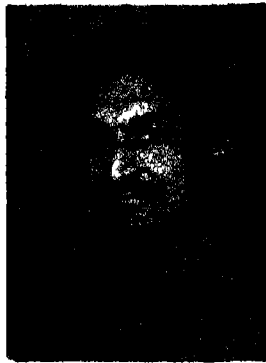
भगवान के माता पिता

हीरालाल- श्रीमती अनन्तीबाई, सराफ

सौधर्म इन्द्र

स० सि० [illegible]चन्द, श्रीमती कमलाबाई सर्राफ
किसलवास वाले

ईशान-इन्द्र

पूरन चन्द श्रीमती कमलाबाई उमरियावाले

धन कुबेर

स० सि० प्रदीप कुमार श्रीमती रेखा नोहर कला वाले

यज्ञ नायक

स० सि० राम प्रसाद सर्राफ
किसलवास वाले

यज्ञनायक

स०सि० सुभाष चन्द– श्रीमती पुष्पा सराफ किसलवास वाले

यज्ञनायक

स०सि० चम्पालाल– श्रीमती गैंदाबाई, नोहरकला वाले

यज्ञनायक

सि० सुन्दर लाल– श्रीमती कस्तूरीबाई अनोरा वाले

यज्ञनायक

रमेशचन्द– श्रीमती मनोरमा नजा

यज्ञनायक

कपूरचन्द– श्रीमती कमला जैन, लागोन वाले

यज्ञनायक

दीपचन्द श्रीमती चम्पाबाई, नजा

यज्ञनायक

मान्द्र कुमार श्रीमती मालती सर्राफ

यज्ञनायक

रतनचन्द- श्रीमती प्रभादेवी, (शिवाजी मशीनरी)

यज्ञनायक

रमेशचन्द- श्रीमती सध्या जैन वछरावनी वाले

राजा-श्रेयान्स

ज्ञानचन्द- श्रीमती विमला, इमलिया

परिशिष्ट

मुख्य अतिथि

श्री पी वी नरसिम्हा राव, श्री माधव राव सिंधिया, श्री अर्जुन सिंह, श्री सुन्दर लाल पटवा, श्री अटल बिहारी वाजपेयी, श्री मदनलाल खुराना, श्री कलराज मिश्र, श्री राजेन्द्र गुप्त, श्री बाबूराम गुप्त एम काम , श्री रवीन्द्र शुक्ला, श्री वीरेन्द्र हेगडे, श्री चारुकीर्ति स्वामी भट्टारक ।

परम संरक्षक

महामहिम श्री मोती लाल बोरा राज्यपाल उत्तर प्रदेश शासन राजमाता श्रीमती विजया राजे सिंधिया माननीय श्री नारायण दत्त तिवारी, माननीय श्री कल्याण सिंह, माननीय श्री दिग्विजय सिंह

महोत्सव-अध्यक्ष

साहू अशोक कुमार जैन, नई दिल्ली, निर्मल कुमार सेठी, लखनऊ

नवगजरथ कार्यालयाध्यक्ष

अजित जैन 'सौंरई'

महोत्सव उपाध्यक्ष

साहू रमेशचन्द्र जैन, नई दिल्ली, सेठ डालचन्द्र जैन, सागर गुरहा जिनेन्द्र कुमार जैन, खुरई निर्वाण चन्द्र जैन, लखनऊ, सेठ मोती लाल जैन (ढोलक बीडी), सागर

महोत्सव स्वागताध्यक्ष

सुजानसिंह बुन्देला पूर्व सासद, निरजन लाल वेनाडा, आगरा

विशिष्ट संरक्षक

राजेन्द्र अग्निहोत्री, साससद झासी ललितपुर क्षेत्र, कुँवर वीरन्द्र सिंह बुन्देला (भगत राजा), अध्यक्ष, जिला परिषद, ललितपुर

सह-स्वागताध्यक्ष

आर के जैन, बम्बई, सुरेश चन्द्र जैन चावल वाले, दिल्ली, राजेन्द्र कुमार, शकरपुर देहली, शैलेन्द्र कुमार लहरी, भोपाल, पारसदास जैन, टाइम्स आफ इण्डिया, देहली

प्रचार संरक्षक

राजेन्द्र गुप्त दैनिक जागरण झांसी, महेश अग्रवाल दैनिक भास्कर झांसी, सुनील जैन दैनिक आचरण सागर, संपादक- नवभारत भोपाल, दैनिक नई दुनिया इन्दौर

जन प्रतिनिधि संरक्षक

डाक्टर अरविन्द कुमार जैन गौनावाले, कुँवर पूरन सिंह बुन्देला, देवेन्द्र सिंह मदनपुर वाले, अशोक कुमार पटैरिया (बट्टू) अध्यक्ष नगर पालिका ललितपुर, गुलाम मोहम्मद (गामा) उपाध्यक्ष नगरपालिका ललितपुर ।

संरक्षक प्रशासक

सर्वश्री धर्मेन्द्र देव आयुक्त झाँसी, आर एस ढिल्लन जी आई जी झाँसी, बचित्तर सिंह जिलाधिकारी ललितपुर, विमल कुमार वाजपेयी पुलिस अधीक्षक ललितपुर, एस एस गुप्ता जिला जज ललितपुर, सुखदेव सिंह सिद्धू पुलिस अधीक्षक बांदा, महेश चन्द्र जैन जिला जज इटावा, श्रीमती सलीना सिंह जिलाधिकारी राजनाद गाँव, सुरेश जैन जिलाधिकारी बैतूल, हरी लाल पासी अपर जिलाधिकारी ललितपुर, उदय शकर पाण्डे परगनाधिकारी ललितपुर, ए के राय अपरपुलिस अधीक्षक, अशोक कुमार शुक्ला उपपुलिस अधीक्षक, बिहारी प्रसाद उपपुलिस अधीक्षक, बाबूराम उपपुलिस अधीक्षक, ललितपुर, रोशन लाल जैन अधीक्षण अभियन्ता, देवेन्द्र कुमार जैन अधीक्षण अभियन्ता, एन के जैन अधीक्षण अभियन्ता, डी एस माथुर अधीक्षण अभियन्ता, डा एस एन पाण्डे मुख्य चिकित्साधिकारी, के के अग्रवाल अधिशासी अभियन्ता विद्युत, वी के गौड़ अधिशासी अभियन्ता जल, डी स शरावत अधिशासी अभियन्ता पी डब्लू डी , बी एस जैन अधिशासी अभियन्ता, आई वी सिंह उपखण्ड अधिकारी विद्युत, एच एम वाजेपयी जूनियर इजीनियर विद्युत, राजकुमार जैन जूनियर इन्जीनियर जल, सुभाष जैन सहायक अभियन्ता पी डब्लू डी , महेन्द्र कुमार झाँसी, शिखर चन्द्र वीर बुन्देल खण्ड प्रेस झाँसी, चम्पा लाल जैन लोकपथ, कैलाश चन्द्र जैन दैनिक विश्वपरिवार झाँसी ।

संरक्षक

हुकुम चन्द्र खजुरिया, उदय चन्द्र पारौल वाले, आर सी जैन, जय कुमार बुखारिया, मोती लाल चौधरी, सेठ हजारी लाल खड़ैया, सेठ हुकुम चन्द्र टड़ैया, हजारी लाल पटवारी, हुलासचन्द्र सराफ, डा बाहुबली कुमार, मुरारी लाल जैन, प्रेम चन्द्र पंसारी, गुलाब चन्द्र सैरोन, स सि कपूर चन्द्र साढूमर, ओम प्रकाश चन्द्र दिल्ली, दयाचन्द अहमदाबाद, कोमलचन्द्र जैन जमालपुर, ज्ञान चन्द्र जैन

बबीना, चौधरी कपूर चन्द्र जैन बानपुर, चौधरी मथुरा दास महरौनी, बाबू लाल सन्त प्रसाद मिठया तालबेट, स सि श्रेयान्स कुमार मड़ावरा, डाच महावीर गुना, पूरन चन्द्र जैन एडवोकेट गुना, सिं केशरीमल सिरोंज, केवल चन्द्र भैसरवाल वाले, विमल कुमार कोठिया एडवोकेट, सुभाष कुमार जैन एडवोकेट, मगन लाल कांसल, शिखर चन्द जैन मालथौन वाले अशोक नगर निर्मल कुमार कठरया चन्देरी, देवेन्द्र कुमार सिघइ, सुमत चन्द्र सिघई मुगावली, कोमल चन्द्र सुनवाहा वाले, सुभाषचन्द्र जैन एडवोकेट पपौरा क्षेत्र, डा कपूर चन्द्र पठा अहार क्षेत्र, डा शीतल प्रसाद द्रोणगिरी क्षेत्र, सि हुकुम चन्द्र रेहली क्षेत्र, मगन लाल गोयल टीकमगढ, कुलदीप कुमार जखौरा, कपूर चन्द्र जैन एडवोकेट, जयकुमार समैया वकील, जीवनधर लाल जैन एडवोकेट, लक्ष्मी नारायन तिवारी एडवोकेट, भगवतनारायण अग्रवाल एडवोकेट, राम स्वरुप देवलिया एडवोकेट, रघुनाथ प्रसाद खेडिया, अरविन्द कुमार सर्राफ, बाबू लाल जडीबूटी वाले, सिघई बाबूलाल घनगौल वाले, वीरेन्द्र कुमार सराफ, हुकुम चन्द्र कामरा, चन्द्र कुमार गुढा, सरदार दर्शन सिह सरदार गुरुवचन सिह (बिल्ले), सरदार स्वर्ण सिह बग्गा, बाबू बदरुदीन सदर उर्स कमेटी, मुहम्मद असलम कुरैशी सदर जिला मुस्लिम एसोसियेशन, हरीशकर दुबे आनन्द मालवीय एडवोकेट, सन्तोष तिवारी एडवोकेट ।

महोत्सव सचालक सर्वोदय महासमिति

ज्ञानचन्द्र इमलिया अध्यक्ष दि जैन पचायत, कुशल चन्द्र जैन एडवोकेट, मत्री दि जैन पचायत, सुन्दर लाल अनोरा प्रबन्धक क्षेत्रपाल जी, शील चन्द्र अनौरा, रमेशचन्द्र नजा प्रबन्धक अटा मन्दिर जी, हीरा लाल खजुरिया वरिष्ठ उपाध्यक्ष दि जैन पचायत, शिखर चन्द्र चौधरी पूर्व अधयक्ष, ज्ञानचन्द्र अलया पूर्व मत्री, अजय कुमार सराफ पूर्व प्रबन्धक अटा मन्दिर जी, हुकुमचन्द्र सिघई जाखलौन पूर्व प्रबन्धक क्षेत्रपाल जी प्रदीप कुमार नौहरकला वाले।

उप समितिया

वित्तमंत्री - रमेश चन्द्र (न्यू इन्डया ट्रासपोर्ट) सहमत्री पचायत, कोमल चन्द दादा (मडवारी वाले) ।

अर्थ व्यवस्ता समिति –बाबूलाल बरया, विमल कुमार नुना (प्रबन्धक नई बस्ती मन्दिर जी), देवेन्द्र कुमार कठरया (प्रबन्धक बड़ा मन्दिर) बाबूलाल वरौदा, कोमलचन्द्र मोदी, राजकुमार एडवोकेट, ज्ञान चन्द्र चिगलौआ (आडीटर पंचायत), प्रेस चन्द्र जमौरिया, शील चन्द्र सतभैया, वद्रीप्रसाद अमरा, चम्पा लाल सराफ (सदस्य प्रबन्ध समिति), प्रमोद कुमार पाय वाले, सन्तोष कुमार बर्तन वाले, मरेन्द्र कुमार गौने वाले ।

विद्युत व्यवस्था - जैनेन्द्र कुमार नजा एडवोकेट, सन्तोष कुमार वत्सल एडवोकेट, अभय जैन (प्रभा इलैक्ट्रीकल्स), जी डी मिश्रा एवं समस्त पदादिकारी एवं सदस्य गण रोटरी क्लब ललितपुर ।

जलव्यवस्था - सुभाष समैया, अरविन्द कुमार जैन (अरविन्द सैनेट्री), रतन चन्द्र पारौन वाले कनिष्ठ उपाध्यक्ष, नरेश सिघई, खेम चन्द्र बिसौली, राम रतन राठौर, जैन युवा जागृति के सभी सदस्य ।

प्रशासनिक कार्य व्यवस्था समिति - सुखलाल इमलिया, शील चन्द नजा, सतीष चन्द्र नजा एडवोकेट, मुन्नालाल सठयाना एडवोकेट, व्रजकिशोर जैन एडवोकेट ।

स्वास्थ्य एवं सफाई विभाग - नरेन्द्र कुमार (छोटे पहलवान) सयोजक महावीर जयन्ती, प्रकाश चन्द जैन एडवोकेट, डा अरविन्द कुमार चश्मा वाले डा राजेन्द्र कुमार जैन मुडरा वाले (सदस्य प्रबन्ध समिति), डा सुरेश चन्द्र खजुरी ।

आवास व्यवस्था समिति - सयोजक महेन्द्र कुमार चौधरी महेश कुमार अनौरा, महेन्द्र कुमार कटरया (कोषाध्यक्ष पचायत), सदस्यलखमी चन्द्र जौहरी, रवीन्द्र कुमार मिठया बानपुर, महेन्द्र कुमार चुनगी, बीर चन्द्र मामा, प्रदीप कुमार चढरऊ, प्रसन्न कुमार मिमरा, अनूप कुमार नजा, राजीव (मर्फी लागौन) ।

जुलुस व्यवस्था - सयोजक जिनेन्द्र कुमार सराफ एडवोकेट, छक्की लाल देलवारा, मन्नू लाल चिगलौआ, वीरेन्द्र कुमार अनौरा आनन्द कुमार जैन एडवोकेट सदस्य, राकेश कुमार सराफ एडवाकेट, सनत कुमार महौली, राजेन्द्र कुमार सतभैया देलवारा सनत कुमार खजुरिया, अनूप कुमार सराफ, राजेन्द्र कुमार वनवारा वाले ।

सेवा दल व्यवस्था - संयोजक राजमल बरया, जय कुमार चौधरी एडवोकेट, सदस्य गोकुल चन्द्र सागर वाले, सुरेश चन्द्र इमलिया, नरेन्द्र कुमार कडकी, नरेन्द्र कुमार चूनावाले, सुरेश चन्द्र सुनीता, अनिक कुमार बबडी, अनूप कुमार, वीरेन्द्र कुमार (कल्लू), विमल चन्द जैन ।

मेला सुरक्षा व्यवस्था - जनरल कैप्टन महेन्द्र कुमार मडवैया (सयोजक प्रबन्ध समिति), मैला कैप्टन अम्ब्रेस कुमार मनया, सन्तोष कुमार गोयल एडवोकेट (सह चुनाव अधिकारी), वीर सेवा संग, वीर व्यायाम शाला, वर्धमान सेवा संघ, जैनयुवा जाग्रती।

भोजन व्यवस्था - रतन चन्द्र स्टेशन मास्टर, शील चन्दर कडकी (प्रबन्धक बडा मन्दिर जी), शिखर चन्द्र मडवारी वाले, सन्तोष कुमार भानगढ, राजकुमार सादूमर, अरविन्द कुमार बडेरा, महेन्द्र कुमार गमचारी, हुकुम चन्द्र नौहर कुमार, प्रकाश चन्द्र

अध्यापक, कोमल चन्द्र कुल्फी वाले, उदय चन्द अध्यापक दैलवारा, डा चक्रेश।

मंच एवं वेदी व्यवस्था – सलिल कुमार नजा (डब्लू), सुरेन्द्र कुमार अनौरा, सनत कुमार मण्डी बमौरा, कैलाश चन्द मुनीम (प्रबन्धक नया मन्दिर जी), सुधीर कुमार गौना वाले, प्रद्युम्न कुमार पारौल वाले, देवेन्द्र कुमार सराफ, नरेन्द्र कुमार विरधा।

आपूर्ति भण्डारण समिति – गुलाब चन्द लागौन वाले, बाबू लाल चढरऊ वाले, हुकुम चन्द्र तनवारा वाले, वीरेन्द्र कुमार बछरावनी, दीप चन्द्र मसौरा, विनोद कुमार उमरिया, महेन्द्र कुमार सराफ, रतन चन्द कुम्हेडी।

प्रचार एवं प्रसार व्यवस्था – ऋषभ कुमार सतभैया (उपमत्री), अक्षय कुमार अलया, अशोक कुमार मुच्छाल, अभय कुमार सिघई, विजय धुर्रा अशोक नगर।

सूचना एवं प्रसारण विभाग – गोकुल चन्द्र सरोज (संयोजक महावीर जयन्ती) ज्ञान चन्द्र मदन, डा सुरेश चन्द्र बारी, यूथ क्लब के सदस्य।

गजरथ परिक्रमा मार्ग समिति – मानिक चन्द्र नायक (दादा), नरेन्द्र कुमार लागौन (आडीटर), अनिल कुमार जखौरा, अखिलेश कुमार गदयाना, धन्ना लाल देवरान, सतीश चन्द्र चौधरी, राकेश कुमार अनौरा, रतन चन्द्र जिजयावन, महेन्द्र कुमार मसौरा।

पूजन व्यवस्था समिति – प्रेम चन्द्र चौधरी, भैया लाल सिरसौद (प्रबन्धक नया मनिद्र जी), राज कुमार सिघई, प्रेमचन्द गौने वाले, नरेन्द्र कुमार गौने वाले, सोम चन्द्र खैरा, शील चन्द्र बछरावनी, कमलेश कुमार सिंघई, मिट्ठू लाल चढरऊ, वीरेन्द्र कुमार सिघई, विमल चन्द्र पटना, पुत्तू लाल पाय वाले, हल्कू लाल हिरावल वाले।

आप व्यवस्था समिति – श्री विद्यासागर परिषद ललितपुर, श्री स्यादवाद शिक्षण परिषद ललितपुर।

जूता चप्पल स्टैण्ड – न्यू वर्धमान सेवा संघ, चत्रसाल पुरा ललितपुर।

बाजार व्यवस्था समिति – वीरेन्द्र कुमार (विजयप्रेस), ऋषभ कुमार चढरऊ, शान्त कुमार एडवोकेट, प्रदीप कुमार सिंघई, प्रमेन्द्र कुमार बमोरावाले, डा अरविन्द कुमार चश्मा वाले, शान्त कुमार खैरा वाले, सनत कुमार मोदी, कैलाश नारायण चौरसिया, अरविन्द शर्मा, सुरेश चन्द्र (पारस साड़ी), अशोक कुमार करन एवं समस्त सदस्य सीमन्धर जिनालय मार्केट व्यापारी संघ।

ध्वनि एवं प्रसारण समिति – विजय कुमार सराफ एडवोकेट (चुनाव अधिकारी), धन्ना लाल मोदी, शील चन्द्र माता टीला, शिखर चन्द्र अनौरा, शिखर चन्द्र बिजौल वाले, प्रकाश चन्द सराफ।

अमानती सामान व्यवस्था – राजीव मोदी, अनुपम अनौरा, अभिषेक सिंघई अनौरा, अनुपम जैन मोहनी, संजय जैन, राजकुमार जैन, सुबोध जैन, आशीषसराफ, वीर क्लब ललितपुर।

मंगल कलश वितरण समिति – राम प्रकाश बछरावनी (ममता स्पोर्ट), राज कुमार मडावरा, अशोक कुमार कैलगुँवा, पदम चन्द्र मिठया, अनन्त कुमार सराफ।

वेदी निर्माण समिति – बालकृष्ण नायक थनवारा वाले, हरी सिंह ठाकुर, वृज किशोर सिंह एडवोकेट, कपूर चन्द्र लागौन, अनिल कुमार टोडे वाले।

समोशरण रचना समिति – सुनील कुमार इमलिया, प्रदीप कुमार अनौरा, सन्तोष कुमार इमलिया, संजय अनौरा, प्रकास पैरे वाले, पवन कुमार ठेकेदार, अरविन्द इमलिया, मनोज जैन, रवि बछरावनी।

आदर्श विवाह समिति – अनिल कुमार अलया एडवोकेट, विनोद कुमार विरधा (सयोजक आदर्श विवाह समिति पचायत), आनन्दी लाल नजा, सिद्धेश्वर चमौरिया, सुशील कुमार, दीपचन्द सिंघई (शिक्षा मंत्री पंचायत), महेन्द्र कुमार सतभैया, पदमचन्द सराफ, भाग चन्द कक्का (सदस्य प्रबन्ध समिति)।

सांस्कृतिक कार्यक्रम समिति – जिनेन्द्र कुमार विरधा, तारा चन्द्र मोहनी, सन्तोष कुमार वत्सल एडवोकेट, राजेन्द्र कुमार चौधरी, सुरेश चन्द्र जैन एडवोकेट चन्देरी, प्रकाश चन्द्र अनौरा, प्रमोद कुमार मुडरा, संजय मोदी खजुरिया, पवन कुमार (बबलु), गजेन्द्र कुमार सोंरया।

रथ व्यवस्था समिति – शिखर चन्द्र जैन सिघई रोड लाइन्स, निर्मल कुमार जैन (निर्मल ट्रांसपोर्ट), सलिल कुमार नजा (डब्लू) अजित कुमार जैन एडवोकेट (प्रबन्धक क्षेत्रपाल जी)।

निःशुल्क भोजन व्यवस्था समिति – महेन्द्र कुमार जैन, वीरेन्द्र कुमार जैन, जिनेन्द्र कुमार जैन, अजय कुमार जैन, विनीत कुमार जैन, राजकुमार रोडा, मुकेश कुमार, बबूल, राजीव जैन मरफी, नुपम जैन, देवेन्द्र जैन, राजेश साहू, राम प्रकाश संज्ञा, सन्तोष चौबे, राजकुमार थानगढ़, इन्दर यादव, राजकुमार अनौरा, चक्रेश जैन, बृजकिशोर साहू, चक्रेश जैन गोले, विवेक कुमार गुप्ता, ऋषभ जैन, अक्षय दिवाकर, अजय कुमार सिंघई, नरेश कुमार सिंघई एवं समी सदस्य नव युवक गल्ला व्यापार मण्डल नवीन गल्ला मण्डी ललितपुर।

भगवान गोमटेश झांकी समिति – गिरीश कुमार, मुकेश कुमार, पुष्पेन्द्र कुमार, राजीव चौधरी, सुशील जैन, सौरभ जैन

(विक्की), जिनेन्द्र कुमार, प्रदीप कुमार जैन, पकज जैन, संजय जैन, आनन्द जैन, अनुपम चौधरी।

त्यागी वृति एवं विद्वान अतिथि-सत्कार समिति- अनिल कुमार (विजय प्रेस), अखिलेश कुमार टैंगना, श्रीमती सुशीला बाई (बड़ा मंदिर), वीरेन्द्र भईया, अविनाश सिंघई, रमेश बड़कुल, मधुर समैया, अरविन्द धनगौल, अरविन्द रजपुरा, अकलक (विजय प्रेस), कैलाश चन्द्र, आनन्द प्रकाश, पवन सैदपुर, प्रदीप जैन, कमल नौहर कला, मनौज जैन, अशोक दैवरान, अशोक केलगुवा, निहाल (चन्द्रेश), सुरेन्द्र पण्डित, नरेन्द्र कुमार जैन, अशोक चौधरी, सुमत कुमार इमलिया, रवि बछरावनी,सुनील समैया, विमलकुमार ऐरै वाले, राकेश कुमार टैनगा, मिट्टू लाल चढरऊ, श्रेयान्स गदयाना,सुनील जमादार, शान्त कुमार खेरा, अरुण कुमार, सिरीश कुमार, अनूप कुमार, विकास कुमार, अनुराग जैन, राकेश जैन, सुनील जैन, प्रदीप जैन, मनोज जैन, आदिनाथ महिला मण्डल।

व्यक्तिगत चिकित्सक सेवा संगठन - डा शिव नारायन चौबे, डा निर्मल चन्द्र जैन, डा आर पी श्रीवास्तव, डा के सी चौधरी, डा नरेन्द्र जैन, डा अनुराग चोधरी, डा अशोक सक्सेना, डा अशोक जैन, डा सुनील जैन, डा सुधीर नजा, डा राजकुमार जैन, डा महेन्द्र कुमार डा अरविन्द दिवाकर, डा सतीश सुडेले, डा सुरेश कुमार खजुरिया, डा राजेन्द्र कुमार मुडरा, डा अमर चन्द्र जैन, डा अनिल कुमार जैन, डा राजेश शर्मा, डा राम गोपाल साहू।

यातायात समिति

संयोजक -टीकम चन्द्र अविनाश कुमार (मामा-भान्जा), नेमी चन्द्र डोंगरा (सदस्य प्रबन्धक समिति)

सदस्य - निर्मल कुमार जैन पारौल, मदन लाल सौरई, जय चन्द्र जैन सौरई, धर्म चन्द्र परिवार, पंकज जैन विरधा, अशोक खजुरिया, राजीव खजुरिया, करतार चन्द्र जैन, जगदीश शरण अग्रवाल, रमेशचनद् साहू, अब्दुल हफीज, खेम चन्द्र चौरसिया, घनश्याम दास चौरसिया, सूरज वंशी लाल अग्रवाल, कुन्दन लाल साव, नरेन्द्र कुमार कुम्हेडी, प्रेम नारायन सोनी, महरौनी, डा राज कुमार जैन महरौनी, अजय कुमार जैन, अब्दुल हबीब, मुहम्मद नईम, महेश कुमार साहू,सुनील शर्मा, सुरेन्द्र नारायन शर्मा, विनय कुमार साडूमर, महेन्द्र कुमार साडूमर, जिनेन्द्र कुमार टडैया, मुहम्मद मूसा।

स्वागत समिति

निर्मलचन्द, शीलचन्द, विनोद कुमार जैन, महेन्द्र कुमार, अनिल कुमार, दया चन्द जराखली, केवलचन्द जैन स्टेट बैंक, राजेन्द्र कुमार सतभैया, बाबूलाल जैन, बाबूलाल हिरावल, उत्तम चन्द जैन सतरबौस, अवनीश कुमार बुखारिया, दरबारी लाल जैन, विजय कुमार एडवोकेट, पदमचन्द वैद्य, सुभाषचन्द्र जैन एडवोकेट, सुरेन्द्रकुमार जैन, मुन्नालाल अशोक कुमार स्टेट बैंक, गुलाबचन्द बड़ेबाबू, लक्ष्मी चन्द मामा, गुलाबचन्द सिंघई, अशोक कुमार जैन, वीरेन्द्र कुमार सिंघई साइकिल, प्रमोद कुमार मुड़रा वाले,प्रेमचन्द सराफ, अशोक कुमार जैन एडवोकेट, ऋषभ कुमार जैन, हुकुमचन्द जैन, सन्तोष कुमार जैन आर एम एस सुधीर कुमार जैन, सुरेश बाबू जैन, आनन्द कुमार जैन, हुकुमचन्द जैन, जय कुमार जैन, प्रवीण चौधरी, विरधी चन्द, विजय कुमार, शादीलाल एडवोकेट, पदम चन्द जैन, नरेन्द्र कुमार जैन, सुभाषचन्द जैन, ऋषभ कुमार, राजकुमार, अशोक कुमार, कोमल चन्द उमरिया वाले, सुरेशचन्द जैन, कोमलचन्द जैन, सुरेश कुमार, सुनील कुमार सतभैया, चम्पालाल पवैया, कोमलचन्द वन्ट वाले, जैनेन्द्र कुमार टडैया प्रेमचन्द जैन विरधा वाले, जिनेन्द्र कुमार जैन, शान्त कुमार जैन, कुन्दनलाल जैन, पदमचन्द जैन, श्रीमती गुणमाला जैन, श्रीधर चौधरी, श्रीमती क्रान्तिबाई, कुन्दनलाल रमेशचन्द जैन सतभैया, जीवन कुमार जैन, सुरेश कुमार जैन, शिखरचन्द जैन, चन्द्रभान जैन बडकुल, अशोक कुमार, ताराचन्द जैन, पवन कुमार जैन, मुकेश कुमार बुखारिया, सिघई कमलेश कुमार, ललित कुमार जैन, सुमेरचन्द बूचा वाले, अरुण कुमार जिजयावन, मुलायमचन्द मिठया, सन्तोष कुमार खजरा वाले, ऋषभ कुमार कल्ले, धन्यकुमार जैन, अरविन्द कुमार चौधरी (बब्बू) वीरेन्द्र कुमार सर्राफ, प्रभात कुमार सराफ,सुरेन्द्र कुमार टडैया, ऋषभकुमार टडैया, कैलाश चन्द्र कवाडी, अजय कुमार टडैया, मुन्नालाल बडघरिया, अशोक कुमार टडैया, पदमचन्द जैन एडवोकेट, सन्तोष कुमार जैन, प्रदीपचन्द जैन, सुशील कुमार जैन, राजीव समैया, राकेश कुमार जैन, कमल कुमार जैन, कपूरचन्द बिल्ला वाले, कपूरचन्द जैन, सुनील कुमार सिंघई, शीलचन्द मोदी, शिखरचन्द जैन, मुन्नालाल जैन, हुकुमचन्द जैन, मुकेशचन्द सराफ, विजय कुमार जैन, अनिल कुमार जैन, दिनेश कुमार जैन, महेन्द्र कुमार सिंघई एडवोकेट, सनत कुमार घी वाले, कुलदीप जैन, अजय कुमार जैन, राजकुमार बुढ़वार वाले, राजकुमार खिरिया वाले, अरविन्द कुमार चौधरी, स्वतन्त्र कुमार जैन, राजेन्द्र कुमार चौधरी, शिखरचन्द जैन, अरविन्द कुमार, नरेन्द्र कुमार चौधरी, सुनील कुमार टडैया, पदमचन्द जैन, अक्षय कुमार टडैया, शीलचन्द जैन, राजकुमार बूना वाले, उदयचन्द सराफ, कल्याणचन्द जैन बामौर, जैनेन्द्र कुमार जैन एडवोकेट, सरसचन्द जैन, लालचन्द जैन, शीलचन्द जैन, महेन्द्र कुमार जैन, सन्तोष कुमार जैन, सत्येन्द्र कुमार सिंघई, कैलाशचन्द मिठया, निहालचन्द जैन, सुनील कुमार हकरासी, मगनलाल जैन,शीलचन्द सिंघई, नेमी कुमार जैन एडवोकेट, देवेन्द्र कुमार जैन एडवोकेट, संतोष कुमार जैन डोंगरा, सुरेश कुमार जैन एडवोकेट, महेन्द्र कुमार चुनगी। ❑❑❑

चतुर्थ खण्ड

पद्य मञ्जरी

अनुक्रमणिका

जन जन के हृदय पटल पर नव गजरथ

समता, शान्ति, विश्वमैत्री का गजरथ महा प्रतीक !

(१)

भारत का यह धर्म-महोत्सव है कितना प्राचीन
परम्परा में ढला हुआ भी लगता नित्य नवीन,
भूत-भविष्यत्-वर्तमान का यह चेतन अभियान
कभी समय के कर न कर सके जिसकी क्षमता क्षीण !
परिवर्तन के पथ ने बदले कितने अगणित रूप
किन्तु मनुजता ने पकड़ी इसके पहियों की लीक !
समता, शान्ति .

(२)

रथ सम्पूर्ण समाज, और गज मानो स्वयं विवेक
ज्ञान सारथी, संयम के हाथों अंकुश की टेक,
त्याग-तपस्या की गोदी, जिसमें राजित जिनदेव
लाखों ध्यान-दृष्टियाँ करतीं मस्तक का अभिषेक !
रथ-फेरी देने को आई भव-फेरी से मुक्ति-
जिनवाणी माता का है यह कितना कथन सटीक !
समता, शान्ति . . . ..

(३)

धन्य-धन्य आचार्य महामुनि करते जन-कल्याण
धरती पर अवतरित कर गये प्रभु का महाविमान,
भक्ति-भावना के सम्मुख हैं विषयाधिक सुखहीन
इन्द्राधिक पदवी से बढ़कर आत्मा का उत्थान !
राग-द्वेष, अन्याय, असंयम से पाते उद्धार –
यह मंगल-आयोजन देता मानवता को सीख !
समता, शान्ति . .

(४)

नौ पदार्थ, नौ ऋद्धि-सिद्धियों का पाते वरदान
जिनप्रतिमा, जिनवाणी जिनमंदिर का करते ध्यान,
नौ कषाय-बंधों के फंदों का सुलझाते जाल
नौ अखंड अंकों में गुम्फित नव गजरथ का मान !
भव-समुद्र की भँवरों में से ले जाता उस पार –
धर्म-साधना का है अद्भुत यह जहाज रमणीक !
समता, शान्ति ....

(५)

तीन खंड में सिमटा तीनों लोकों का विस्तार,
सत्य, अहिंसा और प्रेम के उड़ते केतु अपार,
जयकारों की प्रतिध्वनियों से गूँजे जब आकाश
स्वर्ग उतर आता है मानो धरती पर साकार !
निकल पड़े हैं धर्म-विजय को स्वयं त्रिलोकीनाथ –
नतमस्तक है छः खंडों का अधिपति सहित अनीक !
समता, शान्ति . . ..

१ केतु = झंडा !
२ अनीक = सेना !

विश्व का एक इतिहास : नवगजरथ

रचियता गोकुल चंद "सरोज"

सौ सौ सूरज दे सकी जो, ऐसी "किरण" यहा है,
मिला न जिसको कही , सहारा, उसको "शरण" यहा है ।
जन्म् - मरण का भूला मानव , अब तक "पार" न पाया
जिसका सूरज कभी न डूबे, ऐसा "तरण" यहा हैं ॥
कील हिली न, फरका पत्ता, ऐसी फिरी रथो की फेरी,
पुण्योदय जब फलता प्यारे , बने कार्य फिर लगे न देरी ॥
समय प्रतीक्षा करी नगर ने , सुधा सिन्धु मुनिराज पधारे
पूजा बिन थी प्रतिमा सारी, सूर्य मत्र से भय उजयारे
नव गजरथ की अदभुद झाँकी, तीन लोक का आर्कषक थी
देवो ने भी आकर भइया सुधा सिन्धु के चरण पखारे
सत्य अहिसा धर्म हमारा, जैन धर्म की , बाजी मेरी
पूण्योदय जब फलता प्यारे.....
क्रूर काल के प्रहारो से, कभी न कोई बच पाया है,
बिना समय से कर्म न होता, धर्म ग्रन्थ ने यह गाया है ।
उपादान जब अगड़ाई ले, निमित्त सकड़ो मिल जाते हैं
काल लब्धि ने सुधा सिन्धु को, ललितनगर में पधराया है ।
साधक के घर स्वय साधना , आकर सदा द्वार पर ठहरी
पुण्योदय जब फलता प्यारे.....
नव गजरथ का दृश्य मनोहर, विश्व बध बन गूज रहा है
जैन धर्म के पृष्ठ अनोखे , जन - जन जिनको पूज रहा है,
स्याद्वाद की शैली प्यारी, अनेकान्त् का ध्वज लहराता
जियो और जीने दो सब को, मानवता पथ सूज रहा है ।
भटक रही थी आतम जिनकी, महावीर ने आकर टेरी
कील हिली, न फरका पत्ता, ऐसी फिरी रथों की फेरी
पुण्योदय जब फलता प्यारे, बने कार्य फिर लगे न देरी

"अतिशय होगा इस धरती पर"

रचयिता कैलाश जैन
कवि एवं गीतकार
इन्दौर

चालो चालो ललितपुर चालो रे । चालो रे चालो रे ॥
पहली बार विश्व मे ऐसा अनुपम अवसर आया है ।
नव गजरथ के उत्सव ने सबके मन को लुभाया है ॥
चालो चालो ललितपुर चालो रे । चालो रे चालो रे ॥

पचकल्याणक प्रतिष्ठा झूमेगे नाचे गाएगे ।
तीर्थकर बनते देखेगे जीवन सफल बनाएगे ।
चालो चालो ललितपुर चालो रे ।चालो रे, चालो रे ॥

गुरुवर विद्यासागर जी के आशीषो का प्रताप है ।
सारे मंगलकार्य हो रहे मानो अपने आप है ॥
चालो चालो ललितपुर चालो रे । चालो रे, चालो रे ॥

शस्य श्यामला धरा पे धारा वर्षायोग मुनिराज ने ।
प्रबल प्रेरणा उत्सव की दी सुधासागर महाराज ने ।
चालो चालो ललितपुर चालो रे । चालो रे, चालो रे ॥

इसी धरा की धूल मे जन्मी नम्र बिनम्र, अतुल्यमती ।
पूजा कर लो इस धरा की इसकी उतारो आरती ॥
चालो चालो ललितपुर चालो रे । चालो रे, चालो रे ॥

अतिशय होगा इस धरती पर प्रभु की जयजय कार से ।
विश्वशांति त्रिकाल होगी तीर्थकर अवतार से ॥
चालो-चालो ललितपुर चालो रे । चालो रे, चालो रे ॥

रथ में बैठे हैं भगवान रथ हांको हौले
रथ हाको होले होले लगे न हिचकौले
गाओ जिनवर के गुणगान रथ हाँको हौले-हौले

1 ये गजरथ का पुण्य महोत्सव
इसकी महिमा भारी
धूम धाम से आदिनाथ की
निकली भव्य सवारी
आदिनाथ ने आज यहाँ फिर पाया केवल ज्ञान
हो रथ में बैठे हैं भगवान रथ हांको हौले-हौले

2 नव गजरथ में णमोकार है
चौबीसों जिन राई
आदिनाथ श्री महावीर
श्री शान्तिनाथ सुखदाई
बने इन्द्र इन्द्राणी देखो धरती के इन्सान
औ रथ में बैठे हैं भगवान रख हाकों हौले-हौले

3 पूज्य सुधासागर जी ने
गजरथ का मार्ग दिखाया
श्री गम्भीर सागर जी ने
पूरा हाथ बटाया
श्री धर्म सागर जी ने
पूरा हाथ बटाया
आचार्य विद्यासागर जी है जन जन के सम्मान
औ रथ में बैठे हैं भगवान रथ हांको हौले-हौले

4 विद्यासागर जी के पावन
आशीष की पावन छाया
धन्य यहाँ के लोग
कि जिनके मन में विचार यह आया
ललित हुई ललितपुर नगरी हुई स्वर्ग समान
ओ रथ में बैठे है भगवान रथ हांको हौले-हौले

श्री पंचकल्याणक स्तवन

श्री पद्मिनेन्द्र के पंचकल्याणक का यह उत्सव प्यारा,
करता है भव का किनारा ।
श्री गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष का देखो उत्सव सारा,
करता है भव का किनारा ।।
इस ससार अनादि वास को जिसने सतत् मिटाया,
सम्यक्त सहित सोलह कारण को जीवन में ध्याया
जीवन मे ध्याया ।।
अपने ही समान जगत जीव सब मार्ग बताया प्यारा,
करता है भव का किनारा ।। श्रीपद्मिनेन्द्र ।।
हम भूल रहे है शिवपथ नित ही आकर हमे बताओ,
मोक्ष प्राप्त करने वाला सद्ज्ञान हमें दे जाओ,
सद्ज्ञान नाथ दे जाओ ।।
हम भक्त शरण मे तुम्हारे आये हरो अज्ञान हमारा ।
करता है भव का किनारा ।। श्री पद्मिनेन्द्र ।।

शुभ आशीष यह मिले नाथ हम भी कब अवतार पाये
ससार वास सब मिटे हमारा आतम ज्योति जगावे ।
हम आतम ज्योति जगावे ।
नर से नारायण बनकर के पावें शिव सुख सारा
करता है भव का किनारा ।। श्री पद्मिनेन्द्र ।।

सुप्रभात में देवियों द्वारा मंगल-गान

अर्हन्त सिद्धाचार्य पाठक साधु पद वंदन करो,
निर्मल निजातम गुण मनन कर पाप ताप शमन करों
अब रात्रितम विघटा सकल यह प्रात होत सुकाल है
अब भानु उदया चल पै आयो नभ कियो सब लाल है । १ ।

पक्षी मनोहर शब्द बोले गंध पवन चलत है
चहु ओर है भगवान सुमरण वृक्ष प्रफुल्लित गात है । २ ।

बाजे बजे रमणीक माता गीत मंगल हो रहे
तजिये शयन उठ जगत जननी बीनती हम कर रहे । ३ ।

है समय सामायिक मनोहर ध्यान आत्म कीजिये
है कर्म नाशन समय सुन्दर लाभ निज सुख लीजिए । ४ ।

माता गीत (दादरा)

मैंने देखे सखी सोलह सपने, मैंने देखे
शुक्ल सुगज ऐरावत देखे, मेघ समान सुगर जघने ।
मैंने देखे सखी सोलह सपने, मैंने देखे ।।

द्वितीय सफेद बैल वृद्ध देखा, बैल वृद्ध देखा ।
उन्नत कंधा शब्द भने ।। मैंने देखे ।।

तीजे सिंह धवल शुभ देखा, धवल शुभ देखा ।
कधा लाल सुवर्ण बने ।। मैंने देखे ।।

सिंहासन स्थित लक्ष्मी देखी, हो लक्ष्मी देखी ।
नाग सडधर न्हवन सने ।। मैंने देखे ।।

पाँचे फूलमाल है गधित, माल है गधित ।
भ्रमर भणन गुण नाथ तने ।। मैंने देखे ।।

छट्टे शशि पूरन तारायुत देखा, तारायुत देखा ।
अमृत झरता जगत तने ।। मैंने देखे ।।

सप्तम सूर्य निशातम हारी, निशातम हारी ।
पूर्व दिशाते उदित भये ।। मैंने देखे ।।

सुवरण कलश दोय जल पूरण, दोय जल पूरण ।
कमल पत्र ते ढके सने ।। मैंने देखे ।।
नवमे मीन युगल कर रमते, युगल कर रमते ।
देखे चचल भाव जने ।। मैंने देखे ।।

दसवे भ्रमर रमण युत सरवर, रमण युत सरवर ।
कमल गंध युत लहर ठने ।। मैंने देखे ।।

सागर दर्पण सम निर्मल लख, हाँ निर्मल लख
उठत उतग तरग धने ।। मैंने देखे. ।।

बारम सिंहासन सुवर्णमय हाँ सुवर्णमय ।
सिंह पीठमणि जड़ित बने ।। मैंने देखे ।।

तेरम स्वर्ण विमान रतनमय, विमान रतनमय ।
भेजत सुर अनुराग धने ।। मैंने देखे ।।

चौदम नाग भवन भू उड़ते, भवन भू उड़ते ।
देखा काति अपार बने ।। मैंने देखे ।।

पन्द्रम रतन राशि धुति पूरण, राशि धुति पूरण ।
दु ख दरिद्र ससार हने ।। मैंने देखे ।।

सोलम धूम रहित अग्नि शिखा हो, अग्निशिखा हो ।
कर्म बध जल जात घने ।। मैंने देखे ।।

उज्ज्वल वृषभ स्वर्णमय आयो, स्वर्णमय आयो ।
मुख प्रवेश करत अपने ।। मैंने देखे ।।

ऐसे स्वप्न कभी नहि देखे, कभी नहि देखे ।
अचरज होत हृदय अपने ।। मैंने देखे ।।

हे नाथ एक अजब घटना सुनिये

हे नाथ पिछली रात मे, हम स्वप्न सोलह देखिया ।
गत बैल सिंह सुदेवि कमला, न्हवन करता पेखिया ।
द्वय पुष्पमाल सुचद पूर्ण, सूर्य सुवर्ण कलश दो ।
युगमीन सरवर कमल युत, सागर सु सिंहासन भलो ।
रमणीक स्वर्ग विमान उतरत, नाग भवन सुआवतो ।
सुरतन राशि सुकाति पूरन, अग्नि धूम न पावतो ।।

राजा श्री नाभिराय द्वारा स्वप्नों का फल

सुनो प्रिये मै तुम्हे सुनाऊँ स्वप्नो का फल प्यारा है ।

धर्म मूर्ति तीर्थंकर सुत हो, जागा भाग्य हमारा है ।

गज देखन से उत्तम सुत हो, वृषभ से जग गुरू होवेगा

सिंह देखने से पराक्रमी माला से तीर्थंकर होवेगा

कमला न्हवन से न्हवन गिरी करे देव मिल प्यारा है,

धर्म मूर्ति तीर्थंकर सुत होगा, जागा भाग्य हमारा है ।

शशि पूरण बतलाता ऐसो, सर्व जगत मे शाति भरे

सूर्य प्रतापी कुंभ युगल से निधि पति बन भडार भरे ।

सरवर अवलोकन से होगा, सर्व गुणी भण्डारा है ।

धर्म मूर्ति तीर्थंकर सुत हो, जागा भाग्य हमारा है ।

मीन युगल को देखा तुमने आनद कारक होवेगा

सागर का फल यह प्रिय जानो, सर्व ज्ञान मय होवेगा

सिंहासन से प्रजापालक बन नीतिवत जग प्यारा है ।

धर्म मूर्ति तीर्थंकर सुत हो जागा भाग्य हमारा है ।

स्वर्ग विमान स्वर्ग से आये, नागेन्द्र अवधि ज्ञानी होगा

रत्न राशि से सर्व गुणो का वह अधिकारी सुत होगा

निर्धूम अग्नि से कर्म जला क्रिया शुद्धि चिदानन्द प्यारा है

धर्म मूर्ति तीर्थंकर सुत हो, जागा भाग्य हमारा है ।

वृषभ प्रवेश से वृषभनाथ सर्वार्थसिद्धि तजकर आये

करे महोत्सव सुर सुरपति मिल निधि पति रतन सुवरषाये

धर्म कीर्ति तीर्थंकर सुत हो, जागा भाग्य हमारा है ।

पंचकल्याणक के पंच पुष्प

राजेन्द्र चौधरी, अशोकनगर

गर्भ- कल्याणक

गर्भ- कल्याणक आ गया,
देखो देखो जी आनन्द छा गया ॥टेक ॥
स्वर्गपुरी से देवगति को तजकर
प्रभु ने नरगति पाई ।
धन्य- धन्य मरूदेवी माता
तीर्थंकर की माँ कहलाई ॥
अयोध्या नगर में आनन्द छा गया ॥१ ॥
सोलह सपने माँ ने देखे
मन मे अचरज भारी है
नाभिराय से फल जब पूछा
उपजा आनन्द भारी है ।
तीन भुवन का नाथ आ गया ॥२ ॥
अन्तिम गर्भ हुआ प्रभुजी का
अब दूजी माता नही होगी ।
शुद्धातम के अवलम्बन से
आत्मसाधना पूरी होगी ।
ज्ञान- स्वभाव हमे भा गया ॥३ ॥

आया पंच- कल्याणक महान

आया पच- कल्याणक महान,
हिल मिल नृत्य करो ।
ऋषभ कुवर का जन्म हुआ है,
तीन लोक आनन्द हुआ है ॥ टेक ॥
हो पिता नाभिराया के
अगना में आज ।
हिल मिल नृत्य करो,
आया पच- कल्याणक ॥१ ॥
इन्द्र कुबेर स्वर्ग से आये
हीरा रत्न पुष्प बरसाये
मरूदेवी के अगना में आज,
हिल मिल नृत्य करो ॥ २ ॥
निरखत प्रभु छवि मन हरषाये,
इन्द्र ने नेत्र हजार बनाये
गाओ सब मिल मगल- गान
हिलमिल नृत्य करो ॥ ३ ॥
भाई भी आओ बहना भी आओ,
पचकल्याणक की पूजा रचाओ,
करो आतम का अब कल्याण,
हिलमिल नृत्य करो - ॥ ४ ॥

दीक्षा कल्याणक

हर कोई नीलाजना है और जन्म मृत्यु नित्य है,
नश्वर इस ससार के नश्वर सारे कृत्य हैं
कल्याण से पहले कल्याणक होते हैं शुद्ध आत्मा के,
गर्भ,जन्म फिर राजपाट फिर दीक्षा ही नित्य है
१ डोली ले चले सयमी, सद्पुरुष,
राजा है, रक है, पर मानव है
अब कोई नही पितु, मात, भ्रात
और न ही कोई मित्र है ।
२ पचमुष्ठि केश लोच किये है,
मन का तन कोई रिश्ता नही,
आत्म का ध्यान किया वर्षो
अब मोक्ष न उन्हें अनित्य है ।
३ सोना चादी वस्त्र आभूषण,
ये नही मुनि आहार विधान,
नवधा भक्ति से देते आहार
ऐसा ही दान पवित्र है ।
४. बड़ का वृक्ष है बहुत बड़भागी,
चैत नवमी को जहां दीक्षा धारी,
कचन सी काया में बैठे हुये
कंचन को किया पवित्र है ।

केवल ज्ञान कल्याणक

सूरज सा सम्पूर्ण है केवल नहीं है केवलज्ञान
सर्वज्ञ है, मर्मज्ञ है और प्रज्ञ है ये केवलज्ञान
दिख जाते तीनों लोक, लोक में हो जाता केवलज्ञान,
आत्म ध्यान, आत्म ज्ञान,
आत्म दर्शन है केवलज्ञान
१ एकादशी फागुन की फागुन में रग गई,
धर्म की ध्वजायें धर पर फहर गई
लोकालोक दिखे दृष्टी मे, तुम्हारी है महान
२ नक्षत्रो ने छत्र लगाकर ली प्रभु शरण,
बारह सभाओं से सज गया समवशरण
प्रकृति को इस कृति से मिल गया अनुपम वरदान
३ गणधर है चौरासी सब है रिद्धिधारी,
आत्मज्ञानी, आत्मध्यानी सब है उपकारी
महादानी, केवलज्ञानी, मोक्षगामी हो दयावान,
४ वृषभसैन, ब्रहमी सग श्रावक तीन लाख,
समवशरण का काल अब
कुछ दिन कम एक लाख
ध्यान रहे न ध्यान का भी ऐसा है केवलज्ञान ।

मोक्ष कल्याणक

पद्मासन से पाया परम पद
बन गये हो तुम भगवान,
कल-कल जहा बहती हैं नदियां,
है पर्वत कैलाश महान
गर्भ से मोक्ष तक हुए
कल्याणक फिर हुआ है कल्याणक
माघवरी चौदस के शुभ दिन
छोड़ दिया ये सारा जहान
१ संहनन था सो सिद्ध बने तुम,
फिर सिद्ध शिला पर पहुचे सिद्ध
लख चौरासी योनि छूटी
अष्ट कर्मों का हुआ निदान
२. बिखर गया हवा में शुद्ध शरीर,
परमाणु शुद्ध जैसे सागर क्षीर,
फैली सुगन्ध शरीर की
सबमें उड़ गया कपूर समान
३ सृष्टा तुम असि मसि कृषि से,
फिर बने ऋषि तुम ऋषियों के
दे कर्म ज्ञान, कर कर्म ज्ञान,
कर्मों को छोड़ पाया निर्वाण
४ जीवन तुम्हारा जैसा पवित्र,
ऐसा ही हो हमारा चरित्र
हम आत्म में ढूढे आत्म को
और करो आत्म संधान ।

रथ

एक नही दो नही सजधज के चल रहे नौ नौ रथ
उड़े रग गुलाल, रगे है ललितपुर के सारे पथ ।
१ केशरिया रग में रग सारे नर नारी,
गरबाकरे, गान गायें, सिर पर रखे है मगल घट
२ गजरथों में विराजे, वीतराग प्रभु,
भाग्यशाली है हाथी चले वे भी ठुमकत ठुमकत
धरती पर धरती से सुधा बरसाते,
सुधासागरजी ने शास्त्रों से सुधा को लिया है मथ
समयसार का सार समझ सबको समझाया,
सबने समझकर सत्कर्मों की मुनिवर से ली है शपथ
श्री गभीर और धैर्य जी स्वय में रम,
गजरथ के आगे,मुनिवर के पीछे,
शिवमार्ग पर चलत

कल्याणक पांच

ऐलक श्री 105 रयणसागर जी महाराज

तीर्थ शिरोमणी तीर्थकर के,
होते है कल्याणक पाँच ।
जगमग जगमग रत्न बरसते,
दिव्य देव गण करते नॉच ।
अनुपम महिमा अदभुत वैभव,
परम आलौकिक उत्सव आज ।
उस उत्सव मे छिपा हुआ है,
विश्व शान्ति का मगल राज ॥
गर्भ जन्म तप ज्ञान मोक्ष मे ,
होते है कल्याणक पॉच ॥
नही सभी के होते है ये
आओ मनाये हम सब नाच ।
देव तरसते जिस सयम को,
पाते है उसको तीर्थंकर ।
उनका वदन करते है हम,
जोड़ भाव से अपने कर ॥
प्राण प्रतिष्ठा सूर्य मन्त्र से,
करते है सत् गुरूवर आज ।
चलो देख ले चलकरके हम,
तीर्थकर कल्याणक पॉच ॥

इक श्वाँस न अपनी कर पाये

ब्र विमलेश बहिन

ब्रागमी विद्या आश्रम 'सागर'

1 जो श्वाँस गयी न वापिस होगी
झड गया पात ज्यों डाली से
जो छूट चुकी थी जीवन से
न पुन वह जीवन की होगी
श्वाँसो पर श्वासे खो डाली
इक श्वाँस न अपनी कर पाये ॥१॥

2 इक पुण्य सितारा ऊगा है
जीवन रूपी विस्तृत नभ मे
पल पल झिलमिल होता-होता
अब अस्ताचल की ओर चला
जाते-जाते जाने किस क्षण
खुद को जाने बिन छिप जाये
इक श्वाँस न अपनी क्रर पाये ॥२॥

3 जगती पर कितने बसत गये
कितने पतझड़ भी बीत गये
कैसे-कैसे कितने-कितने परिवर्तन इसने कर डाले
लेकिन हम कैसे पत्थर है
फिर भी न खुद को बदल पाये
इस श्वाँस न अपनी कर पाये ॥३॥

❑❑❑

पंचम खण्ड

चरण रज माथे धरू

अनुक्रमणिका

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज की विभिन्न मुद्राऐं आगम परिपेक्ष में

आचार्य भक्ति करते हुए मुनि श्री सुधासागरजी ससंघ

कार्योत्सर्ग मुद्रा मे मुनि श्री सुधासागरजी

शुद्धि करते हुये मुनि श्री सुधासागरजी

मंदिर मे देव वन्दना करते हुये मुनि श्री सुधासागरजी

आहार के पूर्व सघस्थ साधुओ को

आशीर्वाद देते हुए मुनि श्री

आहार के लिये जाते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

मुनि श्री का पडगाहन करते हुए श्रावक

चौके मे मुनि श्री की नवधा भक्ति का दृश्य

भोजन सामग्री मुनि श्री को अवलोकन कराते हुये श्रावक

आहार के समय

केशलोच करते हुये मुनि श्री सुधासागरजी
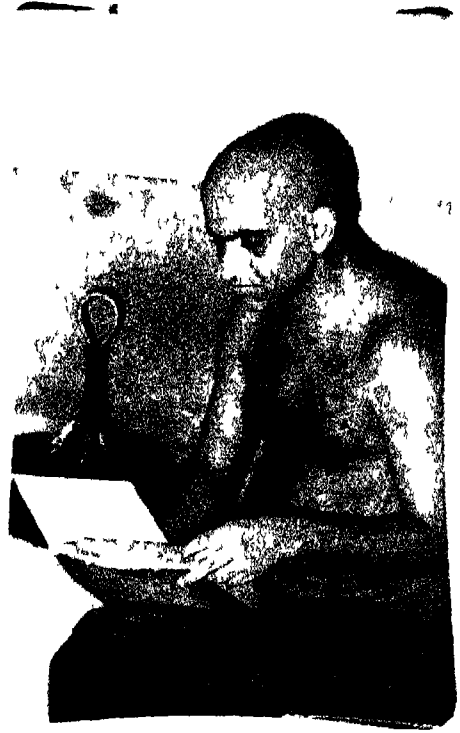
कायोत्सर्ग मुद्रा में मुनि श्री सुधासागरजी

सामायिक पूर्व चतुर्दिग वन्दना करते हुए
मुनि श्री सुधासागरजी

स्वाध्याय करते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

प्रवचन देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी

मुनि श्री सुधासागरजी ससघ (क्षु गंभीरसागर जी क्षु धैर्यसागरजी एव ब्रहमचारीजी)

पोच्छिका परिवतन का दृश्य (आजीवन ब्र व्रत लेकर श्रावक गण मुनि श्री को नवीन पिच्छिका प्रदान करते हुए

पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज की आध्यात्मिक यात्रा एवं [illegible]

[illegible]
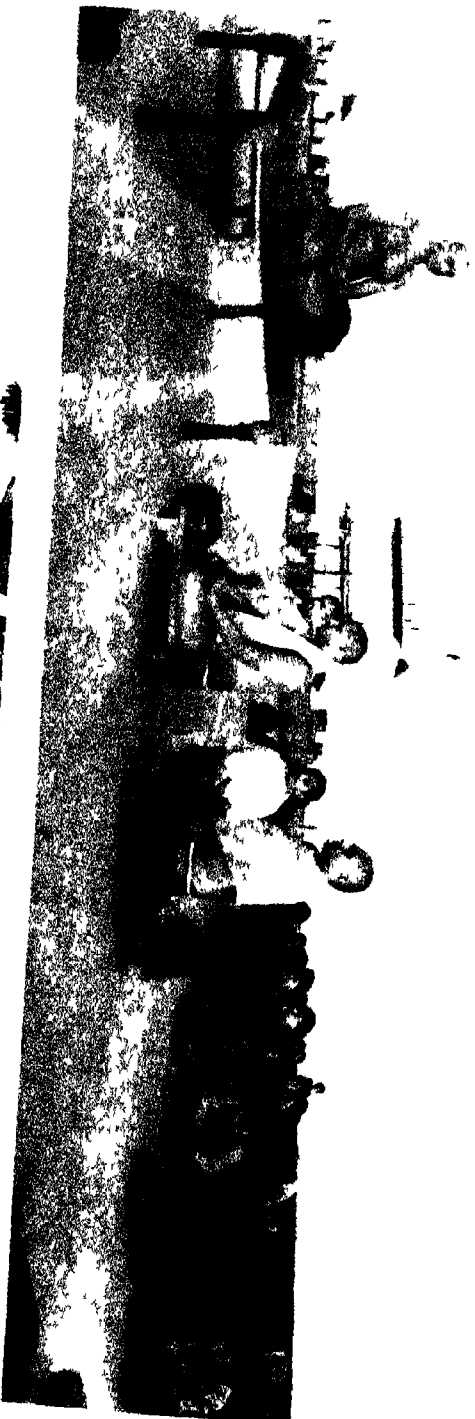
बुन्देलखण्ड मे विन्ध्य-गिरी की सुरम्य पहाड़ियो के बीच स्थित एक हरे भरे उद्यान के समान स्थल अतिशय क्षेत्र ईश्वर वारा है । इस पहाड़ी पर भगवान श्री शान्तिनाथ कुन्थुनाथ तथा अरहनाथ की ९-९ फुट उत्तग अतिशयकारी प्रतिमायें विराजमान है तथा पहाड़ी की तलहटी मे ग्राम ईश्वर वारा वसा हुआ है।

इसी ग्राम ईश्वर वारा मे सन् १९५६ मे, मोक्ष सप्तमी के दिन प्रत्यूषकाल मे सारी दुनिया को प्रकाशित करने वाला सूर्योदय हुआ अर्थात् एक वालक का जन्म हुआ जिसका नाम जय कुमार रखा गया । सारा परिवार एव ग्राम खुशहाली से झूम उठा तथा रिश्तेदारो एव ग्राम वासियो की वधाईयाँ आने लगी । वड़ो के शुभाशीष एव महिलाओं के द्वारा मगलगीत मुखरित होने लगे ।

वालक जय कुमार माता-पिता के दुलार मे, प्यार की छाया मे वढ़ता हुआ किशोर एव कुमार अवस्था को प्राप्त हुआ एव लौकिक शैक्षणिक क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा से प्रतिभासित होता हुआ सागर विश्वविद्यालय से वी काम की डिग्री हासिल कर लौकिक शिक्षा को आत्मसात कर लिया । लेकिन आसन्न भव्य जीवो को लौकिक शिक्षा मात्र से तृप्ति नहीं मिलती है परिणामस्वरूप आध्यात्म रूपी शोध की खोज करता हुआ सिद्ध क्षेत्र कुण्डलपुर पहुँचा, और वहाँ पर एक गौर वर्ण वाले युवा नग्न दिगम्बर साधु आचार्य विद्यासागर को देखा एव इन्हे अपने आध्यात्मिक शोध का निर्देशक मन ही मन मान लिया । इस प्रकार कई वार कुमार कई जगहो पर अपने निर्देशक से मौन निर्देशन लेले रहे ।

एक वार आप अपने निर्देशक को (आचार्य विद्यासागर को) अपनी लौकिक अध्ययन की साधना स्थली सागर के लिए ८-१० लड़कों के साथ आमंत्रित करने के लिए गये और श्री फल चढ़ाकर जयकुमार जी वोले कि महाराज अभी तक आपके पास सफेद वाल वाले आते थे । लेकिन इस वार तो हम लोक काले वाल वाले आये हैं, तव आचार्य श्री मुस्कराते हुए वोले कि भैय्या, सफेद वाल वाले आते है और चले जाते हैं लेकिन काले वाल वाले मेरे पास आते तो हैं और फिर वापस नही जाते हैं । वस फिर क्या था, यही निर्देशन निर्देशक का (विद्यासागर का) शोधकर्ता जयकुमार को वाचनिक रूप से प्रथम वार मिला था । इस निर्देशन पर ही कुछ कार्य घर आकर होमवर्क के रूप मे किया और फिर सिद्ध क्षेत्र नैनागिर मे दीपावली के दिन आप दुवारा पहुँचे तो फिर क्या शोध कार्य लिखित रूप से शुरु कर दिया अर्थात् ५ वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ले लिया । उसी दिन क्षुल्लक समय सागर जी की ऐलक दीक्षा हुई थी । आपने इस व्रत की जानकारी किसी को भी नही दी और गुप्त रूप से अपनी साधना करने लगे ।

कुछ दिन वाद ब्रह्मचारी जयकुमार जी को तीर्थयात्रा करने का विकल्प आया, और आप सिद्धक्षेत्र नैनागिरी आचार्य श्री के पास यात्रा की सफलता हेतु आर्शीवाद लेने गये और आचार्य श्री से वोले कि मैं तीर्थ यात्रा के लिए जा रहा हूँ तव आचार्य श्री ने जय कुमार के चेहरे को देखा और न जाने इनके चेहरे मे आचार्य श्री ने क्या वाँच लिया, और धीरे से वोले कि तीर्थ यात्रा का आर्शीवाद लेने आये हो, यदि आपके लिए ही ''तीर्थ'' वना दिया जाये तो कैसा रहेगा । वस ! इस वाक्य से आपको ऐसा लगा कि मानो शोध कार्य पूरा हो गया हो, और निर्देशित किया गया हो कि थीसिस सम्मिट कर दो ।

जय कुमार जी कुछ मुख से बोलते कि इसके पहले उनका मस्तिष्क स्वत ही गुरु के चरणो मे झुक गया, और गुरु ने अपना वरद हस्त एव मयूर पिच्छिका सिर पर रख दी और कहा कि यही मयूर पिच्छिका अब आपको हाथ मे लेना है । वह दिन ८ जनवरी १९८० को था । एक दिन के अन्तराल के बाद १० जनवरी १९८० को आचार्य श्री ने ब्र जयकुमार जी को क्षुल्लक दीक्षा दे दी तथा नाम रखा "परम सागर" इसके बाद लगभग दो साल बाद सागर की दूसरी वाचना मे 'वर्णी भवन मोराजी' की शान्ति कुटि मे आपकी ऐलक दीक्षा हुई ।

इस प्रकार गुरु की छाया मे आध्यात्मिक साधना करते हुए गुरु के साथ अन्नतो तीर्थकरो की सिद्ध स्थली अनादि अनिधन सिद्ध क्षेत्र सम्मेद शिखर जी। इसी सिद्ध क्षेत्र की तलहटी एव गणेश प्रसाद जी वर्णी की साधना एव समाधि स्थली ईसरी मे सघ सहित चतुर्मास की स्थापना हुई, और इसी चतुर्मास मे सन् १९८३-२५ सितम्बर । अश्वनि कृष्णा तीज को मुक्ति का बीज रत्नत्रय को अकुरित करने के लिए आपको जैनेश्वरी (मुनि दीक्षा) दीक्षा आचार्य श्री द्वारा दी गयी, और नाम रखा गया पूज्य मुनि सुधा सागर जी।

इस प्रकार से मुक्ति पथ के राही के पुछ मोती हमने यहाँ प्रस्तुत किये है । अब आगे इनकी तपस्या एव साधना से चमत्कृत कुछ उपलब्धियो को मै यहाँ पर लिपिबद्ध करता हूँ ।

परम पूज्य आध्यात्म योगी मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज प्रखर चिन्तक, उत्कृष्ट मुनि, हृदय कवि, तेजस्वी वक्ता और भगवान महावीर की प्रतिमुर्ति तथा जान मनीषी सन्त है । आपका हृदय इतना विशाल है फिर भी इतना सरल है कि इसमे पक्ष-प्रतिपक्ष सभी समाहित हो जाते है । आपके प्रवचन साहित्यिक एव धार्मिक दृष्टि से पूर्ण निर्दोष रहते हैं । आपकी ओजस्वी वाणी सरल, सुबोध, स्वच्छ, निर्मल निश्चल मर्मस्पर्शी हृदय को छूने वाली है और श्रोता एव पाठक के हृदय पर एक चिर स्थायी प्रभाव डालती है ।

आपके प्रवचनो मे अपूर्व गाम्भीर्य तथा जादुमयी अद्‌भुत शक्ति है । कैसा भी धर्म विरोधी नास्तिक व्यक्ति क्यो न हो आपका चरण सानिध्य पाकर और प्रवचन ग्रहण करके वह आपका ही होकर रह जाता है।

नि सन्देह आपके पास क्लिष्ट से क्लिष्ट जैन दर्शन की गूढ़ताओं और जटिलताओं को सरल बनाकर मन मोहने वाले रोचक दृष्टान्तो, पौराणिक उदाहरणो, मनोरजक वाक्यो द्वारा अबाल वृद्धो को धर्म से परिचय कराने की क्षमता है । आप सदाचार, नैतिकता व अनुशासन प्रिय है । आपकी दिगम्बर मुद्रा, समन्वित प्रतिभा से अलकृत सौरभ सम्पन्न, शान्ति, तपस्या, ध्यान, निर्मलता तथा वीतरागता आदि गुणो से ओत-प्रोत होने के कारण ही दर्शनार्थी के अन्त करण को आकर्षित एव आनन्दित करती है ।

आपकी अनवरत एव स्थायित्व को लिए हुए साधना दर्शको को भाव विह्वल कर आस्था से नम्रीभूत करती है । जिससे वह स्वय ही चरणो मे झुक जाता *है और अपनी कषायो की पोटली खोल देता है ।*

प्रत्येक मानव के जीवन का अन्तिम लक्ष्य शान्ति और केवल्य की प्राप्ति करना होता है । आपकी गहन साधना जिसका प्रमाण दे रही है २८ मूलगुणो मे निरन्तर तप की परकाष्ठा को आमन्त्रित करती है । आपकी साधना तपस्या साधु जीवन का एक श्रृगार होता है । वह श्रृगार का इन दिगम्बर मुनि श्री सुधा सागर जी के जीवन के रग-रग मे समायी है । इनकी तपस्या के बारे में क्या कहना । इनकी तपस्या तो

हमने करीब तीन वर्षों तक प्रत्यक्ष देखी है एव मैने इनकी महिमा और तपस्या इनके साथ मे रहने वाले पूज्य साधु वर्ग से एव ब्रह्मचारी, ब्रह्मचारिणी बहनो से सुनी है जिन्होने इन्हे तब से ही जाना है जब से ये अपने परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के चरणो मे आकर साधना प्रारम्भ की ।

इस सदी के प्राय पण्डित/विद्वानो जो कि अपने आप को आध्यात्म का वेत्ता समझते है उनसे भी हम ऐसा ही सुनते रहते हैं कि इस पचम काल मे कोई मुनि नही बन सकता, यदि बनता भी है तो विशेष तप साधना नही कर सकता क्योंकि सहनन कमजोर है । पर सभी बाते आचार्य श्री जी के विषय मे एव इनके महान्-महान् शिष्यो के विषय मे बिलकुल झूठी सिद्ध हो जाती है । इन साधको मे परम पूज्य श्री सुधासागर जी की साधना के बारे मे क्या लिखूँ ।

शायद लेखनी उनकी तपस्या को लिखने मे थक जायेगी । पर तपस्या ऊलम से लिखना सभव नही है फिर भी विद्वानो-पण्डितो की झूठी मान्यताओं की धारणाओं को मिटाने के लिए एव मेरी स्वय की भक्ति और श्रृद्धा को रोक न पाने से कुछ चन्द विशेषताये लेखनी से लिखने की कोशिश कर रहा हूँ जो मैने देखी सुनी है ।

इनके जीवन की शुरुआत ही तपस्या से हुई । जब यह घर मे रहते थे और कालेज मे पढ़ाई कर रहे थे तो अचानक ऊपर से लैम्प इनके ऊपर गिर गया जिससे इनके शरीर मे आग लग गयी तभी इस होनहार मुनि के मन मे आया कि ये शरीर तो नश्वर है ही यदि बच गया तो इससे तप करूगा । ऐसे शुभ विचारों से एवं हम सब श्रावकों के भाग्य से वो सुरक्षित बच गये और कुछ वर्ष बाद उन्होंने पूँज्य आचार्य श्री के संघ मे जाकर क्षुल्लक दीक्षा ले ली । शुरु से ही आप अपने शरीर से निस्प्रह एवं निग्रीह थे । एक कोने में बैठे-बैठे ही हमेशा ध्यान अध्ययन में लीन रहते थे । सबसे बहुत ही कम् बोलते थे वो भी अपने संघ के साधुओं से ही । ब्रह्मचारिणी बहिनो व श्रावकों से भी नही ।

दीक्षित होने के प्रारम्भ मे जब ये आहार चर्या को चौके मे जाते थे तो वहाँ पर यदि श्रावक पानी देता जाता तो उसी को लेकर आते थे । अन्य ग्रास वगैरह नही लेते थे । क्योंकि वे सोचते थे कि आगम मे लिखा है कि 'यथालब्ध' जैसा जो योग्य प्रासुक आहार श्रावक दे वो ले लेना ऐसा कई माह तक करते रहे शरीर को आहार न मिलने से कमजोरी आ गयी तब भी अन्य आवश्यको मे कमी नहीं आयी । परन्तु बाद मे आचार्य श्री जी को पता चला कि उन्होंने समझाया कि यथालब्ध का अर्थ ऐसा नहीं है और आज भी आहार के समय उनकी समता सहजता देखते ही बनती है कि मुँह से हूँ भी नही निकलती, कितनी भी भीड़ हो या अन्य कोई प्रतिकूलता हो । इनके जीवन की त्याग की विशेषता थी कि इन्होने समस्त फलो का त्याग कर दिया था मुनि दीक्षा के दिन ही। सन् १९८३ मे कई रसो का त्याग कर दिया था । आज भी प्रतिदिन नीरस जैसा आहार ग्रहण करते हैं। करीब ९ वर्ष से आपने चटाई त्याग की है । आपने बहुत सी साधनाये आचार्य श्री के बिना पूछे ही कर डाली क्योंकि उन्हे डर लगता था कि आचार्य श्री जी अभी मना कर देंगे क्योंकि आचार्य श्री जी अपने शिष्यो से कहते थे कि अभी तो इतनी छोटी उम्र मे इतनी साधना नही करनी चाहिए । धीरे-धीरे आगे बढ़ना चाहिए । तो भी ये गुप्त रूप से पूरे शीत मास में अपने बगल में चटाई रखकर लेटे रहते थे । उसका उपयोग नही करते थे । कुछ समय के बाद जब साधना

पूर्ण हो गयी पूज्य गुरुवर के पास जाकर आपने आगे के लिए चटाई का त्याग कर दिया और इस प्रकार भीषण ठड मे भी आप चटाई तथा घासादि का प्रयोग नही करते थे ।

इनके उपवास के बारे मे क्या कहे ज्येष्ठ की तपती कड़कड़ाती दुपहरी मे जब आग की लपटे चारो ओर से निकलती है तब ऐसे हरेक ग्रीष्म ऋतु मे भी अष्टमी चतुर्दशी को एव और भी कितने उपास करते है । ये कभी-कभी एक एक माह तक एक अन्तर से उपवास एव साधना करके अपने कर्म दहन करते हैं।

आसन ध्यान भी इनका दृढ़ है । एक बार मढिया जी जबलपुर मे करीब १२ घण्टे तक एक जगह खड्गासन मे खड़े रहे । उनके पैर हरे नीले हो गये तथा पैरो मे सूजन तक आ गयी पर ये अपने सकल्प से डिगे नहीं, इसी प्रकार आहार जी मे २ वार १५एव १८ घण्टे तक खड्गासन प्रतिमायोग धारण किया । आज वर्तमान मे भी आप २-२ घण्टे की सामायिक उत्कृष्ट रूप से कर रहे है । इसी प्रकार कई और साधनाये इनके जीवन का अग बन गयी है ।

मौन लेने मे भी आप कम न थे । इतने बड़े सघ के बीच रहकर तथा सब जानकर भी नही बोलना कितना कठिन । पर आपको यह सब सहज था । एक बार आपने एक-दो दिन का ही नही बल्कि निरन्तर ६माह का मौन धारण किया । धन्य है ! ऐसे मौनी वावा को । धन्य है हम सब जो निरन्तर ऐसे मुनियो के दर्शन करते हैं , और धन्य हैं वे गुरु जिनको ऐसे साधक शिष्य मिले ।

श्रुत एव गुरु की आराधना मे भी आप पीछे नही थे । आध्यात्मिक एव सैद्धान्तिक सभी प्रकार का अध्ययन आपका निरन्तर चलता रहता है । आप जैसे ही ध्यान से बाहर आते हैं तो आप गुरु एव श्रुत की आराधना करना शुरु कर देते हैं । आपने षटखण्डागम, जय धवला, महाधवला, लब्धिसार, क्षपणासार, समय सार, राजवार्तिक, कर्मकाण्ड, तिलोय पण्णति, त्रिलोक सार समन्तभद्र, ग्रन्थावली व्याकरण, नियमसार, प्रवचन सार, मूलाचार तथा न्याय के शास्त्र, कुन्द कुन्द के आध्यात्मिक शास्त्र इस प्रकार चारो अनुयोगो के अनेक ग्रथो का सूक्ष्मता से आकलन किया । तथा अपना सूक्ष्म आकलन के आधार पर टाला और हमेशा आप इन्ही ग्रन्थों का चिन्तन मनन करते रहे । कुन्द कुन्द एव समन्तभद्र द्वारा रचित प्राय. सभी ग्रन्थ कण्ठस्थ किए हुये है ।

मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज वैय्यावृत्ति मे भी पीछे नही हैं । आपकी वैय्यावृत्ति की प्रशसा सारा सघ करता है । एक वार जब अतिशय क्षेत्र थूवोन जी मे जब आचार्य श्री का ससघ चातुर्मास चल रहा था तब सारे सघ के साधु बीमार पड़ गये केवल आप ही बीमार न हुये तब आपके द्वारा २४घण्टे पूरे सघ की वैय्यावृत्ति की जाती थी । आपकी वैय्यावृत्ति को देखकर श्रावक लोग आश्चर्य चकित रह जाते थे । आप सारे साधुओं की आहार चर्या कराने के बाद ही आहार के लिए जाते थे गुरु महाराज इतने अधिक अस्वस्थ हो गये थे कि उन्हे सहारा देकर के उठाना पडता था । जब आचार्य महारज का हाथ पकड़कर सहार देकर चौके तक ले जाते थे तथा वहाँ सम्पूर्ण आहार अपनी दृष्टि से अवलौकित करके कराते थे और आप स्वय बाद मे अल्प आहार लेकर वापस आ जाते थे ।

वैय्यावृत्ति के सम्बन्ध में मुनि श्री के जीवन की एक घटना और है, जब आप ऐलक अवस्था मे थे। उस समय क्षुल्लक जिनेन्द्र बर्णी (जिनका नाम सिद्धान्त सागर था) की समाधि शिखर जी सिद्ध क्षेत्र मे चल रही थी । उस समय आपने बर्णी जी की वैय्यावृत्ति

का पूरा कार्यक्रम आपके हाथ में था, और आपने वैय्यावृत्ति इतनी तल्लीनता से की कि आपने रात्रि में सोने का तथा आराम करके का भी त्याग कर दिया। उस समय आप आहार लेकर वैय्यावृत्ति के कार्य मे तल्लीन रहते थे । अल्प आहार तथा कम सोने के कारण से आपको वर्णी जी की समाधि के बाद पीलिया हो गया ।

आपके दीक्षा लेने के लगभग एक साल बाद कर्मो ने तीव्रता से आपकी परीक्षा लेना शुरु कर दिया और कर्म आपके पास मलेरिया ज्वर के रुप मे परीक्षा लेने आते थे । चार माह तक निरन्तर प्रतिदिन मलेरिया १०४ से १०७ डिग्री तक आता था । आपकी स्थिति इतनी जर्जर हो गया थी कि आप बिना सहारे के लघु शका को भी नहीं उठ पाते थे । इतनी सब परेशानी के बाबजूद भी आपकी समता परिणाम व्रतो के प्रति आस्था तथा लगन यथावत बनी रही । आपको आचार्य श्री बीमारी (मलेरिया) के समय आपके सामने खडे होकर के औषधि के रुप मे घना पचक का कादा एक एक कटोरा तक पिलाते थे । लेकिन पेपर बहुत कठिन था अर्थात् कर्मो की बाढ़ इतनी तीव्र थी कि घना पचक का काड़ एक एक कटोरा कई माह पीने पर भी बुखार कम न हुआ । दीपावली के बाद जब बुखार स्वय ही थक गया तो वह कुछ विश्राम करने लगा अर्थात् मुनि श्री को तब कुछ आराम मिला ।

जब सघ का चातुर्मास मुक्तागिरी सन् १९८० में हुआ तब मुक्तागिरि से आप सघ सहित लौट रहे थे। किसी व्यक्ति के द्वारा गलत रास्ता बता दिये जाने पर संघ भटक गया और भीषण ठड में चारो ओर पानी से भरे हुए नारंगी के बगीचे थे वहीं पर सारा सघ सध्या काल होने पर रुक गया । रात्रि में इतनी ठण्ड पडी कि दाँतो ने हारमोनियम बजाना शुरु कर दिया अर्थात् दाँत किटकिटाने शुरु हो गये । सारे संघ ने सारी रात इस ठण्ड मे बैठे-बैठे बितायी । आप उस समय क्षुल्लक अवस्था में थे आपके पास दुपट्टा था लेकिन आपने दुपट्टा नही ओढा । प्रातः होते ही विहार कर दिया । विहार करते जा रहे है न जाने कितना चलना है कहाँ चलना है, किस दिशा मे बढ़ना हैं, कोई भी रास्ता बताने वाला नही था, बस ! चलते जा रहे है क्योकि चलना ही जीवन है । रात्रि जागरण होने तथा विहार की थकान होने के कारण विहार करते-करते आपका स्वास्थ बिगड़ने लगा। पेट खराब हो गया चक्कर आने लगे । लेकिन सघस्थ साधुओं के सहारे से जैसे तैसे महाराष्ट्र के एक नगर में आये (हिवर खेड़) उस समय सामायिक काल होने के कारण आप सामायिक मे बैठ गये डेढ़ बजे संघ आहार को उठा आचार्य श्री के निर्देशन के अनुसार औषधि के रुप मे पित्त समन हेतु दूध मे बूरा डालने की बात श्रावको के समक्ष आचार्य श्री ने कही, आहार के समय एक श्रावक आपके साथ चौके में गया वहाँ पर एक कटोरे मे नमक रखा हुआ था वह उसने बूरा समझकर दूध में मिला दिया क्योंकि आचार्य श्री का बूरा देने का निर्देशन था ।

आपने जैसे ही दूध को अपने कटोरे से एक दो घूँट पिया लेकिन दूध के पेट मे जाने के बाद आपको उल्टी (वमन) हो गयी क्योंकि नमक के कारण क्षार की मात्रा बढ़ गयी थी इस प्रकार से उल्टी होने के कारण आपका अन्तराय हो गया तो संघ का विहार रुक गया था । दूसरे दिन बडी मुश्किल से अल्प आहार हुआ तथा २०-२५ कि मी विहार किया । इस प्रकार के अनेक व साधना पूर्ण अद्भुत चमत्कार आपके जीवन में देखे जाते है ।

इस प्रकार आपने १० वर्ष तक साधना आपने गुरुवर पूज्य दिगम्बर १०८ आचार्य श्री विद्यासागर

जी के चरणो मे की । फिर बाद मे आपकी उत्कृष्ट साधना, वैराग्य की दृढ़ता एव धर्म की प्रभावना के पूर्ण योग्य जानकर आपके गुरु ने आपको तथा साथ मे सघस्थ साधुयो को भी आपकी साधना एव प्रभावना मे सहायक बने रहने के लिए अच्छे हृदय से आर्शीवाद देकर भेजा । मुनि श्री सुधा सागर जी कभी नही चाहते थे कि हम अपने गुरु से अलग होकर कोई प्रभावना करे परन्तु अपने गुरू की आज्ञा को शिरोधार्य करना ही था सो किया ।

आपकी अपनी स्वय की साधना एव गुरू के द्वारा हृदय से दिया गया आशीर्वाद का इतना प्रभाव है कि आज जहाँ भी मुनि श्री के चरण पड़ते हैं वहाँ के जन मानुष मे धर्म के प्रति तथा अपनी सस्कृति के गौरव के प्रति अटूट आस्था जाग जाती है । एव चौथे काल जैसा धार्मिक वातावरण छा जाता है ।

आपकी ओजस्वी वाणी के शब्द निकलते ही व्यक्ति के जीवन मे विलीन हो जाते हैं और यही कारण है कि इतने समय मे अर्तात् लगभग ३ वर्ष के अन्दर इतने बड़े-बड़े महान् कार्य आपके प्रेरणात्मक उपदेश से हुये कि जो कोई भी सैकड़ो वर्षों से नही करा पा रहा था । जैसे कि सबसे पहले सिरोज (विदिशा जिला) के क्षेत्र का जीर्णोद्धार एव देवगढ़ अतिशय क्षेत्र (उ प्र) का जीर्णोद्धार कर पच गजरथ महोत्व के साथ पचकल्याणक प्रतिष्ठा के द्वारा करीब ५०० मूर्तियो मे प्राण प्रतिष्ठा भी आपके चरणो का देवगढ मे पड़ने का अतिशय है । इसी प्रकार सीरोन जी, बजरगगढ़, चन्देरी (उ प्र) के खण्डार जी क्षेत्र का एव पावागिरि सिद्ध क्षेत्र आदि के जीर्णोद्धार का कार्य अद्वितीय हुआ ।

आपके आशीर्वाद से नव निर्माण के बहुत कार्य हो चुके हैं एव हो रहे है जो भारत वर्ष के इतिहास मे हमेशा स्वर्ण अक्षरो से अकित रहेगे । जैसे अशोक नगर (म प्र.) मे विश्व मे पहली बार इतनी विशाल त्रिकाल चौबीसी का निर्माण एव पच कल्याणक तथा सप्त गजरथ महोत्सव हुए । वर्तमान मे ललितपुर (उ प्र) मे चौबीसी की स्थापना एव नव (९) गजरथ मोहत्सव एव श्री सुधासागर कन्या इन्टर कालेज की स्थापना आपके ही आशीर्वाद का प्रतिफल है । इसी प्रकार आपका मुँगावली, बीना, जयश्री नगर, बेगमगज तालबेहट आदि अनेक जगहो पर अमिट प्रभाव पड़ा जो भविष्य मे कभी भी बुलाया नही जा सकेगा जब तक सूर्य तथा चन्द्र रहेगे तब तक पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी के गुणो का गान होता रहेगा ।

इस प्रकार मैंने अपनी अल्प बुद्धि से पूज्य मुनिवर के थोड़े से गुणो को लिखने का प्रयास किया है जो कि सिर्फ सूरज को दीपक दिखाने के समान है क्योंकि मुनिवर के गुण तो सागर के समान विस्तृत हैं जिनका बखान करने मे, मै अल्प बद्धि का श्रावक असमर्थ हूँ ।

पूज्य मुनि श्री १०८ सुधा सागर जी महाराज के चरणो मे शत् शत् नमन् ।

यद्यपि कीचड़ मे कमल है पर सुरक्षित है, उसका लक्ष्य कादे से अलग होने का है, लोहे की तरह मिट्टी मे होने का नही । हमे इसको सोचना है । हमे लक्ष्य कमल के फूल के समान कीचड़ से अलग होने का बनाना है । हमे प्रभू के सामने कोर्ट केस मे जीतने, धन वैभव बढ़ाने आदि संसार वृद्धि के लिये स्तुति नहीं करनी है ।

ललितपुर चातुर्मास के [illegible]—

[illegible]

"If wealth is lost nothing is lost, if health is lost something is lost if character is lost everything is lost."

अर्थात् यदि धन नष्ट हो गया तो कुछ नष्ट नही हुआ, यदि स्वास्थ्य नष्ट हो गया तो कुछ नष्ट हो गया, किन्तु यदि चरित्र नष्ट हो गया तो सब कुछ नष्ट हो गया।

यह नीति सारगर्भित होने के साथ-साथ वर्तमान मे स्पष्ट दृष्टिगोचर भी होती है । इस नीति को मात्र पढ़ने वाले नही बल्कि अपने जीवन मे धारण करने वाले, बहुमुखी प्रतिभा के धनी, उज्जवल चरित्र, तेजस्वी व्यक्तित्व एव अपने वात्सल्यपूर्ण व्यवहार से बच्चे-बच्चे के हृदय-पटल पर अपना श्रद्धायुक्त गौरवशाली चित्र अकित करने वाले ऐसे निर्ग्रन्थ गुरूदेव परम पूज्य मुनि श्री १०८ सुधा सागर जी पूज्य १०५ क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी, पूज्य १०५ धैर्य सागर जी के वर्षायोग का परम सौभाग्य हम ललितपुर वासियो का रहा है । इस चातुर्मास मे हम श्रावको को समय समय पर यथायोग्य उपलब्धियाँ प्राप्त होती रही, जिनकी एक झलक दृष्टव्य है ।

प्रत्येक द्रव्य उत्पाद-व्यय ध्रौव्य से युक्त है । ससार का प्रत्येक क्रिया-कला प्रतिक्षण परिवर्तनशील है । यह परिवर्तन विषय-वासना की चकाचौध एव अज्ञान से आवृत चक्षुओं द्वारा लक्षित नही होता । इस ससार की परिवर्तनशील प्रवृत्ति का स्पष्ट अवलोकन करने वाले आरंभ-परिग्रह से रहित, विषय-वासना एव भौतिकवाद की चकाचौध से दूर, संसार मे रहते हुए भी निर्लिप्त, करपात्री, पदयात्री एव सिंह के समान स्वच्छन्द अहकारी व्यक्ति का अहंकार उसी प्रकार नष्ट हो जाता है जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश में अन्धकार। ऐसे सन्मार्गी, निर्ग्रन्थ, साधुओं का समागम नगरवासियो को समय-मसय पर प्राप्त होता आया है ।

संन् १९९१ मे प्रात स्मरणीय सन्त शिरोमणि आचार्य गुरूवर परम पूज्य मुनि श्री १०८ विद्यासागर जी के कर-कमलो से प्राप्त आशीर्वाद को शिरोधार्य करके परम पूज्य मुनि श्री १०८ सुधा सागर जी एव ऐलक पूज्य निशक सागर जी का चातुर्मास बुन्देल खण्ड की धर्मप्राण नगरी ललितपुर मे स्थापित एव निष्पादित हुआ। परन्तु ललितपुरवासी दुर्भाग्यवश उस परम दिगम्बर यथा जात मुद्रा को हमेशा के लिए अपनी भक्ति-रूपी जजीर से नही बाँध सके, और महाराज द्वय का बिहार ललितपुर से हो गया । कहावत है—

"If winter comes, can spring be for behind"

अर्थात् अगर पतझड़ आता है तो समझ लेना चाहिए कि बसन्त भी आने वाला है । पूज्य महाराज द्वय के बिहार से ललितपुर नगरी भी उदासीनता से ग्रस्त हो गयी, और चारो तरफ विषय-वासना, भौतकिवाद की वायु प्रवाहित होने लगी । परन्तु जिस तरह रात के बाद दिन, दुःख के बाद सुख असीम शान्ति को प्रदान करने वाले होते हैं उसी प्रकार पतझड़ के बाद सुख-शान्ति-सौरभ प्रदान करने वाला यह बसन्तराज आया और मुनि श्री १०८ सुधा सागर जी, क्षुल्लक श्री १०५ गम्भीर सागर जी, क्षुल्लक श्री १०५ धैर्य सागर जी के शुभागमन की मंगलमय सूचना हम नगरवासियों को प्राप्त हुयी ।

सूचना प्राप्त करते ही नगर को पुष्पमालाओं, तोरण-वदनवार एव अन्य आधुनिक साज-सज्जाओं से नई-नवेली दुल्हन की भांति उसी प्रकार सजाया गया था जिस प्रकार रामचन्द्र जी के अयोध्या लौटने पर

अयोध्या को सजाया गया था । जन-जन के हृदय में मुनि श्री एव क्षुल्लकद्वय श्री की अगवानी करने के लिए उल्लास एवं उत्साह का सागर हिलोरे ले रहा था । बूढ़े-जवान-बच्चे सभी ध्वजा को हाथ मे लेकर अपने लक्ष्य की ओर दौड़े जा रहे थे ।

धन्य है वह ३० जून की आह्लाद् भरी सुवह, जब प्रात स्मरणीय सन्मार्ग दिवाकर आचार्य गुरूवर श्री विद्यासागर जी के आशीर्वाद से अध्यात्म योगी, पुरातत्ववेत्ता, देवगढ़ जीर्णोद्धारक परमपूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी, परम पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ गम्भीर सागर जी एव परम पूज्य क्षुल्लक श्री १०५ धैर्य सागर जी के चरण-कमलो का स्पर्श करके ललितपुर की ये धरा फिर धन्य हो गयी और अपने भाग्य पर इठलाती हुई, अपनी सुन्दर छटा विखेरती हुई अभिभूत हो गयी । हाथी-घोड़ो से सुसज्जित जुलूस अपनी चरम अवस्था को प्राप्त हो रहा था । मुनि श्री क्षुल्लकद्वय श्री उस धूल-धूसरित वातावरण मे सूर्य की तरह शोभायमान हो रहे थे । जिस प्रकार केवट ने भगवान राम को अपनी नाव मे बैठाने के पूर्व उनके पैरो को अत्यन्त श्रद्धा एव भक्ति से पखारा था उसी प्रकार हम नगरवासियो ने आनन्द विभोर होकर मुनि श्री एव क्षुल्लद्वयश्री का पादप्रक्षालन अपने-अपने घरो के समक्ष करके आनन्दानुभूति की । नदी का प्रवाह सतत् गतिशील होता है । मुनि श्री एव क्षुल्लकद्वयश्री के ये चरण दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर एव नया मन्दिर जी की वन्दना करते हुए जुलूस सहित श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अटा मंदिर जी मे विराजमान हो गये तथा जुलूस अपनी गरिमा को रखते हुए समयाकाश मे विलीन हो गया ।

२ जुलाई १९९३ को मुनि श्री एवं क्षुल्लकद्वय श्री अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी मन्दिर की वंदना करने के लिए गये और अभिनन्दन नाथ भगवान तथा शान्तिनाथ भगवान के दर्शन करते समय वहां के शान्तमय तथा साधना के लिए उपयुक्त वातावरण ने उनका मन मोह लिया एव उन्होने क्षुल्लकद्वय की इच्छा को ध्यान मे रखकर क्षेत्रपाल जी मन्दिर मे वर्षायोग की स्थापना करने का निर्णय लिया । यह तो प्रत्यक्ष ही अभिनन्दन नाथ भगवान का अतिशय था ।

३ जुलाई को मुनि श्री एव क्षुल्लकद्वयश्री ने समाज के समस्त व्यक्तियो के समक्ष तथा जिलधीश एव बचित्तर सिह, जिला जज श्री महेन्द्र जी, एस पी साहब श्री वाजपेयी जी तथा जिला परिषद के अध्यक्ष श्री वीरेन्द्र सिह बुन्देला की उपस्थिति मे चातुर्मास की स्थापना सीमाओं को बाँधकर सानन्द सम्पन्न की, और हम अज्ञानान्धकार मे आवृत्त जीवो को ज्ञान रूपी अमृत का पान अपने उपदेश के माध्यम से कराया ।

४ जुलाई को मुनि श्री ने क्षुल्लकश्री के साथ पदमनन्दी आचार्य महाराज द्वारा रचित "पद्मनन्दी पचविंगति" का वाचन प्रारम्भ किया, और प्रतिदिन एक-दो घण्टे तक धर्म-पिपासु जीवो को अपना मार्मिक उद्‌बोधन करते रहे ताकि हम लोगो को ज्ञान का प्रकाश मिल सके ।

"The Teacher is like a candle, which lights others in consuming itself"

गुरू मोमबत्ती की भाँति है, जो स्वय जलकर दूसरो को प्रकाश देते है । मुनि श्री तथा क्षुल्लकद्वयश्री ने अपनी तपस्या, साधना, अध्ययन में रत रहके भी नगरवासियो को अपना अमूल्य समय देकर प्रतिदिन उपदेशामृत का पान कराया । प्रतिदिन महाराजश्री के सरल सहज प्रवचन पर क्षुल्लकद्वय के सानिध्य मे प्रश्न-मंच आयोजित किया गया । उसमे विजेता व्यक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए तथा उसका उत्साह-वर्धन

करने के लिए प्रतिदिन पुरस्कार वितरण किये जाते रहे । यह कार्यक्रम निर्बाध गति से निरन्तर पूरे वर्षायोग तक चलता रहा । प्रत्येक माह प्रवचन पर आधारित प्रश्न-मंच की परीक्षा भी ली गयी ।

"A sound mind in a sound body"

स्वस्थ शरीर मे ही स्वस्थ मस्तिष्क रहता है । इसीलिए शरीर की वृद्धि एव तप की वृद्धि के लिए सरस एव नीरस यथालब्ध आहार के पश्चात् मुनि श्री क्षुल्लकद्वयश्री, ब्र सजय भैय्या एव ब्र अजित भैया जी रविसेण आचार्य कृत "पदमपुराण" का स्वाध्याय कराने मे रत रहते थे । दोपहर मे सामायिक आदि से निवृत्त होने के पश्चात् नेमिचन्द्र आचार्य कृत "जीवकाण्ड" का वाचन अपनी सरस हित-मित-प्रिय वाणी के द्वारा कराते थे । प्रात काल साढ़े पाँच बजे से मुनि श्री सभी जिज्ञासु व्यक्तियो को श्री शर्व-वर्म आचार्य कृत "कातन्त्र" का अध्ययन कराते थे । इतने कठिन विषय जिनको समझाना रेत से तेल निकालने के समान है उनकी सरस, सहज, मधुर हित-मित-प्रिय वाणी का आलम्बन पाकर उसी प्रकार समझ में आ जाते हैं जिस प्रकार बच्चा माँ की ऊँगली का आलम्बन लेकर चलना सीखना है ।

विषय कितना ही कठिन एव बड़ा क्यो न हो परन्तु उनके ज्ञान के माध्यम से वह बड़ा सरस एव स्पष्ट हो जाता है, क्योंकि 'नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते' इस ससार में ज्ञान के समान और कुछ पवित्र नही है ।

इस प्रकार दिन भर ध्यान, स्वाध्याय, अध्ययन, साधना, प्रवचन आदि क्रियाओं मे अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी मुनि श्री के मुख मण्डल पर थकान की कणिका मात्र भी दृष्टिगोचर नही होती थी । उनका चन्द्रमुख तपस्या के तेज से सदैव उदीप्त होता रहता है, और फूलो सी मन्द मधुर मुस्कान उनके चेहरे पर अपनी छटा उसी प्रकार बिखेरती रहती है जिस प्रकार सूर्य के उदित होने पर कमल अपनी शोभा को बिखरते हैं।

तपस्या मे तपश्चरित अध्ययन मे रत, क्षुल्लकद्वयश्री ने अपनी स्वास्थ्य की परवाह न करते हुए अपना बहुमूल्य समय हम अज्ञानी बहिनो-भाइयों को धर्म की शिक्षा देने मे किया ।

हृदय मे गंभीरता को धारण करने वाले तथा मुस्कान का समुद्र सदा जिनके ललाम होठो पर तरंगित होता रहता है ऐसे पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी ने, धर्म को कठिन समझने वाले बहिनो-भाइयों को ५ बजे से स्याद्वाद् बाल-शिक्षा के चारों भागों का अध्ययन तथा ६ बजे से पौराणिक कथाओं के माध्यम से शील सत्य एवं धर्म के रक्षणार्थ धर्म को इतने सरस-सरल ढग से बतलाया कि सभी बहिनो-भाइयो ने यथाशक्ति, तप, सयम आदि को ग्रहण करके धर्म-प्रभावना मे सम्मिलित होने का प्रयास किया । इस प्रकार पूज्य क्षुल्लकश्री ने बहिनो भाइयो मे आगामी भविष्य की उज्ज्वलता के लिए धर्म के सस्कार डाले । निश्चित ही है कि उस धार्मिक सस्कार रूपी नीव पर भविष्य मे अतुलनीय भवनो का निर्माण होगा ।

कृश काया सहित, परन्तु हृदय में हिमालय की तरह धैर्य को धारण करने वाले ज्ञान-ध्यान मे लीन परम पूज्य क्षुल्लक श्री धैर्य सागर जी ने भाइयो को दौलतराम कृत 'छहढाला" को अपनी ओजस्वी एवं सरल वाणी के द्वारा भावार्थ सहित समझाया । "छहढाला" के माध्यम से पूज्य क्षुल्लक श्री ने भाइयों को चारों गतियों के दुख के बारे मे विस्तृत रूप से बताया और सयम धारण करने तथा जुआ, शराब, सिगरेट आदि की हानियों से भाइयों को अवगत कराते

हुए उन्हे त्याग के नियमो मे बाँधकर उनके धार्मिक जीवन की भूमिका तैयार की ।

इसी श्रृखला में नगरवासियो ने मुनिश्री के चरण-कमलों मे श्रीफल भेट करके चौबीसी, पचकल्याणक प्रतिष्ठा एव नवगजरथ महोत्सव, मुनिश्री एव क्षुल्लकद्वयश्री के सानिध्य मे सम्पन्न कराने की इच्छा व्यक्त की । जैसे विश्वामित्रजी ने दशरथजी के समक्ष राम लक्ष्मण के सानिध्य मे निश्चिन्त होकर यज्ञ करने की इच्छा व्यक्त की थी—नगरवासियो की इस इच्छा को मुनि श्री का आशीर्वाद प्राप्त हो गया । गजरथ की सारी व्यवस्था करने का भार तथा बाधाओं से रक्षा का भार श्री वीरेन्द्र सिंह बुन्देला को सौपा गया । समाज के अन्य गणमान्य व्यक्तियो, सचालको एव पदाधिकारियो को उनके योग्यतानुसार कार्यभार सौपा गया । समस्त जैन समाज तन-मन-धन से एकजुट होकर इस धर्म-प्रभावना के कार्य मे लग गयी ।

जिस प्रकार पूस की ठण्ड मे दोपहर कब निकल जाती है पता ही नही चलता, इसी प्रकार मुनिश्री की मगलमयी अमृतवाणी को सुनते-सुनते उनकी सयम से सुशोभित चर्या को देखते-देखते कब ढाई महीना निकल गया पता ही नही चला । किसी ने ठीक ही कहा है कि महान व्यक्तियो के सानिध्य मे समय के आने जाने का पता ही नही चलता ।

समय की चाल निर्बाध गति से निरन्तर प्रवाहमान हो रही थी । इसी क्रम में मुनिश्री एव क्षुल्लकद्वयश्री के वरदहस्त की छत्रछाया मे महापर्वराज पर्यूषणपर्व मनाने का मगलकारी सौभाग्य प्राप्त हुआ । इन दस दिनो मे सभी श्रावको ने अपने व्यापार आदि क्रियाओं को विराम देकर तप त्याग आदि को धारण करके अपने जीवन को सार्थक रूप प्रदान किया । इस चातुर्मास की सबसे बड़ी उपलब्धि पर्यूषण पर्व में सयम साधक शिक्षण शिविर का आयोजन रहा । इस शिविर मे १३१ शिविरार्थियो ने बड़े उत्साह एव प्रसन्नता के साथ भाग लिया सभी शिविरार्थियो ने मुनि श्री के नियमो मे आदेशो का पालन करते हुए घर का पूर्णत त्याग कर, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन तथा समाज के व्यक्तियो द्वारा सम्मान पूर्वक आग्रह करने पर मौनपूर्वक उनके घर मे भोजन कर, ध्यान-तप-त्याग-अध्ययन मे रत रहकर ब्रह्मचारी भाइयो के सदृश अपनी क्रियाये उसी प्रकार सम्पन्न की, जिस प्रकार प्राचीन काल मे राजकुमार गुरुकुल मे रहते थे और अपने माता-पिता का मोह छोड़कर गुरु को ही अपना माता-पिता, भाई-बहिन समझकर गुरु के सानिध्य मे विद्या-अध्ययन करते थे ।

"Every man has his own mind "

मनुष्य अपने भाग्य का स्वय निर्माता है । ये १३१ शिविरार्थी मुनिश्री के चरण-कमल मे बैठकर अपने भाग्य का निर्माण करने मे रत रहते थे । मुनिश्री प्रात काल ५ बजे से, जब सारा ससार निन्द्रा देवी के गोद मे विश्राम करता था, तब इन शिविरार्थियो को ध्यान करना सिखाते थे, ताकि ये भविष्य मे अपनी पाँचो इन्द्रियो पर विजय प्राप्त कर सके । तत्पश्चात् मुनिश्री ने क्षमादि दस धर्मों का विशद विवेचन अपनी सरस-सरल, हृदयभेदी वाणी से किया, इस मार्मिक उद्‌बोधन के माध्यम से ससार-सागर मे डूबते हुए हम ससारी प्राणियो को सहारा दिया और त्याग तप सयम के पथ पर आरूढ़ किया । ऐसा लगता था मानो साक्षात भगवान के समवशरण मे दिव्यध्वनि बिखर रही हो ।

इस प्रकार दिन भर शिविरार्थियों के प्रशिक्षण-ध्यान-अध्ययन में रत मुनि श्री के मुखारविन्द पर प्रसन्नता रहती थी । दिन रात जिनवाणी की सेवा अध्ययन स्वाध्याय में लवलीन रहने वाले मुनिश्री के

वचनामृत से पर्युषण पर्व मे हम नगरवासियों का इतना प्राप्त हुआ जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता है ।

ऐसा कहा जाता है कि भोजन करने के पश्चात् यदि थोड़ा सा मीठा या गुड़ खा लिया जाए तो भोजन जल्दी पक जाता है । ऐसा ही कुछ गुड़ के सदृश परम पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी का दस धर्मों का प्रवचन हुआ । जिसमे हम नगरवासियो का इतना गरिष्ठ भोजन पच सके । क्षुल्लकश्री का दस धर्मों का अर्थात् सब प्रकार की शिक्षा का अन्त चरित्र-निर्माण होना चाहिए इस नीति पर इतना मार्मिक एव हास्य-रस के पुट से युक्त उद्बोधन हुआ कि नगरवासियो ने अनोखा त्याग करके धर्म की राह पर चलने का सकल्प लिया।

परम पूज्य क्षुल्लक श्री धैर्य सागर जी ने अपने ज्ञान के माध्यम से उमा स्वामी कृत "तत्वार्थ सूत्र" का वाचन भावार्थ सहित किया । "स्वाध्यायान्मा प्रमद " । अध्ययन मे आलस्य नही करना चाहिए । पूज्य क्षुल्लकश्री गर्मी की प्रचण्ड दोपहर मे अटा मन्दिर जी जाकर श्रावको को अपनी मधुर वाणी के माध्यम से अत्यन्त सरल ढग से अनेक वैज्ञानिक उदाहरणो के माध्यम से तथा तर्क द्वारा अपनी बात को समझाते हैं।

ब्र सजय भैया को दस धर्मों का प्रवचन का लाभ रात्रि में अटा मदिर जी मे प्राप्त हुआ । भैया जी के सानिध्य मे प्रतिदिन प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया, जिसमें प्रतियोगियो ने उत्साह के साथ भाग लिया और विजेता-प्रतियोगिओं के उत्साहवर्धन के लिए पुरस्कार-वितरण किया गया ।

शिविरार्थिओं को प्रशिक्षित तथा व्यवस्थित करने का भार ब्र. अजित भैया के नाजुक कन्धो पर मुनिश्री ने रखा । उन्होंने अपना सारा समय शिविरार्थी भाइयो को पूजा, स्त्रोत, भक्तामर भक्ति आदि सिखाने मे व्यतीत किया । ये भैया की मेहनत थी कि सारे शिविरार्थी समय की महत्ता को समझते हुए समय पर अपनी क्रियायें करते रहे । उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणिन मनोरथै । कार्य परिश्रम करने से पूर्ण होता है। मनोरथ से नहीं । अत भैया जी ने संयम साधना शिक्षण शिविर का परिश्रम पूर्वक कुशल सचालन किया।

इस प्रकार १० दिन मे शिविरार्थी भाइयों ने जो सीखा और अनुभव किया मुनि श्री एव क्षुल्लकद्वय से जो पाया उसका सम्पूर्ण वर्णन तो क्या उसकी एक झलक भी वर्णित करना अशक्य है ।

अनत चतुर्दशी के दिन भगवान का मस्तकाभिषेक मुनि श्री के प्रवचन, सामायिक के पश्चात् शिविरार्थिओं के द्वारा भव्य जुलूस का आयोजन किया गया । जुलूस मे सभी शिविरार्थी भाई हाथों मे श्वेत ध्वजा लिए सभी जीवो को शान्ति का सदेश देते हुए समस्त मदिरो की वदना करते हुए नगर भ्रमण किया । जुलूस में समाज के व्यक्तियो के मध्य मुनिश्री एव क्षुल्लकश्री जल से भिन्न कमल की तरह सुशोभित हो रहे थे । इस जुलूस मे जैनधर्म की महती प्रभावना हुई और अटा मन्दिर मे जुलूस की गरिमामयी इति हो गयी ।

क्षमा वीरस्य भूषण् । ३० सितम्बर को 'क्षमावीरस्य भूषणम्' समारोह मनाया गया । सभी अपनी गलतियो की क्षमा के लिए एक-दूसरे के चरणों मे नम्रीभूत हो गये, चाहे शत्रु हो या मित्र । मध्याह्न में शिविरार्थी भाइयो की विदाई मुनि श्री के सानिध्य मे विधिपूर्वक श्रीफल फेट करके की गयी । समस्त शिविरार्थी भाइयो की आँखो मे ६४ अश्रु-धार बह रही थी । यह दृश्य हृदय को विदीर्ण तथा व्याकुल करने वाला था । मुनिश्री एवं क्षुल्लकद्वयश्री को छोड़ते

हुए शिविरार्थी भाइयों का दुख विवाह के समय लड़की के माता-पिता से बिछुड़ने के समान था ।

पर्यूषण पर्व के तुरन्त बाद में वर्षायोग के मध्य मुनिश्री के ११वे दीक्षा दिवस के अवसर पर सत दिवसीय सर्वोदय, अहिसा समारोह १ अक्टूबर से ७ अक्टूबर तक मनाया गया । धन्य है वह दिन जिस दिन मुनिश्री ने ससार से मोह तोड़कर, वैराग्य को धारण कर गुरू के चरण कमल के सानिध्य मे महाव्रत, समिति, इन्द्रिय निरोध, आवश्यक तथा ७ शेष गुणो को अगीकार करके पाँच पदो मे से एक पद को सुशोभित किया, और मुक्ति रूपी कन्या को वरण करने की तैयारी मे लग गये । मुनिश्री के दीक्षा दिवस पर एक विशाल कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया । यह कवि सम्मेलन मुनिश्री एव क्षुल्लकद्वयश्री के सानिध्य मे हुआ । यही इस कवि-सम्मेलन की विशेषता थी । कवियो के साथ-साथ मुनिश्री एव क्षुल्लकश्री ने अपनी अप्रतिम, सुन्दर कविता का पाठ किया । इस समारोह मे विभिन्न परिषदो एव सेवा-दलो द्वारा शाकाहार प्रदर्शनियो का आयोजन किया गया। इस अवसर पर स्थानीय रोटरेक्ट क्लब के तत्वाधान मे मुनिश्री के सानिध्य एंव अध्यक्षता मे एक डाक्टर्स एव शिक्षक सगोष्ठी का सार्थक आयोजन भी सम्पन्न हुआ, जिसमें स्थानीय विद्वानो के अतिरिक्त बाहर से पधारे प्रसिद्ध विद्वान श्री अखिलेश स्वामी जी ने भी भाग लिया ।

इस समारोह मे विदुषी बहिन ब्र विलेश दीदी के मगल प्रवचनों का लाभ भी प्राप्त हुआ । पूज्य क्षुल्लकश्री गम्भीर सागर जी ने मुनिश्री के अक्षय अक ६ के बारे मे भी अपनी ओजस्वी एवं वीर रस के पुट से ओत प्रोत वाणी में इस तरह सुनाया कि सारी समाज हँसते-हँसते लोट-पोट हो गयी, और मुनिश्री भी हँसे बिना नहीं रह सके ।

समारोह के सातों दिनों भगवान आदिनाथ, भगवान महावीर, आचार्य श्री शांति सागरजी, आचार्य श्री वीरसागर जी, आचार्य श्री शिव सागर जी, आचार्य श्री ज्ञान सागर जी आचार्य श्री विद्यासागर जी, मुनि श्री सुधासागर जी के ४५ फुट के विशाल चित्रो का अनावरण किया गया । मुनि श्री की पूजा, अर्चना, आरती आदि करके नगर वासियो ने अपने को धन्य माना ।

जैसे भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, गर्मी मे शीतलता, ठण्ड मे उष्णता सोने मे सुहागा होती है वैसे ही धर्म-जिज्ञासुओं एव ज्ञानामृत पिपासुओं के लिए महाराजश्री का उपदेश तथा उद्बोधन पाप के क्षय तथा पुण्य के सचय का कारण था ।

इस प्रकार समय की पर्त दर पर्त खुलती चली गयी । यदि पछी की स्वतत्रता को समाप्त करके उसे पिजरे मे बन्द कर दिया जाये तो उसकी वेदना क्या होगी अकथनीय है । पछी के समान स्वछन्द विहार करने वाले इन साधुओं को चातुर्मास रुपी पिजरे मे आगम की अज्ञानुसार बन्द होना पड़ता है, ताकि इनके द्वारा विहार करने पर वर्षा की अत्यन्त सूक्ष्म राशि की श्वासोच्छ्वास मे बाधा न पड़े । और वह दिन निकट आ गया जिसका साधुओ को बेसब्री से इन्तजार रहता था । भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव पर सामूहिक लाडू क्षेत्रपाल जी मन्दिर जी मे भक्ति के साथ चढ़ाया गया। तत्पश्चात् मुनि श्री एव क्षुल्लक द्वय श्री ने भक्ति आदि क्रियाओं के साथ समस्त समाज के समक्ष वर्षायोग निष्ठापन का कार्यक्रम सम्पन्न किया और अपने निश्छल उद्गार व्यक्त किये एवं धर्मवृष्टि करते पिजरे के ऊपर बैठकर स्वतत्रता की साँस ली।

मुनि श्री एव क्षुल्लक द्वय श्री की गरिमामयी उपस्थिति मे २ दिवसीय सलेखना संगोष्ठी का भव्यायोजन किया गया । संल्लेखना के विभिन्न पहलुओं के सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने तर्को एव शका समाधान से सुसज्जित विचारों को प्रस्तुत किया। मुनि श्री ने संल्लेखना सम्बन्धी विभिन्न विवादों को

अपनी निष्पक्ष बुद्धि एंव अध्ययन की गहनता के साथ विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत किया तथा उन विवादो के सटीक तथा तर्क पूर्ण समाधान प्रस्तुत किये ।

महाव्रत रूपी जड़, सयम रुपी तना, यमनियम रुपी जल से सिंचित शील-रुपी डालियो, समिति रुपी कलियो, गुप्ति रुपी पल्लवों, गुण रुपी फूलो, तपस्या रुपी पत्तो, मोक्ष रुपी फलो से सुशोभित एक विशाल वट वृक्ष जिसकी दया रुपी छाया मे ससार के दुखो से सतृप्त हजारो राहगीरो एक साथ बैठकर अध्ययन, ज्ञान सयम साधना तप ध्यान कर रहे है, और इस पचम काल में भौतिकवाद की चकाचौध तथा भौतिकवाद रुपी प्रचण्ड सूर्य की गरमी से अपनी रक्षा करने मे.अनवरत उस वृक्ष की शीतल मन्द, सुगन्धित आशीर्वाद रुपी वायु का सेवन कर रहे है, ऐसे प्रात. स्मरणीय, समाधि सम्राट, चारित्र-चक्रवति सन्त शिरोमणि, विश्व-वदनीय आचार्य गुरुवर परम पूज्य मुनि श्री १०८विद्यासागर जी का आचार्य दिवस मनाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ । धन्य है वह बेला जब इस निष्परिग्रही सन्मार्ग-दिवाकर साधु ने अपने गुरु पूज्य आचार्य श्री ज्ञान सागर जी के शुभाशीष से आचार्य पद ग्रहण करके उस पद की गरिमा को अलकृत किया । पूज्य मुनि श्री एव पूज्य क्षुल्लक द्वय श्री तथा समस्त विद्वानो ने आचार्य श्री के चरणारविन्द मे कोटिश नमोऽस्तु करते हुए श्रद्धा-भक्ति-समर्पण इन त्रय मोतियो से सुशोभित विनयाञ्जलि समर्पित की ।

वर्षायोग की पावन समाप्ति पर पिच्छिका-परिवर्तन का भव्य एंव मनोहारी कार्यक्रम डोड़ाघाट स्थित उस पावन भूमि पर आयोजित किया गया जहाँ पूर्व मे कई बार गजरथ चल चुके हैं । उसी दिन उस पावन भूमि पर श्री सुधा सागर कन्या इन्टर कालेज का श्री रमेश चन्द्र नजा ने उद्घाटन किया । ज्ञान और सयम का ये जोड़ पहली बार परिलक्षित हुआ । मुनि श्री ने अपने उद्बोधन में कहा कि ज्ञान और सयम का जोडा जहाँ एक साथ दृष्टिगोचर होता है, वहाँ संसार और मोक्ष दोनो मार्ग प्रशस्त हो जाते है, और विना कठिनाई के सहजता से ही उपलब्ध हो जाते हैं ।

यह बात यथार्थ है, भगवान केवली द्वारा मुखरित एंव प्रत्यक्ष है कि सारा विश्व अनन्तानन्त जीव-राशि से भरा हुआ है । हमारे हाथ हिलाने में भी अनन्त जीवराशि का हनन अवश्य भावी है ।

सभी जीव भय से रहित रहे, ये भावना जिनके पास होती है वही जीव दया के परिणाम होने से मयूर पख से निर्मित कोमल नवीन पीछी को ग्रहण करते हैं । यदि सर्प केञ्चुली को नही छोडता तो उसे अत्यन्त वेदना होती है और वह मरण को प्राप्त हो जाता है । मयूर भी वर्ष में एक बार अपने पंखो का विसर्जन करता है, और उन्ही पखो को एकत्रित करके पीछी का निर्माण किया जाता है । अगर मयूर-पखो का विसर्जन ने करे तो मरण को प्राप्त हो जाता है । इस पीछी की ये विशेषता होती है कि ये पानी और पसीने से लिप्त नही होती है, धुल से धूसरित भी नही होती है, तथा उसमे कोई जीव राशि उत्पन्न नही होती है । अपितु सूक्ष्म से सूक्ष्म जीव भी उससे मरण को प्राप्त नही होते है ।

सयमी व्यक्तियो के सयम का उपकरण प्राप्त करने का सौभाग्य आजीवन सयम ग्रहण करने वाले श्रावको को प्राप्त हुआ । यह सब प्रोग्राम श्री सुधा सागर कन्या इण्टर कालेज मे बडी धूम-धाम से हुआ । वस्तुत जे गुरु चरण जहाँ पडे, वहाँ पर धर्म वृष्टि के साथ ही साथ ऐसी रत्न वृष्टि कि उस कार्यक्रम को वही स्थगित करना पडा, और वहां से कुछ दिनों अटा मन्दिर जी मे जे चरण विराम पा गये । चारों ओर खुशहाली का वातावरण छा गया ।

मुनि श्री १०८ सुधा सागर जी महाराज के चरणों मे बारम्बार नमन् ।

ललित नगरी में मुनि श्री का लालित्य

"सन्त समागम प्रभु भजन, तुलसी दुर्लभ दोय ।
सुत दारा और लक्ष्मी, पापी को भी होय" ॥

बुन्देलखण्ड की धर्म प्राण नगरी ललितपुर जो हमेशा ही साधुओ के बुन्देलखण्ड प्रवेश का मुख्य द्वार रहा है। ऐसी ललित नगरी का वह सौभाग्य दिवस जो इतिहास के पृष्ठो पर स्वर्णक्षरो मे अंकित रहकर हर आने वाले पिपासुओं को इन बीते दिनो की याद दिलाता रहेगा । धन्य है वह घड़ी जिस घड़ी की प्रतिक्षा सारे नगरवासियो को बैचेन कर रही थी जो आने वाले अतिथियो की राह में टकटकी लगाये देख रही थी जिनके आगमन की बात सुनकर, हृदय में प्रसन्नता दबायें नहीं दब रही थी । कब सूर्य उदय हो और हम सब मिलकर उन आने वाले अतिथियो का अर्थात् जिनकी कोई तिथि निश्चित नहीं होती आने जाने की । जो पदयात्री है करपात्री है तथा नदी के प्रवाह समान निशंक हो बेरोक टोक हवा की तरह चलते रहते हैं । ऐसे निर्लिप्त धर्म धारी साधुओं का अपने नगर में पदार्पण कराने के लिये सभी नाना प्रकार के शुभ भावो से प्रसन्नचित होते हुये अगवानी के स्वप्नो में खो गये ।

प्रातः काल से ही सारी नगरी नवीनता का अनुभव कर रही थी । गली-गली द्वारे-द्वारे बन्धनबार बाँधे गये नाना तरह से नगरी को सजाया गया तथा सभी नर नारी आबालवृद्ध अपनी-अपनी टोली बनाकर दिव्य घोष तथा शहनाई आदि को साथ लेकर हाथो में धर्म पताका सम्भालकर सभी दौडे चले जा रहे थे वह धर्म पताका आने वाले अतिथियो का पता दे रही थी कि जिस धर्म की ध्वजा को जिन्होने अंगीकार कर लिया है जो अपने संयम के द्वारा साक्षात वीतराग मार्ग का दर्शन करा रहे हैं जो भगवान आदिनाथ से लेकर महावीर तक और महावीर के प्रदर्शित मार्ग पर चलने वाले आज तक हुये । अनेकानेक आचार्यो साधुओ की उस परम्परा को सतत् जीवित रखते हुये निर्बाध गति से हमारी ललित नगरी की ओर बढ़ते चले आ रहे है ।

वह मंगल वर्धनी पावन बेला ९ जनवरी १९९१ का शुभ प्रभात जब सर्दी अपनी युवावस्था के साथ सारे माहौल को कंपा रही थी फिर भी इस सर्दी की परवाह न करने वाले अपने तन के प्रति मोह न रखने वाले महावीर के लघुनन्दन परम पूज्य दिगम्बराचार्य चारित्र चक्रवर्ती विश्व वन्द्य धर्म दिवाकर १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज जी के परम शिष्य अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी आध्यात्मिक संत धर्म प्रभावक १०८ मुनि श्री सुधा सागर महाराज जी एवं १०५ ऐलक श्री निशंक सागर महाराज जी, हम नगर वासियो के महान पुण्योदय से उस लम्बी यात्रा को तय करते हुये महाराष्ट्र कारंजा से लेकर यह यात्रा आज हमारे नगर मे विराम पा रही है । ये यात्री अविराल रूप से लक्ष्य को पाने के लिये चलते रहते है तथा ये सारा का सारा संसार, हर यात्री के लिये यहाँ किसी विराम स्थल नहीं है क्योंकि समय ही संसरण शाल है फिर यहाँ किसी का विराम कैसे हो सकता है ?

महाराज द्वय के आगमन से जन-जन में अपूर्व उत्साह छा गया और दिनाँक १३ जनवरी १९९१ से पंचकल्याणक प्रतिष्ठा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । पंचकल्याणक नर से नारायण बनने की, पशु से परमेश्वर बनने की एक ऐसी प्रयोग शाला है जो हर प्राणी मे सोई हुयी अनंत क्षमता को जागृत करके संसार के शिखर पर विराजमान कर देती है । जैन धर्म ही एक ऐसा धर्म है जो प्रत्येक आत्मा में भगवान बनने की घोषणा करता है । इस तरह ये प्रभु के पंचकल्याण महाराज द्वय के ही सानिध्य में सोल्लास सानंद सम्पन्न हुआ । जिससे सम्पूर्ण जनपद में धर्म का वातावरण तो तैयार हुआ ही साथ ही साथ सय तथा संयमी के प्रति आस्था का द्वीप भी जन-जन के हृदय में प्रज्वलित हुआ।

अथान्तर भव्य जीवो के पुण्योदय से दि. जैन पार्श्वनाथ अटा मन्दिर जी में २१ जनवरी १९९१ को शीतयोग के लिये मंगल कलश की स्थापना हुयी । सभी जीवों के प्रति कल्याण की भावना से अपने वचन योग को तोड़कर प्रातः

काल पूज्य मुनि श्री के द्वारा रत्नमंजूषा (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) महान ग्रन्थ पर बड़े ही विस्तृत और सरल तरीके से ओजस्वी वाणी के माध्यम से दिशा बोध दिया । तथा दोपहर में पूज्य ऐलक श्री निशंक सागर जी ने भी नियमसार व इष्टोपदेश जैसे ग्रन्थ पर बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रकाश डालकर धर्म श्रद्धालुओं को अध्यात्म से परिचय कराया । महती धर्म प्रभावना के साथ वाचना की समाप्ति के क्षण आ गये ।

महाराज द्वय के प्रति धर्मानुरागियों का व्यामोह विहार की आशंका से शंकित था । ऐसे गुरू सानिध्य का सुअवसर अधिक से अधिक प्राप्त करने की इच्छा से इन्द्रध्वज महामण्डल विधान की भूमिका के माध्यम से रोकने का प्रयास किया जा रहा था तभी श्री दि. जैन अटा मन्दिर जी के प्रबन्धक श्री शील चन्द जी अनौरा व दिगम्बर जैन पचायत के अध्यक्ष ज्ञानचन्द जी इमलिया, मंत्री श्री कुशलचन्द जी एडवेकेट, श्री शिखर चन्द जी चौधरी अध्यक्ष देवगढ मैनेजिंग कमेटी, श्री उदय चन्द जी पारौल मंत्री देवगढ, मैनेजिंग कमेटी एव अन्य पदाधिकारियो ने महाराज द्वय के समक्ष यह संकल्प करके आशीर्वाद ग्रहण किया कि हम लोग १००८ इन्द्र इन्द्राणीयों द्वारा यह विधान सम्पन्न करायेगें अतिशय क्षेत्र देवगढ जी में एतदर्थ हर्षोल्लास के साथ महाराज द्वय का ८ मार्च १९९१ शनिवार को अतिशय क्षेत्र देवगढ की ओर विहार हो गया । ऐतिहासिक चाँदपुर जहाजपुर के दर्शन करते हुये देवगढ़ क्षेत्र पर मंगलमयी प्रवेश हुआ । श्री १००८ श्री शान्तिनाथ भगवान का दर्शन कर तृप्ति का अनुभव करते हुये भी दूसरी ओर आराध्य की यत्रतत्र बिखरी प्रतिमाओं को देखकर उनका हृदय क्षुब्ध हो उठा और उनके मन में प्रतिमाओ को साकार रूप देने का विचार आया । कार्य प्रारम्भ होने से पूर्ण ही मगलाचरण के रूप में पर्वत पर ही १० मार्च १९९१ से १९ मार्च तक प. श्री मोतीलाल जी मार्तण्ड के द्वारा इन्द्रध्वज विधान का कार्य सम्पन्न हुआ । महाराज जी के मंगलमयी उद्बोधन से समाज के श्रावक एवं श्राविकाओं में ऐसी धर्म प्रभावना जागृत हुयी कि इस विधान में ११७३ इन्द्र इन्द्राणियो ने भाग लेकर कार्यक्रम को सफल बनाया । आधुनिक संगीत के माध्यम से नवयुवकों में धर्म के प्रति आस्था जागृत हुयी । अनायास ही गजरथ के माध्यम से प्रभावना हेतु योजना बनी और तत्काल ही महाराज श्री के आशीर्वाद से देवगढ़ तलहटी के मंदिर से ऊपर पर्वत तक अपार जन समूह के साथ कार्यक्रम के समापन पर गजरथ यात्रा सानंद सम्पन्न हुयी। वह दृश्य ऐसा लग रहा था मानो साक्षात ही देवो का गढ़ (समूह) स्वर्गिक सौन्दर्य वाला देवगढ़ ही हो । वस्तुत: ऐसे गुरूओं के चरण जहाँ पड़ते है वह क्षेत्र, ग्राम, नगर, नगरवासी सभी धन्य हो जाते हैं ।

कार्यक्रम के पश्चात् महाराज द्वय का ग्रीष्मावकाश इसी क्षेत्र पर स्थापित किया तथा तपती हुयी ज्येष्ठ की दुपहरी में भी मुनि श्री जी ने घन्टो घन्टो प्रत्येक मूर्ति के सामने ध्यान लगाकर इतनी विशुद्धि बढ़ाई कि किसी भी कार्य में व्यवधान नहीं हुआ । वास्तव में त्याग तपस्या एवं तन के प्रति निर्ममत्व भाव को देखकर चतुर्थ काल के मुनियों का साक्षात् दर्शन इनकी छवि में हो जाता है । दिन प्रतिदिन के मंगलमयी उद्बोधन से नव युवकों में ऐसी चेतना जागृत हुयी और उन्होंने स्वयं संकल्पित हो निष्ठा एवं लगन से तन, मन, धन, से अपना अमूल्य समय देकर कार्य में सक्रियता प्रदान की । इतना ही नहीं शासन के द्वारा पुरातत्व विभाग से भी कोई बाधा उपस्थित नहीं हुयी। भारतीय पुरातत्व विभाग के सामान्य प्रबन्धक श्री मुनीष जोषी, उप सामान्य प्रबन्धक श्री बी. एन टंडन व स्थानीय अधिकारी तन मन से सहयोग करने को संकल्पित हुये तथा पुरातत्व सम्बन्धी उठी शंकाओ का निवारण मुनि श्री के समक्ष सहजरूप में ही हो गया । भीषण गर्मी की परवाह न करते हुये आपकी साधना तपस्या व आशीर्वाद से जयपुर के शिल्पी एवं ललितपुर के दयाराम आदि कारीगरो के द्वारा मुर्तियों एवं मंदिरों का जीर्णोद्धार करने का कार्य तीव्रगति से चल पड़ा तब सफलता प्राप्त हुयी । मुर्तियों को जिनालयों में उच्च स्थान प्रदान करके मन में अपूर्व शान्ति का अनुभव करते हुये देवगढ जी से महाराज द्वय का विहार हुआ क्योंकि साधु तो बहता पानी और रमता जोगी होता है ।

महाराज द्वय के विहार से क्षुब्ध हृदय वाले ललितपुर नगरवासी पुन: अमृतवृष्टि की चाह से परमोपकारी गुरूओं के समक्ष अनुनय विनय करने लगे चातुर्मास की स्वीकृति के लिये तथा देवगढ़ में विराजमान प्रतिमाओं में प्राण प्रतिष्ठा का प्रसंग व्यक्त किया गया तो पूज्य गुरूदेव ने १०८ आचार्य श्री विद्यासागर महाराज जी के आशीर्वाद से व हम सभी के पुण्योदय से ललितपुर की ओर विहार किया ।

धन्य घड़ी धन्य दिवस- नदी का प्रवाह सतत प्रवाहमान रहकर संसार की क्षणभंगुरता का ज्ञान कराती रहती है जो अगाध काल के मुख में आज तक प्रवेश पाती रही जिसका न कोई आदि न मध्य न अन्त देखने में आया ऐसा यह काल आज तक सभी जड़ जंगम वस्तुओं के परिवर्तन में

सहायक उपस्थित रहकर अपनी उपस्थिति का ज्ञान कराता है । पर आज काल चक्र में भी वह घड़ी हम सभी के देखने में आयी, जिस घड़ी की प्रतीक्षा सारे नगर के नगर वासियों को बैचेन कर रही थी । और वह बैचेनी किसी पीड़ा दुःख कष्ट या परेशानी का प्रतीक नही थी वरन् आने वाले अतिथि की राह खोज रही थी ।

जब सारे नगर में अतिथियों के आगमन की बात बिजली की तरह फैली तो हर दिल में प्रसन्नता छुपाये न छुप रही थी । प्रत्येक व्यक्ति का मन आगमन की प्रतीक्षा में बैठा विचार ही नहीं कर रहा था अपितु उन आने वाले अतिथियों को देखने एवं आचार विचार के सगम से अतिथि स्वत उद्घाटित कर रहा अर्थ को अर्थात् सार्थकता शब्दो की शब्दों के आधीन होकर भी शब्दो के अपने वश मे नहीं होती क्योंकि शब्दों का अर्थ वक्ता, लेखक और श्रोताओं के आशय पर भी आधारित होता है । इसलिये इस अतिथि शब्द का अर्थ है - "यस्य न तिथि वर्तते स अतिथि" अर्थात् जिनकी कोई तिथि निश्चित नहीं होती जो न आने का समय निर्धारित करते है न जाने का । जो वीतरागी है आजीवन दिगम्बर है ऐसे नदी के समान प्रवाहमान हवा की तरह निसग, निर्लिप्त धर्मधारी साधु । अतिथि का आज हमारे नगर में शुभ पदार्पण होने जा रहा है जिनके लिए आज सारा नगर नई नवेली दुल्हन की तरह सुसज्जित किया गया । सभी नर-नारियो ने अपने घर द्वारों को भी वदनवारो से तथा मन को मंगलभावो मे सजाकर अपार उत्साह का परिचय देकर इस सनातन वीतराग धर्म के प्रति आस्था दिखलाई जैसे आज मर्यादा पुरूषोत्तम राम अपनी चौदह वर्ष की उम्र प्रतिज्ञा को पूर्ण कर वापिस अयोध्यापुरी आये हो । सभी जय-जयकार के नारो से गुंजायमान होते हुये आगे बढते चले जा रहे थे । हाथो मे धर्म की पताका एसे शोभित हो रही थी मानो यह प्राणियों का प्राण दो देश धर्म का प्रमाण हो, दिग्विजय का प्रतीक हो तथा यह धर्म पताका हवा के सहारे लहराकर अपनी प्रसन्नता को जग जाहिर कर रही थी क्योंकि जिसकी यह ध्वजा है वह स्वत उस धर्म को अपने में धारण कर धर्म मय होकर वीतराग शासन की प्रवाह शीलता को श्री आदिनाथ से भगवान महावीर पर्यन्त इस वर्तमान चौबीसी में निरन्तर बनी रही उसके बाद अनेकानेक केवलियो श्रुतकेवलियों अंगो पूर्वों के ज्ञाता आचार्यों उपाध्यायों और साधुओं ने परम्परा में जुडकर जलती हुई समाई (दीपक) में घी का कामकर उसे जलाये रखकर हम सभी पर महान् उपकार किया जो उपकार हम सब मिलकर भी इस जन्म में तो क्या अनेक जन्मों में भी नहीं चुका सकते ऐसे परमोपकारी महान सत परम पूज्य १०८ मुनि श्री सुधासागर जी एवं ऐलक श्री निशंक सागर जी आज अपने पूज्य गुरूदेव विद्यासागर जी के आशीर्वाद को सहर्ष साकार बनाने हमारी नगरी में पधार रहे है ।

प्रत्येक द्रव्य की सत्ता शाश्वत तथा उत्पाद व्यय ध्रौव्य से युक्त होकर इस लोक में दिखाई देती है परन्तु हर चर्म चक्षु इन शाश्वत् सत्ता वालो का अवलोकन करके भी नहीं कर पाता है क्योंकि क्षयोपशम । इन्द्रिय ज्ञान द्रव्य को तो विषय बना नही सकता यदि बनाता है या जानता है तो मात्र पर्याय को ही । वह भी त्रिकालवर्ती नही तात्कालवर्ती को ही । जिस तरह द्रव्य का अक्षय खजाना जो कभी समाप्त नहीं होता न हुआ और न होगा उसी प्रकार अको में अक्षय अक है नौ (९) जो ९ की दुनियाँ को १० (९ × १०) तक पढने पर पुन जो अक आवे उन्हें परस्पर जोड पढने पर पुन जो अक आवे उन्हें परस्पर जोड़ दे तो वह अक्षय अक ९ ज्यो का त्यों विद्यमान रहता है । ऐसे अक्षय नवमी तिथि को दि २०-६-९१ शनिवार को शाम को ये चरण जो आचरण में पले थे कहीं न रूके नदी का प्रवाह भला कब तक ठहर सकता है ? तो पुन ये चरण चन्देरी होते हुये अतिशय क्षेत्र सेरोन जी से हम भक्तो की हृदय वाणी को सुनकर करूणा के सागर पू महाराज द्वय का पदार्पण हुआ ।

२५ जुलाई १९९१ को देवगढ को दृष्टि में रखते हुये चरा चर प्राणियों पर दया रखने वाले महाराज द्वय के वर्षायोग की स्थापना श्री दि जैन पार्श्वनाथ अटा मंदिर जी में हुयी । प्रात काल जिस तरह सूर्य की किरणें अन्धकार को नष्ट कर देती है उसी प्रकार अज्ञानांधकार से आवृत हम जीवो का जीवन पवित्र स्वच्छ उज्जवल बनाने की भावना से पू मुनि श्री द्वारा प्रात• श्री कार्तिकेय स्वामी कृत 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा' ग्रन्थ का वाचन बडे ही सरल शब्दों में हम सभी श्रावको को समझाया । आपकी सम्मोहनी वाणी से प्रत्येक घर के व्यक्ति सहजता में खिचे आते थे । दोपहर में पू ऐलक जी द्वारा आचार्य उमास्वामी जी कृत 'तत्वार्थ सूत्र' जो कि जैनधर्म का प्राण है ऐसे सूत्र ग्रन्थ का स्पष्टीकरण विशद विवेचना के साथ किया गया इसके अतिरिक्त अन्य कलासें भी लगायी गयी ।

महाराज द्वय के सान्धिय से चातुर्मास में जनसमुदाय के लिये अनेक उपलब्धियाँ प्राप्त हुयी ।

शान्ति का मूल मन्त्र पर्वराज पर्युषणपर्व आया दस दिनों के दस धर्मों को पूर्णरूप में अंगीकार करने वाले महाराज श्री के मुखारविन्द से उत्तम क्षमादि दश धर्मों पर मार्मिक हृदयस्पर्शी प्रवचन हुए तथा ऐलक महाराज जी द्वारा दोपहर में तत्वार्थ सूत्र जैसे महान सूत्र ग्रन्थ के प्रत्येक अध्याय का अर्थ सुस्पष्ट ढंग से किया गया । त्यागमूर्ति महाराज द्वय को देखकर कोई भी त्याग संयम एवं दानादि क्रियाओं से अछूता न रहा ।

अहिंसा के साधक पूज्य १०८ मुनि श्री सुधासागर महाराज जी के संयम साधना की तिथि २६ सितम्बर १९९१ को नौवे दीक्षा दिवस का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ । पूजन ज्ञानद्वीप प्रज्जवल आदि विभिन्न कार्यक्रमों के साथ महाराज जी के प्रति सभी की शुभ भावना रही । प्रत्येक जीव के कल्याण की भावना से दीक्षा दिवस के उपलक्ष्य में २४ सितम्बर से २६ सितम्बर तक त्रिदिवसीय अहिसा सम्मेलन मनाया गया । बाहर से आये हुये व स्थानीय नवयुवको द्वारा शाकाहार की पुष्टी व मांसाहार के दुष्प्रभाव की झांकिया व प्रदर्शिनियाँ लगायी गयी । उन्हें देखने के लिये जन-मानस का ताता सा लगा रहा था । जिससे जैन तथा जैनेतर समाजो पर अच्छा प्रभाव पडा । इसी त्रिदिवसीय कार्यक्रम में लेखमाला / भाषण प्रतियोगिता / वादविवाद प्रतियोगिता/ प्रश्न मच / भजन प्रतियोगिता / रंगोली प्रतियोगिता / महिला सम्मेलन / सामान्य ज्ञानलिखित परीक्षा / कवि सम्मेलन आदि धार्मिक प्रभावना हेतु कार्यक्रम किये गये । सभी के उत्साह वर्धन के लिये नेमिचन्द जी सागर वालो के द्वारा पुरस्कार वितरण किये गये तथा दीक्षा दिवस के प्रतीक चिन्ह के रूप में ढोढाघाट की वेदियों पर सुधासागर कीर्तिस्तम्भ व सुधासागर कन्या इण्टर कॉलेज के निर्माण की योजना बनी और तत्काल ही स्थापना की गयी और जिसका शिलान्यास उत्तर प्रदेश सरकार के खाद्य एवं रसद मंत्री श्री बाबूलाल जी गुप्ता के द्वारा शिलान्यास किया गया । संयम दिवस पर पू ऐलक जी ने परम पूज्य मुनि श्री के समक्ष अपनी भावनाओं को समर्पित करते हुये कहा कि जब तक गगन में चन्द्र सूर्य है तथा जब तक सूर्योदय एवं अस्तकालादि जब तक समुद्र में जल कण है तब तक महाराज श्री अपने दिव्य ज्योति ज्ञान सभी भव्य जीवों को कल्याण मार्ग प्रशस्त करते रहें तथा स्वयं भी गुरूदेव से प्राप्त मार्ग में निरंतर वृद्धि करते हुये इस संसार में दिखायें कि संयम का फल क्या है ?

चातुर्मास में ही देवगढ़ पंचकल्याणक व पंचगजरथ महोत्सव की भूमिका प्रतिष्ठाचार्य पं. श्री मोतीलाल मार्तण्ड जी की समकक्षता में तैयार की गयी जिससे हीरा मोती जैसे महान दानियों ने दान देकर श्री सुमत चन्द जी सिंघई (मुंगावली) ने सौधर्म इन्द्र पद हेतु एवं हुकुमचन्द कामरा जी ने भगवान के माता पिता बनने का सौभाग्य प्राप्त कर आशीर्वाद ग्रहण किया । इसी क्रम में अन्य दातारों ने कुबेर, यज्ञनायक, सवाई सिंघाई, सिंघई इन्द्र प्रतीन्द्र आदि इन महान पदवियो को धारण करने का संकल्प लिया ।

इसी बीच देवगढ़ क्षेत्र में अखिल भारत वर्षीय दिगम्बर जैन परिषद का राष्ट्रीय अधिवेशन १२ अक्टूबर से १४ अक्टूबर तक सम्पन्न हुआ जिसमें देश के एव विदेश के ख्याति पाप्त पत्रकार श्री अक्षय जैन, देश के श्रेष्ठ उद्योगपति श्री रमेश साहू एवं बी आर जैन भिलाई (स्टीलकिंग) ने भाग लिया तथा देवगढ़ के नवीन रूप को देखकर बहुत प्रशंसा की ।

अथान्तर ज्योति पुंज भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव के उपलक्ष में ढोढाघाट पर भगवान महावीर के पथ के पथिक महाराज द्वय के समक्ष निर्वाण लाडू चढाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ और मुनि श्री जी का मंगलमयी द्विव्य देशना सुनकर सभी जन ऐसे तृप्त हुये जैसे साक्षात ही भगवान महावीर की दिव्य ध्वनि खिर रही हो ।

दिगम्बर मुनि निष्परिग्रही होते हुये भी संयम का उपकरण पीछी व कमण्डल ही उनके पास होता है 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामया·' की भावना जिसके पास होती है वह ही जीव दया के परिणाम हेतु पीछी को ग्रहण करते है । पीछी के पंख इतने कोमल होते है जिनके माध्यम नेत्रो से तुच्छ जीवो की भी विराधना नही होती है । एक वर्ष में पंखों की कोमलता समाप्त हो जाती है । अतः अहिंसा व्रत का पालन करने वाले, संयम का पालन करने के लिये पीछी का परिवर्तन अधिकांशत. वर्षायोग की समाप्ति पर ही करते है । अतएव ११ नवम्बर १९९१ को संयम व्रत ग्रहण करने वाले श्रावको के द्वारा पीछी का आदान-प्रदान हुआ । पूज्य मुनि श्री जी की पीछी प्राप्त करने का सौभाग्य श्री बद्री प्रसाद जी अमन एवं पूज्य ऐलक जी की पीछी प्राप्त करने का सौभाग्य श्री बालचन्द जी अनौरा वालों को प्राप्त हुआ । क्योंकि संयम का प्रतीक धन से नहीं संयम से ही मिला करता है । पीछी परिवर्तन के समय कितने जीवों के भावों का परिवर्तन हुआ होगा । यह अकथनीय

ही रहा था । उस समय का वह दृश्य अवर्णनीय है वस्तुत उस घड़ी का विचार करते ही सहज ही वैराग्य का वह दृश्य दृष्टि पटल पर अंकित हो जाता है ।

इसके पश्चात् चेतन प्राणियो के प्राणो में जागरूकता प्रदान कर उन अचेतन मूर्तियों में प्राण प्रतिष्ठा की भावना से १३ नवम्बर को प्रात काल देवगढ़ क्षेत्र की ओर विशाल जनसमुदाय के साथ बिहार हो गया ।

परम पूज्य १०८ आचार्य श्री विद्यासागर महाराज जी के निर्देश से धर्म का प्रचार व प्रसार करते हुये दिनाङ्क २८ नवम्बर को १०५ आर्यिका दृढमती, मृदुमती माता जी के सँघ ग्यारह आर्यिकायों का अतिशय क्षेत्र देवगढ जी में मंगलमयी प्रवेश हुआ । आर्यिका सघ ब्राह्मी विद्याश्रम की विदुषी बहनों के एवं वर्णी दि जैन गुरूकुल मढिया जी जबलपुर के ब्रह्मचारी भाईयो के आगमन से देवगढ क्षेत्र की शोभा इस चतुर्विध सघ के कारण चतुर्मुखी हो गयी ऐसे लगता था जैसे साक्षात् ही समवशरण लगा हुआ हो कैसा भाग्य था हम नगरवासियो का कि इतनी पिच्छिकाओं का एक साथ दुर्लभ दर्शन भी सुलभ हो गया ।

जन-जन के अन्दर विश्व के इतिहास में प्रथम बार पच गजरथ एव पच कल्याणक प्रष्ठि‍ा महोत्सव देखने की तीव्र इच्छा थी उस अदभुत आश्चर्यकारी रमणीक दृश्य के लिये चिर प्रति क्षित सभी णमोकार मन्त्र जैसे महामन्त्र की आराधना में संलग्न थे । कार्यक्रम की सफलता विषयक आशंकाओ को भी मुनि श्री जी के त्याग तपस्या एव कठोर साधना के आगे झुकना पड़ा पर्वत के ऊपर गजरथ के माध्यम से जिनालयो की परिक्रमा जैसा दु साध्य कार्य भी महाराज द्वय के आशीर्वाद से इतना सहज हो गया । मुनि श्री के प्रति श्रद्धा भक्ति और लगन होने के कारण सभी जन कार्य की सफलता के विषय में निश्चिन्त और प्रसन्नचित थे । जिन आगत क्षणों का इंतज़ार था आ गयी वह स्वर्णिम वेला ५ दिसम्बर १९९१ का वह दृश्य जब इन्द्राणीओ के समान उसी वेश भूषा से सुसज्जित मंगल कलशो को लिये हुये देवगढ़ तलहटी के मदिर से चतुर्विध संघ सहित शोभा यात्रा पर्वत तक चली आ रही थी । इस प्रकार घट यात्रा का कार्य सानंद सम्पन्न हुआ ६-७ दिसम्बर को गर्भ कल्याणक की पूर्व व उत्तर क्रियाये दिखलाई । आधुनिक वैज्ञानिक साधनों के प्रयोग से एवं साजसज्जा के माध्यम से जन समुदाय तो इतना तल्लीन हो कि कुछ क्षणों में उसे वर्तमान स्थिति का उसे भान ही न रहा ऐसे लगा जैसे साक्षात ही उन क्रियाओं को देखकर आया हो । चोरों और शान्ति का वातावरण था । दिसम्बर माह की वह भयंकर सर्दी भी उस ऐतिहासिक दृश्य की प्रतिक्षा में प्रतीत नहीं हो रही थी । ऐसे शुभ अवसर पर उत्तर प्रदेश सरकार के वित्त मत्री श्री राजेन्द्र गुप्त ने प्रधार कर महाराज द्वय से आशीर्वाद ग्रहण किया और क्षेत्र के विकास के लिये संकल्पित हुए सुबह प्रात काल बालक शान्ति कुमार का जन्म हुआ यह जन्म एक ऐसा आलौकिक जन्म था जिसके बाद पुनर्जन्म नहीं लेना पडेगा । माता के पास से जन्माभिषेक हेतु सौधर्म इन्द्राणी जब बालक शान्ति कुमार को उठाती है तो उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि तीनो लोको की सम्पदा भी न्यौछावर कर दी जाये तो भी उस आनन्द का अनुभव नहीं हो सकता । वास्तव में ऐसे बालक का स्पर्श करने का अधिकार भी उन्हीं को होता है जिनका ससार निकट हो जाता है । स्त्री पर्याय की सार्थकता तो शची बनने में ही है जो एक भव के पश्चात मोक्ष सुख का अनुभव करेगी। तदन्तर बालक को भव्य जुलूस के साथ पाण्डुक शिला पर ले जाया जाता है वहाँ पर जन्माभिषेक के पश्चात् चौदह श्रृंगारो से बालक को सुसज्जित किया गया फिर राजाओं के द्वारा भेंट प्रदान की गयी । अनादि कालीन आवागमन से मुक्त होने के जन्म लेने वाली आत्मायें विरली ही होती है । दूसरे दिन तप कल्याणक के दिन मुनि श्री सुधा सागर महाराज जी द्वारा दीक्षा विधि से सस्कारित किया गया तत्पश्चात मुनि श्री द्वारा मुनि श्री शान्तिनाथ जी को नमोऽस्तु किया गया गुणो की पूजा के इन मार्मिक दृश्यो को देखकर सभी भाव विहवल हो गये १० जनवरी को प्रात श्री शान्तिनाथ महाराज जी की आहारादि क्रिया प्रतिष्ठाचार्य प श्री मोतीलाल जी मार्तण्ड जी से सम्पन्न कराई गयी । अथान्तर मुनि श्री शान्तिनाथ जी को केवलज्ञान की प्रप्ति हुयी और सुनील कुमार जी इमलिया ललितपुर के द्वारा समवशरण की रचना सुव्यवस्थित ढंग से की गयी । उसी समवशरण में मुनि श्री जी की दिव्य देशना सुनने का लाभ प्राप्त हुआ । मुनि, आर्यिका श्रावक और श्राविका इस प्रकार चतुर्विध संघ भी समवशरण में विराजमान था । वह ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे साक्षात ही शान्तिनाथ भगवान की दिव्य ध्वनि खिर रही हो । सभी अतुल्य अवर्णनीय आनंद का अनुभव कर रहे थे । ऐसे वातावरण में उत्तर प्रदेश सरकार के मुख्यमंत्री श्री कल्याण सिंह ने देवगढ़ क्षेत्र पर पधारकर मुनि श्री के प्रवचनो का लाभ लिया व क्षेत्र के विकास को देखकर बहुत प्रशंसा की । ११ जनवरी ९३ को जन्म मरण की

सन्तति को मिटाने वाले भगवान शान्तिनाथ के मोक्ष गमन को देखने के लिये लाखों की सख्या में जनता उपस्थित थी और हम सभी की बीच मे से देखते ही देखते मोक्ष धाम में विराजमान हो गये । और आ गयी वह मंगल घड़ी जिसे देखने के लिए चिर प्रतीक्षित जनता चली आ रही थी । देवगढ़ क्षेत्र को अतिशय व महाराज द्वय के आशीर्वाद से इतनी जनता और भी आ जाती तो भी कोई परेशानी आने वाली नहीं थी । जगह-जगह के दिव्य घोष हाथियों व पंच गजरथों एवं चतुर्विध सघ के साथ परिक्रमा की अप्रतिम शोभा वाली थी । सभी ने हाथियों व पंचगजरथ पर बैठकर धर्मानुरागी ने पुण्योपार्जन किया । रथ की फैरी प्रारम्भ हुयी लाखो की सख्या में स्थित कितने जैन व जैनेतरों के भावो में परिवर्तन हुआ होगा । उस दिन को देखकर आनन्द का वर्णन अकथनीय है ।

महाराज द्वय की साधना तपस्या त्याग व आशीर्वाद से एव प्रतिष्ठाचार्य श्री प मोतिलाल मार्तण्ड जी एव सहप्रतिष्ठाचार्य श्री सुधीर कुमार जी के अथक लगनशीलता व समाज के पारस्परिक सहयोग से यह ऐतिहासिक कार्यक्रम सानंद सम्पन्न हो गया ।

पच गजरथ एव पंचकल्याण प्रतिष्ठा महोत्सव के उद्देश्य को सफल बनाने में उत्तर प्रदेश शासन भी देवगढ़ के विकास हेतु पीछे नहीं रहा और महोत्सव को सफल बनाने हेतु लाखो रूपयों का सहयोग दिया । जल व्यवस्था हेतु लगभग १२ लाख रूपया तथा सडक निर्माण हेतु लगभग १० लाख विद्युत व्यवस्था हेतु १० लाख रूपया सार्वजनिक निर्माण विभाग ने दिया । स्वास्थ्य विभाग हेतु लगभग दो लाख रूपया खर्च किया गया । यह सब सहयोग सासद श्री अग्नहोत्री के सतत् प्रयासो से ही सम्पन्न हो सका । इसके अतिरिक्त ललितपुर से देवगढ़ मार्ग की मरम्मत के लिये लगभग १५ लाख रूपया व्यय किया गया अधिशाषी अभियंता सार्वजनिक निर्माण विभाग श्री वी एस जैन के सहयोग एव लगन में सार्वजनिक निर्माण विभाग की कार्य अल्पकाल में श्रेष्ठतम रूप में शीघ्र ही कराया ।

पुलिस अधीक्षक श्री सुखदेव देव सिंह सिद्ध जी ने मुनि श्री के चरणारविंदों में आजीवन मद्य, माँस मधु का त्याग किया उनके त्याग को देखते हुये अन्य अधिकारियों एवं जैनेतर सज्जनो ने अनुकरण कर पंच गजरथ महोत्सव के उद्देश्य को सफल बनाया ।

हलचल समाप्त होती जा रही थी किन्तु शांति में भी आनंद का अनुभव हो रहा था । क्योंकि देव गढ़ अब बदले परिवेश में हम सभी के समक्ष था । देवगढ़ का सुप्त देवत्व पुनः जागृत हो गया । पहले वीतरागता को बिखरी हुयी देखकर साधक का मन जहाँ पीड़ा का अनुभव करता था वही आज वीतराग स्थली को देखकर प्रसन्नता का अनुभव होता है । वर्तमान में वह उक्ति चरितार्थ हो रही है 'गढ़ देख देवगढ़ आँखें सफल बनाओ ।' निधत्ति और निकाचित जैसे कर्म जिन प्रतिमाओं के दर्शन करने से नष्ट हो जाते है ऐसे देवों का समूह अर्थात् इतनी प्रतिमाओं में प्राण प्रतिष्ठा हो जाने से यह देवगढ़ क्षेत्र अब अपने सार्थक नाम वाला हो गया । ऐसी प्राचीनतम मनोज्ञ प्रतिमाओं के दर्शन कर हम सभी की आँखे धन्य हो गयी । यदि भावनाओ की विशुद्धि रही तो आज भी इन प्राचीन प्रतिमाओं में व देवगढ़ क्षेत्र में वही देवपत खेवपत जैसा अतिशय विराजमान है।

अनायास ही यह परिवर्तन क्या कैसे ? यह सब गुरू चरणों का ही माहात्म्य है क्योंकि

'मुनि श्री' का था ये विचार ।
देवगढ़ का हो जीर्णोद्धार ।।

आचार्य श्री का आशीर्वाद लिया ।
देवगढ़ को आगमन किया ।।

अमृतवाणी और मधुर मुस्कान ।
पुरातत्व का भी है ज्ञान ।।

मुर्तियों को पूज्य बनाया ।
देवगढ़ जी में रथ चलवाया ।।

हुआ विश्व मे प्रथमबार ।
ऐतिहासिक यह अनुपमकार्य ।।

जिन बिम्बों के दर्शन कर लो ।
मानव जनम सफल कर लो ।।

वास्तव में मानव जन्म की सफलता गुरू चरणों में ही है । जिन्होंने गुरू चरणों का आश्रय नहीं लिया वह कभी इस संसार सागर से पार नहीं हो सकता है । जे गुरू चरण जहां पडे वह क्षेत्र ग्राम नगर विकाशोन्मुख हो गये । पतित से पावन बनाना है तो इन गुरूओं की शरण प्राप्त करना होगी जिन्होने पाषाण में भी भगवान को देखा है ऐसे गुरूओ के चरण जहाँ भी पड़ते है वह तीर्थ क्षेत्र के समान ही हो जाता है । उनके चरणों की रज सदैव प्राप्त होती रहे । इसी भावना के साथ गुरू चरणों में शत शत बार नमन हो, नमन हो, नमन हो ❑❑❑

श्री सुधा सागर जी के चरणो मे अपना मस्तक धरता

■ डा. सुशील कुमार जैन
सम्पादक- जैन प्रभात
कुरावली (मैनपुरी) उ.प्र

सुधा सिन्धु का अमृत प्याला कण्ठ उतारा प्रेम,
गुरु गरिमा पाकर अब पाया जिसने चैन।
पचेन्द्रिय को वश मे करने लगे है जिसके नैन,
शान्त शील और सत्य को पाने मे बैचेन।
मै नयन बिछा उन चरणो की अगमानी करता,
श्री सुधा सागर जी के चरणो मे अपना मस्तक धरता ॥

विद्या का सागर सुधा सागर कलश जहाँ पर लाये,
चरणाम्बुज पडे धरा पर ज्ञानी जन सब आये।
सागर का जल गागर मे भरने दिया ज्ञान का नन्दन,
साधन नही साधना से होता रत्नत्रय आलम्बन।
चरण कमल प्रक्षालन नित मस्तिष्क हृदय धरता,
श्री सुधा सागर जी के चरणो मे अपना मस्तक धरता ॥

खिला चमन ईशुरवारा शुभ मोक्ष सप्तमी आयी,
विजय कीर्ति की यश पताका जय कुमार ने पायी।
पितृ रुपचन्द माँ शान्ति से पाया धर्मानन्दन,
ज्ञान कसौटी पर घिस कर पाया जिसने चन्दन।
सुधामृत का रसास्वादन कर निज आतम मे रमता,
श्री सुधा सागर जी के चरणो मे अपना मस्तक धरता ॥

नैनागिर से नयनो मे जब झलकी स्वारस बेडी,
तोडी अन्तस् लडियाँ पायी निज आतम अनवेली।
क्षुल्लक ऐलक परम सागर ने लिया ज्ञान मकरन्दन,
परिग्रह तजकर अपरिग्रह का खुला लगोटी क्रन्दन।
सम्मेद शिखर के ईशरी मे भेष दिगम्बर रखता,
श्री सुधा सागर जी के चरणो मे अपना मस्तक धरता ॥

आज आपके युग चरणो पर होता जग आकर्षण,
वाणी सुनने खिचे चले आते जैसे गुरुत्वाकर्षण !
देवगढ क्षेत्र में प्रभु जी का किया आपने वन्दन,
खण्डित मूर्ति अखण्डित वन गयी हुआ वहाँ अभिनन्दन।
"सुशील" गुरुवर के चरणो मे शत्-शत् वन्दन करता।
श्री सुधा सागर जी के चरणो में अपना मस्तक धरता।

महामुनि श्री सुधासागर एवं उनके संघ के प्रति

■ विनोद कुमार टड़ैया
मैनेजर (एस. डब्लू.सी.) ललितपुर

सत्य अहिंसा के धारी ये मंगल दीप जलाते
इनकी सुन्दर शान्त दृष्टि से, पाप नाश हो जाते
जड़ताएं सारी भग जाती, सुनकर इनकी वाणी
निर्मलता की चेतन निधि को पा लेता हर प्राणी
सद्ग्रन्थो का मन्थन करके, तत्व हमें समझाते
ये आगम मे गोते खाकर, मोती सदा लुटाते
मानव होकर हिंसक पशु से रहो न माँसाहारी
जिओ और जीने दो सबको, बनो अहिंसाधारी
इन्द्रो की प्रभुता इनके सम्मुख करबद्ध खड़ी है,
स्वर्ग सम्पदा से भी, इनकी वचन विभूति बड़ी है
परम दिगम्बर श्री मुनिवर है मोक्ष मार्ग के पथी
हमे लुटाकर निधियाँ सारी, स्वयं बने निर्ग्रन्थी
सभी गुणो से युक्त महामुनि साधू-व्रती श्री सुधासागर है
साथ विराजे (श्री क्षुल्लक गण) भी गुणके आगर है
चलते फिरते ये तीरथ हैं, इनका वदन कर लो
दर्शन, ज्ञान, चरित के धारी, सब अभिनन्दन कर लो
जन मानस के ये उद्बोधक, जनहित के ध्रुवतारे
जैन भारती के गौरव है सन्त शिरोमणि प्यारे
डोंड़ाघाट और देवगढ़ जी, इनसे सबल हुये हैं
बुन्देली गौरव गरिमा में नव आयाम जुड़े हैं
मुनिवर जैसे महामनस्वी बिरले ही मिलते है
यह हजार पँखुड़ियों वाले, कमल कहाँ खिलते है
ये तो बड़े कीमती हीरे, परख इन्ही की कर लो
अपने दुष्कर्मो की कालिख, सद्वाणी से हर लो
सुरभित सुन्दर इनकी काया, सयम तपश्चरण से
इनकी महिमा प्रकट हुयी है, जग के ताप हरण से
अज्ञानी ज्ञानी बन सकते, इनकी सगति पाकर
अपना जीवन सफल बना लो, भेद ज्ञान अपनाकर
ये तो अनेकान्त अनुगामी, स्याद्वाद वाले हैं
इनकी वाणी से खुल जाते, मन के सब ताले हैं
ये अमृत के पावन घट है, रागद्वेष विष हर लो
चाहो अपनी रीती गागर, सुधा-नीहू से भर लो
जिन बिम्बों को पूज्य बनाने श्री मुनिवर जी आये
धर्म वृद्धि को लिये भावना नव गजरथ को लाये
गुरुवर श्री विद्यासागर को भी साभार नमन है
जिनके द्वारा अभिसिंचित यह अमर धर्म-उपवन है।

मुनि श्री सुधासागरजी के प्रति

ऐलक श्री निशकसागर जी

समर्पण की अपनी कोई
भाषा नहीं होती,
समर्पण में अपनी कोई
आशा नहीं होती ।
समर्पण की अपनी कोई
परिभाषा नहीं होती ।
समर्पण, मात्र
अर्जित जीवन को
समर्पित करना होता है ।
अर्थात्
जो पाया उसे खोना होता है
आराध्य में आराधक का
सिन्धु में बिन्दु सम
मिलना होता है ।
बीज को मिट्टी में
अपना-मन खोना होता है ।
क्योंकि,
गुरु से शिष्य का
कुछ छिपा नहीं रहता,
सिन्धु में बिन्दु
जुदा नहीं रहता ।
और न, ही
समर्पण में
मैं - तू की
भेद-रेखा का
अस्तित्व ही रहता है ।
जहाँ-
तभी, समर्पण में

अहं का विसर्जन होता है ।
और,
निज-पन के अर्पण से
दर्पबिन दर्पण मे
ज्ञेयो का झलकन होता है ।
सतत-
अपने में प्रभु को
नीर का नीर, और
क्षीर का क्षीर करने
परम हस बनकर
निर्विवाद-निर्विकल्प
सत्य को पाने
निर्विकार-वीतराग पथ पर
अविरल बहती नदी सम
बढना होता है
फिर-
ध्यान-ध्याता-ध्येय की
लक्ष्मण रेखा को
लाघकर
पाषाण में अंकित
मूर्तिवत
स्वरुपस्थ हो
अरि-रज-रहस से परे
निजानंद रस से भरे
अनंत समय तक ठहराव हेतु
शिवबास का
निकट भविष्य में
टिकिट प्राप्त होता है.

परमपूज्य सुधासागर महाराज के प्रति

■ लालचन्द्र जैन,
प्रवक्ता हिन्दी

मिले धरा पर कितने सागर खारे पानी के
आओ आज "सुधासागर" मे पावन स्नान करे !

तप का सूरज जिन्हे तपाकर नभ पर लाता है
घटारूप उपदेशामृत भू पर छा जाता है
जीवन को नवजीवन देना ही जिनका जीवन......
जो अगणित आकुल प्राणों की प्यास मिटाता है !
अपने स्थिर भक्तिभाव से नित्य निहारें हम
चातक बनकर स्वाति-बिन्दु-सा उनका पान करे !
आओ आज .. .. !

देखो ऐसा सिन्धु कि जिसमें अनगिन खिले कमल
बीच-बीच सतरण कर रहे हो हसो के दल,
जिसकी तरल -सरल सुन्दरता के कर्षण-बल से
मत्रमुग्ध-सा खिंचा हुआ हो सारा अम्बर-तल !
सुधा-कणो से अभिसिंचित कर ज्ञान-चेतना को
हम सारे पापो-अभिशापो का अवसान करे !
आओ आज.... .... !

अतर्धारा बध-कषायो के मल को धोती
छिपे अतल में दर्शन-ज्ञान-चरित्रो के मोती,
धर्म-ध्यान के मंगल-घट ले करे अगर अभिषेक
भीतर बैठी चेतन प्रतिमा शुद्ध-बुद्ध होती !
कोई कलुष न शेष रहे तन-मन में, जीवन में
अपनी अंजलियां भरकर ऐसे अभियान करें !
आओ आज.... . ... !

सुधा-सिन्धु की व्यापकता का मिलता पार नही
निर्मल गहराई में कोई ज्वार-विकार नही
भावों की भँवरे, विवेक की महातरगे हैं
जिनमे डूबे बिना मनुजता का उद्धार नही !
अपनी जीवन-नौकायें यदि इस तट पर लायें
मुक्ति मिले भवसागर से, हम आत्मोत्थान करे !
आओ आज..................... !

ललितपुर में विराजा हुआ संघ

■ रचियता राजेन्द्र चौधरी
अशोक नगर

देवगढ मे देवगढ गढ दी फिर से प्रतिमा सारी
तीर्थोद्धारक कर्म प्रहारक मुनिवर है ये रिद्धिधारी
गुरुवर श्री सुधासागर के ज्ञान, ध्यान और गुण आगर के
सम्मुख नतमस्तक हो जाती रिद्धि सिद्धिशक्ति सारी

जन्म क्षेत्र है ईश्वरवार, धर्म क्षेत्र है नैनागिर
चरण आपके पड़े जहाँ पर, बन जाते वहाँ जिनमन्दिर
ललित हुई ललितपुर नगरी, हर्षित हुये सब नरनारी
सम्मुख नतमस्तक हो जाती रिद्धि ध्यान शक्ति सारी

विद्यासागर जी से विद्या पाकर, बने हो विद्या के सागर
बाहुबली जी सी दृढता पाई, गुरु गौतम से हो गणधर
मुनि सुकुमार सी है कोमलता, पार्श्वनाथ से हो उपकारी
सम्मुख नतमस्तक हो जाती रिद्धि शक्ति सारी

धैर्य सागर जी धैर्य देते, प्रतिकूल परिणामो मे
गंभीर सागर जी गंभीर रहते, तप, सयम, ध्यानो मे
मुनि आर्यिकाओ से सुरभित है विद्यासागर की फुलवारी
सम्मुख नतमस्तक हो जाती रिद्धि शक्ति सारी

प्रकाश स्तम्भ रूप मुनि श्री

डॉ. वागीश शास्त्री
वागयणि चेतनापीठम
शिवाला, वाराणसी

ज्ञानसुधासागर 108 मुनिश्री सुधासागर जी महाराज की मेधाशक्ति का स्वाध्यायशीलता एवं कल्पना शक्ति के साथ असाधारण सामंजस्य बन पड़ा है। ज्ञान सुधासागार की अतलस्पर्शिनी गंभीरताओं में उतरकर सम्प्राप्त ज्ञानसुधावृष्टि द्वारा प्रसुप्तचेतन जिज्ञासुओं को जीवनता से आप्यायित कर देने की अपूर्व प्रतिभा से भास्वर हैं आप। दिग्भ्रान्त समाज के पोत के लिए आप निश्चयतः प्रकाशस्तम्भ के रूप में विराजमान हैं।

भक्तवत्सल मुनि श्री १०८ सुधासागरजी महाराज

डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव
बिहार राष्ट्रभाषा संस्थान
पी एन सिन्हा कॉलोनी,
पटना - 800006

महामहिम मुनिश्री सुधासागरजी महाराज की आत्मा बहिरन्त. वात्सल्य रस से परिप्लुत है। उनका मन वचन में प्रतिष्ठित है, तो वचन मन में। और फिर, उनके मन और वचन वात्सल्य में प्रतिष्ठित हैं। इतना ही नहीं, उनकी समग्र अन्तश्चेतना वात्सल्य से ओतप्रोत है। इसलिए वह जब बोलते हैं, तब उनके प्रत्येक शब्द से वात्सल्य की धारा फूटती है। उनकी मुस्कान से झरने वाले वात्सल्य निर्झर से तो उनके भक्त भींग-भींग जाते हैं। भक्तवत्सल गोपाल कृष्ण की मधुर मुस्कान जैसे ब्रजवासियों को लहालोट कर देती थी, वैसे ही महाराजश्री की मधुर मुस्कान अपने भक्तों की उद्वेलित मानसिकता को धीर स्थिर और प्रशान्त कर देती है।

महाचेता सुधासागरजी महाराज की तपोनिरत आँखों की बन्द पलकों पर तो मानों वत्सलता थिरकती सी मालूम होती है और जब वे खुलती हैं, तब स्वयं वात्सल्य की सुधा से स्नात प्रतीत होती हैं और भक्तों को तन-मन से वात्सल्य विभोर कर देती हैं।

सच पूछिए तो, मुनिश्री का मुख उस कमल के समान है, जिस पर वात्सल्य के मधुर बिन्दु ढुलकते-से लगते हैं। उस कमल का मृणाल उस दीर्घ ज्ञान के समान है जिसका अन्तिम छोर उनके हृदय के सागर की अतल गहराई में प्रतिष्ठित है और उस गम्भीर ज्ञान मृणाल के दण्ड पर प्रस्फुटित मुखकमल पर जैसे साक्षात्

सरस्वती विराजती है, जो अपनी वीणा के तारों पर मौन के अनहदनाद का झंकार करती रहती हैं, जिसमें वात्सल्य रस की शीतलता का तारल्य प्रवहमाण रहता है ।

भक्तों के लिए अभयप्रदायिनी मुनिश्री की मधुभरी कल्याणी वाणी वात्सल्य के करुणामय अक्षरों में जब मुखर होती है, तब वह उनके अपने भक्तों के अज्ञान तिमिर से आवृत हृदय के समस्त आवरणो को दूर कर देती है । मुनिश्री के सहज निश्छल और नि स्वार्थ वात्सल्य के अभूतपूर्व प्राणस्पन्दी स्पर्श से भक्तो के ज्ञानावर्णीय, दर्शनमोहनीय आदि समस्त अन्तराय निर्मूलित हो जाते हैं और वे क्षायोपशम जैसी स्थिति को प्राप्त कर मोक्ष मार्ग की ओर उन्मुख हो जाते हैं ।

जो भक्त वत्सल होता है, वह अपने भक्तो के दु ख से द्रवित होता रहता है । उसका हृदय नवनीत के समान होता है । अपने नाम को पूर्णतया अन्वर्थ करने वाले मुनिश्री सुधासागर जी ज्ञानदया के प्रतिरूपी हैं । उनका हृदय भी नवनीत सम हैं । भक्तो के दु ख की तनिक-सी आँच लगते ही वह द्रवित होने लगता है । सचमुच, वह उदात्त से अभिभूत भक्तवत्सलता से विमण्डित साधनापुरुष हैं ।

स्नेहसिक्त तथा दयाद्रवित मुनिश्री की जीवन साधना वात्सल्य साधना का ही प्रतिरूप है । वात्सल्य, शिशु के लिए जिस प्रकार उस के माता-पिता की त्याग-तपोमय जीवन की साधना का भावात्म भाष्य है उसी प्रकार मुनिश्री सुधासागरजी की समग्र जीवन-साधना अपने भक्तो के लिए उत्सर्जित वात्सल्य का ही त्यागोज्ज्वल महाभाष्य है ।

भक्तो के सर्वतोभद्र उत्कर्ष के निमित्त सतत तपस्साधनारत मुनिश्री सुधासागरजी महाराज ने सयम का, त्याग का, तप का, सलेखना का जो कठोर जीवन अगीकृत किया है उसका एकमात्र उद्देश्य उस सर्वसह पिता के समान है, जो अपने शिशु के सर्वतोमुख कल्याण के लिए आत्मार्पित हो जाता है ।

मैं उस वात्सल्य-विमण्डित उत्तर पुरुष की, भक्तो के लिए सर्वात्मना समर्पित भाव चेतना से सम्पन्न पूज्यातिशय भगवन्ता के प्रति नतशीर्ष हूँ ।

शिव पथ पन्थी गुरुवर प्रणाम

डॉ रमेशचन्द जैन
जैनमन्दिर के पास, बिजनौर, उ प्र

पूज्य मुनिवर श्री 108 सुधासागर जी महाराज समय के एक साधक सन्त हैं । आप पूज्य गुरुवर श्री 108 आचार्य विद्यासागर महाराज के शिष्य हैं । सुयोग्य गुरु के शिष्य होने के कारण गुरु जैसी चर्या और गुरु जैसा व्यवहार आपके सयमी जीवन में रच पच गया है । वे एक अन्वेषी प्रकृति के सन्त हैं । अपने दादागुरु आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की साहित्यिक कृतियो को खोजकर, उनके पुनर्मुद्रण की प्रेरणा देकर उनका प्रकाशन अल्प समय मे ही करा कर आपने विलक्षण कार्य किया है । यद्यपि आचार्य ज्ञानसागर का कार्य स्वयं महान् है, किन्तु विद्वानों की दृष्टि उस ओर नहीं गयी थी, फलस्वरूप आपने सागानेर (जयपुर) में 9 जून, 1994 से 11 जून, 1994 तक विद्वद् गोष्ठी का आयोजन कराया, जिसमे पूज्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज की समस्त कृतियों पर विद्वानों ने अपने आलेखों का वाचन कर उन पर ऊहापोह किया ।

सांगानेर संगोष्ठी में विद्वानो ने यह अनुभव किया कि महाराज ज्ञानसागर जी का कृतित्व इतना महान् है कि एक कृति का एक लेख मे मूल्याङ्कन सम्भव नहीं । अत यह निर्णय लिया गया कि प्रत्येक कृति पर एक

स्वतन्त्र संगोष्ठी का आयोजन किया जाय । इस निर्णय के अनुरूप दिनाङ्क 13 अक्टूबर, 1994 से 15 अक्टूबर 1994 तक आचार्य विद्यासागर जी महाराज की तपोस्थली अजमेर में 'वीरोदय महाकाव्य' पर एक विद्वद् गोष्ठी का आयोजन हुआ, जिसमें देश के कोने-कोने से लगभग 50 विद्वान् पधारे और वीरोदय के विभिन्न पक्षों पर निबन्ध पाठ कर उन पर पर्याप्त विचार विमर्श किया । पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज तथा क्षुल्लक द्वय श्री 105 गम्भीरसागर जी महाराज एवं श्री धैर्य सागर जी महाराज के निरन्तर सान्निध्य एवं मार्गदर्शन का लाभ विद्वानों को मिला । इस बीच मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने भी आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के वीरोदय काव्य की महत्ता पर प्रकाश डाला । संगोष्ठियों की यह परम्परा पूज्य महाराज श्री के श्रीचरणों में समय-समय पर आगे भी चलती रहे, यह सबका सङ्कल्प है और इस हेतु महाराज श्री का आशीर्वाद भी प्राप्त है ।

बुन्देलखण्ड के अनेक प्राचीन क्षेत्र जैसे देवगढ़, सेरोन आदि प्राचीन कलात्मक वैभव और मूर्ति शिल्प के लिए विश्वविख्यात हैं, किन्तु उनके प्रति समाज की घोर उपेक्षा के कारण मन्दिर जीर्णशीर्ण हो रहे थे, मूर्तियों को तस्कर ले जा रहे थे, मूर्तियाँ बाहर खुले में धूप और हवा और पानी के सङ्कट से ग्रस्त थीं, अनेक मूर्तियों के अङ्ग भङ्ग हो रहे थे । इस दुर्दशा को देखकर महाराज श्री सुधासागर जी ने मन्दिर और मूर्ति के जीर्णोद्धार का महान् सङ्कल्प कर उसे मूर्तरूप दिया, जिसकी सभी ने मुक्तकण्ठ से सराहना की ।

पूज्य महाराज श्री सुधासागर जी महाराज में एक विचित्र प्रकार की वक्तृत्व शक्ति है, जो श्रोताओं को मन्त्रमुग्ध सा कर लेती है । वे किसी विषय पर जब बोलना प्रारम्भ करते हैं तो उसकी पर्तों पर पर्तें खोलते चले जाते हैं और तब तक उस विषय पर बोलते चले जाते हैं, जब तक वह विषय श्रोताओ के हृदय में अन्त प्रविष्ट न हो जाय । बीच-बीच में वे रोचक प्रसङ्गो, मुहावरो, व्यग्योक्तियों, संस्कृत तथा हिन्दी के पद्य, उर्दू के शेर, लोकोक्तियों आदि का ऐसा प्रयोग करते हैं कि महाराज श्री का प्रवचन समय बीतने पर भी लोग चाहते हैं कि महाराज श्री निरन्तर अपनी वाङ्माधुरी से उपकृत करते रहें । प्रवचन सभा में से जाने की आदत वाले भी उनकी सभा में सजग होकर बेठते हैं और रुचिपूर्वक सुनते रहते हैं । विषय निरूपण हेतु वे अपने सैद्धान्तिक ज्ञान का भी प्रकाशन करते हैं, जिससे प्रवचन विद्वानों से लेकर सर्वसाधारण के लिए ग्राह्य हो जाता है । उन जैसे अध्यात्म प्रवक्ता साधु बहुत कम हैं ।

एक बार महाराज श्री सान्निध्य में ललितपुर में सल्लेखना पर संगोष्ठी का आयोजन हुआ । मैंने सोचा सल्लेखना जैसे विषय पर इतनी लम्बी गोष्ठी कैसे चलेगी, किन्तु जब गोष्ठी तीन दिन चलती रही और विद्वान तथा महाराज श्री सल्लेखना के विषय में निरन्तर अपनी वाग्धारा प्रवाहित करते रहे, तब विषय की उपयोगिता की ओर लोगों का ध्यान गया और सब महाराज श्री की ज्ञानगरिमा की भूरि-भूरि प्रशंसा करने लगे । पूज्य महाराज श्री के सानिध्य में अनेक स्थानों पर गजरथ, पंचकल्याणक आदि के आयोजन बड़ी धूमधाम से हुए और उनमें महाराज श्री की संगठन शक्ति और विषय नियोजन की अपूर्व शक्ति देखी गयी । वे स्वयं जैसे अनुशासित हैं, उसी प्रकार समाज को अनुशासन बद्ध देखना चाहते हैं । श्रावक संस्कार शिविरों का आयोजन महाराज श्री की ही सूझबूझ का परिणाम है । आज ऐसे शिविरों में सैकड़ों नवयुवक भाग लेकर एक प्रकार से साधना का प्रशिक्षण प्राप्त कर रहे हैं और निरन्तर ऐसे शिविरों के लिए लालायित रहते हैं । महाराज श्री के सान्निध्य में निरन्तर स्वाध्याय, बाल प्रशिक्षण, महिला प्रशिक्षण, वृद्ध प्रशिक्षण और युवा प्रशिक्षण के कार्यक्रम सम्पन्न होते रहते हैं । इस प्रकार की बहुमुखी प्रवृत्तियों के बीच वे निरन्तर आत्मकल्याण की साधना में निरत दिखाई पड़ते हैं । इनके चरणों में अभद्र भी भद्र हो जाता है । वे करुणा, क्षमा, दया और शान्ति के भण्डार हैं, प्रणामाञ्जलि समर्पित है ।

❑ ❑ ❑

सुधामय व्यक्तित्व मुनि श्री सुधासागर

डॉ सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'
हिन्दी विभाग
सेवासदन महाविद्यालय, बुरहानपुर

भारतीय वसुन्धरा जिन संत चरित्रो की चरणरज का सतत स्पर्श कर धन्यभाग्य हो गई उनमें परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य मुनि श्री 108 सुधासागरजी महाराज का नाम अग्रगण्य है । त्याग, तपस्या, संयम से अद्भुत तेज उनके आभामण्डल का चिरस्थायी अग बन गया है । वीरोचित शौर्य, अभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोग, सतत सिद्धत्व प्राप्ति की ललक, पगविहार जीवरक्षण के साथ-साथ जीवोत्थान की उत्कट भावना उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व के प्रखर सूत्र हैं । वे 'साधयतिसहजभाव प्राकृतिक वेशं वा स साधु' की परिभाषा पर खरे उतरते हैं । आपके रूप में साधुत्व समीप आता हुआ सा दिखाई देता है । जिस विराट् साधु परम्परा में पूज्य मुनि श्री अनवरत चल रहे हैं वह शान्ति, शिव, ज्ञान और विद्या की उत्कृष्ट परम्परा है जिसकी सयम, ज्ञान, साधना और तपस्या के लिए आम जनमानस मे विशिष्ट पहचान है ।

पू मुनि श्री की विचारणा है कि "स्वयं को समझो । जो देख रहा हूँ वहाँ मैं नहीं, जिससे देख रहा हूँ, वह मैं हूँ।" वास्तव में स्वय को देखने वाला ही स्वय को प्राप्त होता है, यह जिनकी दृष्टि है, ऐसे परम् संत पूज्य सुधासागर जी महाराज आमजन के लिए सुधामय हैं और वे ऐसे सुधाकर हैं जो । उस सुधा को बाँटते रहने में ही अपने सुधाकर होने की सार्थकता मानता है ।

पूज्य मुनि श्री के सान्निध्य एव प्रत्यक्ष-परोक्ष प्रेरणा से पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव गजरथोत्सव, तीर्थोद्धार, श्रुत सेवा एवं श्रावकोत्थान के उल्लेखनीय कार्य हुए हैं जिनसे समाज/विद्वान अपने कर्तव्यो के प्रति जागरूक हुए हैं ।

मैं पूज्य मुनि श्री के चरणो मे नमोस्तु करता हुआ उनके सुदीर्घ जीवन की कामना करता हूँ ताकि उनके माध्यम से जिनवाणी रूप सुधावर्षा का रसास्वादन करते हुए आत्मानुभूति कर सकूँ ।

परिश्रान्त मानवता के उन्नायक विद्वानों में विद्वान् मुनि श्री सुधासागरजी

लेखक-विश्वनाथ मिश्र
जैन विश्व भारती लाडनूं

त्याग तपस्या और ज्ञान के मूर्तिमान् विग्रह श्रद्धेय मुनि श्री सुधासागरजी वर्तमानकालिक उद्‌भ्रान्त क्लान्त और परिश्रान्त मानवता के उन्नायक हैं । निर्मलस्वान्त सम्पन्न निर्दम्भ व्यक्तित्व के अधिष्ठान श्री सुधासागरजी महाराज का प्रेरणाप्रद उपदेशामृत मनुष्य के ज्ञानावरणीय कर्मों के विलयपुरःसर आस्रव का निरोधक तथा निर्जरोन्मुख जीवन के लिये मंगलमय पाथेय है । सरल और ललित भाषा में दिया गया आपका उपदेश अज्ञानान्धकार को दूर कर ज्ञान के अलौकिक आलोक से साधक के अन्तराल को आलोकित कर देता है । इसमें कोई सन्देह नहीं है ।

आपकी उज्ज्वल चारित्रिक सम्पत्ति बरवश मनुष्य को अपनी ओर आकृष्ट कर उसे सत्यथानुगामिनी बनाती है । आपके प्रभावक व्यक्तित्व के प्रभाव से आज मनुष्य में नव जागरण एवं नई चेतना का संचार हुआ है । आपके द्वारा भीषण भवाटवी में भटकती मानवता का कल्याण सदा होता रहेगा ।

परम् श्रद्धेय श्री सुधासागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में त्रिदिवसीय विद्वत् संगोष्ठी निर्विघ्नवत् सम्पन्न हुई । लगभग चालीस विद्वानों के महत्वपूर्ण शोधपत्रों का वाचन इस संगोष्ठी में हुआ । पत्र जो स्वयं में गवेषणात्मक थे उनके वाचन के उपरान्त प्रश्नोत्तर के माध्यम से जो वैचारिक मन्थन यहाँ हुआ, वह अपने मे अभूतपूर्व था ।

इस संगोष्ठी में सबसे महत्वपूर्ण तथ्य के रूप श्रद्धेय सुधासागरजी महाराज की सूक्ष्मक्षिका को प्रस्तुत किया जा सकता है । पत्रवाचन के पश्चात् समस्त पत्रों के ऊपर गहन चिन्तन समन्वित सारगर्भित टिप्पणी मुनि श्री सुधासागर जी की अनितर साधारण प्रतिभा को अभिव्यञ्जित करती थी ।

निश्चय ही इस प्रकार की संगोष्ठी दैनन्दिनक्षीयमाण शास्त्रीय प्रौढि की संरक्षिका हो सकती है अत ऐसे आयोजन के नैरन्तर्यता व्याधान नहीं होना चाहिये ।

अमृतमयी वाणी के सागर: मुनि श्री सुधासागर

डॉ. जगन्नाथ पाठक, इलाहाबाद

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के प्रवचन मैंने प्रथम बार सांगानेर (जयपुर) की सगोष्ठी के अवसर पर सुने थे । उनके व्यक्तित्व का जा प्रभाव उनके प्रथम दर्शन में अनुभूत हुआ उनके प्रवचनो ने उसे और भी गहरा ओर दृढ किया । उनकी वाणी मे जो सत्य और अहिंसा के प्रति निष्ठा का भाव लक्षित हुआ वह हमारी समग्र परम्परा का फलितार्थ प्रतीत हुआ । 'ऋषीणा पुनराद्याना वाचमर्थोऽनुधावति' की पुनरावृत्ति सी उनके प्रवचनो में प्रतीत होती है और नैषधकार का वह वचन भी इनके सक्षिप्त प्रवचनो में घटित होता प्रतीत है- ''मितञ्च सारञ्च वचो हि वाग्मिता'' सही मायने मे मुनि श्री सुधामयी वाणी के सागर हैं ।

श्रमण-परम्परा के दार्शनिक संत मुनि श्री सुधासागर

डॉ प्रेमचन्द रावका
1910, खेजडे का रास्ता, जयपुर

श्रमणो की पुनीत-परम्परा मे इस युग के अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, संस्कृत वाङ्मय के अप्रतिम महाकवि आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के उत्तराधिकारी चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज जी के शिष्य परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी एक दशक से अपने हृदय-स्पर्शी वाणी से जन-जन को प्रभावित कर रहे हैं ।

जून, 94 में सागानेर की चित्रकूट कॉलोनी में मैने आपके प्रथमत· मगल दर्शन किये । प्रथम दर्शन में ही आपकी दार्शनिक आभा ने मुझे अन्तस्तल से प्रभावित किया और सांगानेर में अल्प प्रवास काल ने 15 कि मी दूर स्थित जयपुर जैन समाज को प्रात 6.30 बजे होने वाले आपकी धर्म सभा में तत्त्व श्रवण के लिये बाध्य कर दिया, जब कि वहाँ अन्य मुनिराज भी विराजमान थे ।

परम् पूज्य मुनि श्री सुधासागर योग्य गुरु के योग्य शिष्य हैं । आपके समग्र व्यक्तित्व और कृतित्व से वीतरागता झलकती है । यह वीतरागता जिसमें ज्ञान गरिमा से युक्त हितोपदेशिता है - स्वत· ही वन्दनीय जीवन्त प्रतीक हैं । ''ॐ नम.सिद्धेभ्य.'' की ओंकार मयी मंगल ध्वनि से प्रारम्भ आपके प्रवचनों में श्रोता गण सावधान मुद्रा में आपके मुखारबिन्द से निस्सरित ज्ञान-धारा में आस्वादन लेता हुआ उसमें निमग्न होने लगता है । आपकी विशिष्ट प्रवचन शैली में दार्शनिक सत्तत्व झलकता है । जहाँ सुकरात जैसा दार्शनिक विद्वान भी कह देता था I know that I know nothing यह अल्पज्ञता नहीं जिज्ञासा है जो मनुष्य को सर्वज्ञता की ओर ले जाती है ।

मुनिश्री सुधासागर ऐसे ही दार्शनिक संत है, जिनकी चरण सान्निध्य मे बैठने से तन-मन -दोनों को विश्रांति, शान्ति और ज्ञानामृत सुधाररस प्राप्त होते है । वस्तुत मुनि श्री ज्ञान-विज्ञान के सुधा सागर हैं । उन्हें नमन । है ।

तपस्तेजयुक्त, आकर्षक व्यक्तित्व मुनि श्री सुधासागर

डॉ. श्रीकान्त पाण्डेय
नेहरु रोड, बडौत, मेरठ

मुनि श्री का प्रथम परिचय ही व्यक्ति की अन्तरात्मा को पूर्णरूपेण प्रभावित कर देता है । उनकी युवावस्था, विशाल वक्ष स्थल तथा भाल पर विराजमान तपस्तेज उनके आकर्षण व्यक्तित्व के अङ्ग हैं ।

उनकी साहित्य साधना उनकी इस छोटी सी अवस्था को देखते हुए महान् लगती है । हिन्दी सस्कृत और अग्रेजी आदि भाषाओ का उनका असाधारण ज्ञान यह प्रमाणित करता है कि उनमे किसी बात को भाषा को सीखने की कितनी असाधारण क्षमता है ।

उनकी प्रवचन शैली अत्यन्त आकर्षण है । उनकी वाणी सरल, सरस तथा सबके प्रति अकृत्रिम स्नेह से सम्पन्न रहती है । उनका व्यवहार अत्यन्त अनुशासित तथा सयत है । उनकी देवोपम भव्य आकृति सुन्दर प्रवचन शैली, दिव्य ज्ञान तथा जैन एव अजैन विषयों का असाधारण ज्ञान तथा इन सभी का अत्यन्त उत्कृष्ट रूप से समन्वित कर सामान्य जनता को मन्त्रमुग्ध कर देने वाली क्षमता असाधारण है ।

मेरी कामना है वे अपने युग की चुनौती का सामना करते हुए अपने कर्त्तव्य पर डटे रहेंगे तथा अपने मुनि जीवन के आवश्यक कर्त्तव्यो का पालन करते हुए मानवता के भावी को आलोकित और प्रशस्त करने का भागीरथ प्रयत्न करते रहेंगे ।

एक भव्यात्मा : मुक्तिपथ की ओर बढ़ते चरण

डा. सुदर्शनलाल जैन
मन्त्री अ भा विद्वत् परिषद्
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

परम् शान्ति की तलाश में भटकते हुए एक भव्यजीव ने देवी स्वरूपा शान्तिनाम धारिणी माता के गर्भ में, शुभ बेला में अवतरण किया। गर्भावतरण के साथ माता-पिता के अन्त स्थल में सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चरित्र रुप रत्नत्रय का प्रकाश दिनो दिन अभिवर्द्धित होने लगा । उस भव्यात्मा ने जब गर्भगृह का परित्याग किया तो मानो ससार का ही परित्याग कर दिया हो, इसी बात को द्योतित करने के लिए ही मोक्ष सप्तमी (21 अगस्त 1958) का चयन किया गया। जन्म लेते ही चारों ओर जय-जयकार की होने वाली ध्वनि ने दशों दिशाओं को

आप्लावित कर दिया। फलस्वरुप माता-पिता ने संसार विजयी इस बालक रूपधारी भव्यात्मा का नाम जयकुमार रखना श्रेयस्कार समझा । उस भव्यात्मा के पदार्पण से वह 'ईशुरवारा' गाँव अपने सही रूप में 'ईश्वरवाला' हो गया ।

समीपवर्ती 'सागर' नगर से वह भव्यात्मा सिद्धिदायी क्षेत्र नैनागिर में 10 जनवरी 1980 क्षुल्लक दीक्षा, १५ अप्रेल 1982 को ऐलक दीक्षा के परमसागर (क्षुल्लक-ऐलक अवस्था का नाम) बना पश्चात् पारसमणि तुल्य आचार्य ज्ञानसागर की परम्परा से प्राप्त आचार्य विद्यासागर (मुनि दीक्षा 25 दि 1983) के स्पर्शमात्र से परम् सागर से सुधासागर बना सुधासागर बनते ही कितने ही मिथ्यादृष्टि उस शान्ति सुधारस का पान करके समयग्दृष्टि बन गए।

सागर का जल खारा होता है। इस अपवाद वचन का अपलाप करते हुए रत्नत्रय रूपी शान्ति सुधारस का निरन्तर बिना भेदभाव के जन जन को पान कराने हमें संलग्न हो गए । मुक्तिपथ की ओर बढते हुए चरण वाले के शान्तिरस का पान करके हम भी परम् शान्ति को प्राप्त करने की सामर्थ्य प्राप्त कर सकें ऐसी मेरी कामना है। ऐसे भव्यात्मा पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी के चरणो में मेरा शत शत वन्दन हैं ।

❑ ❑ ❑

The Real Saint

V.C.Jain

The most auspicious arrival of Muniraj Shri 108 Sudhasagar Ji Maharaj with his sangh

The name and fame of the saint spreads like fire and it sparkles widely when he proceeds future for Vihar leaving behind his foot prints

Long before the auspicious arrival (Mangal Agaman) of Muniraj Shri Sudhasagar Ji Maharaj with his sangh to Ajmer There were talks and talks not rumours on the tip of every tongue about Muniraj The best efforts were being made to bring the saint to Ajmer for his Varshayoga or Chatturmas (four months stay in a fixed place for the protection of the living creative and for the bene violence of mankind in the rainy season

In this connection I would like to mention a single name who made many efforts to bring the sangh to Ajmer It was the greatest and luckiest fortune of the Digamber Jain Samiti of Ajmer that it could have the presence of such holymen After all that most fortunate day arrived It was the 16th July 1994 morning when the holy sangh printed their feets on the soil of Ajmer There was a keen competition for the reception of the Sangh between the people and "Indra" (the lord of gods) the battle won, since it rained in the previous night He was a bit sorry for spoiling preparations of decoration of reception and great warm welcome of the sangh

There was a short & sweet speech of the Muniraj after entering in the Nasia From 17th July and onwards Muniraj's learned attractive and effective Pravachan (religious discuss) commenced Besides local Jain people, crowd from far and wide gathered to hear their words and the number increase day by day

After Pravachan the Muniraj himself read Sutraji & Bhaktamber Strotre in order to teach correct reading and right pronunciation of words Then came the Question hour (Prashan Manch) individuals with their numerous of various prizes came forward to winners to encourage them Really it was a novel scheme to test the grasping power of the audience

It will not be out of place to mention some of the physical features or chief characterstics of Muniraj who is the living embodiment of highest characters and greatest morals. A great personality which adds beauty of benefits to the renowned name Muniraj has a charming and great personality His symmetric body with a broad and high forehead, his shining bright eyes, lotus like hand to make people understand the gospel of his preaching and teachings His smiling face indicates his inner heart The saint never asks anyone to take a vow or to give up precious things He always says 'Do whatever you like but before doing you must think of the consequences and estimate the result The chief qualities of Muniraj are punctuality observance and strict discipline There is pindrop silence within his Pravachan he never allows worthless questions or talks

In the history of Ajmer never was arranged ' Shravak Sanskar Shiver it was a unique and pearless shiver Another great arranged was 'Kavi Sammalen" in which more then a score of poets assembled They give their pure emotional religious poems only The audience appreciated the Sammelen very much The poets were honoured with rewards

Then again a great assembly of learned persons is going to be held on 13th 14th 15th October the discussion on most popular Mahakavya of Acharya Gyansagar Ji Maharaj "The Virodaya Mahakavya

It was my luck that hardly I missed his Pravachan for a single day In conclusion I would like to write that Muniraj is a very great Saint May he live long to enlighten our path

beuevlenee of manking in the vaing season

In the connection of worth eive to nebbfon a single name who left no stone unfurnek to bring the sangh to Ajmer Later kion he wos Joinal by maney

It was the gieatesh one luekuish fortune of the Digamles Jaind Sech of Ajmer that it conls have The poresenee of such holymen

After all that most forhunate day arrived atwas the 16th July 1994 morning wheir the tholy songh pruked theirfeet on the solt of Ajmer there was a neen compefition for the reeeption of the songh belween thepeople kone Inolra) The eord of godk) The letter won sunee it nained in the forevion night he was a bighsorry For ispiorling kpreparationof deeoration of reception own greeh worm welcome of the sangh

एक अमृतमय-व्यक्तित्व- मुनिश्री सुधासागरजी महाराज

प्राचार्य निहालचंद जैन

कामदेव ओर आत्मदेव की संधि-मित्रता

परम् पूज्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज इस युग के संत शिल्पी आचार्य हैं जिनकी मंद-मंद मुस्कान में जीवन सौरभ की अपरिमेय गंध बिखरती है। जिनके चरण-वीतराग-चारित्र की ओर अनथके अनवरत बढ़ रहे हैं। इस संत ने अपने पीछे, एक महान शिष्य परम्परा का स्वर्ण इतिहास रच डाला है। पूज्य मुनिश्री योगसागर व समयसागर जैसे कर्मों का बंधन काटने के लिए घर का घर परवाना हो गया। पू. मुनि क्षमासागर- एक संवेदनशील दार्शनिक संत पू. मुनि सरलसागर- आगम के गहरे गोताखोर आदि हैं। शिष्य परम्परा के इन नामों के साथ एक स्वनामधन्य पूज्य मुनि सुधासागरजी म. हैं जिनकी देह में कामदेव और विदेह में आत्मदेव की संधि मित्रता है।

पूज्य क्षुल्लक श्री गम्भीरसागरजी महाराज

: परिचय :

भीकमचन्द पाटनी, अजमेर

रात्रि के गहन अन्धकार के बाद जब सूर्य अपनी पहली किरण के साथ प्रकट होता है तो रात्रि का गहन अन्धकार दूर भाग जाता है और सुबह का उजियाला सभी को सुख प्रदान करने वाला होता है, उसी प्रकार मध्यप्रदेश की संस्कार धानी जबलपुर नगर के फूटाताल मौहल्ले में धर्मनिष्ठ परिवार पिता श्री कपूरचन्द जी व माँ श्री मति कस्तूरी बाई की कोख से सभी को सुख प्रदान करने वाले ऐसे ही बालक का जन्म हुआ ।

रक्षाबन्धन का दिन था घर में सभी खुशियाँ मना रहे थे। खुशी केवल पर्व की ही नहीं थी अपितु घर में जन्मे उस नन्हे बालक की खुशी से सभी आनन्दित हो रहे थे। चन्द्रमा की श्वेत शीतल किरणों से भी अधिक देदीप्यमान बालक का मनोहारिक आभामण्डल मानो आगामी भविष्य की सूचना दे रहा था। गुणानुरूप बालक का नाम 'राकेश' रखा गया ।

सुरेश महेश राकेश और दिनेश इन चारो भाइयों व सुलोचना और किरण बहनों में परस्पर बेहद स्नेह था। सुख शान्तिपूर्ण सन्तोषपूर्ण वृत्ति से जीवन यापन करने वाले इस धर्मनिष्ठ परिवार पर ऐसा वज्रपात हुआ कि पिताश्री जी का आपकी बाल्यावस्था में ही अकस्मात् निधन हो गया। शायद इस महान् घटना ने आपके जीवन को झकझोर दिया तथा वैवाहिक जीवन स्वीकार न करने का बीजारोपण सा हो गया। कुछ समय पश्चात् आपको पूज्य मुनिश्री सभव सागर जी का सानिध्य मिला। बचपन मे ही आप मे धार्मिक सस्कार पल्लवित पुष्पित होने लगे। स्पाटस, व्यायामशाला आदि मे जाना भी आपकी रुचि रही है। शारीरिक स्वस्थता व परोपकार के लिए ही आप अपनी शक्ति का प्रयोग करते थे ।

इसी बीच पूज्य आचार्य श्री विद्यासागरजी का ससघ मढिया जी मे आगमन हुआ उनकी अमृतमयी वचन वृष्टि से आर्द्रीभूत आध्यात्मिकता की ओर स्वय ही कदम अग्रसर होने लगे। और आपकी शैक्षणिक योग्यता बी एस सी के मध्य ही विराम पा गयी तथा चतुर्विध संघ की सेवा तथा ब्राह्मी विद्या आश्रम की देख रेख में आपका अधिकाश समय व्यतीत होता था। युवा सघ की ज्ञान, ध्यान व चारित्र में दृढता को देखकर आपके भाव सन् 1984 में चारित्र की ओर कदम बढाने के हुये और आपने अपने समग्र भावों को आचार्य श्री के समक्ष रखकर उत्तम तप के दिन व्रताचरणो में श्रेष्ठ उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत आजीवन धारण करने की प्रतिज्ञा बद्ध होकर पीछी परिवर्तन समारोह मे पुरानी पिच्छि का जो ग्रहण किया और घर में ही एक टाइम आहार, सामायिक, स्वाध्याय आदि अटूट साधना प्रारभ कर दी ।

आहारजी में आचार्य श्री के दर्शनार्थ पहुँचे तो देखा कि यहाँ पर तो दीक्षा समारोह है वहां आपकी दीक्षा लेने की तीव्र भावना थी पर एक घन्टे लेट पहुंचने के कारण सौभाग्य से वचित रहे और आचार्य श्री जी के सम्मुख अपनी खेद खिन्नता व्यक्त की। पूर्ण आश्वासन को प्राप्त करके अपनी मा की अश्रुधार को परवाह न करते हुए नैनागिर जी में 1 जनवरी सन् 1987 को गृहत्याग कर ब्रह्मचारी वेशभूषा धारण कर ली। तीव्र पुण्य कर्म के उदय से भावो की तीव्रतम विशुद्धता होने पर आचार्यश्री के समक्ष संयम को ग्रहण करने की भावना व्यक्त की। और आप सफल मनोरथ हाते हुए। आपकी भावनाओं की तीव्र उत्कण्ठा को देखकर नैनागिर में ही 10 फरवरी 1987 को 23 दीक्षाओं के मध्य आपको 'क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी' इस नाम से सम्बोधित किया गया। आचार्य संघ के साथ अपनी चर्या का सम्यक निर्वाह करते हुए ज्ञान ध्यान साधना मे तल्लीन रहे। थूबोनजी, कुण्डलपुर, मुक्तागिरी

इत्यादि स्थानो पर चातुर्मास आचार्य संघ के साथ किए और फिर गुरु की आज्ञा से सागर पंचकल्याण के पश्चात् आध्यात्मिक सन्त श्री मुनि सुधा सागरजी के साथ विहार करते हुए ललित नगरी ललितपुर को संसघ पृथक होने पर प्रथम चातुर्मास कराने का सौभाग्य प्राप्त किया मुनि श्री की अमृत वृष्टि से तो जन-जन आप्लावित था ही, पर आपके सहयोग ने उसमें चार चांद लगा दिये। प्रथमानुयोग में निष्णात आपके मुखारविन्द से कथा कहानी के माध्यम से बच्चों से लेकर वृद्धों तक नवीन स्फूर्ति का संचार हो रहा है। तथा सभी यथायोग्य आंशिक रुप से शील संयम आदि व्रतों को ग्रहण करके अपने जीवन को सफल बनाने में प्रयत्नरत हैं। बच्चो में प्रारंभिक संस्कार डालने का सारा श्रेय आपको ही है। सोलहकारणादि व्रत तपश्चरण करते हुए भी आपकी चर्या मे शिथिलता नहीं आयी और अपने दैनन्दिनी कार्य अध्ययन अध्यापन आदि कार्यों मे शिथिलता का कोई स्थान न रहा। इसी बीच पर्यूषण पर्व में शाम को दस धर्मों पर प्रवचन के माध्यम से जनता को उद्बोधित किया। मुनिश्री के लिए व धार्मिक सस्कार शिविर में आपका सहयोग प्राप्त हुआ। चातुर्मास के पश्चात् ललितपुर में नौ गजरथ प्रतिष्ठा महोत्सव आप सभी के आर्शीवाद व प्रेरणा से सानन्द सम्पन्न हुए । वहा से विहार में धर्म प्रभावना करते हुए दूसरे चातुर्मास का सौभाग्य आप अजमेर वालो को प्राप्त हुआ और इनकी प्रतिभा अब आपसे छिपी हुयी नहीं है। स्वाध्याय ध्यान साधना में लवलीन यहाँ भी प्रतिदिन नवीन-नवीन कहानियों के माध्यम से अनवरत धार्मिक संस्कार डालने का यथासम्भव प्रयास किया जा रहा है।

ऐसे गुरुओ का सान्निध्य पाकर भी अगर हमारे मन में प्रकाश की किरण प्रवेश नहीं करती तो अपना दुर्भाग्य ही समझना चाहिए। गुरु चरण रज के प्रताप से जीवन धन्य हो जाता है अत उनके प्रत्येक शब्द का अनुकरण करने का प्रयास करें। इसी भावना, कामना के साथ गुरु चरणो मे शत शत वन्दन

पूज्य क्षुल्लक १०५ श्री धैर्यसागर जी

परिचय

भीकमचन्द पाटनी, अजमेर

मध्य प्रदेश की संस्कार धानी जबलपुर नगर मे श्री युक्त श्रेष्ठी श्री प्रेमचन्द जी जैन एडवोकेट एवं श्रीमति अंगूरी देवी की कोख से 1963 को एक होनहार बालक ने जन्म लिया जिस प्रकार चन्द्रमा अपनी शीतलता मे संसार को सुख प्रदान करता है उसी प्रकार बालक का जन्म सभी को सुख देने वाला हुआ, उस बालक नाम 'संजय' रखा गया । तीन भाई और एक बहिन सभी प्रेमपूर्वक सुखमय बाल्यावस्था के आनन्द में मगन थे। करीब-करीब 12-13 वर्ष की अवस्था में मुनि श्री संभव सागर जी का आगमन हुआ और उसी समय से ही आपने आलू, प्याज जैसी अभक्ष चीजो का त्याग कर दिया। पास-पड़ोस मे घटित घटनाओं का आपके जीवन पर गहरा प्रभाव पडा और यही घटनायें आपके वैराग्य का कारण बनी ।

सन् 1984 में चारित्र के धारक महान् तपस्वी सन्त शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज का ससंघ आगमन मढियाजी में हुआ। दिन प्रतिदिन वह मंगलमयी वातावरण आचार्य श्री के वचनामृत सहज ही आपके हृदय में प्रवेश पा गए और आपके विचार भी उन्हीं की तरह सयम के मार्ग पर बढने के हुए। बचपन में उदासीन रुप से पडा हुआ वह बीज अकुरित सा होने लगा। फलस्वरुप आपने सयम मार्ग पर बढ़नें का संकल्प कर आचार्य श्री के सम्मुख आकर अपनी भावनाओ को व्यक्त किया। इस मार्ग के योग्य समझकर आपको 5 वर्ष के ब्रह्मचर्य व्रत के आर्शीवाद दिया। इसी बीच आपने बी काम लौकिक शिक्षा को भी पूरा किया। तभी ब्राह्मी विद्या आश्रम की स्थापना भी हुई और प्राथमिक व्यवस्थाओं में अपनी मित्र मंडली (वर्तमान में गम्भीरसागर जी, चन्द्रसागर जी महा) के साथ संस्था को सहयोग प्रदान करते रहे । घर में भावों को क्रमशः बढाते हुए दृढ़ साधना करने लगे।

जहाँ आप एक ओर इतने सहृदय है कि दूसरों की पीड़ा को देखते ही आपका हृदय भर आता है वहीं दूसरी ओर अपने परिवार के खिन्न हृदयों को देखकर भी आप अपनी साधना के मार्ग से बिल्कुल भी विचलित नहीं हुए और 1 जनवरी 1987 को आचार्य श्री के समक्ष ब्रह्मचर्य व्रत को पूर्णता प्रदान कर गृहत्याग कर दिया। चारित्र की ओर से अग्रसर होने की प्रबल इच्छा धैर्य को धारण नहीं कर सकी और आपने 10 फरवरी 1987 को विशाल आचार्य संघ के बीच संयम मार्ग के सच्चे पथिक बनने की प्रतिज्ञा की और आपको 'क्षुल्लकश्री धैर्यसागर जी' के नाम से ही उद्बोधित किया गया । साथ ही आपकी मित्र मण्डली की भी दीक्षा सम्पन्न हुई । वास्तव मित्र तो वही होता है जो हर समय साथ देता है । आचार्य संघ में 6 वर्ष तक अनवरत स्वाध्याय आदि क्रियाओं में सलग्न रहे। फिर आचार्यश्री की आज्ञा से आध्यात्मिक सन्त मुनि श्री सुधासागरजी के साधर्म प्रभावना हेतु विहार किया। गुरु से अलग होने के पश्चात् आपके प्रथम चातुर्मास का सौभाग्य ललितपुर वालों को प्राप्त हुआ। अपनी साधना स्वाध्याय में तल्लीन शाकाहार आदि के सम्बन्ध में विशेष निर्देशन दिए । शारीरिक अस्वस्थता के बावजूद भी पर्यूषण पर्व में तत्त्वार्थ सूत्र की व्याख्या करके संस्कार शिक्षण शिविर के माध्यम से मुनि श्री को सहयोग प्रदान किया व समाज के युवा वर्ग के लिए धर्माभिमुख करने के लिए छहढ़ाला जैसे महान् ग्रन्थ के माध्यम से अथक प्रयास किया। पचकल्याण प्रतिष्ठानों व गजरथों में अपना पूर्ण सहयोग देते हुए तथा महती धर्म प्रभावना करते हुए आपने अजमेर नगर की पावन धरा को धन्य कर दिया। यहां पर भी अपनी यथोचित रीति से दैनिक क्रियाओं को करते हुए शारीरिक अस्वस्थता की परवाह न करते हुए प्रतिदिन बच्चों को धार्मिक संस्कारों से (बालबोध एक, दो तीन) सस्कारित करने में प्रयत्नरत है। पर्यूषण पर्वराज में शिक्षण शिविर में शिक्षा प्रदान कर व तत्त्वार्थसूत्र की व्याख्या, प्रश्नमच आदि कार्यों को करते हुए व्यस्त रहकर भी थकान का नहीं वरन् आन्नद का ही अनुभव करते थे। ऐसे आत्मोन्मुख दृढ संयमी, मोक्ष मार्ग के सच्चे पथिक गुरुदेव के चरणो में मेरा कोटि कोटि वन्दन । शत शत बार नमन।

❑ ❑ ❑

संस्कार - बीज

बड़ वृक्ष के संस्कार जैसे उसके बीज में मौजूद रहते हैं,
उसी प्रकार आत्मा के द्वारा की हुई क्रियाओं के संस्कार
आत्मा में मौजूद रहते हैं और वे संस्कार के नष्ट हो
जाने पर भी आत्मा को शुभ या अशुभ फल प्रदान करते हैं ।

षष्टम खण्ड

श्रमण काव्य

अनुक्रमणिका

श्री दिगम्बर जैन आदिनाथ बड़ा मन्दिर की चित्रावली

श्री शान्तिनाथ पाठशाला के द्वार
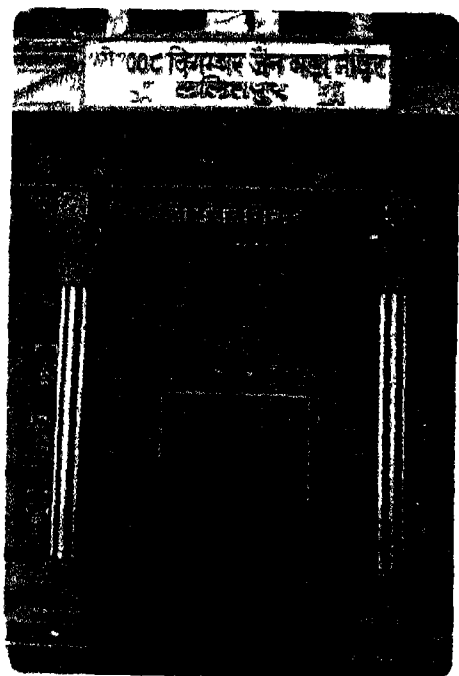
श्री दि जैन बडा मन्दिर जा का कलात्मक मख्य द्वार
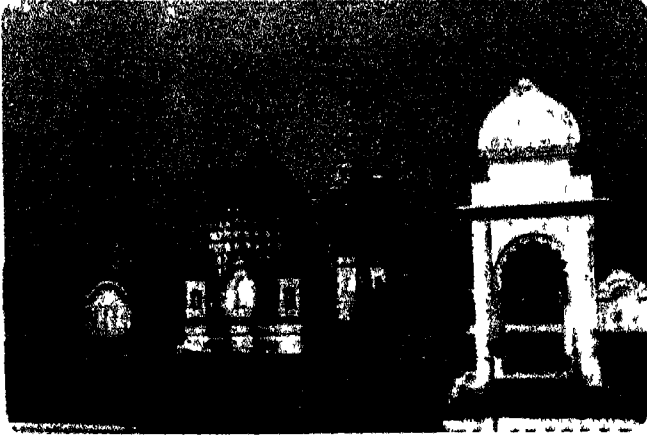
अलौकिक शिखरे एव घण्टाघ

शिखरो का विहगम दृश्य
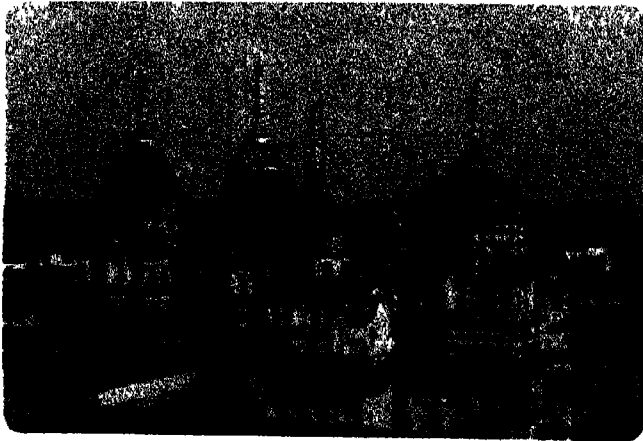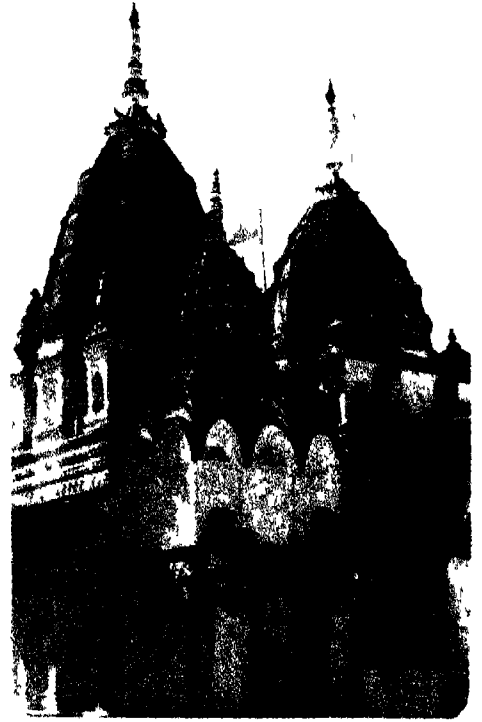
आकर्षक शिखरे बडा मदिर, ललितपुर
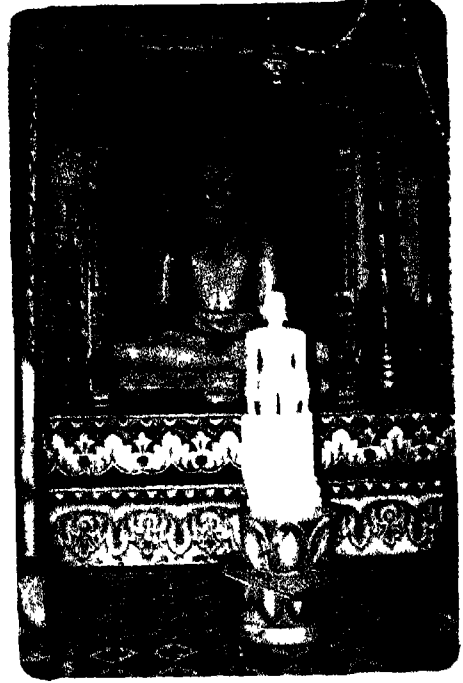
श्री दि जैन मुलनायक आदिनाथ जिनालय न 15 बडा मंदिर ललितपुर
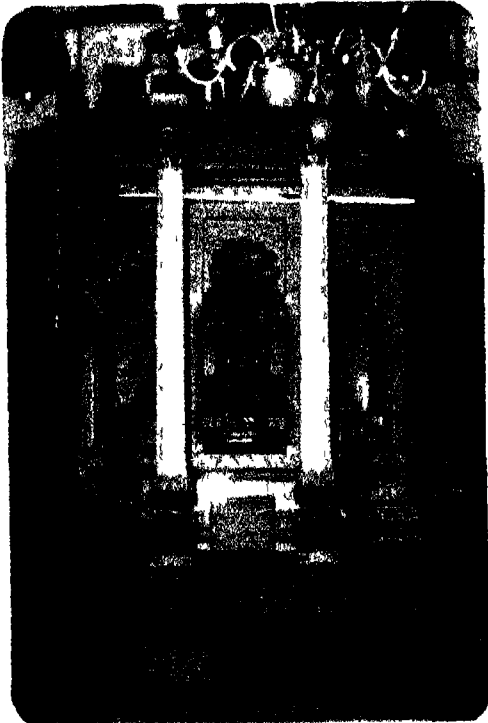
श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 4
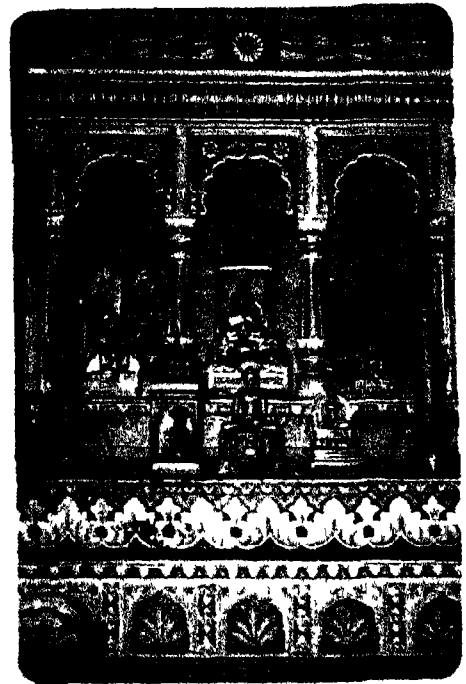
श्री दि जैन चन्द्रप्रभु जिनालय न 11
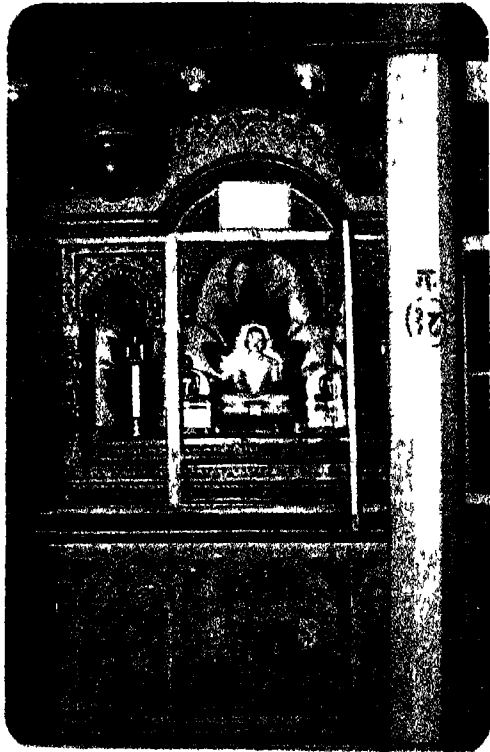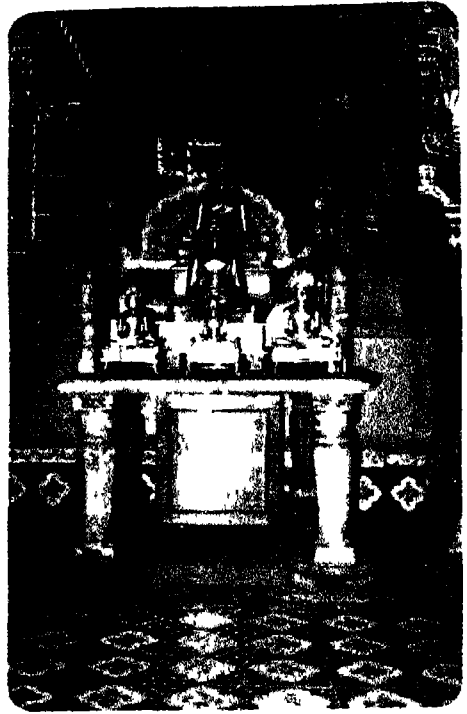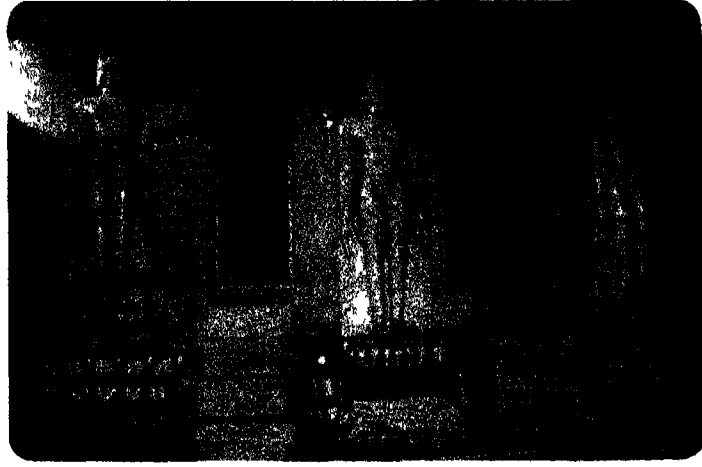
श्रा दि जन त्रिमूति एव मप्त ऋाप जिनालय न 19 20 21 बडा मन्दिर
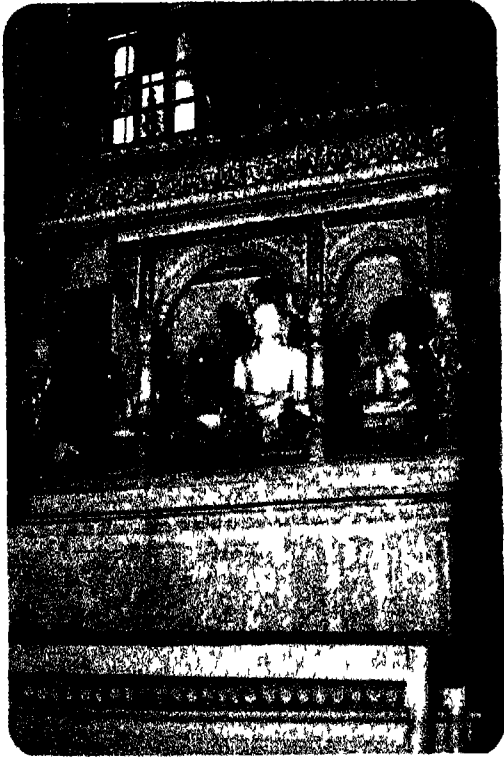
श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय न 3 बडा मन्दिर

श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 11 बडा मदिर
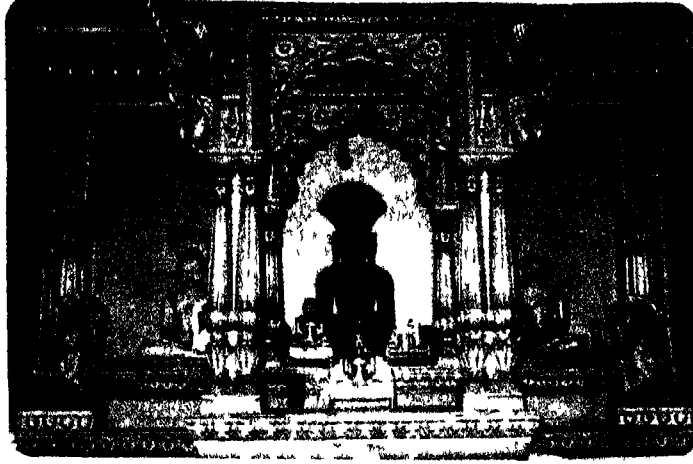
श्री दि जन पार्श्वनाथ जिनालय

न 10 बडा मदिर

शास्त्र भडार हस्तलिखित बडा मदिर
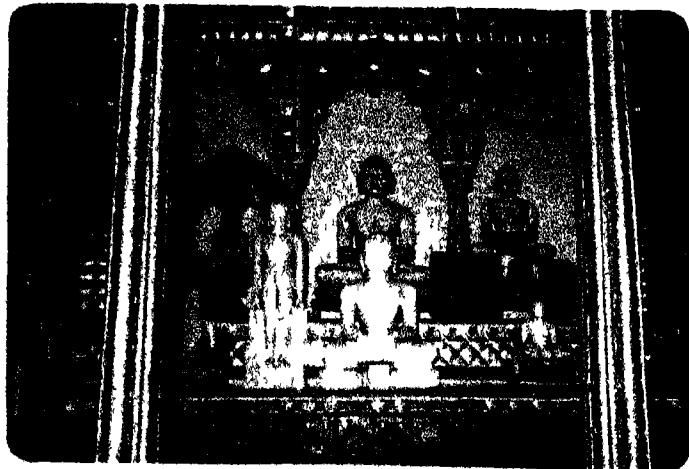
श्री दि जैन चन्द्रप्रभु जिनालय

न 8 बडा मदिर, ललितपुर
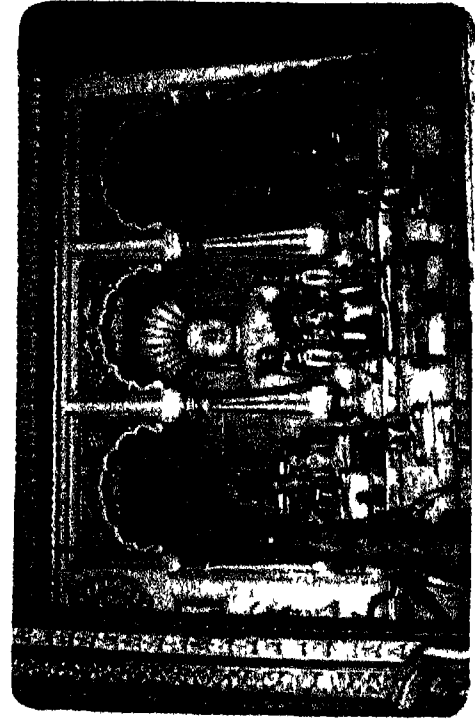
श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 16 बडा मदिर ललितपुर
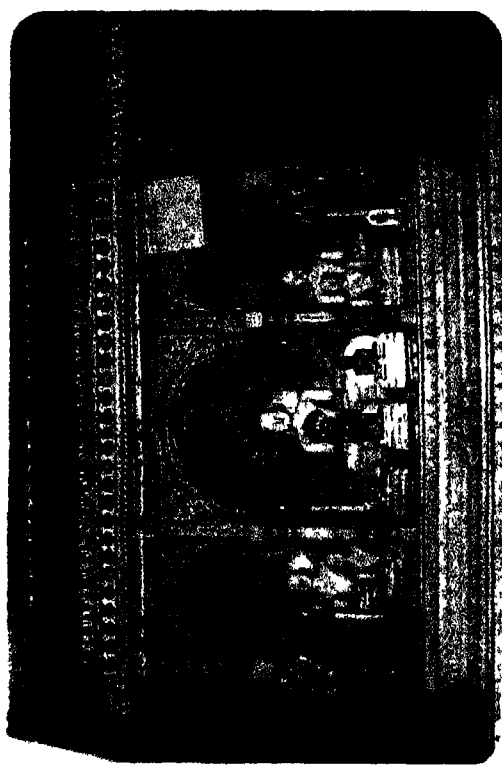
श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय न 2 बडा मदिर, ललितपुर
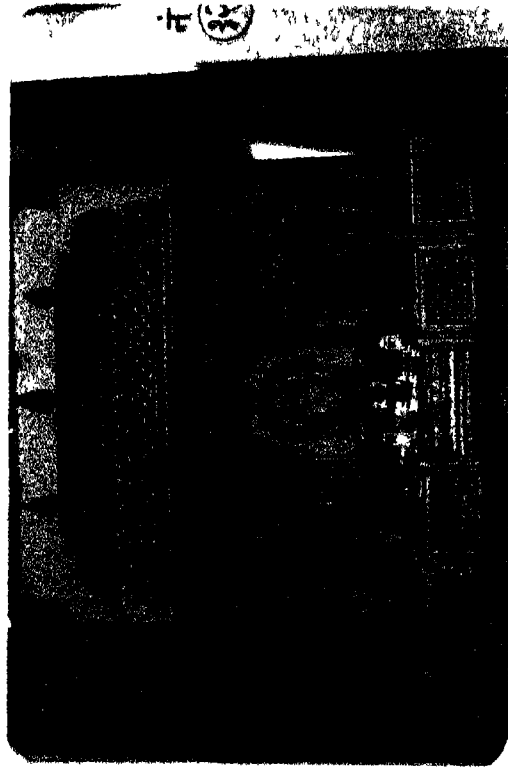
श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय नं 12 बडा मदिर, ललिनपुर
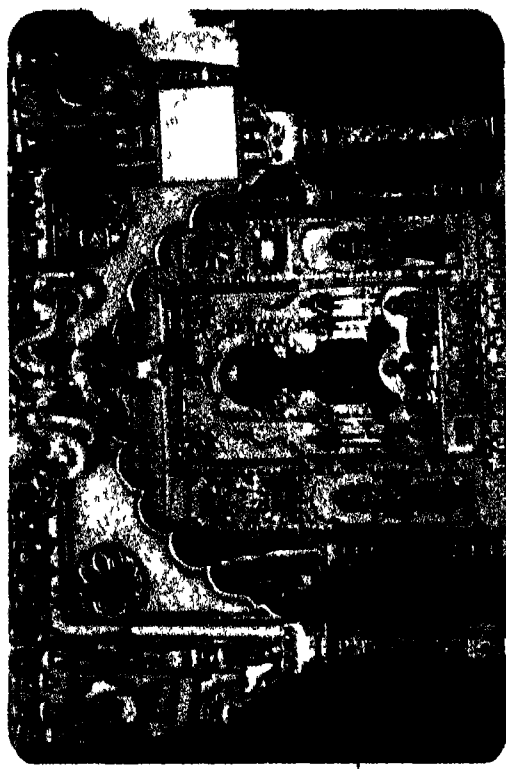
श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 5 बडा मदिर, ललितपुर
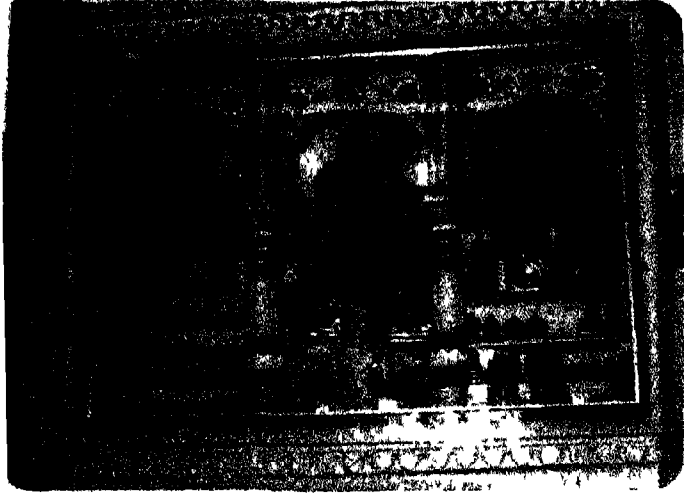
श्री दि जैन महावीर जिनालय

न 22 बडा मदिर ललितपुर

श्री दि जन आदिनाथ जिनालय

न 17 बडा मदिर ललितपुर

श्री दि जैन नेमिनाथ जिनालय

न 13 बडा मदिर ललितपुर

जैन धर्म के बीस सूत्र (विश्व धर्म)

प. पू. आचार्य १०८ श्री विद्यासागर जी

राजा प्रजा हित करे पर स्वार्थ त्यागे,
देता प्रकाश रवि है,कुछ भी न मागे ।
कर्तव्य मान कर तूँ कर साधू सेवा ,
पाते पुन परम पावन बोध मेवा ॥1॥

ये साधु सेवक कहीं मिलते यहाँ है,
जो जात रूप धरते जग में अहा हैं ।
प्रत्येक नाग मणि से कब शोभता है,
प्रत्येक नाग कब मौक्तिक धारता है ॥2॥

मैं काम से वचन से मन से सदैव,
सौभाग्य मान करता बुध साधु सब ।
हाऊ अबन्ध भव बधन शीघ्र टूटे,
विज्ञान की किरण मानस मध्य फूटे ॥3॥

ज्यों ज्यों विकास धन का बढ़ता चलेगा,
त्यो त्यो प्रलोब बढता बढता बढेगा ।
पा सैकड़ों कनक निर्मित पर्वतो को,
होगी न तृप्ति फिर भी तुम लोभियो को ॥4॥

''राष्ट्रानुकूल'' चलना ''कर'' ना चुराना,
ले चौर्य द्रव्य नहिं चोरन को सुभाना ।
धधा मिलावट करो न आचौर्य्य पालो
ना नाप तौल नकली सहसा चला लो ॥5॥

है वस्तु का धरम तो उसका स्वभाव,
सच्ची क्षमादि ''दशलक्षण'' धर्मनाव ।
ज्ञानादि ''रत्नत्रय'' धर्म सुखी बनाता,
है विश्व धर्म त्रस स्थावर प्राण त्राता ॥6॥

है एक का यह अनादर सर्व का है,
है एक का यह समादर विश्व का ।
आघात मूल पर हो तरु सूख जाता,
दो मूल में सलिल पूरण फूल जाता ॥7॥

जो भी हिताहित यहाँ निज के लिये हैं,
वे ही सदैव समझो पर के लिये हैं ।
है ''जैन शासन'' यही करुणा सिखाता,
सत्ता सभी सदृश है जग को दिखाता ॥8॥

हिसा मदीय यह आतम ही अहिंसा
सिद्धान्त के वचन है कर लो प्रशसा ।
ज्ञानी अहिसक वही मुनि ''अप्रमादी,''
हा, सिह से अधिक हिसक हो प्रमादी ॥9॥

जैसा तुम्हे दुख कदापि नहीं सुहाता,
वैसा अभीष्ट पर को दुख हो न पाता ।
जानो उन्हें निज समान दया दिखाओ,
सम्मान मान उनको मन से दिलाओ ॥10॥

सन्तोष कोष गत रोष अदोष ज्ञानी,
नि शल्य शाश्वत दिगम्बर है अमानी ।
नीराग निर्मद निन्तआत प्रशासन्त नामी,
आत्मा मदीय नय निश्चय से अकामी ॥11॥

जो अंतरंग वहिरग निसंग नंगा,
होता दुखी नही सुखी बस नित्य चगा ।
भाई वही वर अकिंचन धर्मपाता,
पाता स्वकीप सुख को अघ को खपाता ॥12॥

है मास के अशन से मति दर्प पाता,
तो दर्प से मनुज को मद पान भाता ।
है मद्य पीकर जुआ तक खेल लेता,
यों सर्व दोष करके दु ख मोल लेता ॥13॥

जो मद्य पान करते मद मत्त होते,
वे विघ्न कार्य करते दुख बीज बोते
सर्वत्र दुख सहते दिन रैन रोते,
कैसे बने फिर सुखी जिन धर्म खोते ॥14॥

रे मद्यपान पर नारि कुशील खोरी,
अत्यन्त क्रूर तम दंड शिकार चोरी ।
भाई सत्य मय भाषण धूत क्रीड़ा ।
ये सात हैं व्यसन दे दिन रैन पीड़ा ॥15॥

भू-गो सुता विषय में न असत्य लाना,
झूठी गवाह न धरो हर को दबाना ।
यों स्थूल सत्य व्रत है यह पंच धारे,
मोक्षेच्छु श्रावक जिसे रूचि संग धारे ॥16॥

मिथ्योपदेश न करो सहसा न बोलो,
"स्त्री" का रहस्य अथवा पर कान खोलो ।
न कूट लेखन लिखो कुटिलाइता से,
यों स्थूल सत्य व्रतधार बचो व्यथा से ॥17॥

पाया इसे न अबलों इसको न पाना,
मैंने इसे कर लिया न इसे कराना ।
ऐसा प्रमाद करते नाहि सोचना है,
आ जाये काल कब ओ नहि सूचना है ॥18॥

ना क्रोध के निकट प्रेम कदापि जाता,
है मान से विनय शीघ्र विनाश पाता ।
माया विनष्ट करती जग मित्रता को,
आशा विनष्ट करती सब सभ्यता को ॥19॥

❑❑❑

मेरा परिचय

क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज

मैं जैसा हूँ
वैसा था
और
वैसा जैसा ही रहूँगा
जीवन है मेरा परिणमन
समय है मेरी परिणिता
सम्यक बोध की गृहस्थी
सच्ची सी दिखती अभी
पर्यटन पर निकला हूँ
परिश्रम कर लूंगा कभी
निज का घर बनाऊंगा
निजवास करूँगा तभी
फिर न होगी कोई कमी
सुख के परिवार की ।

अहो ! यही सिद्धशिला

आचार्य श्री विद्यासागर
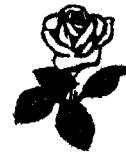
निगोद में रचा पचा,
कोई भी भव न बचा ।
फिर भी सुख का न शोध,
बना रहा मैं अबोध ॥1॥

प्रभो सुकृत उचित हुआ,
फलत: मैं मनुज हुआ ।
दुर्लभ सत संग मिला,
मानो मिली सिद्धशिला ॥2॥

फिर गुरु उपदेश सुना
सुजागृत हुआ अधुना ।
ज्ञात हुआ स्व पर भेद,
व्यर्थ करता था खेद ॥3॥

विदित हुआ मैं चेतन,
ज्ञान गुण का निकेतन ।
किन्तु तन मन अचेतन
करें न सुख दुख वेदन ॥4॥

चेतन चेत चकित हो,
स्व चिंतन वश मुदित हो ।
यों कहता मैं भूला,
अब तक पर में फूला ॥5॥

अब सर्वत्र उजाला,
शिव पथ मिला निराला,
किस बात पर मुझे डर,
जब जा रहा स्वकीय घर ॥6॥

यह है समकित प्रभात ।
न रही अब मोह रात ।
बोध-रवि-किरण फूटी ।
टली-भ्रम-निशा टूटी ॥7॥

समता अरुणिमा बढ़ी,
उन्नत शिखर पर चढ़ी ।
निज द्रष्टि निज में गड़ी,
धन्यतम है यह गड़ी ॥8॥

अनुकम्पा पवन भला,
सुखद पावन वह चला ।
विषमता कटक नहीं,
शिवपथ अब स्वच्छ सही ॥9॥

यह सुख की परिभाषा,
न रहे मन में आशा ।
ई द्रश हो प्रति भाषा,
तो मैं रहूँ न प्यासा ॥10॥

कुछ नहीं अब परवाह,
जब मिटी सब कुछ चाह,
दुख टला, निज सुख मिला,
मम-उर-दृग-पदम खिला ॥11॥

"विद्या" अविद्या छोड़ ।
कषाय कुंभ को तोड़ ।
कर रहा उससे प्यार ,
जो सत चेतना नार ॥12॥

दूध का नाम अमृत भी है

रचयिता अध्यात्मिक संत मुनि
श्री १०८ सुधासागर जी महाराज

हे- बन्धु सखा
तुम क्यो भूल गये
ये भारत देश है
जहाँ दूध की नदियाँ बहती थी।
क्रय-विक्रय नही होता था
दूध का क्या तुम्हे ज्ञात है
दूध पीते थे
मन दूध से धवलित होते थे
इसलिए तो शुक्ल ध्यान पाते थे
पर
आज तो
चाय का जमाना हे
चाव से चार पीता है मानव
इसलिए
तो मन चाय की पत्तीसम
काल कवलित होते है
नाम से भी काले
आर्त रौद्र ध्यान पाते है
जो स्वय को काला करते हं
और जिसे उससे भी
उसे काला कर देते है
बोलो साथियो
आज
दूध कौन पीता है
नाग पचमी के दिन
सर्प जरुर पीता है।
हाँ कैसा परिवर्तन आमदी
कहाँ से गुजर रहा है
कैसे गुजारा कर रहा है
दूध सर्प के लिए
चाय मानव के लिए
क्या हो गया हे
आदमी की आदमियत कहाँ गुजर गइ

अगर किसी ने किसी मित्र को
दूध पिला भी दिया
तो
पीने वाला
झट से कह देता है
यार
कया आज नाग पचमी हे
जो मुझे
दूध पिला रहे हो (नाग समझकर)
क्या हो गया
रे तुझे
दूध भी पिया तो नाग बनके
नाग के मुख मे तो
दूध भी जहर बन जाता है।
थोडा तो विचार करो
साथियो
आमदी बनके दूध पिया तो सही
सच कहता हू
सतयुग आ जायगा
इन्सान की इन्सानियत
वापिस आ जायेगी
और मुद्दत से सूखी नदियो मे
दूध की धारा वह जायेगी
राम राज्य आ जायेगा
दुनिया
अपनी हथेलियों को
दूध से धो लेगी जो खून से रगे है
देश जीवित हो उठेगा
जो मुर्दा बनके जी रहा है
क्योकि दूध का नाम अमृत है
अन सुधार लाओ मेरे साथियो
सुधारस पिलाओ
चाय नही दूध पियो...
दुग्धपान/अमृतपान....।

रचयिता अध्यात्मिक संत मुनि
श्री सुधासागर जी महाराज

"पीर पर नीर"

हर किसी की पीर पर
अगर गिर जाँय बूँदे
नीर की नयना से
तो... वह।
नीर की बूंदे नही
सीप के मोती है।
नाग हो तो
मोती बनता है
सीप के मुख मे
पर अगर
स्वय की पीर पर
नयना से नीर बह जाय
तो कायरता है
वह नीर नही
जहर है सर्प के मुख का
नीर ही ...तो
जहर बनता है
सर्प के मुख मे

"बरसाती मेंढक"

आज बड़-बड़े कानून तो बनते है
और.....।
मान्यता भी मिलती है
जोर तोरा से
बड़-बड़े हस्ताक्षरा से
पर ... खेद है
एक रात के बाद
पुराने हो जाते है
अप्रमाणित होकर
कचरे की टोकरी म
चले जाते है।
कारण स्पष्ट है.. कि
उनके सम्पादक
बरसाती मेंढक होते है।
अवसरवादी होते है।
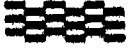
"कौड़ी'

आज का यह
कौडी का युग
कोड़ी मे ही विक रहा है
क्योकि...... यह
कोडी कोडी पर मर रहा ह
इसके साथ..   ।
आर भी   ।
एक कडी विचित्र बात हे
जो बड़े अफसोस की है
कि...... ..
इसे धर्म की आड से ले
महावीर से जोड़ रहा है
कहते है लोग वाग कि
महावीर का
पुरुषार्थ शिरोमणि तो
अर्थ पुरुणार्थ ही है
इसलिए तो
पहले रखा है
किन्तु....
यह क्या हुआ।
कुछ नही.. ......
अर्थ का अनर्थ हो गया है
कौडी तो है
पर बड़ा फर्क हो गया है
मेरे साथियो

■ सुधासागर जी महाराज कृत

आज की... ......
कोडी तो कौडी है
पेट की रोटी छीनकर
गला घोट रही है
पर ......
महावीर की काडी
कौडी तो है ..
कौडी नही हे
अरे कौड़ी मे बिकने वाला
कान खोलकर सुन लो
कोडी की परिभाषा
वह कोडी........
कोड़ी की नही
जो...........
दूसरे को कौड़ी बनाकर
तुझे करोड़ी बना दे
किन्तु... ...
वह कौड़ी कौड़ी ही नही
वह तो ......
मणि है
जो मुझे ही नही
सभी को कौड़ी से
करोड़ी बना दे
यही है महावीर की कौड़ी
जियो.....और....जीने दो।

"कैसे होते हैं"

नदी के दो किनारे होते है, फिर/दूर क्यों होते है ।
कैसा गुरूत्वाकर्षण है, न मिलते हैं, न बिछुड़ते हैं ।
एक दूसरे की तरफ मुख किये रहते है
36 का नहीं 63 का रूप लिये रहते है ।
यह कैसी मैत्री है ? सच्ची मैत्री है ।
मिलते नहीं है, पर –
मिल कर कार्य करते हैं,
कर्त्ता को नही/कृति को महत्व देते है
नदि के ये किनारे कैसे होते हैं, कितनी दूर होकर भी
कितने पास होते है ।

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

मृत्यु पहरेदार है

इस देह देश का
राजा है जीवन
इन्द्रियाँ जिसकी रानियाँ
भोगोपभोग की सामग्रीयाँ
मंत्री है जिसका मन
चलता उसका शासन
आचरण जिसका धन धाम
है आदमी उसका नाम
सुख-दुख हैं प्रजायें
कषायें है जिसकी सेनायें
उस राष्ट्र की संरक्षा करता
मृत्यु पहरेदार है ।

मु. श्री [illegible] जी.

लेखक : परम् पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज

ना आर पार नहिँ थाह अथाह जानो ।
सिद्धांत सागर मथे मति मेरु जानो
पाये निजामृत महाव्रत स्वाद वाले
विद्यादिसागर भंजू ऋषि है निराले ॥

आकृष्ट वाक्य करते निकसे जवान
ग्लानि करे विषय से तजते जवान ।
शीघ्राति ने मुनि बने मन से विराग
विद्यादिसागर भंजू ऋषि वीतराग ॥

ससार सागर गिरे जन भी सदासे
कारुण्य भाव भुज से झट से उठाते
हन्तोकिल से उर भरा समताश्रयी है
विद्यादिसागर भजू ऋषि सूर धी है ।

आकृष्ट तेज तनका कणिका प्रसारे
प्राचीन वैर तजते अरि जो करारे ।
पूजा करें बुधि सभी सिर को झुकाके
विद्यादिसागर भंजू ऋषि पाद पाके ॥

जो भारती निकलती भव भीति लाती
सद ब्रह्मचर्य गरिमा मन को लुभाती
लो केशलोच करतीं वह बालिकायें
विद्यादिसागर भंजू ऋषि पादुकायें

भूमाहि है भाविक जो सुन देशना को
हो दु ख मीत तजते भव वेदना को ।
जो साधना रत सदा जग के हितैषी
विद्यादिसागर भंजू ऋषि मो हितैषी ॥

भूमाहिं है कुशल काव्य कला अनोखी
वाणी करे नियम की रचना सलोनी
भंडार मे विविध बोध सदा बसाते
विद्यादिसागर भजू ऋषि धी कहाते ।

तेजोमयी बल अती तपसी कहाते
जो मान से अकडते शिर आ झुकाते ।
गी धर्म में रत रहें गुण कोष धारें
विद्यादिसागर भजू ऋषि धर्म धारें ।

विद्यासिन्धु आचार्य है, आचारज्ञ बहु ज्ञान
उन गुण सम गुण हा सभी सब पूजे गुरु मान
विद्यासिन्धु आचार्य हैं मन में दया अपार
सदा मार्ग दर्शक रहे मोक्ष शरी भरतार ।

सप्तम् खण्ड

ललितपुर में दिगम्बरत्व का वैभव

अनुक्रमणिका

श्री १००८ दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर, ललितपुर का परिचय

अतीत और वर्तमान : एक नजर में

इस कलिकाल मे साक्षात् जिनेन्द्र देव का सानिध्य न होने के कारण धर्म तीर्थ प्रवर्तन के लिए वीतरागी जिन प्रतिमा की आवश्यकता है । वीतरागी प्रतिमा के दर्शन से सम्यक्दर्शन उत्पन्न होता है, जो परम्परा से निराकुल अनत सुख के सर्वोत्कृष्ट पद मोक्ष का कारण है । जिन विम्ब के दिव्य दर्शन मे अनादिकाल से बधे हुये निधत्ती और निकाचित कर्मों की राशि इस तरह से खिरने लगती है जैसे कि मयूर की आवाज मात्र से चदन वृक्षो पर लिपटे हुये भुजग टप टप गिरने लगते है उसी प्रकार आत्मा की वैभाविक विकृति नष्ट होकर स्वाभाविक परणति प्रकट होने लगती है ।

ऐसे उच्च आदर्श के प्रतीक, वीतरागी, जिन प्रतिमाओं के आधार हमारे जिन मदिर है । मुक्ति मार्ग मे यही मदिर मील के पत्थर का कार्य करते हैं । मदिर ही द्योतक है हमारे धर्म के लिये, अगाध श्रद्धा और प्रगाढ़ ममत्व से हमे जिनेन्द्र देव के दर्शन करना चाहिये। और जिनेन्द्र देव के विराजमान होने मे हमारे लिये जिन मदिर भी पूज्य है ।

ललितपुर नगर बहुत ही प्राचीन ऐतिहासिक एव धार्मिक वातावरण से ओतप्रोत नगर है । इसके समीप मे ही ऐतिहासिक, कलात्मक एव पुरातात्विक दृष्टि से महत्वपूर्ण तीर्थ क्षेत्र विद्यमान है जैसे - देवगढ़, सेरोनजी, चाँदपुर, जहाजपुर, चदेरी आदि ।

वर्तमान में ललितपुर मे करीब ८ दिगम्बर जैन मदिर है । उनमें से श्री दिगम्बर जैन बड़ा मदिर सबसे विशाल, प्राचीन एवं भव्य है । यह जितना पूज्यनीय है उतना ही दर्शनीय भी है । सम्वत् ११६० एव १२१२ की जिन प्रतिमाओं के आधार पर यह मदिर करीब ९०० से ८५० वर्ष पूर्व का निर्मित मदिर जनपद ललितपुर मे जैन शासन एव तत्कालीन जैन समाज के धार्मिक एव गौरव पूर्ण इतिहास की अनुपम कृति है ।

ललितपुर नगर की जन सख्या मे अनुपातिक दृष्टि से दिगम्बर जैन समाज का बाहुल्य है । क्षेत्रीयता के हिसाब से दिगम्बर जैन बड़ा मदिर सरदारपुरा मे स्थित है एवं रावरपुरा, महावीरपुरा, की सीमाओं से घिरा हुआ है । मदिर जी के आस पास जैन समाज के रहने वालों का काफी फैला हुआ क्षेत्र है । सबसे प्राचीन होने की वजह से शुरू मे जैन समाज इसी मदिर के ईर्द-गिर्द ही रहती थी एव सारी समाज के धार्मिक सामाजिक क्रिया कलापो का संचालन यही से होता था । मदिर जी के सामने से गुजरने वाला किसी भी सम्प्रदाय का व्यक्ति इसकी भव्यता एवं पूज्यता के कारण स्वत· ही नमन कर देता है, यह इसकी विशेषता है । यह बड़ा मदिर दिगम्बर जैन समाज की उन्नति, सास्कृतिक एव धार्मिक चेतना की धरोहर है ।

मदिर जी का अग्रभाव पूर्व दिशा की ओर है । अग्रभाग कलात्मक, सुन्दर एव मनमोहक है । वर्तमान मे मदिर जी के अग्र भाग पर दो दरवाजे है । एक दरवाजा जो कि बड़ा है, वह कुछ वर्षों पूर्व ही निर्मित किया गया है । लेकिन पुराना दरवाजा जो कि कलात्मक है, अपेक्षाकृत छोटा है । इससे हमारी जिन मदिर के प्रति विनम्रता एव श्रद्धा व्यक्त होती है ।

मदिर जी के बाहर सीढ़ियों पर रखे पानी से हाथ पैर स्वच्छ करके, हम दरवाजे से दहलीज के भीतर प्रवेश करते हैं तो स्वत· ही चेहरे एवं शरीर से कुछ छूटता सा लगता है । एवं चैतन्य जाग्रता, निर्मलता प्रकट होती है । शरीर रोमांचित सा हो उठता है और

कानो में "ओम् जय देव, ओम् जय देव" की ध्वनि गूँजने लगती है । *यह बड़े मदिर का अतिशय है ।*

मंदिर जी में प्रवेश के वाद दालान से होकर एक विशाल प्रांगण - सभाकक्ष मे पहुँचते ही सामने वेदियो पर सुपार्श्वनाथ आदि अरिहत देव की प्रतिमाओं के दर्शन होते है ।

मदिर जी मे प्राचीन 1? वेदियाँ है । इनका निर्माण समय अन्तर से होता रहा है एव अभी कुछ ही वर्ष पूर्व निर्मित त्रिमूर्ति हाल मे तीन भव्य खड्गासन प्रतिमा आदिनाथ, बाहुवली एव भरत स्वामी के अलग अलग वेदिया पर विराजमान होने से 22 वेदियाँ हो गयी है। सभी वेदियाँ भव्य एव कलात्मक है । इनमे से कुछ शिखर युक्त है जैसे कठरया की वेदी, चोधरी की वेदी, सिमरैया की वेदी वशीधर सिघई की वेदी, पचम लाल सेठ की वेदी, पचायती वेदी पर विशाल उत्तग एव कलात्मक शिखर (सुरई) बने हुए है । जो कि नगर मे दूर-दूर से दिखती है । इन वेदियो के अलावा हरप्रसाद टडैया की वेदी, विहारी लाल सिघई की वेदी, मुन्ना लाल सराफ, कड़ोरे लाल सराफ, खेत सिह, हरिदास घीवाले, नायक की वेदी, नुना की वेदी, आदि कई भव्य वेदियाँ भी है । जो काफी प्राचीन एव तत्कालीन समृद्ध समाज की आइना हैं । समस्त वेदियो पर तीन सौ से भी अधिक बड़ी पाषाण एव धातु की प्रतिमाये विराजमान हैं । जो अति प्राचीन भव्य एव अतिशय युक्त है । मदिर जी मे विराजमान भगवान आदिनाथ, बड़े बाबा की 52 इच की विशाल सर्वाङ्ग सुन्दर प्रतिमा जो कि अत्यन्त मनोहारी एव अतिशय युक्त है । प्रतिमाजी के बारे मे किवदन्ति है और सत्य भी है कि काफी समय पहले एक जैन श्रद्धालु यात्री वैलगाड़ी पर प्रतिमा जी को लेकर ललितपुर से होकर जा रहे थे । रात्रि विश्राम के लिए झाँसी रोड स्थित वयाना नाला पर रूके । सुवह जव वह चलने लगे तो काफी प्रयास के वावजूद वह वैलगाड़ी टस मे मस नही हो सकी । यानि प्रतिमाजी अचल हो गयी । प्रतिमा जी को ले जाने वाले यात्री परेशान हो उठे । यह चर्चा सारे नगर मे फैल गयी । ललितपुर जैन समाज के लोगो को जब यह पता चला तो समाज के लोग उस स्थान पर गये और प्रतिमा जी के अतिशय को महशूस किया और यात्रियो से प्रतिमाजी को ललितपुर नगर मे ही बड़े मदिर जी मे विराजमान करने को कहा ।

और ज्यो ही यात्रियो का सकल्प हुआ, वह बैलगाड़ी जिस पर की प्रतिमा रखी थी, बड़े ही आसानी से चलने लगी । एव प्रतिमा जी को हर्षोल्लास के साथ मदिर जी मे लाया गया एव विराजमान किया गया । विशालकाय एव भव्यता के कारण प्रतिमा जी (आदिनाथ बड़े बाबा के नाम से विख्यात है) आज भी पर्वों के दिनो मे रात्रि मे मदिरजी मे रहने वाले माली व अन्य लोग प्रतिमा जी के समक्ष देवो द्वारा की जाने वाली आरती व वाद्य यत्रो की आवाज सुनते है ।

मदिर जी मे करीब 14 हाल व कमरे हैं । मदिर जी की छते सुदृढ़ एव आकर्षक खम्भाओं से सधी है। मदिर जी के अग्र भाग पर अगल-बगल मे बड़ी-बड़ी गुर्जे है । बीच मे एक गुर्ज पर धातु का विशालकाय घटा लटका है । जो सुबह भगवान जी के अभिषेक के समय एव दोपहर व रात्रि मे शास्त्र सभा के पहले बजाया जाता है । इस घटे की ध्वनि शहर के किसी भी कोने मे सुनी जा सकती है । इसकी गूँजती ध्वनि के कारण कभी-कभी शहर मे कुछ घटना (आग आदि) होने पर एलार्म बेल की तरह प्रयोग किया जाता है।

मदिर जी के पश्चिम में कठरया की वेदी के निकट से एक दरवाजा है जिसकी बनावट मुख्य दरवाजे की तरह ही है । दरवाजे के अलग-बगल में सुन्दर नगाड़ची खाने बने हुए हैं । यह दरवाजा एक विशाल प्रागण मे खुलता है । यह प्रागण पहले एक सुन्दर बगीचे के रूप में विकसित था । जिसमे एक

ज्ञान सुधन, नृप चोर [illegible] ।
ज्ञान सदृश ना और धन, [illegible] ॥

बहुत बड़ी बावड़ी एवं कनैर, अनार, नीबू, आदि तरह तरह के पेड़ पौधे लगे रहते थे । इस स्थान को मुनिराजों के चातुर्मास आदि के अवसर पर दैनिक क्रियाओं के निष्पादन हेतु प्रयोग किया जाता था । यही पर समाज के और भी सामाजिक धार्मिक कार्यक्रम होते रहते थे ।

कई वर्षों पूर्व आचार्य शान्ति सागर जी महाराज के ललितपुर आगमन पर चातुर्मास के दौरान आचार्य श्री के मगल आशीर्वाद से तत्कालीन समाज ने इसी बगीचे मे भवन निर्माण कर इसमे धार्मिक पाठशाला शुरू की थी । जो वर्तमान मे आचार्य शान्ति सागर कन्या जूनियर हाई स्कूल के रूप मे विकसित है ।

श्रेष्ठ सामाजिक व्यवस्थानुसार मदिर जी मे वेदियों का निर्माण कराने वाले एव जिन प्रतिमाओं को विराजमान करने वाले धर्मानुरागी महानुभाव धार्मिक भावनाओं से ओत प्रोत होकर व्यवस्था हेतु मदिर जी के लिये चल अचल सपत्तियाँ दान स्वरूप देते थे। जो मदिर जी की ही संपत्ति मानी जाती थी । वर्तमान मे मदिर जी के करीब ३५-४० भवन है । जो मदिर जी की चौहद्दी के अलावा कटरा बाजार, छत्रसालपुरा, तालाबपुरा आदि मे स्थित हैं । यह सभी भवन किरायेदारी पर है । इनकी आय से मंदिर की व्यवस्था कार्य चलता है ।

मदिर जी के पास समाज की दो धर्मशालाये भी है । नई धर्मशाला मंदिर जी के सामने स्थित है जिसमें बड़े-बड़े चार हाल हैं । पुरानी धर्मशाला मंदिर जी के दक्षिण भाग में स्थित है । धर्मशालायें समाज के धार्मिक कार्य के अलावा सामाजिक कार्य जैसे विवाह आदि के लिए उपयोगी हैं । वर्तमान में ललितपुर नगर में धर्म प्रभावक मुनि श्री सुधासागर जी के ससघ चातुर्मास वर्ष १९९३ के दौरान मुनि श्री के उद्बोधन से समाज में सर्व सम्मति से धर्मशालाओं में रात्रि भोजन एवं मद्यपान जैसे व्यसन सर्वथा वर्जित दण्डनीय कृत्य घोषित किये हैं वा ५००० की राशि दान रूप में देनी होगी।

दिगम्बर जैन बड़े मदिर में तीन भव्य एव सुन्दर विमान एव एक बैलों से खींचा जाने वाला दो खण्डों वाला रथ है । समाज के विमानोत्सव समारोह पर यह विमान एव रथ (भगवान) श्री जी को लेकर अपनी भव्य शोभायात्रा के साथ नगर एव मंदिरो का भ्रमण करते हुए श्री क्षेत्रपाल जी तक जाता है । एव रात्रि वास कर अगले दिन पुन उसी धार्मिक वातावरण एव जलूस मे सभी स्वय सेवी संस्थाओं की चहल-पहल के साथ वापिस होता है ।

दिगम्बर जैन बड़ा मदिर की प्राचीनता के कारण दिगम्बर जैन क्रिया कलापों का सचालन यही से होता था । सभी पर्वों जैसे दशलक्षण पर्व, महावीर जयन्ती, रक्षाबन्धन, निर्वाणोत्सव, आदि पर समस्त समाज सगठित हो कर हर्षोल्लास के साथ यहीं एकत्रित होती थी । एवं वर्तमान मे भी वही परम्पराओं का निर्वाह हो रहा है ।

मंदिर जी मे उपलब्ध शिलालेखो, दस्तावेजो के आधार पर मदिर जी का जीर्णोद्धार समय समय पर होता रहा है । जिससे प्राचीनतम मदिर होने के बावजूद भी यह मंदिर काफी भव्य लगता है ।

मदिर जी के व्यवस्थापको की श्रेणी मे समृद्ध सूझ बूझ वाले एव समर्पित व्यक्तियो का योगदान रहा है । जिसमे दौलत बड़कुल, राजधर चौधरी, चतरे कठरया, मगल मनया, गोकुल चौधरी, दीपचंद मजा, उत्तम चंद कठरया, भागचंद सराफ, हरदास जी कक्का, बाबू लाल साइकिल वाले, सुन्दर लाल जी, उदय चंद जी, आदि उल्लेखनीय हैं । वर्तमान में शीलचंद कड़की एवं देवेन्द्र कठरया समाज की ओर से मनोनीत हैं । जो मंदिर की व्यवस्थाओं को सुचारु रूप से संचालित कर रहे हैं । इस मंदिर में मोहन पुजारी का योगदान भी रखरखाव में उल्लेखनीय है ।

श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ नया मंदिर, ललितपुर का एक परिचय

श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन नया मंदिर, कटरा बाजार–ललितपुर

श्री भैयालाल सिरसौद

श्री दिगम्बर जैन नया मंदिर शहर के मध्य मे अति शाति प्रदत्त स्थान है, चित्त आकर्षण जिनबिम्ब विराजमान होने से मन मे अपूर्व शाति का झरना बहने लगता है क्योंकि मोक्ष एव मोक्ष मार्ग इस संसारी जीव को अपरिचित ही रहा है। जो वस्तु अपरिचित हो, उसके मार्ग को प्रशस्त करने के लिये मार्गदर्शक या निर्देशक की जरुरत होती है। अत अनादि अनन्त काल से समय- समय पर महान दिव्यात्माये तीर्थकर पद को प्राप्त कर हम ससारी प्राणियों की मार्गदृष्टा बनती रही है, किन्तु इस वर्तमान पचम काल मे हम जी रहे है, इस भरत क्षेत्र मे साक्षात तीर्थकर का सद्भाव नही है अत उन तीर्थकरो की स्मृति स्वरुप उनके प्रतिबिम्ब के रूप मे स्थापना जिन आगम अनुसार हीरा, मोती, रत्न पाषाण, धातु आदि की वीतराग आकृति को उत्कीर्ण कर और उन्ही मूर्तियो में साक्षात् तीर्थकरो का स्वरुप मानकर उनका दर्शन पूजन कर हम सब अपने आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त करते है क्योकि उनका दर्शन पूजन करने से मिथ्यात्व का क्षय व रत्नत्रय की प्राप्ति होती है। अत श्रावको को बताया है, जहा अपनी आजीविका चल रहा हो, वहा जरुरी ही अपने आराध्य देव अरहत भगवान की प्रतिमा जरुर स्थापित कर तथा अपनी शक्ति अनुसार मंदिर बनावायें, जिससे ससारी प्राणी अपने काया का व्यस्तता से समय निकालकर अपने आपको कुछ समय के लिये वहा पर दर्शन पूजन पाठ स्वाध्याय स्तुति आदि के माध्यम से आत्मकल्याण कर सके।

इसी आशय को ध्यान मे रखते हुये ललितपुर समाज ने ज्यो ही बढ़ोत्तरी देखी त्यो ही समाज के उत्कृष्ट दानी महानुभाव सेठ खुभानलाल, पचमलाल, दरियावलाल, मानिकलाल टडैया एव नौनेशाह, बुधमल सिघई एव सेठ मथुरादास पन्नालाल टड़ैया आदि ने श्री बड़ा मदिर होने पर भी श्री दि० जैन नया मदिर जी का निर्माण कराया। जिसका श्रेय मुख्यत सेठ साब खुभानलाल पचमलाल को है। उन्ही ने तीन—तीन रथ तीन बार चलाये। प्रथम एक रथ स्वय का दूसरा टड़ैया जी का एव तीसरा अन्य दानी महानुभाव ने चलाया। दूसरी बार माघ सुदी नवमी रविवार स १९५५ मे प गुलाबचन्द जी के प्रतिष्ठाकाल मे खुभानलाल पचमलाल दरियाव लाल माणिक लाल टड़या नोनशाह बुधमल सिघइ न चलवाया। तीसरी बार माघ शुक्ला पचमी सम्वत् १९७० दिन सोमवार को नोनीबहु पचमलाल पुत्र सेठ बच्चूलाल, चुन्नीलाल बच्चूलाल सराफ और सिघई खेतसिह हरदास घी वालो ने चलवाये। इस प्रकार सभी समाज के सहयोग से मदिर जी का निर्माण हुआ। इसके पूर्व श्रीमत सेठ साहब अपने मकान की ऊपरी अटारी मे श्री जी विराजमान किये थ। नया मदिर बनने के बाद श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जन नया मदिर के नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त कराया। इसमे अभी कुल १४ वेदिया एक स एक उद्योत रूप बनी हुई है। सभी मे समवशरण विराजमान है। जो अपने मे अतिशयवान है। इसके बाद बाहर गाव से श्रावक जन आकर बस गये एव श्री जी वा चल

अचल सम्पत्ति मंदिर जी को समर्पित की। श्री मंसौरा मदिर, नगाड़ा, भुचेरा, पंचमनगर, बारी से भी जी आये, जो इन्ही वेदियों पर विराजमान कर दिये गये। यह मदिर अच्छी ऊंची कुर्सी देकर बनवाया गया तथा सामने दरवाजे के दोनों ओर सीढ़ियां है। मंदिर के भीतर ही भीतर प्रक्षाल एवं पूजन द्रव्य धोने के लिये कुआ व्यवस्थित रूप से बनाया है। मदिर में सफाई आदि की अच्छी व्यवस्था रहती है जो श्रीमत सेठ बच्चूलाल जी के कार्यकाल में कुवर जू माली ने डाली एव ईमानदारी की छाप छोड़ गया। श्री जवाहरलाल परमानद अलया जी का योगदान रहा। वर्तमान में उत्तरदायित्व को निर्वाह करने वाले श्री ज्ञानचन्द जी अलया जिन्होने दि० जैन पचायत की मत्री पद पर रहकर बड़ी चतुरता से कार्यकाल पूरा करके अभी भी समाज एव तीर्थ सुरक्षा में दत्तचित हैं। बुखारिया परिवार का भी योगदान रहा। काफी समय तक सेठ बच्चूलाल जी ही मदिर को व्यवस्था बनाये रहे तथा स्वय की अचल सम्पत्ति भवन आदि दान में दी। एव अन्य सभी वेदी वाले महानुभावो ने भवन दुकान आदि दान में देने की योजना बनायी। साथ में चौधरी पल्टूराम जी ने अपनी सुयोग्यता से कार्य किया। टडैनी बहु के वारिस होने से इस मदिर में चार चाद लगाये। उस समय पैसा मिलना दुर्लभ था लेकिन चौधरी साहब ने मंदिर जी में संगमरमर लगवाने की व्यवस्था की। लम्बे समय तक मदिर जी की देखरेख करते हुये जीवन समाज सेवा मे बिताया। उन्ही के सुपुत्र चौधरी शिखरचन्द जी ने अपने पूज्य पिता के पद चिन्हों का अनुकरण करते हुये मन्दिर प्रबंधक का कार्यभार सम्हाला। इसके साथ- साथ दिगम्बर जैन पचायत का अध्यक्ष पद भी सुशोभित किया तथा अभी भी समाज सेवा मे लगे हुये हैं। श्री सिंघई बच्चूलाल जी सर्राफ ने भी मंदिर के सृजन एव व्यवस्था में पूरा योगदान दिया। उत्तम चन्द कठरया, सि. कन्हैयालाल, श्री व्या हरदास (कक्का), प्रेमचन्द पंसारी, प्रेमचन्द जी टोडेवाले, कन्छेदी लाल डोंगरा, सि. कन्छेदी लाल, कैलाशचन्द आदि ने समय पर व्यवस्था में प्रबधक पद का कार्य किया। वर्तमान में पंडित भैयालाल सिरसौद प्रबधक पद पर काफी समय से अपने कार्य को विधिवत निर्वाह करते हुये मदिर की व्यवस्था की देखरेख अच्छी प्रकार से कर रहे हैं तथा समय- समय पर निर्माण कार्य एव भवन क्रय भी कर रहे है। श्री मदिर जी में १००८ बाहुबली भगवान की लगभग ५ १/४ फुट ऊची एव ७ कुन्टल से ज्यादा वजन की अष्ट धातु की प्रतिमा ढलवाकर विराजमान करने का आशीर्वाद पूज्य आचार्य १०८ गुरुवर विद्यासागर महाराज के परम शिष्य मुनि श्री सुधासागर से प्राप्त किया है। जिसकी प्रतिष्ठा १८-१२-९३ से २३-१२-९३ तक होने वाले नव गजरथ महोत्सव में हो गयी है। वास्तव में प्रतिमा आकर्षक एव अद्वितीय है। भारत में आज तक ऐसी आकर्षक प्रतिमा के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है।

मन्दिर जी की विशेषतायें:-

१- अच्छी ऊंची कुर्सीदार मदिर होने पर भी सदर दरवाजा बहुत छोटा है जिससे प्राचीन संस्कृति झलकती है। श्रावक जितना विनय का अवलम्बन लेगा उतना ही पुण्य उपार्जन करेगा।

२- मंदिर जी में मूलनायक पार्श्वनाथ भगवान की पद्मासन तीन प्रतिमायें हैं उनकी छवि बहुत ही

आकर्षक है एवं रत्नत्रय को प्रदत्त करने की दिव्यता भाषित होती है ।

३- मदिर जी के ऊपर चार गगनचुम्बी शिखरें है जिनका दूर से ही दर्शन होता है ।

४- मदिर सभी नेदियो का मुख पूर्व की ओर है । सिर्फ एक वेदी पार्श्वनाथ की खडगासन चौबी गे साहित उत्त दिशा की ओर मुख है । ज्योतिष के अनुसार दोनो दिशाये गुभ है ।

५- श्री मदिर जी मे प्रक्षाल, पूज , श ग प्रवचन, स्वाध्याय, आरती आदि समय से एव शुद्धि पूर्वक लग्न मे आगम अनुसार पद्धति से हो रही है ।

६- पीतल पर ४०० वर्ष पुराना यत्र है ।

७- मदिर जी में अद्वितीय पीतल की ५ फुट ३ इच की ७ कुन्टल से ज्यादा वजन की १००८ बाहुबली भगवान की प्रतिमा जी हैं ।

८- मदिर के पीछे अलग से धर्मशाला है कुछ भाग मे महावीर बाल विद्यालय पचायत के तत्वाधान मे चल रहा है । शेष भाग मे ठहरने की उत्तम व्यवस्था है । बीच में कुआ भी है एव दुकाने व भवन है जोकि किराये पर है । श्री दिगम्बर जैन पचायत के तत्वाधान मे एव निर्देशन मे पूर्ण कार्य सुचारु ढग से चल रहा ।

भवदीय

प भैयालाल जैन सिरसौद

प्रबन्धक श्री दि. जैन नया मदिर

कटरा बाजार, ललितपुर (उ प्र)

श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ नया मन्दिर, ललितपुर
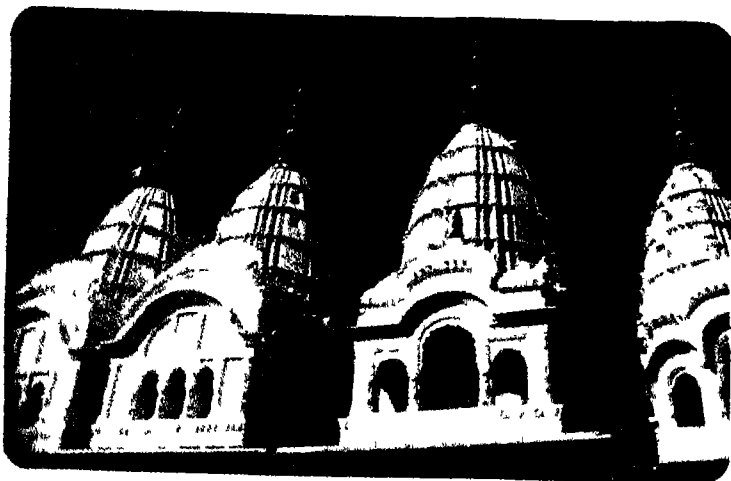
भव्य शिखरे जिनालय न 3 4 7 एव 9 की नया मदिर

श्री दि जैन नया मदिर का सदर दरवाजा

श्री दि जैन चन्द्रप्रभु जिनालय न 12 नया मदिर

श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय न 14 नया मदिर
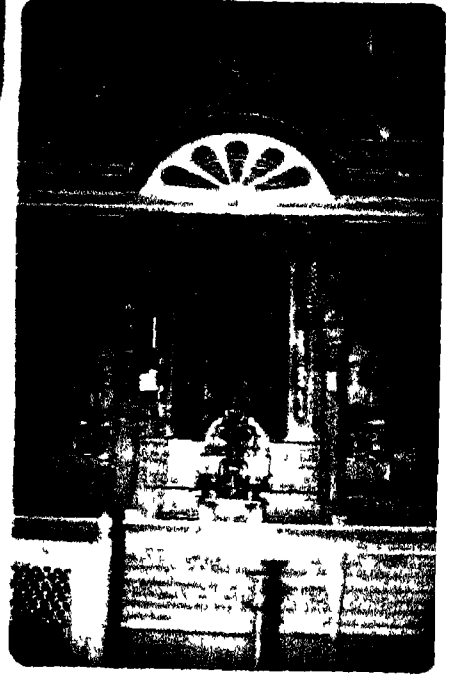
श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय

न 10 नया मदिर
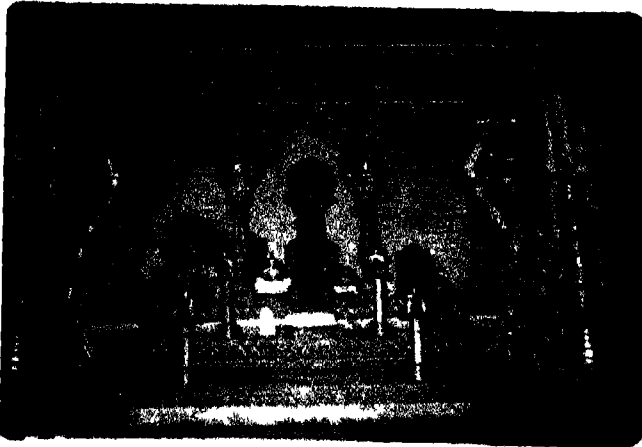
श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 7 नया मदिर
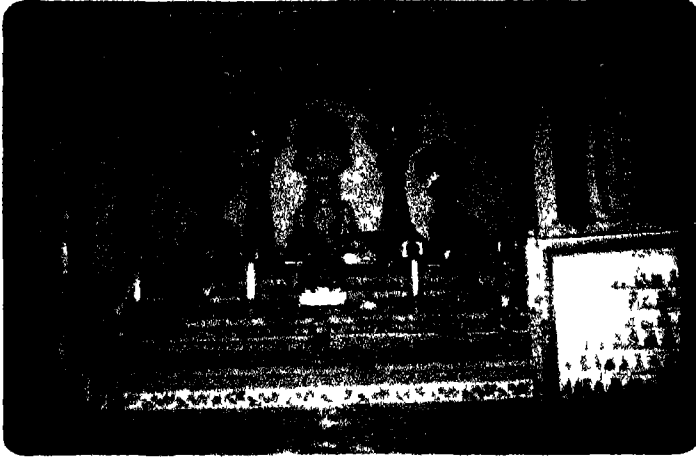
श्री दि जेन पार्श्वनाथ जिनालय

न 9 नया मदिर
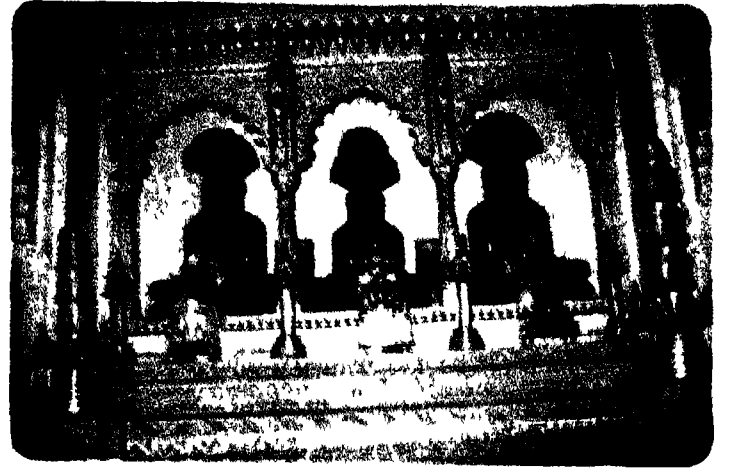
श्री दि जन मूलनायक पाश्वनाथ त्रिमूति जिनालय

न ५ नया मंदिर ललितपुर
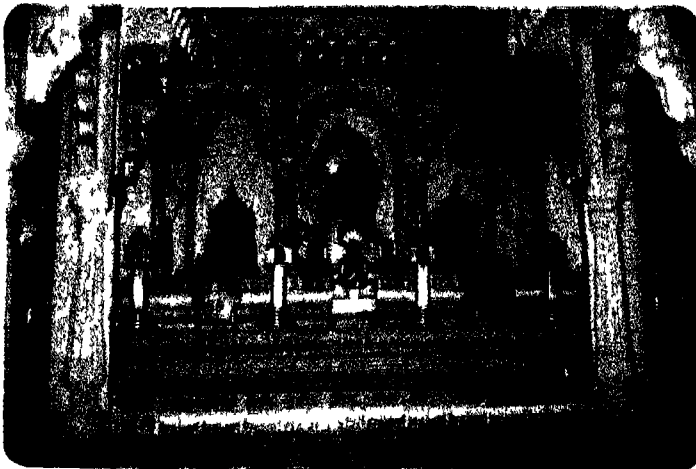
श्री दि जैन महावीर जिनालय

न 6 नया मदिर
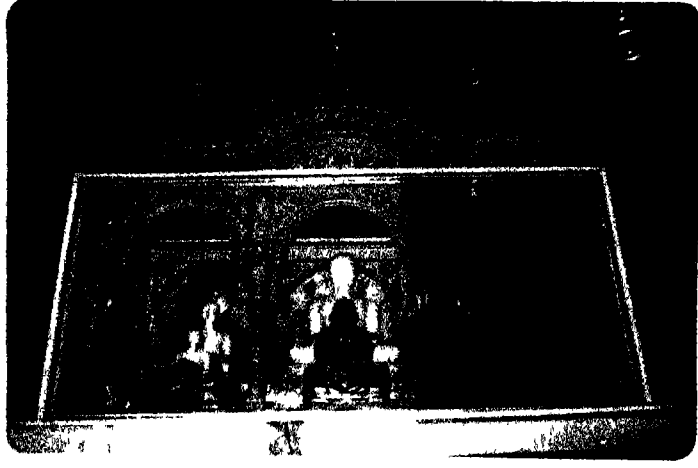
श्री दि जैन चन्द्रप्रभु जिनालय न 13 नया मदिर

श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 8 नया मदिर
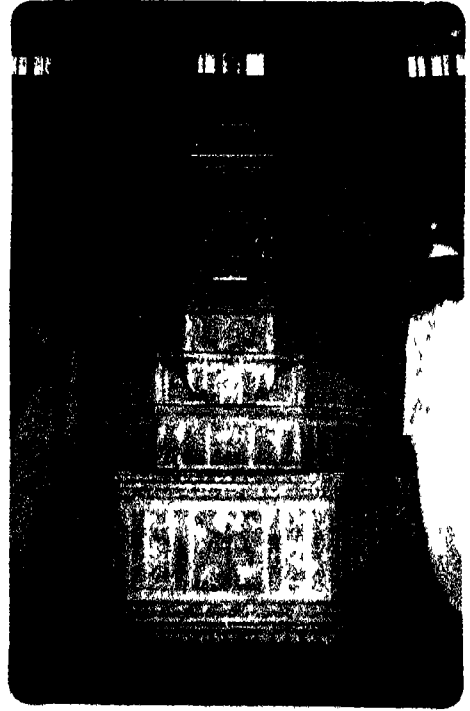
श्री दि जन आदिनाथ (मेरु) जिनालय न 12 नया मदिर
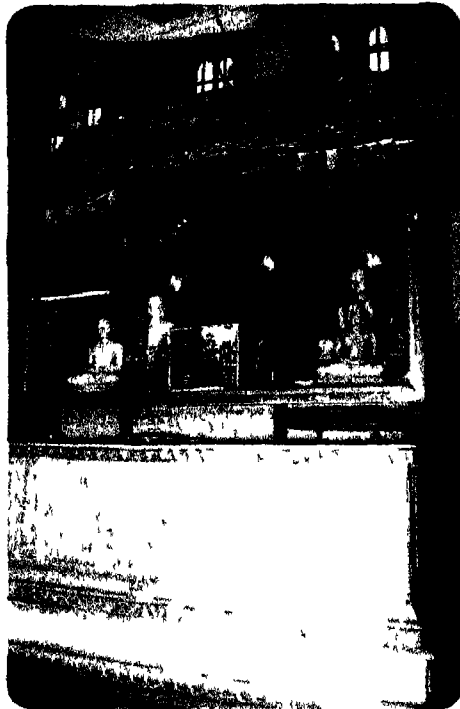
श्री दिगम्बर जैन अटा मंदिर जी का इतिहास

सवाई सिंघई शीलचंद अनौरा, ललितपुर

ललितपुर नगर मे सबसे प्राचीन जैन मंदिर श्री दिगम्बर जैन बड़ा मदिर एवं श्री दिगम्बर जैन नया मदिर एव शहर से बाहर श्री अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी हैं और इन्ही मंदिरो के आस-पास ही सारी जैन समाज रहती थी । सन् १९४७ के बाद ग्रामीण क्षेत्रो मे डाकुओं और चोर लुटेरो का आतक बढ़ने के कारण जैन समाज का ग्रामो मे रहना मुश्किल हो गया और इसी कारण धीरे-धीरे जैन समाज के व्यक्तियो ने ललितपुर आकर सावरकर चौक के आस-पास रहना प्रारम्भ कर दिया । इस प्रकार ललितपुर नगर मे जैन समाज की वृद्धि होने लगी । जैन धर्मावलम्बी बिना देव दर्शन किये भोजन ग्रहण नही करते है और मदिर दूर स्थित होने के कारण देव दर्शन मे असुविधा अनुभव की जाने लगी । कुछ व्यक्तियो ने समाज सेवी स्व श्री मुन्ना लाल जी सराफ एव उनके अनुज स्व श्री भगवानदास जी सराफ ने देव दर्शन के लिए होने वाली असुविधा के बारे मे चर्चा की । उस समय शनीचरा चौराहे (सावरकर चौक) के पास ही दि जैन अटामदिर सवाई चौधरी स्व श्री मगल सिह एव स्व श्री भवानी सिह निवासी अचलगढ़, चदेरी जिला गुना म प्र का गृह चैत्यालय के रूप मे स्थित था । स्व श्री मुन्ना लाल जी एवं स्व श्री भगवानदास जी सराफ ने व्यक्तिगत रूचि लेकर स्वयं के धन से इस चैत्यालय को परिसर सहित क्रय करके जैन समाज को सौंप दिया और इस प्रकार श्री दिगम्बर जैन अटामदिर अस्तित्व मे आया ।

मूल नायक श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथ जी की मूर्ति छत पर एक छोटे से कमरे में विराजमान थी। बुन्देलखण्ड मे छत के लिए अटा भी कहा जाता है । अतः इसी कारण यह मंदिर अटामंदिर जी के नाम से विख्यात हो गया । जिस कमरे में भगवान श्री पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा विराजमान थी वह अत्यन्त छोटा था और मुश्किल से दो तीन व्यक्ति ही उस कमरे मे खड़े हो सकते थे ऊपर दर्शन करने के लिए जिस जीना से जाना पड़ता था वह बहुत ही सकरा था । इस कारण दर्शन करने मे भी बहुत ही असुविधा होने के कारण दिगम्बर जैन समाज ने मदिर का पुर्ननिर्माण कराने का सकल्प लिया । श्री दिगम्बर जैन पंचायत के मत्री स्व श्री कुन्दन लाल सराफ ने व्यक्तिगत रूचि लेकर लगन, मेहनत, एव सूझ-बूझ के साथ इस मदिर के निर्माण के पुन निर्माण का कार्य प्रारम्भ किया । आर्थिक तगी के बावजूद भी उनके श्रम एव बुद्धि चार्तुय से मदिर का कार्य निरतर चलता रहा और उनके ही कार्यकाल मे मदिर एक भव्य आकार ले चुका था ।

सन् १९५७ मे श्री राम प्रसाद शिखरचद सराफ किसलवास वालो के मन मे भाव आये कि श्री अटामदिर जी मे भगवान बाहुबली जी की मूर्ति विराजमान करने के हुए, जैन समाज ने उनकी भावनाओं का आदर करते हुए मूर्ति विराजमान करने की स्वीकृति दे दी । सन् १९५८ मे पचकल्याणक महोत्सव संपन्न हुआ और भगवान बाहुबली की मूर्ति श्री रामप्रसाद शिखरचंद सराफ द्वारा ही निर्मित वेदी पर विराजमान की गई । इस पचकल्याणक महोत्सव मे श्री अटामदिर जी के लिए आर्थिक लाभ अच्छी मात्रा मे हुआ और मदिर का निर्माण कार्य अबाध गति से चलता रहा ।

कालान्तर में ग्रामीण क्षेत्रो से लगभग ७५% जैन समाज ललितपुर मे आकर रहने लगी । और देहातों में स्थापित जैन मंदिरों की पूजन एव प्रच्छाल की

व्यवस्था में असुविधा होने लगी । इस कारण ग्रामीण क्षेत्रो से मदिर ललितपुर आना प्रारम्भ हो गये । सर्वप्रथम सन् १९६९ में ग्राम उमरिया जिला ललितपुर का जैन मदिर श्री अटामदिर जी मे आया । जिसकी १३ मूर्तियो एव चार मानस्तम्भ प्रबधक श्री स्व पुत्तू लाल सराफ एव स्व श्री कस्तूर चद सराफ की देख रेख मे समुचित व्यवस्था के साथ विराजमान कर दी गयी।

सन् १९७४ मे स्व श्री बृजलाल सराफ के शुभ भाव मूल नायक श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवान की वेदी का पुन निर्माण करने के हुए । समाज की स्वीकृति से बेदी का पुन निर्माण का कार्य प्रारम्भ हो गया । सवाई सिघई तीर्थ भक्त स्व श्री भैया लाल जी गुरहा निवासी खुरई जिला सागर म प्र के सतप्रयास से ग्राम दुगाहा जिला सागर मध्य प्रदेश से श्री १००८ पार्श्वनाथ भगवान की काले पाषाण की अत्यन्त प्राचीन भव्य एव मनोज्ञ मूर्ति लाई गयी । जिसे नव निर्मित वेदी पर मूल नायक श्री १००८ भगवान पार्श्वनाथ के साथ ही विराजमान की गई । इसी वर्ष मदिर प्रबधक स्व श्री पुत्तू लाल सराफ एव स्व श्री कस्तूर चद सराफ की लगन एव सहयोग से श्री पचकल्याणक महोत्सव सपन्न हुआ ।

सन् १९८१ मे ग्राम सुनवाहा से जैन मदिर आया। जिसकी ११ मूर्तियाँ श्री अटामदिर जी मे विराजमान की गई । इसी वर्ष ग्राम हिरावल जिला गुना म प्र से भी जैन मदिर श्री अटा मदिर जी मे आया । मदिर प्रबधक स्व श्री कस्तूर चद सराफ एव श्री शील चद अनौरा ने समारोह पूर्वक सभी मूर्तियाँ मदिर जी मे विराजमान कर दी गयी ।

सन् १९८३ मे स्व श्री पुत्तू लाल सराफ, स्व श्री जुग्गू लाल सराफ, स्व श्री भैयालाल सराफ, एव स्व. श्री राम प्रसाद सराफ ललितपुर निवासी के शुभ भाव श्री अटामदिर जी मे नवीन वेदी निर्माण करने के हुए । चूँकि ग्रामीण क्षेत्र से मंदिर निरंतर ललितपुर आ रहे थे इस कारण श्री अटामदिर जी मे वेदी की कमी तीव्रता से अनुभव की जा रही थी । इसी कारण समाज ने नवीन वेदी निर्माण के लिए सहर्ष स्वीकृति दे दी । फलस्वरूप काँच की वेदी के रूप मे एक अत्यन्त भव्य एव मनोरम वेदी का निर्माण हुआ । इसी वर्ष ग्राम टेनगा जिला ललितपुर का मदिर भी श्री अटामदिर जी मे आ गया जिसकी ७ मूर्तियाँ विनय पूर्वक मदिर जी मे विराजमान कर दी गयी । इसी वर्ष ग्राम जिजयावन जिला ललितपुर का मदिर भी अटामदिर जी मे आया । सगमरमर की विशाल वेदी एव २३ मूर्तियाँ श्री अटामदिर जी मे जिजयावन मदिर की वेदी के नाम से स्थापित कर दी गयी । प्रवधक श्री शीलचद अनौरा एव श्री अजय कुमार सराफ ने समारोह पूर्वक सभी मूर्तियाँ विराजमान करायी ।

सन् १९८५ मे ग्राम गगचारी जिला ललितपुर का जैन मदिर भी श्री अटामदिर जी मे आया । जिसकी ४ मूर्तियाँ प्रवधक श्री शीलचद अनौरा एव श्री अजय कुमार सराफ ने समुचित व्यवस्था के साथ श्री अटामदिर जी मे विराजमान की ।

कुछ समय पश्चात् समाज के व्यक्तियो के शुभ भाव श्री अटामदिर जी मे चौबीसी निर्माण कराने के हुए । समाज ने चौबीसी के निर्माण की सहर्ष स्वीकृति दे दी । प्रबधक श्री शीलचद अनौरा एव श्री अजय कुमार सराफ ने विशेष रूचि लेकर सन् १९८७ मे मदिर जी मे भव्य हाल का और वर्तमान काल के चौबीस तीर्थंकरो की मूर्तियो एव वेदियो का निर्माण कराया।

सन् १९८८ मे ग्राम बम्हौरी जिला ललितपुर का मंदिर भी श्री अटामंदिर जी में आ गया मदिर जी की पाँच मूर्तियाँ प्रबधक श्री शीलचद अनौरा एव श्री

श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अटा मन्दिर, ललितपुर
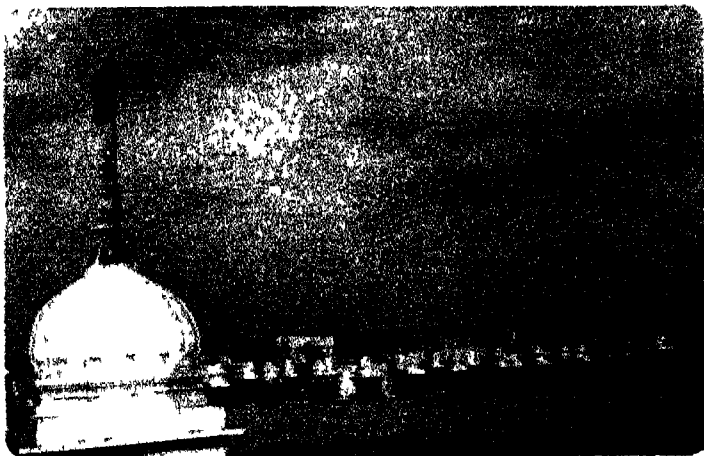
जिनालय न 5 की शिखर एव नवीन चाबीसी की शिखरे

श्री दि जैन मूलनायक पार्श्वनाथ जिनालय न 5
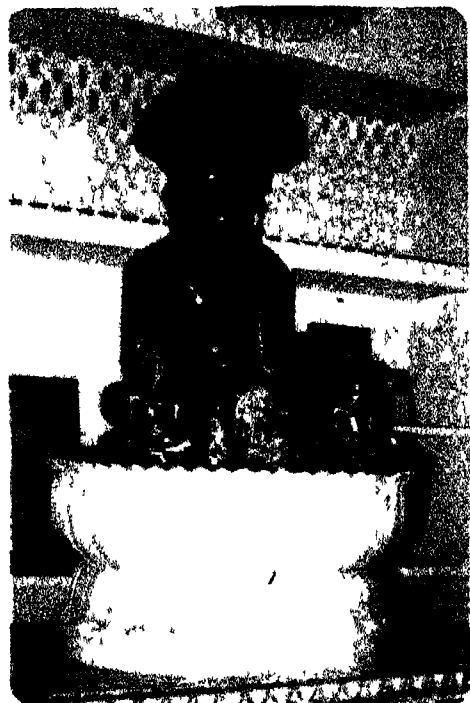
कमलाशन पर विराजमान मूलनायक
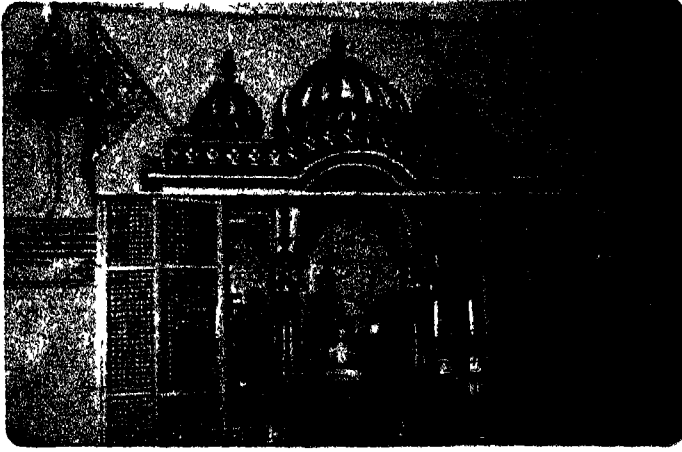
श्री दि जैन मुनिसुव्रतनाथ

जिनालय न 3 अटा मदिर

श्री दि जैन चन्द्रप्रभु जिनालय

न 2 अटा मदिर
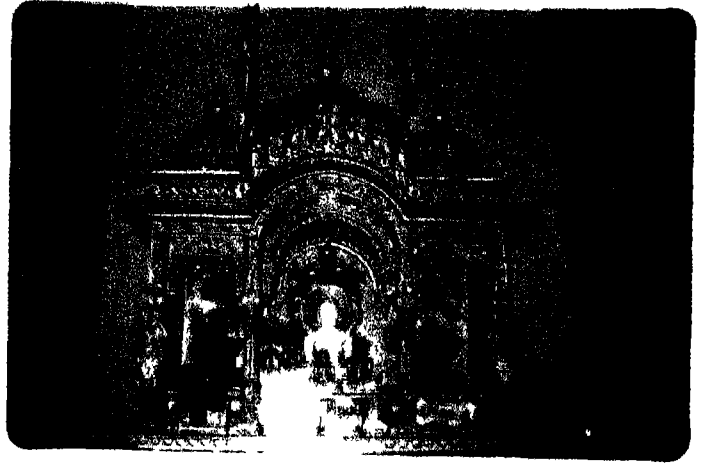
श्री दि जैन मल्लिनाथ जिनालय

न 4 अटा मदिर

आलीशान घण्टा अटा मंदिर, ललितपुर

श्री दि जैन पञ्च श्रुत केवली जिनालय अटा मंदिर
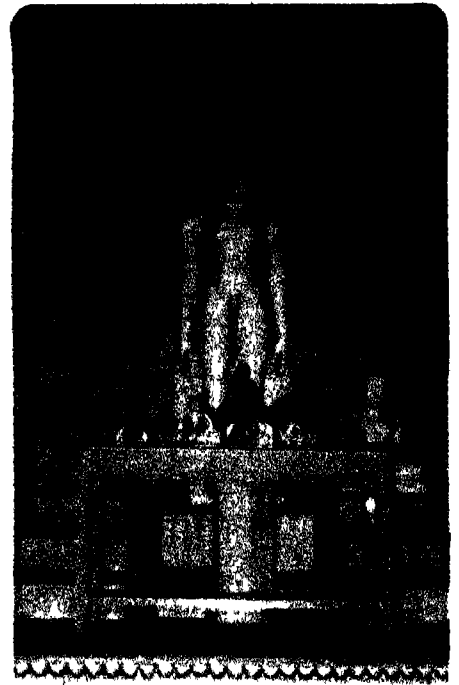
श्री दि जैन बाहुबली जिनालय नं 1 अटा मंदिर

अटा मन्दिर चौबीसी का विहंगम दृश्य

श्री बाहुबली जिनालय का पंडाल एवं [illegible]
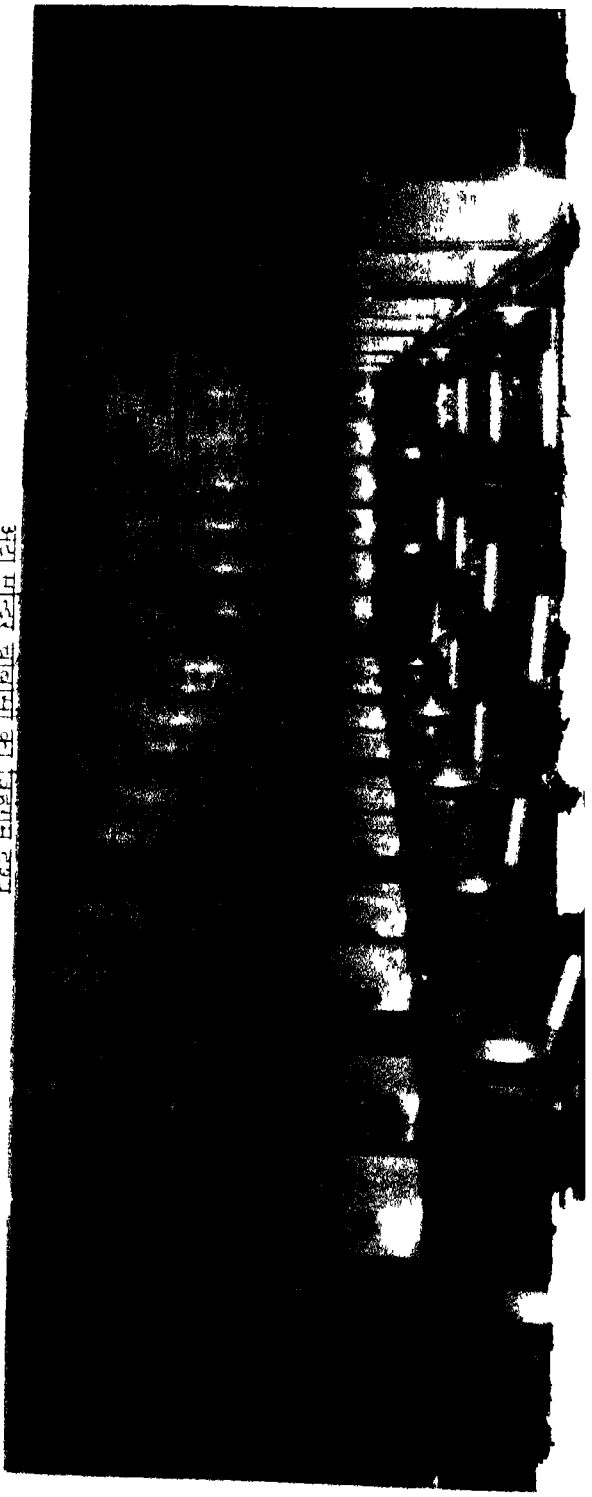
अजय कुमार सराफ ने समुचित व्यवस्था के साथ मंदिर जी मे विराजमान करा दीं । इसी वर्ष मंदिर जी मे एक नवीन वेदी का निर्माण उमरिया वेदी के निर्माण से किया गया । जिसमे मूर्तियाँ व्यवस्थित ढंग से विराजमान कर दी गयी ।

सन् १९९२ मे ग्राम अनौरा का जैन मदिर भी श्री अटामदिर जी मे आ गया । जिसकी पाँच मूर्तियाँ प्रबधक श्री शीलचद अनौरा एव श्री रमेश चद नजा ने समारोह पूर्वक मदिर जी मे विराजमान करायी ।

सन् १९९३ मे ग्राम चढरऊ जिला ललितपुर से भी जैन मदिर अटा मंदिर जी में आ गया । जिसकी ५ मूर्तियाँ प्रबध श्री शीलचद अनौरा एव श्री रमेश चद नजा ने समुचित व्यवस्था के साथ मदिर मे विराजमान की ।

इसी वर्ष परमपूज्य आचार्य १०८ श्री विद्यासागर महाराज जी के परम शिष्य परमपूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज एव १०५ क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी एव १०५ श्री क्षुल्लक धैर्य सागर जी का चातुर्मास श्री क्षेत्रपाल मदिर जी मे सपन्न हुआ । परमपूज्य मुनि श्री १०८ सुधासगर जी महाराज की प्रेरणा से श्री अटामदिर जी मे भव्य वेदी का निर्माण करा कर वर्तमान काल के पाँच श्रुत केवलियों की मूर्तियाँ विराजमान की गयी एव ताम्र पत्रों पर शास्त्र अकित करा कर नवीन एव भव्य वेदियों पर विराजमान किये गये । परम पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज के सानिध्य में इसी वर्ष दिसम्बर माह में श्री मज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक एवं नव गजरथ महोत्सव सम्पन्न हुआ जिसमें वर्तमान काल की चौबीसी की प्रतिष्ठा हुई और मूर्तियाँ विराजमान की गयी । इसके साथ ही वर्तमान काल के प्रथम तीर्थंकर भगवान श्री आदिनाथ एं अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी तथा श्री कुन्द कुन्द आचार्य, आचार्य श्री शान्ति सागर जी, आचार्य श्री वीर सागर जी, आचार्य श्री शिव सागर जी, श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी, श्री ज्ञान सागर जी, आचार्य श्री विद्यासागर जी, मुनि श्री सुधासागर जी, क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी, क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी के भव्य तीन चित्र भी निर्मित करा कर प्रबंधक श्री शीलचंद अनौरा एव श्री रमेश चद नजा ने समारोह पूर्वक समुचित व्यवस्था पूर्वक मदिर जी में विराजमान कराये । इसी वर्ष लगभग २२५ किलो का विशाल घंटा निर्मित करा कर श्री अटामदिर जी में ऊपर की छत पर स्तम्भ बनवा कर टगवाया गया । ज्यो अपने आप मे अद्वितीय है । मदिर जी के परिसर मे ही दो तरफ दो विशाल धर्मशालाओं का निर्माण कराया गया । मदिर एव धर्मशाला के निर्माण एव प्रगति मे, पूर्व प्रबधक स्व श्री भगवानदास जी सराफ, स्व श्री चौधरी बसोरे लाल जी, श्री चम्पालाल जी पटवारी, स्व. श्री रज्जू लाल जी सिंघई, स्व श्री बृजलाल सराफ, स्व श्री पुत्तु लाल जी सराफ, स्व श्री कस्तूर चद सराफ, श्री अजय कुमार जी सराफ, एव वर्तमान प्रबधक श्री शीलचद अनौरा, एव श्री रमेश चद नजा का अपूर्व सहयोग रहा । सभी प्रबधको के अथक परिश्रम लगन एवं सूझ-बूझ के फलस्वरूप आज श्री दिगम्बर जैन अटामंदिर भव्य रूप मे शहर के मध्य स्थित है ।

"श्री अभिनन्दन नाथाय नमः"

श्री १००८ दिगम्बर जैन अभिनन्दन जी मंदिर अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी का परिचय

ललितपुर नगर के लालित्य में अभिवृद्धि करता हुआ यह भव्य जिनालय एवं धर्म शाला अति सुन्दर एवं सुव्यवस्थित है। क्षेत्रपाल मंदिर में आते ही मन एकदम शान्त हो जाता है तथा भौतिक विकल्प लुप्त हो जाते है। ललितपुर देवगढ़ मार्ग पर शहर एवं रेलवे स्टेशन के मध्य स्थित है। क्षेत्रपाल जी में प्रवेश करते ही एक विशाल प्रागंण है और विशाल प्रांगण में मानस्तम्भ छाया दार वृक्षों के मध्य अति शोभायमान हो रहा है। प्रागंण के चारों ओर विशाल धर्मशाला है जिसमें 1000 से अधिक यात्रियों के ठहरने की सुविधा है। अधिकाश कमरें आधुनिक ढग से तैयार किये गये है और उनमें स्नानागर एवं शौचालय संलग्न है। पीने के जल के लिए तीन कुए नल एवं बिजली की सुविधा सुव्यवस्थित है। दिन एव रात में हर समय जल प्रकाश उपलब्ध रहता है, शादी विवाह, धार्मिक एवं सामाजिक कार्यों के लिए बड़े-बडे हाल उपलब्ध है।

प्रागण के मध्य 31 फुट ऊचा मानस्तम्भ बना हुआ है जिसके चारों ओर चन्द्रप्रभु भगवान् की मनोज्ञ पद्मासन श्वेत संगमरमर की प्रतिमा विराजमान है। जिसका दर्शन करने से बडे से बड़े मानियों का मान नष्ट हो जाता है। तथा मानस्तम्भ पर एवं उसके चारों ओर प्रांगण में लगा हुआ सगमरमर भौतिक शीतलता प्रदान करता है। मानस्तम्भ दर्शन के बाद थोड़ी सी ही ऊंचाई पर मुख्य अभिनंदन मंदिर के साथ 11 जिनालय है और ऊपर की मंजिल पर भी एक त्रिमूर्ति जिनालय है प्रत्येक जिनालय में एक एवं अनेक मूर्तियां विराजमान है।

अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपालजी का मुख्य आकर्षण भौतिक सुख के लिए जहां आधुनिक धर्मशाला है वही पारलौकिक कल्याण की दृष्टि से श्री अभिनंदन नाथ भगवान, श्री चन्द्रप्रभु भगवान एवं शांतिनाथ भगवान के जिनालय तथा ऊपर की मंजिल पर बना हुआ त्रिमूर्ति जिनालय है जहां जाते ही सहज ही मन ध्यान एवं भक्ति में लीन हो जाता है। अभिनंदन नाथ भगवान के मंदिर की दीवालें पांच फुट मोटी है तथा शिखर भी 51 फुट ऊँचा है। और लगभग 800 वर्ष से अधिक पुराना है। त्रिमूर्ति जिनालय का शिखर भी 51 फुट ऊँचा है और उस पर लगा हुआ सगमरमर, ग्रेनाईट पत्थर शिखर की शोभा बढ़ा रहा है तथा यह शिखर ललितपुर शहर के बाहर बहुत दूर से दिखाई देते हैं।

मंदिर क्रमांक 4 में स्थित चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति तो इतनी अतिशय युक्त है कि पाषाण के होते हुए भी धातु की तरह बजती है। तथा इसी जिनालय में रखी हुई पार्श्वनाथ भगवान की काले पाषाण की मूर्ति वजन में इतनी हल्की है कि मानों काष्ट प्रतिमा हो। जिनालय नम्बर 1 के सम्मुख बनी हुई दालान में पूर्वी खम्बे पर चन्द्र प्रभु भगवान की मूर्ति तथा इसी खम्बे पर दूसरी मंजिल में बनी हुई चन्द्र प्रभु भगवान की मूर्ति जो सम्वत् 1223 की प्रतिष्ठित है यह प्रमाणित करती है कि यह जिनालय 800 वर्ष से अधिक पुराना है। और गुफा (भोंयरे) में स्थित मूर्ति की कला एव पाषामण सोनागिर में स्थित चन्द्रप्रभु भगवान की मूर्ति से भी प्राचीन प्रतीत होती है। इस जिनालय के मूल नायक भगवान पार्श्वनाथ है जो यह दर्शाते है कि इस क्षेत्र के मूल नायक पहले पार्श्वनाथ भगवान रहे है और किन्हीं कारणों से गुफा (भोंहरा बन्द कर दिया गया और कुछ समय पश्चात अभिनन्दन नाथ भगवान का जिनालय बनाया गया और मूल नायक अभिनन्दन नाथ भगवान माने जाने लगे। अब गुफा भोहरे के द्वार खुल जाने के पश्चात यह पूर्णतया प्रमाणित है कि अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपालजी ललितपुर नगर में हजारों वर्ष पूर्व से स्थित है जिसका विवरण वारांग चरित्र में भी आया है। प्रत्येक जिनालय में स्थित मूर्तियों का विवरण में प्रथक से दिया गया है।

त्रिमूर्ति जिनालय का निर्माण प्रवचन हाल की छत पर परम पूज्य संत शिरोमणि दिगम्बर आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य आध्यात्म योगी देवगढ़ जीर्णोद्धारक दिगम्बर मुनि श्री सुधासागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री गम्भीरसागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज

श्री दिगम्बर जैन आतिशय क्षेत्र-क्षेत्रपालजी, ललितपुर

श्री दि जेन अभिनदन नाथ जी की भव्य शिखर एव अन्य शिखरे

मुख्य द्वार तथा मानस्तम्भ क्षेत्रपाल
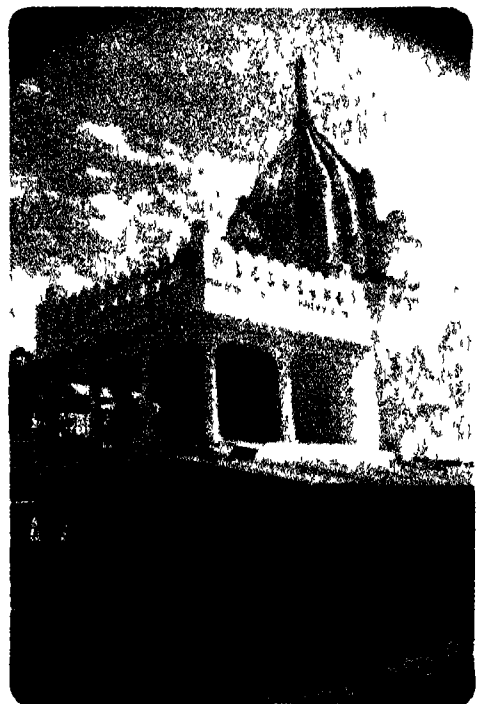
श्री दि जैन अभिनदन जिनालय का दृश्य

श्री दि. जैन अभिनदननाथ मदिर, क्षेत्रपाल ललितपुर की चित्रावली

श्री दि जैन अभिनन्दन जिनालय न 1 क्षेत्रपाल मन्दिर
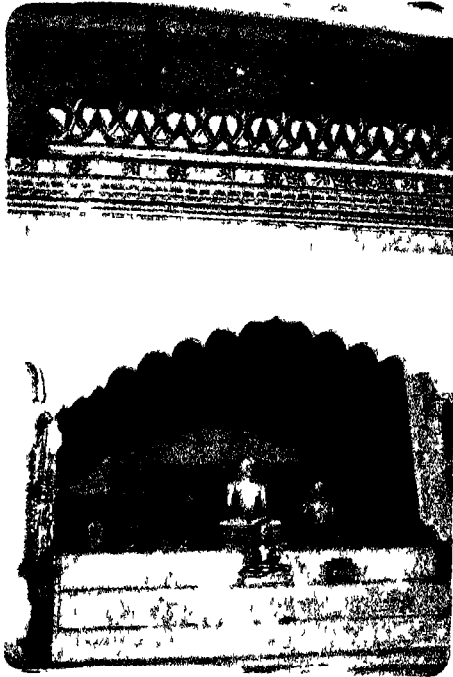
श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय न 3 क्षेत्रपाल मन्दिर

श्री दि जैन महावीर जिनालय न 5 एव
श्री दि जैन चन्द्रप्रभु जिनालय न 4

श्री दि. जैन अभिनदननाथ मंदिर, क्षेत्रपाल ललितपुर की चित्रावली

श्री दि जैन चमत्कारी चन्द्रप्रभु एव पाश्वनाथ जिनालय न 2 क्षेत्रपाल मं
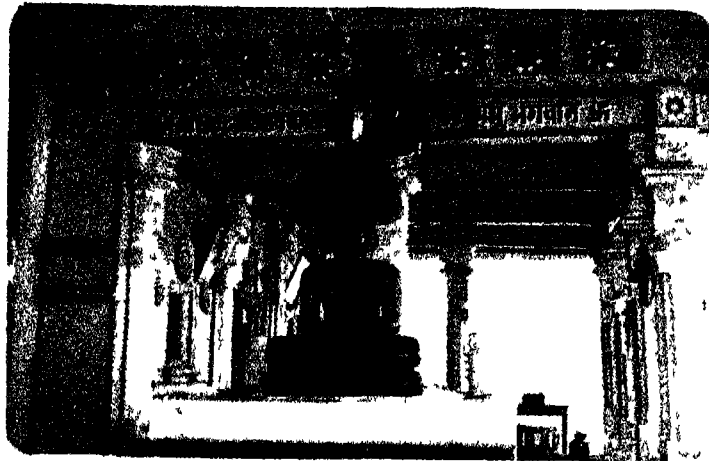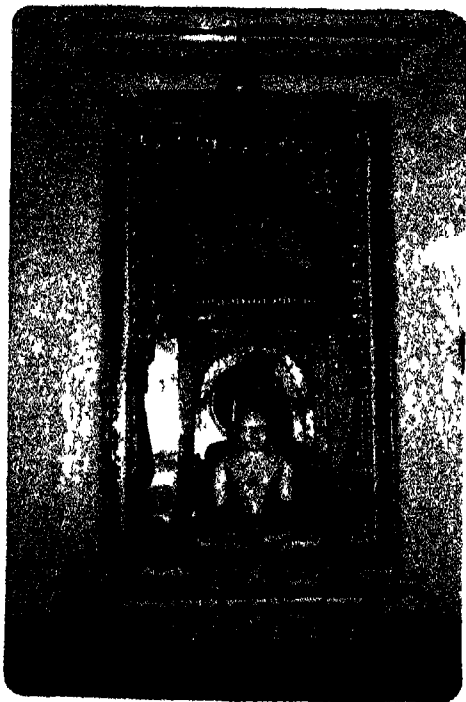
श्री दि जैन अजितनाथ जिनालय न 7 क्षेत्रपाल मदिर

श्री दि जैन पार्श्वनाथ जिनालय न 7

श्री दि. जैन अभिनदननाथ मदिर, क्षेत्रपाल ललितपुर की चित्रावली

भव्य शिखरे अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल ललितपुर
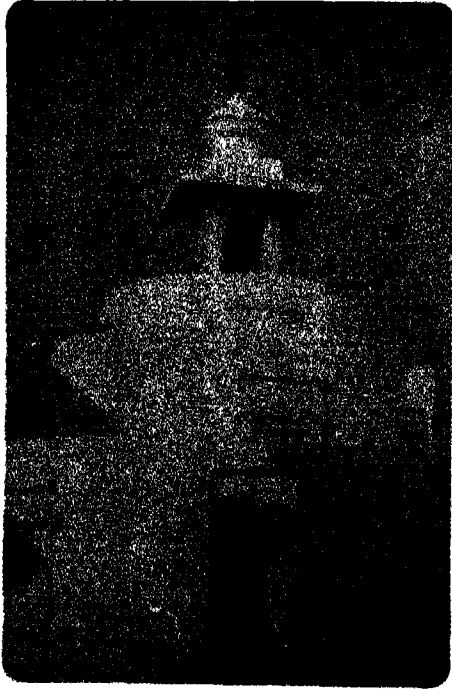
श्री दि जैन पार्श्वनाथ (मेरु) जिनालय न 10

मेरु मे श्री पार्श्वनाथ जी

श्री दि. जैन अभिनंदननाथ मंदिर, क्षेत्रपाल ललितपुर की चित्रावली

श्री दि जैन त्रिमूर्ति जिनालय पर अभिषेक
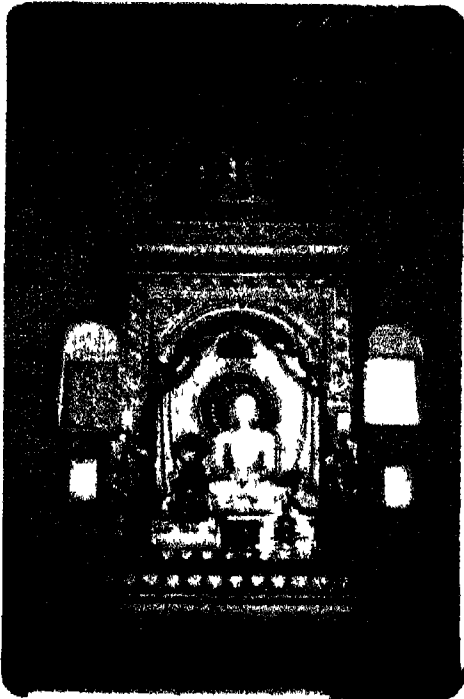
श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय न 11
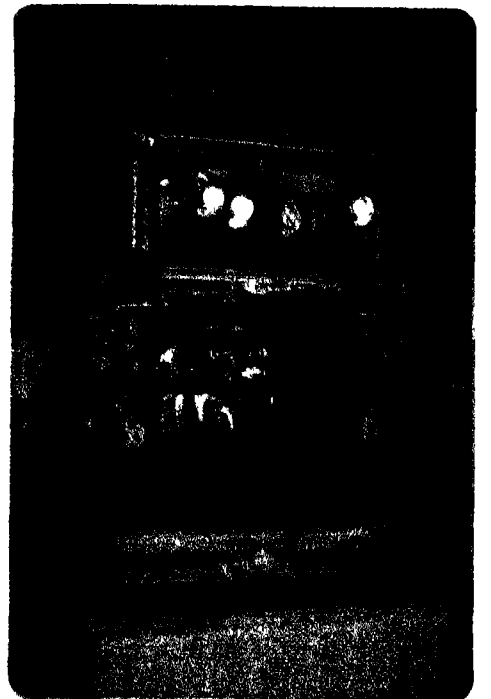
श्री दि जैन शान्तिनाथ जिनालय न 6

श्री दि. जैन अभिनन्दन नाथ मंदिर अतिशय क्षेत्र, क्षेत्रपाल ललितपुर की चित्रावलि

मानस्तम्भ के पंच वर्षीय महामस्तकाभिषेक के अवसर
पर प्रवचन देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी
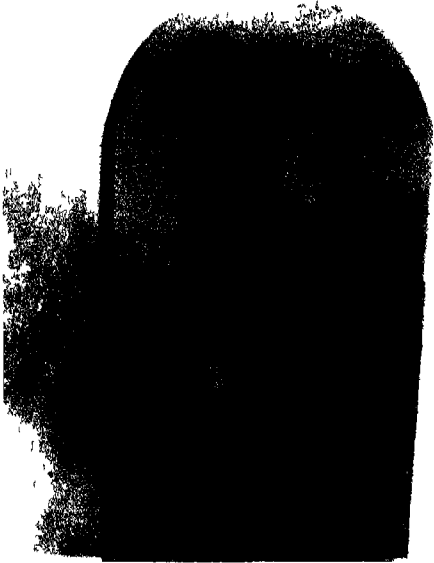
क्षेत्रपालजी का गुफा का दृश्य

मानस्तम्भ का अभिषेक

मुनि श्री सुधासागरजी के चार्तुमास के अवसर पर क्षेत्रपालजी ललितपुर मे ऐतिहासिक सस्कार शिविर के शिवरार्थी

श्रावक सस्कार शिविर 1993 का

श्री सुधासागरजी ग्रुप

श्रावक सस्कार शिविर 1993 का

श्री विद्यासागरजी ग्रुप

श्रावक सस्कार शिविर 1993 का

श्री ज्ञानसागर ग्रुप

क्षेत्रपालजी का विहंगम दृश्य

शिविरार्थीयों को प्रवचन देते हुए मुनि श्री सुधासागरजी
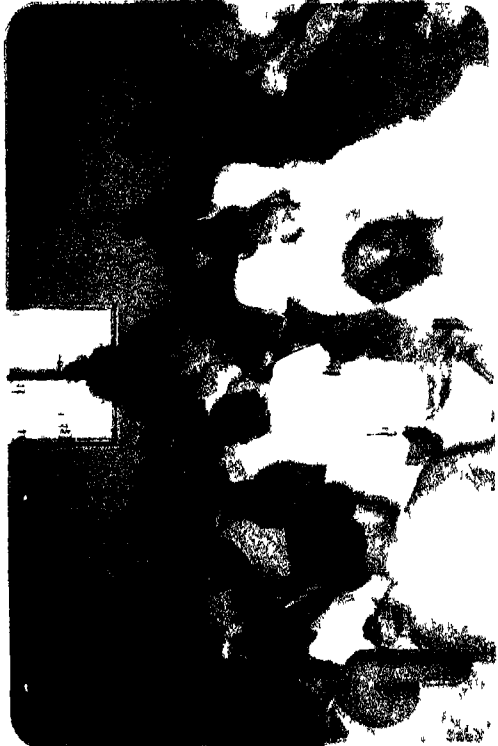
शिविर उपरान्त ब्र. अजित जी को आशीर्वाद देते हुए मुनि श्री

के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से ब्रह्मचारी सजय जी एवं ब्रह्मचारी अजित जी एवं दिगम्बर जैन धर्म अनुयायी श्रावकों के दान एवं सहयोग से पूज्य महाराज सुधासागर जी के अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी में हुए वर्षायोग 1993 में ही हुआ है इस जिनालय के सम्मुख 130३65 फिट की छत है जिस पर बैठकर हजारों श्रावक श्राविकाएं धर्म ध्यान व स्वाध्याय कर सकते हैं ।

क्षेत्रपालजी में यात्रियों एवं दर्शनार्थियों की भीड़ को देखते हुए प्रत्येक दिन उत्सव प्रतीत होता है । मुख्य वार्षिक उत्सव रथ यात्रा का है जब कार्तिक शुक्ल पूनम को ललितपुर शहर से वृषभ रथ विमान पालकी आदि विशाल जलूस के साथ नगर की गलियों में विहार करते हुए अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपालजी के प्रागंण में आते है और प्रांगण में बनी हुयी बेदी पर महाभिषेक होता है तथा रात्री मे आरती भजन आदि का विशाल आयोजन रहता है । मानस्तम्भ का महामस्तकाभिषेक भी आठ दस वर्षो के अन्तराल से उत्सव के साथ होता रहता है । संत शिरोमणि दिगम्बर आचार्य श्री 108 विद्यासागर जी महाराज जी के परम शिष्य आध्यात्म योगी देवगढ जीर्णोद्वारक दिगम्बर जैन मुनि श्री सुधासागर जी महाराज एव क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी महाराज एवं क्षुल्लक श्री धैर्यसागर जी महाराज के आशीर्वाद एवं प्रेरणा से दिगम्बर जैन समाज ललितपुर द्वारा इस मान स्तम्भ का प्रति 5 वर्ष में 30 दिसम्बर का महा मस्तकाभिषेक करने का संकल्प किया है अत प्रति पाच वर्ष में 30 दिसम्बर को महा मस्तकाभिषेक उत्सव होता रहेगा ।

अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल जी के पूर्व उत्तर पश्चिम में अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपालजी की काफी भूमि एवं भवन हैं । पूर्व की ओर बने भवनों एव प्रांगण में श्री वर्णी जैन इण्टर कालेज एव सेन्ट्रल बैक की शाखा है पश्चिम में क्षेत्रपाल की भूमि में खेती बगीचा तथा भवनों में महावीर नेत्र चिकित्सालय एवं कन्या विद्यालय है । तथा उत्तर की ओर बने हुए भवनों में दुकानें है । उत्तर में सड़क के उस पार भी क्षेत्र पाल जी का एक मैदान है जिस पर स्याद्वाद विद्यालय, स्याद्वाद शिक्षण परिषद द्वारा भवन बनाकर दिगम्बर जैन समाज के सहयोग से चल रहा है । यह विशाल प्राचीन धर्मशाला बगीचा विद्यालय एवं चिकित्सालय के निर्माण प्रबंध एवं सुरक्षा में श्री सेठ जिनेश्वर दास जी टडैंया, श्री हुकुम चन्द जी टडैया, श्री अभिनन्दन कुमार जी टडैया का विशेष सहयोग रहा है । इनकेपूर्व क्षेत्रपाल जी के कभी समय तक प्रबंधक भी रहे है अत हम टडैया परिवार के प्रति आभारी है । क्षेत्र पाल भूमि एवं भवनों में श्री वर्णी जैन इण्टर कालेज, स्याद्वाद विद्यालय एवं नेत्र चिकित्सालय स्थापित करने के लिए हम वर्णी कालेज समिति भगवान महावीर नेत्र चिकित्सालय समिति एव श्री अक्षय कुमार जी अलया के विशेष आभारी है जिन्होंने उपरोक्त कार्य कर श्री क्षेत्र पाल जी के आधुनिक विकास में सहयोग दिया है । ब्रह्मचारी संजय जी पनागर, ब्र अजित जी सोंरई चौधरी अशोक कुमार जी, सुमतचन्द्र जी इमलिया, प सुरेन्द्र कुमार जी, पं सुरेश चन्द्र जी तथा क्षेत्रपाल के मेनेजर,पुजारी एवं श्री दिगम्बर जैन पंचायत के पदाधिकारियों तथा सदस्यों के विशेष आभारी है जिन्होंने यह इतिहास एवं विवरण तैयार करने में हमें सहयोग किया है । एवं जिनके सहयोग से श्री अतिशय क्षेत्र क्षेत्रपाल की जी का विकास एवं निर्माण कार्य तेज गति से चल रहा है । पूज्य मुनि श्री 108 सुधासागर जी महाराज के चरणो में बार बार नमन जिन्होंने अपना वर्षा योग 1993 श्री क्षेत्रपाल जी में स्थापित किया और हमे आर्शीवाद एव निर्देश देकर श्री क्षेत्रपाल जी का विकास करने हेतु निर्देश एव प्रेरणा दी ।

भवदीय

[illegible]

[illegible]

तालबेहट वाले, ललितपुर

प्रबंधक-श्री 1008 दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र

क्षेत्रपाल जी ललितपुर

मोक्ष और मोक्ष मार्ग अनादि काल से इस संसारी प्राणी को अपरिचित ही रहा है, और जो अपिरिचित मार्ग होता है उस मार्ग के लिए प्रशस्त करने हेतु हमारे लिए सदैव कोई न कोई मार्ग दर्शक या निर्देशक की आवश्यकता रहता है,इसलिए अनादि काल से समय-समय पर महान दिव्य आत्मायें तीर्थंकर पद को प्राप्त कर हम संसारी प्राणियों के लिए पथ दृष्टा बनी है, लेकिन जिस नर्तमान पचमकाल मे हम जी रहे है, उसमे साक्षात तो तीर्थंकर का अभाव है। अत उन तीर्थंकरो की स्मृति स्वरुप उनके आदर्शों को प्रतिबिम्ब के रुप मे स्थापना निक्षेप के माध्यम से पाषाण आदि अन्य धातुओ में उनकी वीतराग आकृति को उत्कीर्ण कर और उन्ही पाषाण एव धातु प्रतिबिम्बों को साक्षात तीर्थंकरो का स्वरुप मानकर तथा उनका दर्शन पूजन कर हम सब अपने आत्म कल्याण का मार्ग प्रशस्त् करत है, और जो जिन बिम्ब प्रतिष्ठित एव स्थापित होते है, उनसे सम्यक् दर्शन की उपलब्धि कर उससे निधत्ति निकाचित कर्मो का क्षयकर मोक्ष मार्ग को प्राप्त करने मे सरलता व सुगमता हासिल करते है, बस इसी हत् और उपलक्ष को लेकर जहा भव्य जीव जैन श्रावक बन्धु जिस स्थानपर अपनी आजीविका एव परिवार के लिए भरण पोषण अनुकूल पड़ने वाले स्थान पर अपना निवास करने लग जाते हैं। उसी के आस पास अपने आराध्य देव अरहत भगवान का मदिर स्थापित कर लेते है, और सासारिक कार्यो की व्यस्तता के बीच भी अपने आपको उसमें केन्द्रित कर भावपूर्वक दर्शन, पूजन, पाठ, स्तुति, स्वाध्याय , चिन्तवन मनन आदि कर आत्म कल्याण करते है।

यह ललितपुर जैन समाज पहले एक सीमित स्थान पर ही निवास करती थी, वही भव्य प्राचीन दिगम्बर जैन बड़ा मदिर निर्मित है, और जैन समाज की जन सख्या मे अभिवृद्धि होने पर जिन मदिरो के निर्माण करने का तथा अतिशय पुण्य अर्जित करने का भाव समाज के दानी महानुभावों के हृदय मे उमड़ा जिसके परिणाम स्वरूप एक भव्य जिनालय श्री १००८ दिगम्बर जैन नया मदिर जी का निर्माण हुआ। तदुपरान्त् श्री १००८ पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अटा मदिर जी का निर्माण हुआ जो नगर के मध्य हृदय रुप स्थापित है।

नगर ललितपुर एव आस पास के अनेकानेक, गाव मे जैन धर्मावलम्बियों का बाहुल्य है और मुख्यत सन् १९७४ ई मे ललितपुर को जिला घोषित कर दिए जाने के बाद सैकड़ो की सख्या मे जैन परिवार ग्रामीण क्षेत्रो से पलायन कर विकासोन्मुख होकर नगर ललितपुर के श्री क्षेत्रपाल जी मदिर से रेल्वे स्टेशन के मध्यवर्ती भू-भाग में आकर बस गये और अपने नवीन निवास गृहो का निर्माण किया, साथ ही उनके पारिवारिक सदस्यों में भी अभिवृद्धि हुई, और उस क्षेत्र में निवास करने वाले जैन श्रावक एव गृहस्थों द्वारा जैन धर्मायतन जिन मदिर की प्रबल आवश्यकता महसूस की जाने लगी, जिससे सन् ७९-८० में दिगम्बर जैन समाज ने नई बस्ती गाधीनगर ललितपुर में जैन मंदिर निर्माण हेतु ११० फुट लम्बे ३३ फुट चौड़े भूखण्ड को क्रय किया, तथा भव्य जिन मदिर का निर्माण उस पर प्रारम्भ किया।

श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय (वेदीजी)
नई बस्ती, ललितपुर
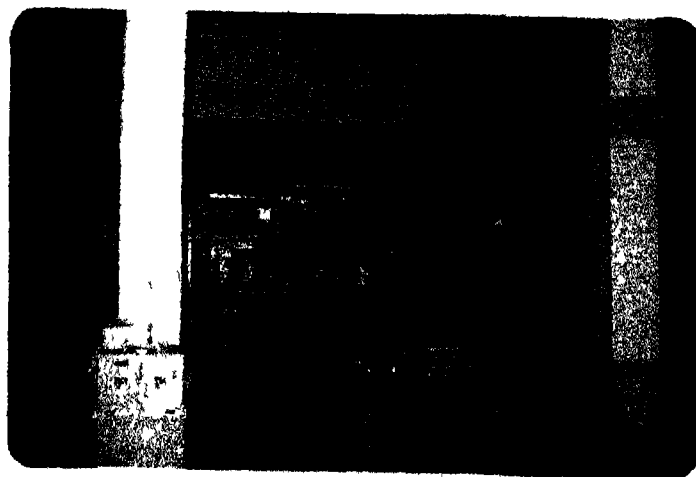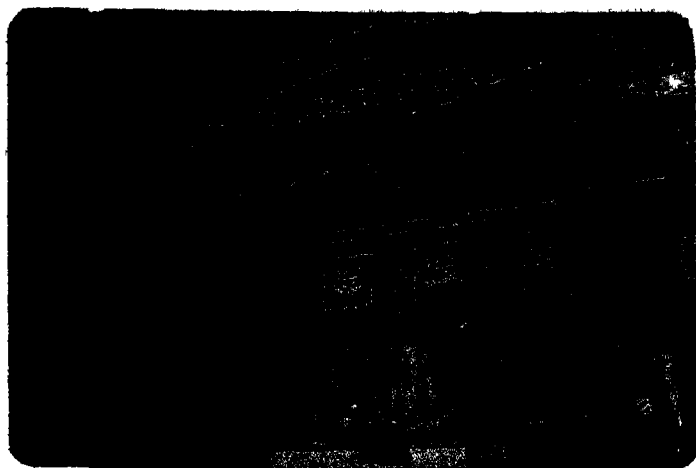
श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय
नई बस्ती, ललितपुर

श्री दि जैन आदिनाथ जिनालय का
मुख्य द्वार ललितपुर
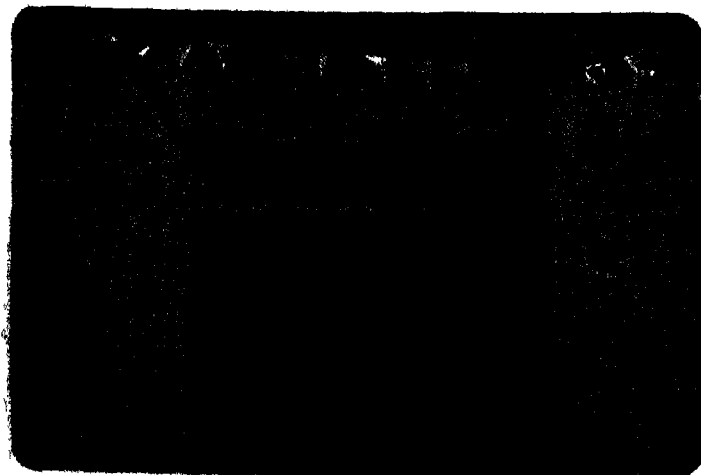
भगवान आदिनाथ के नाम से उद्घोषित इस जिन मंदिर में एक वेदी १० फुट लम्बे ७ फुट चौड़े ३ फुट ऊचे चबूतरे पर निर्मित की गयी, जो ७ फुट से अधिक ऊची है। मदिर जी का विशाल गर्भगृह १४ फुट ऊचाई का एक हाल के रुप मे है, और मदिर पूर्वाभिमुख है, पूर्व की ओर साढ़े सात फुट ऊचा तथा सात फुट चौडा भव्य प्रवेश द्वार है,और चौक में एक कुआ भी निर्मित किया गया है , मदिर जी में वेदी प्रतिष्ठा का कार्य क्रम फरवरी १९८२ ई० में मदिर जी के प्रबन्धक श्री बाबू लाल जी बरया एव श्री विमल कुमार जी नुना की लगन, निष्ठा और सहयोग से श्री दिगम्बर जैन पचायत, ललितपुर के तत्वाधान मे सम्पन्न हुआ, और मदिर जी मे ग्राम जरावली, ग्राम कैलबारा एव ग्राम सिवनी सेर बास के जिन मदिरो से लाये गये समोशरण को विराजमान किया गया। मदिर जी मे १५ मूर्तिया पाषाण की तथा २४ मूर्तिया धातु पीतल की तथा धातु के ४ मानस्तम्भ वेदी के चारो कोनो पर विराजमान है मूर्तियों में एक श्यामवर्ण सगमरमर की भगवान पार्श्वनाथ की ५ फड़ वाली बहुत छोटी मूर्ति एक अगूठी के आकार में है, जो मात्र सवा इच व्यास वाली गोलार्द्ध में है। विशेष रुप् से एक अन्य ३५० वर्ष प्राचीन भगवान पार्श्वनाथ की एक मूर्ति पीतल की ढाई इच ऊची, डेढ इच चौड़ी है। मदिर के रुप मे इस प्रकार कलाकार ने ढाली है, कि उसके मध्य भाग से ढाई इच ऊचाई पर शिखर में लगी कील को खोलने पर कपाट के रुप में दो भाग फैल जाते हैं। और मूर्ति के दर्शन होते है, तथा दोनो कपाटों को खड़ा करके बन्द कर देने से मूर्ति ढक जाती है। लोग इसे कमलाकार मदिर बोलते हैं । यह ४ इच ऊचा कमलाकार शिखर बन्द पीतल का मदिर है। जो बड़ा आश्चर्यकारी एव अतिशयकारी लोगो को प्रतीत होता है। इसमें ढाई इंच ऊंचे भगवान पार्श्वनाथ विराजमान हैं। मदिर जी में अन्य सभी प्रतिमाओ का विवरण आगे पृष्ठ पर है, मदिर जी के पश्चिम एव उत्तर में विशाल भव्य रमणी आधुनिक सुख, सुविधाओं से युक्त जैन धर्मशाला, निर्मित है, और उसकी दूसरी मंजिल का निर्माण कार्य चल रहा है। समाज के व्यक्ति मुक्त हस्त से दान मदिर जी में हो रहे विकास एव निर्माण कार्य मे देकर अपना जीवन धन्य मान रहे हैं।

ललितपुर के विकास की नई किरण

श्री दिगम्बर जैन सुधासागर कन्या इन्टरकॉलेज–ललितपुर

कुशलचंद जैन एडवोकेट, ललितपुर

शहजाद नदी का सुरम्य तट, जिसके निकट भगवान राम ने अपने वन-प्रवास मे माँ सीता के साथ समय बिताया । ऐसा धार्मिक स्थल सीता-पाठ, तथा उसी के समीप स्थित भू-भाग, जिसमे दिगम्बर जैन समाज ललितपुर के धर्मपरायण व्यक्ति श्री सेठ पचम लाल की धर्मपत्नी श्रीमती नौनी बहू एव दत्तक पुत्र श्री बच्चू लाल सराफ, बिहारी लाल, चुन्नी लाल, बच्चू लाल, तथा श्री खेत सिह, भुजवल, पन्नालाल, धन्नालाल, जी के दिनाक १७-१-१९२३ से दिनाक २२-१-१९२३ तक इन्द्रध्वज प्रतिष्ठापाठ तीन गजरथ महोत्सव एव पचकल्याणक प्रतिष्ठा विशाल कार्यक्रम के साथ सम्पन्न करायी, उक्त क्षेत्र डोडाघाट के नाम से प्रसिद्ध हुआ । सारा नगर ललितपुर धर्म-प्रभावना से प्रभावित हुआ तथा जनमानस ने भारी पुण्य अर्जन किया और अपने मानवजीवन को सार्थक किया ।

वार्षिक विमानोत्सव के विमान ले जाकर जैन समाज ने अपने उपर्युक्त धार्मिकस्थल पर धर्म-प्रभावना जारी रखी । जनपद ललितपुर बनने के पश्चात् यह स्थान डोड़ाघाट, , पूजनीय धार्मिकस्थल, अपने विकास के लिए किसी महान् सन्त की चरणरज की प्रतीक्षा मे था । अहिल्या के उद्धार के लिए भगवान राम को उस सिला पर जाना पड़ा था, तथा अहिल्या का उद्धार हुआ था । सन् १९९१ मे श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर ललितपुर मे आयोजित पचकल्याणक प्रतिष्ठा मे सन्त शिरोमणि आचार्य श्री १०८ विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज एव १०५ ऐलक श्री निशकसागर जी महाराज ललितपुर उधारे, जिनके आशीर्वाद एव सान्निध्य मे पचकल्याणक-प्रतिष्ठा महोत्सव का कार्यक्रम निर्विघ्न सानन्द सम्पन्न हुआ । इसी श्रृखला मे श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देवगढ जी मे ऐतिहासिक इन्द्रध्वज विधान सम्पन्न हुआ, जिसमे परम पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज के आशीर्वाद से ११७३ इन्द्र-इन्द्राणियो ने भाग लेकर विशाल पुण्य का अर्जुन किया । यही से बुन्देलखण्ड के प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्रो के धार्मिकस्थलो के विकास का भाग्योदय हुआ । परमपूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का वर्ष (१९९१) ई मे ऐलक श्री निशक सागर जी महाराज के साथ पावनवर्षायोग ललितपुर के श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अटा मन्दिर जी मे स्थापित हुआ ।

परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरण उपर्युक्त डोड़ाघाट धार्मिकस्थल पर पड़े, जहाँ गजरथ की वेदियो के अवशेष अपने धार्मिक स्थल की विशालता को बता रहे थे । परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के पारसपत्थररूपी चरणो का स्पर्श पाकर डोडाघाट धार्मिकस्थल सोने का रूप प्राप्त कर गया । जनपद ललितपुर की जैनधर्म परायण जनता ने अपने उपर्युक्त धार्मिकस्थल को विकसित करने का सकल्प लिया । उक्त धार्मिक-स्थल को तीन क्षेत्रो मे विकास करने की योजना बनायी गयी । जनपद ललितपुर मे पृथक-से कन्याओं की शिक्षा के लिए गिनी-चुनी सस्थाये है । ललितपुर नगर मे मात्र राजकीय बालिका इन्टर कालेज के अलावा अन्य कोई सस्था नही थी । हमारी समाज ने अपने सन्तो की वाणी को सिर्फ सुना ही नही है, उसके अनुसार कार्य भी किया है । परमपूज्य सन्त वर्णी जी के प्रवचनो को सुनकर जहाँ श्री वर्णी जैन इन्टर कालेज ललितपुर की स्थापना की है, वही चरित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री शान्तिसागर

[illegible]

जी को याद करते हुए शान्तिसागर कन्याजूनियर हाईस्कूल एव प्राइमरी पाठशाला की स्थापना भी की है । भगवान् महावीरस्वामी के २५००वे निर्वाण महोत्सव की स्मृति-स्वरूप महावीर बाल विद्या मन्दिर एव भगवान महावीर नेत्र चिकित्सालय की स्थापना की । परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज की अमृतमयी वाणी सुनकर सर्वप्रथम उक्त धार्मिक स्थल पर कन्याओं की उच्च शिक्षा के लिए श्री दिगम्बर जैन सुधासागर कन्या इन्टर कालेज ललितपुर खोलने का प्रस्ताव पारित किया गया, तथा उस क्षेत्र मे बढ़ रही आबादी को भगवान जिनेन्द्र देव के दर्शन के लिए चन्द्रा प्रभु चैत्यालय की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया गया । धर्म-प्रेमी बन्धुओं ने परमपूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज की अमृतमयी वाणी सुनकर अपने धन को पुण्य-कार्य मे लगाने की होड़ मचा दी। परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज एवं ऐलक श्री निशक सागर जी महाराज के सानिध्य मे चन्दाप्रभु चैत्यालय एव श्री सुधा सागर कन्या इन्टर कालेज, की नीव रखी गयी, तथा निर्माण-कार्य शुरू हो गया।

परम पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज एव क्षुल्लक १०५ श्री गम्भीर सागर जी महाराज तथा क्षुल्लक श्री १०५ धैर्य सागर जी महाराज का वर्ष १९९३ मे पावन वर्षा-योग का सौभाग्य ललितपुर जनपदवासियो को अपने पुण्योदय से प्राप्त हुआ । जो कार्य अधूरे पड़े हुए थे, पुन: परम पूज्यमुनि श्री की चरणरज पाकर विकसित होने लगे । श्री दिगम्बर जैन सुधासागर कन्या इन्टर कालेज ललितपुर का दिनाक ११-७-१९९३ ई को विधिवत् शुभारम्भ हुआ, तथा यह विद्यालय आज अपने भवन मे सुचारू रूप से बालिकाओं के लिए शिक्षा दे रहा है । भूमि-तल पर १२ कमरे लगभग तैयार है, तथा प्रथम तल पर १२ कमरो का निर्माण-कार्य चल रहा है । चन्दाप्रभु चैत्यालय भी दो मजिलाभवन के रूप मे बनकर तैयार हो रहा है, जहाँ पर शीघ्र ही भगवान् चन्दाप्रभु की मूर्ति विराजमान होगी, तथा धर्मशाला का निर्माण कार्य शीघ्र ही प्रारम्भ होने वाला है ।

सभी महानुभाव जिन्होंने प्रत्यक्ष मे या अप्रत्यक्ष मे अपने तन-मन-धन से सहयोग देकर उपर्युक्त महान् कार्य मे समाज को सहयोग दिया है, वह बधाई के पात्र है । आज इस विद्यालय की स्थापना ने बालिकाओं के लिए शिक्षा की कमी को पूरा किया है । कल यह विद्यालय प्रदेश मे ही नहीं देश मे अपना एक विशिष्ट स्थान बनाये, ऐसी मेरी मंगल-कामना है ।

पुन' आप सभी से विनम्र निवेदन है कि ऐसे माहन् कार्यों मे सहयोग करके पुण्य-लाभ प्राप्त करते रहे ।

परम पूज्य गुरुदेव मुनि सुधासागर जी महाराज के चरणो मे बारम्बार नमोस्तु, नमोस्तु, नमोस्तु ।

रोग का निदान न होने पर जीरा की जगह हीरा भी खिला दें तो भी उसका प्रयोजन सिद्ध नहीं होता । सर्वप्रथम जिधर हमें जाना है, अपनी दृष्टि उधर ही करनी पड़ेगी । आत्मा का स्वभाव है "चलना" अगर उसे मिथ्यात्व का रास्ता मिल गया तो उधर चलेगा और समीचीन रास्ता मिल गया तो यह आत्मा उधर चलने लगेगी ।

श्री दिगम्बर जैन पंचायत ललितपुर के तत्वाधान में संचालित श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जी

1 श्री दिगम्बर जैन पंचायत एक रजिस्टर्ड संस्था है इसका विधिवत चुनाव होता है ।

2 श्री दिगम्बर जैन बड़ा मन्दिर जी काफी प्राचीन है । इस मन्दिर जी की मूलनायक प्रतिमा श्री आदिनाथ भगवान की है । इस प्रतिमा को बजारे लोग बैलगाडी से अन्यत्र ले जा रहे थे । जो कि अचल हो गयी इसी कारण यहा पर यह मन्दिर बन गया । इस मन्दिर के अन्दर 22 बेदी विराजमान हैं ।

3 श्री दि जैन मन्दिर जी श्री क्षेत्रपाल काफी प्राचीन मन्दिर है । इस मन्दिर जी मे अभिनन्दन भगवान् की मूलनायक प्रतिमा महोवा के जगलो से प्राप्त हुई थी जो कि बहुत ही मनोज्ञ एव अतिशयकारी प्रतिमा है तथा इसी प्रतिमा के नीचे श्री क्षेत्रपाल जी महाराज अतिशय विराजमान है । इस मन्दिर जी मे 13 बैदी हैं ।

4 श्री दि जैन नया मन्दिर जी में 14 वेदियाँ विराजमान हैं । इसी मन्दिर जी में 7 कुन्तल बजन की पीतल की श्री भगवान् बाहुबलि की 6 फुट की खडगासन प्रतिमा विराजमान है । जो कि बहुत ही अतिशयकारी है ।

5 श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन अटा मन्दिर जी सावरकर चौक में स्थित है । इसमें 31 वेदिया विराजमान है । इसी क्रम में विशाल चौबीसी पद्मासन रूप में विराजमान है । वर्ष दिसम्बर 1993 में चौबीसी की प्राण प्रतिष्ठा की गयी मूल नायक श्री पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिमा अतिशय चमत्कारी है । जिसकी छवि देखते ही बनती है। यहा पर ताम्र पत्र पर लिखित शास्त्र विराजमान हैं ।

6 श्री चन्द्रप्रभु दि जैन चैत्यालय जो कि तालाबपुरा मे डोढावाट पर स्थित है । जिसे मुनि श्री सुधासागर जी की प्रेरणा से बनवाया गया है ।

7 श्री आदिनाथ दि जेन मन्दिर नई बस्ती यहाँ पर वर्तमान मे एक बेदी है आगामी योजना में 2 वेदी और बन रही हैं ।

व्यक्तिगत रूप से सचालित जैन मन्दिर जी

1 श्री पार्श्वनाथ चैत्यालय जो कि नई बस्ती में स्थित है। इसमें एक बेदी विराजमान है । तथा श्री समवशरण रचना निर्माणाधीन है ।

2 श्री आदिनाथ चैत्यालय जो कि 8 सिविल लाइन स्टेशन रोड पर स्थित है । भवन की 2 मंजिल पर एक वेदी विराजमान है ।

3 श्री सीमान्धर जिनालय मेन रोड पर घंटाघर के पास स्थित है । भवन की दूसरी मंजिल पर एक बेदी विराजमान है ।

4 श्री तारण तरण दि जैन चैत्यालय कटरा बाजार में स्थित है । यहां पर एक बेदी है । जिस पर श्री जिनवाणी माता विराजमान है ।

संग्रहकर्ता ब्र.सि. शीतलचन्द्र जैन

ललितपु

श्री दिगम्बर जैन पंचायत ललितपुर द्वारा संचालित संस्थायें

1. **श्री शान्ति सागर कन्या पाठशाला** – परम पूज्य आचार्य श्री 108 शान्ति सागर जी महाराज के सन् 1927 में वर्षायोग के पावन अवसर पर प्रारम्भ की गयी थी जो कि वर्तमान में जूनियर हाई स्कूल के नाम से जाना जाता है। इससे धार्मिक शिक्षण एवं लौकिक शिक्षण की उत्तम व्यवस्था है। इसमें 300 छात्र/छात्रायें वर्तमान में अध्ययनरत हैं। श्री दि. जैन बड़ा मन्दिर की धर्मशाला में स्कूल है।

2. **श्री वर्णी जैन इण्टर कालेज** – श्री 105 क्षुल्लक श्री गणेश प्रसाद वर्णी जी के प्रेरणा उपदेश से सन् 1952 में खोला गया था। वर्तमान में इस कालेज में 2000 छात्र अध्ययनरत हैं। धार्मिक एवं लौकिक शिक्षण की सुन्दर व्यवस्था है तथा यह श्री क्षेत्रपाल जी की बिल्डिंग में स्थापित है।

3 **श्री महावीर बाल विद्यामंदिर** – भगवान् महावीर स्वामी के 2500 वां निर्माण महोत्सव के उपलक्ष्य में सन् 1974 में खोला गया था। जिसमें वर्तमान में 320 छात्र/छात्रायें अध्ययनरत हैं। धार्मिक एव लौकिक शिक्षण की व्यवस्था है तथा यह श्री नया मन्दिर जी की धर्मशाला में स्थित है।

4 **श्री महावीर जलगृह** – शाही रोड पर तांगा स्टेण्ड पर सन् 1975 में बनवाई गयी थी इसमें हजारों व्यक्ति प्रतिदिन पानी पीते हैं। भगवान महावीर स्वामी के 2500 वां निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य मे बनवायी गयी थी।

5 **श्री महावीर नेत्र चिकित्सालय** – भगवान महावीर स्वामी के 2500 वां निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य मे सन 1974 मे खोला गया था। जिसमें अभी तक लाखों आंख से सम्बन्धित रोगियो का उपचार किया जा चुका है। जो श्री क्षेत्रपाल जी की बिल्डिग मे स्थापित है।

6 **श्री महावीर दन्त चिकित्सालय** – वर्ष 1991 में शुरु किया गया था जो कि काफी प्रगति पर है तथा यह क्षेत्रपाल जी की बिल्डिग में स्थापित है।

7 **श्री स्याद्वाद संस्कृत महाविद्यालय** – 4 जून, 1984 को क्षुल्लक 105 श्री सन्मति सागर जी की प्रेरणा से खोला गया था। जिसमें वर्तमान में 30 छात्र-छात्रायें अध्ययनरत है। जिससे निकलकर अनेक विद्यार्थी आज विद्वत रूप में सारे देश में धर्म प्रभावना कर रहे हैं तथा यह अटामन्दिर जी की बिल्डिंग में स्थापित है।

8 **श्री स्याद्वाद बाल संस्कार केन्द्र** – परम पूज्य 105 क्षुल्लक श्री सन्मति सागर जी महाराज की प्रेरणा से सन् 1987 में स्थापित किया गया था। जिसमें वर्तमान में 560 छात्र-छात्रायें जूनियर हाई स्कूल तक अध्ययनरत हैं। लौकिक एवं धार्मिक शिक्षण की व्यवस्था है। स्वयं की बिल्डिंग में स्थापित है।

9. **श्री सुधासागर कन्या इन्टर कालेज** – श्री 108 मुनि श्रीसुधासागर वर्षायोग में प्रवचन से प्रेरणा लेकर वर्ष 1993 में खोला गया था। जिसमें वर्तमान में 80 छात्रायें अध्ययनरत हैं जो कि स्वयं की बिल्डिंग में स्थापित है।

10 सभी जैन मन्दिरों में रात्रि में पाठशालायें चलती हैं।

11. **श्री स्याद्वाद बाहुबलि ग्रन्थालय** भी श्री अटामन्दिर जी

12 **श्री वर्णी कान्वेंट स्कूल**, स्टेशन रोड (श्री क्षेत्रपाल जी के सामने) ललितपुर। इसमें कक्षा 5 तक छात्र अध्ययनरत हैं। तथा प्रशिक्षित प्रधानाचार्य एवं अध्यापिकाओं द्वारा अच्छी शिक्षा व्यवस्था प्रबन्ध समिति की देख रेख में चलाई जाती है। यह सन् 1984 में स्थापित किया गया था। छात्र संख्या 550 है।

ललितपुर नगर की समाज सेवी संस्थायें

1 **श्री वीर सेवा संघ** – यह सन् 1947 में स्थापित है। यही सभी धार्मिक कार्यों में विशेष सहयोग करते हैं। साथ में ध्वनि प्रसारण बाधिक यन्त्र भी है। इसमें लगभग 40 सदस्य हैं। ध्वनि प्रचारक वादक यत्र भी है।

2 **श्री वीर व्यायामशाला** – यह काफी पुरानी संस्था है। यह धार्मिक कार्यों में विशेष सहयोग करती है। (उसके पास बैण्ड एव अधिक बाधिक यन्त्र भी है।) उसमें 80 सदस्य हैं। ध्वनि प्रारक वादिक यन्त्र भी है।

3 **श्री जैन युवा जागृति** – यह सेवा संघ सन् 1978 में स्थापित है। यह विशेष प्रकार की संजीव झाकियों का प्रदर्शन करती है। इसमें 22 सदस्य हैं।

4 **श्री स्याद्वाद शिक्षण परिषद** – यह संस्था सन् 1981 में स्थापित की गयी थी। यह पूज्य क्षु. 105 सन्मति सागर महाराज के आर्शीवाद से खोली गयी थी। इसमें 40 सदस्य हैं। धार्मिक कार्यों व साधु सन्तों की वैयावृत्ति में तन मन से सहयोग करते हैं।

5 **विद्यासागर परिषद** – यह सन् 1991 में स्थापित की गयी है। धार्मिक कार्यों व साधु सन्तों की वैयावृत्ति में सहयोग करते हैं। शाकाहार का प्रचार करते हैं। इसमें 40 सदस्य हैं।

6. **श्री महावीर सेवा संघ** – सन् 1991 में स्थापना की गयी है। यह सभी धार्मिक कार्यों में अपना पूरा सहयोग करते हैं इसमें सदस्यों की संख्या 32 है।

7 **श्री जैन युवा अहिंसा मंच** – यह धार्मिक कार्यों में अपना पूरा-पूरा सहयोग देते हैं। इसमें 35 सदस्यहैं।

8. **युवा क्लब** – यह सभी धार्मिक कार्यों में रुचि पूर्वक कार्य करते हैं।

9 **श्री वीर क्लब** – यह क्लब सभी धार्मिक कार्यों में हमेशा आगे रहती है। यह क्लब सजीव झाँकी का प्रर्दशन करती है। इसकी स्थापना सन् 1990 में हुई।

10 **स्याद्वाद वर्धमान सेवा संघ** – यह सभी प्रकार के धार्मिक कार्यों में सहयोग देता हैं यह भजन संध्या (संगीत/आर्किस्टा) में प्रसिद्ध है।

11. **श्री पार्श्वनाथ कला मण्डल स्टेशन रोड** – यह सभी प्रकार के धार्मिक कार्यों में अपना पूरा सहयोग प्रदान करता है। यह धार्मिक संगीत, व भजन नाटक आदि का मनोरंजन कार्यक्रम प्रस्तुत करता है।

12. **सन्मति क्लब** – यह सभी धार्मिक कार्यों में अपना पूरा पूरा सहयोग प्रदान करता है।

संग्रहकर्ता – स.सि.शीलचन्द्र अभिषेक कुमार जैन
अनौरा वाले, ललितपुर

卐 ललितपुर नगर के रत्न 卐

1 परम पूज्य 108 मुनि श्री चन्द्रसागर जी
2 परम पूज्य 108 मुनि श्री केशव नन्दी जी महाराज
3 परम पूज्य 108 मुनि श्री सम्मेदसागर जी महाराज
4 पूज्य श्री 105 आर्यिका कुल भूषण मती जी माताजी
5 पूज्य श्री 105 आर्यिका कीर्तिमती माताजी
6 पूज्य श्री 105 आर्यिका मुक्ति भूषण मती माताजी
7 पूज्य श्री 105 आर्यिका सरस्वतीभूषणमती माताजी
8 पूज्य श्री 105 आर्यिका विनम्र मती माताजी
9 पूज्य श्री 105 आर्यिका अतुलमती माताजी
10 पूज्य श्री 105 आर्यिका नम्रमती माताजी
11 पूज्य श्री 105 आर्यिका लक्ष्मीभूषणमती माताजी
12 पूज्य श्री 105 आर्यिका समाधी मती माताजी
13 पूज्य श्री 105 क्षुल्लक ऋषवसागर जी महाराज
14 पूज्य श्री 105 ऐलक श्री रयणसागर जी महाराज

卐 ललितपुर नगर के विद्वान 卐

1 स्व प श्री राजधरलाल जी शास्त्री
2 स्व प श्री परमेष्ठी दास न्यायतीर्थ
3 स्व प श्री श्यामलाल जी न्यायतीर्थ
4 स्व प श्री नन्हेलालजी शास्त्री धर्म अलकार
5 स्व प श्री मोतीलाल जी शास्त्री
6 स्व पं श्री लक्ष्मीचद जी जैन
7 स्व प श्री सिद्धसागर जी
8 स्व प श्री बाबूलाल जी जमादार
9 स्व प. श्री रामलाल जी पचरत्न
10 पं श्री मुन्नालालशास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
11 पं श्री स्वरूपचन्द्रजी न्यायतीर्थ
12 प श्री उत्तमचन्द जीराकेश शास्त्री साहित्याचार्य
13 पं श्री दरवारीलाल जी शास्त्री साहित्याचार्य
14 प श्री लक्ष्मणप्रसादजी शास्त्री
15 प श्री सुरेशचन्द्र जी (एम एस सी)
16 प श्री लालचन्द्र जी (हिन्दी प्रवक्ता)
17 प श्री गुलाबचन्द्र जी शास्त्री
18 प श्री हुकुमचन्द्र जी शास्त्री
19 प श्री पवन दीवान, प्रतिष्ठाचार्य जैन दर्शनाचार्य (एम ए)
20 प श्री सतीशचन्द्र जी शास्त्री (एम ए)
21 प श्री प्रकाशचन्द्र जी शास्त्री (एम ए)
22 प श्री शीलचन्द्र जी शास्त्री
23 प श्री खेमचन्द जी शास्त्री
24 प श्री सन्तोषकुमार जी शास्त्री

प्रस्तुति
श्री शीलचन्द्र वीरेन्द्र कुमार जैन अनौरा वाले
ललितपुर

ललितपुर की अन्य जैन संस्थाएं
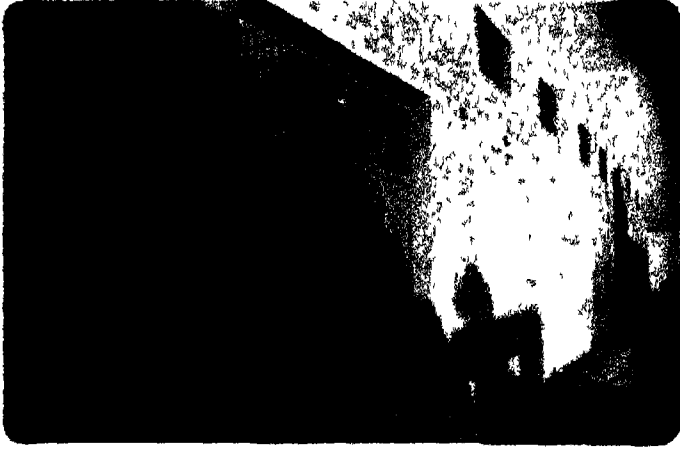
श्री सुधासागरजी कन्या इन्टरकॉलेज का मेन गेट

श्री सुधासागर कन्या इन्टरकॉलेज
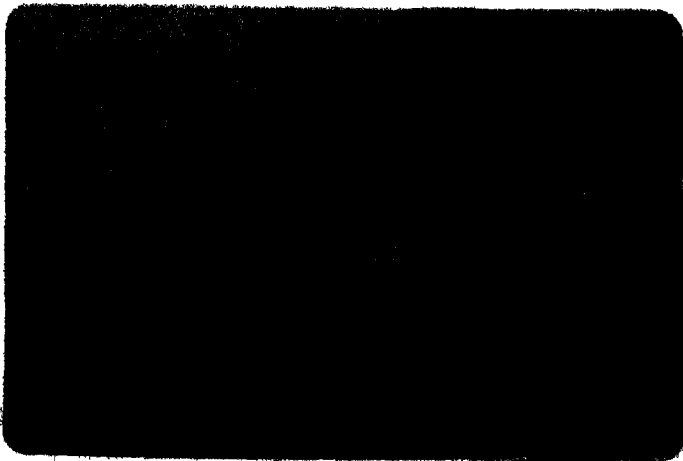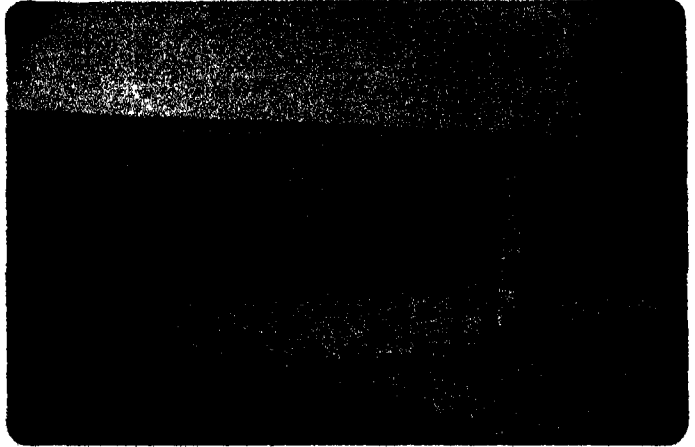
आचार्य विद्यासागर बाल सस्कार केन्द्र

महावीर चिकित्सालय

महावीर चिकित्सालय

स्याद्वाद बाल संस्कार केन्द्र

श्री वर्णी जैन इन्टरकालेज

श्री वर्णी जैन इन्टरकालेज
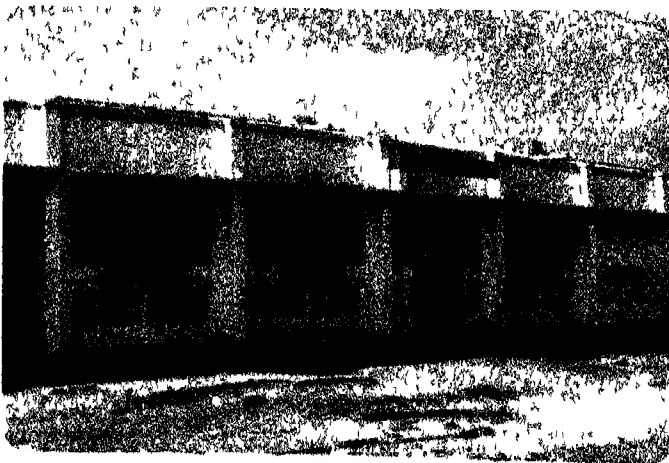
श्री वर्णी जैन कानवेन्ट स्कूल

अष्ठम खण्ड

पंचगजरथ महोत्सव : देवगढ़

एवं सप्त गजरथ महोत्सव : अशोकनगर

अनुक्रमणिका

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, देवगढ़

देवगढ़ मानस्तम्भ

साहू जैन, 7 बहादुरशाह जफर मार्ग, नई दिल्ली 110002 फोन. 3317617, 3312277

दिसम्बर 10, 1991

परमपूज्य मुनिवर
के चरणो में सादर नमोस्तु,

श्रमण-संस्कृति के धर्म और कलातीर्थ देवगढ के पुनरुद्वार के लिए पुण्य मुनिश्री की मैं वदना करता हू । जैन-इतिहास का यह निस्सदेह गौरवशाली स्वर्णिक काल है जब एक साथ तीनमो जिन बिम्बो को जीर्णोद्धार के पश्चात पच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा पूजनीय बनाया जा रहा है । पूज्य तपोनिधि आचार्य विद्यासागरजी महाराज की प्रेरणा ओर मुनि श्री की साधना का ही यह प्रतिफल है कि देवगढ का रूप आज फिर निखर आया है ।

मेरे लिए तो यह समस्त कार्य और भी अधिक हर्ष एव उल्लास का कारण है क्योंकि हमारा परिवार तो पिछले 50 वर्षो से देवगढ तथा बुन्देलखण्ड के अन्य तीर्थों के सरक्षण एवं संवर्द्धन में लगा रहा है ।पूज्य बाबूजी के बाद जब यह भार मेरे कन्धो पर आया तो धर्म के प्रति समर्पित भावना स्वय मन में जागृत हो आई और पूज्य आचार्य विद्यासागरजी के दर्शनो ने उसे त्वरित गति प्रदान कर दी । समय-समय पर रमेशजी के साथ शिल्पकारों का व पुरातत्व विभाग के शीर्ष अधिकारियों का जाना एवं प्रशासन का सहयोग आदि सबी कार्य इसी क्रम में होते चले गये । इसके बाद मुनिश्री के कुशल एव कल्पनाशील निर्देशन ने देवगढ की सम्पूर्ण कला को सवार दिया । प्रत्येक जैन के लिए यह हर्ष और गौरव की बात है ।

अब पचकल्यामक प्रतिष्ठा महोत्सव का शुभ अवसर है । मेरी उतकृट अभिलाषा थी कि इस पुण्य कार्य मे सम्मिलित होकर धर्म लाभ के साथ मुनिश्री के दर्शनो का भी पुण्य अर्जित करता । यात्रा की समस्त तैयारी थी लेकिन अचानक ही कुछ अस्वस्थता के कारण दर्शनों से वंचित होना । ''ड़ रहा है, इसका मुझे खेद है । देवगढ़ के सरक्षण-सवर्द्धन के लिए जो भी सहयोग अपेक्षितहो मुनि श्री का निर्देश शिरोधार्य होगा । साहू रमेशजी आ रहे हैं, वे आपसे चर्चा करेंगे । मेरी हार्दिक इच्छा है कि शीघ्र ही निकट भविष्य मे आपके दर्शन कर तीर्थों के सरक्षण के सम्बन्ध में विशद चर्चा करु ।

वर्तमान में देवगढ़ में आयोजित समस्त कार्य आपके आशीर्वाद से निर्विघ्न-सम्पन्न होंगे इसमें किंचित भी सन्देह नहीं ।

पुन: वन्दना के साथ,

विनयावनत

(अशोक कुमार जैन)

पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज,
देवगढ़ ।

सकल दिगम्बर जैन समाज बृहचर ग्वालियर

परम पूज्य १०८ मुनि प्रवर श्री सुधासागर जी महाराज श्री १०५ निशंक सागर श्री महाराज के चरणो में सादर शत-२ नमन । आपने जैन सस्कृति का जीर्णोद्धार, पुन निर्माण एव प्रभावना का जो कार्यक्रम समाज को दिया है तथा विश्व कल्याण की भावना सहित मोक्ष मार्ग को प्रशस्त कर महान कार्य किया है । इम हेतु समस्त जेन धर्म के अनुयायी आपके प्रति हमेशा स्तुति करते रहेंगे । आपके द्वारा नगर-2 मे धर्म प्रभावना तथा जो धर्म सज्ञा के विकास हेतु कार्य हुए हैं । इस कार्य क्षमता से सभी आश्चर्य चकित हैं । आप गोपाचल पर्वत गवालियर स्थित विशाल जैन मस्कृति तथा विशाल मूर्तियो गुफाओ के उद्धार हेतु ग्वालियर पधार कर इस महान कार्य को प्रतिप्रदान विदित करे । आपकी आनुकम्पा से तथा आचार्य श्री के आशीर्वाद से महान कार्य सम्पन्न हो सकेगा । आप इस महोत्सव के पश्चात प्रस्थान ग्वालियर करे ।

सकल दिगम्बर जैन समाज बृहचर

ग्वालियर

डॉ अभयप्रकाश जैन

एन/14 चेकपरी
ग्वालियर 474009
फोन 324292

दि 3 7 94

प्रात स्मरणीय परम श्रद्धेय मुनि श्री

सुधासागर जी महाराज को मेरा विनम्र नमोस्तु,

विद्वत सगोष्टी में आपके दर्शन, उद्‌बोधनों का लाभ मिला और जाना कि आपकी दिव्य चेतना से शब्द अनायास फूटते है और जन मानस पर अमृत की वर्षा करतेहुऐ हृदय में मिसरी सी घोलते जाते हैं। आपके सुप्रमाण से ही देवगढ़ का उद्धार हुआ है आपने अपने उद्‌बोधन मे कहा था कि विद्वान पहले देवगढ जाकर देखे तब टिप्पणी करे मैं अभी देवगढ़ से ही लौटा हूँ मेरी भी धारणा थी कि कहीं कुछ कमी रही होगी जिसे हमारे जैन पत्रकार तूल रहे हैं लेकिन मेरी शंका भी निराधार सिद्ध हुई मैं पुरातत्व का पोषक हूँ विगत पर मुझे गर्व है। इस काम को देखकर मेरा मस्तक आपके कदमों में झुक जाता है यह काम निश्चित ही भूरी-भूरी प्रशंसा योग्य है शास्त्रोक्त है पुरातत्वीय संरक्षण की दृष्टि से भी उचित है मेरे साथ डॉ पाण्डे, डाइरेक्टर केन्द्रीय संग्रहालय गूजरी महल ग्वालियर और उनकी टीम भी थी।

डॉ अभयप्रकाश जैन

श्री विद्यासागराय नमः श्री शांतिनाथाय नम श्री सुधासागराय नम.

1008 श्री शान्तिनाथ प्रतिष्ठा एवं विश्व में प्रथमवार पंच गजरथ महोत्सव

अतिशय क्षेत्र श्री देवगढ (ललितपुर) उ प्र

अस्थायी कार्यालय-श्री दिगम्बर जैन अटा मन्दिर जी, सावरकर चौक, ललितपुर

परम पूज्य १०८ मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरणो मे बारम्बार नमोस्तु-

महाराज श्री ललितपुर जनपद का प्रवास इस जनपद के लिये परम सौभाग्यशाली रहा है देवगढ क्षेत्र का जो जीर्णोद्धार एव विकास हुआ है । वह देवताओं की परिकल्पना से भी बाहर है । यह सब आपके तेज एव आचार्य श्री के आर्शीवाद से सम्भव हुआ है ।

देवगढ क्षेत्र पर हुए जीर्णोद्धार के सम्बन्ध मे जो आसामजिक तत्वो निजी मान प्रतिष्ठा के स्वार्थो के कारण कषाय के वशीभूत होकर पत्राचार आदि के माध्यम मे जो विकल्पात्मक स्थिति बनाने का प्रयास कर रहे है । सो इनका यह प्रयास व्यर्थ है इन सभी पत्रो मे जो कुछ भी लिखा गया है वह सभी पूर्ण रूप मग्लन एव निराधार है। उपरोक्त विकल्पो का निराकरण करने के लिये सभी प्रश्नो का पूण निराकरण हम सभी कमेटी वालो ने आचार्य श्री के पास भेज दिया है ।

आपके मार्ग दर्शन से देवगढ जो क्षेत्र पर जो जीर्णोद्धार कार्य हुआ है उसमें इतिहास को तथा पुगतत्व को किसी भी प्रकार मे हानि नहीं पहुँचाई गयी है । जीर्णोद्धार के समय किसी भी मूर्ति पर कोई प्रशस्थि नहीं लिखी गयी है और न ही उन पर काई नया चिन्ह या स्वास्तिक आदि बनाया गया है ।

श्री देवगढ जी क्षेत्र पर जा जीर्णोद्धार कार्य हुआ है उन सब कार्यो को सभी कमेटी वालो ने पुरातत्व विभाग के जिम्मेवार अधिकारियो ने अखिल भारत वर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के देवगढ क्षेत्र पर होने वाले अधिवेशन में श्री रमेशचन्द्र साहू श्री अक्षय कुमार जैन आदि 400 मे अधिक श्रीमानो ने देखकर जीर्णोद्धार के कार्य की भूरि भूरि प्रशसा करके सराहना की है तथा यह विचार व्यक्त किया है कि देवगढ क्षेत्र जैसे ही अन्य क्षेत्रों का भी इसी प्रकार का जीर्णोद्धार कार्य कराया जावे ।

आपके आर्शीवाद एवं सानिध्य से देवगढ जी क्षेत्र का जो जीर्णोद्धार कार्य सम्पन्न हुआ है उसके लिये हम सभी कमेटी वाले आपके प्रति श्रृद्धा व्यक्त करते हुए बारम्बार नतमस्तक है तथा आपके श्री चरणो में नतमस्तक होकर यह संकल्प लेते हैं कि आपके आर्शीवाद एव निर्देश से अभी तक देवगढ क्षेत्र पर जीर्णोद्धार का कार्य करते रहे हैं तथा भविष्य मे भी आपके आर्शीवाद एव निर्देशन से कार्य करते रहेंगे ।

आप निर्विकल्प होकर हम सब का समय समय पर इसी प्रकार आर्शीवाद एवं मार्ग निर्देशन देते रहेंगे ऐसा हम सभी को पूर्ण विश्वास है । जिससे कि समाज को मिली दिशा में कोई बाधा न आये ।

देवगढ़ जीर्णोद्धार एक महान कार्य

डॉ. रमेशचन्द जैन
जैन मन्दिर के पास
बिजनौर,उ प्र

बुन्देलखण्ड में ललितपुर जिले के अन्तर्गत सुप्रसिद्ध जैन अतिशय क्षेत्र-देवगढ़ जैनधर्म, कला और सस्कृति का जीवन्त प्रतीक है । यहाँ के अगणित जिनबिम्ब और पौराणिक कलाकृतियाँ सहत्रो वर्षो से जैन सस्कृति और पुरातत्त्व की गौरव गाथा कह रहे हैं । कुछ वर्ष पूर्व यह तीर्थक्षेत्र नितान्त उपेक्षित अवस्था में था । सुन्दर सुन्दर खण्डित और अखण्डित अनेक जिनबिम्ब इधर उधर से समेटकर परकोटे की दीवालों मे जड दिए गए थे, धूप, हवा, पानी आदि के निरन्तर प्रहारों से प्रतिमायें धीरे-धीरे क्षत विक्षत हो रही थी । आततायी यहाँ की सैकडो प्रतिमाओ के अङ्ग भङ्ग कर चुके थे । तम्कर यहाँ की सुन्दर सुन्दर मूर्तियो की चोरी करने की तलाश मे रहते थे । भक्त गण यहाँ आते थे और चावल का अर्घ्य चढाकर यहाँ अपनी श्रद्धा की इति श्री कर वापिस लौट जाया करते थे । ऐसी दुरवस्था की स्थिति में एक बार पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज का देवगढ पदार्पण हुआ । उन्होंने उन सुन्दर मनोज्ञ प्रतिमाो के जीर्णोद्धार की प्रेरणा दी, जिनके अङ्ग बहुत कम भङ्ग हो गए थे तथा थोडे से तक्षण कार्य से जिन्हें पुन सुन्दर रूप दिया जा सकता था । आचार्य श्री के प्रेरणा के फलस्वरूप समाज मे किञ्चित चेतना आयी । आचार्य श्री के सुयोग्य शिष्य पूज्य १०८ श्री सुधासागर जी महाराज ने जीर्णोद्धार कराने के इस महान कार्य को सम्पन्न कराने का बीणा उठाया। वे देवगढ़ जाकर महिनों रहे । वहाँ की एक एक प्रतिमा और कलाकृति को उन्होंने देखा, परखा और उससे प्रगाढ परिचय स्थापित किया । वे मूक कला कृतियाँ मानों अपने उद्धार के लिए महाराज को पुकार रही थी । महाराज श्री ने उनकी आवाज सुनी । महाराज श्री के तत्वावधान में उनका जीर्णोद्धार हुआ । वे मूर्तियाँ पुन जीवन्त हो गयी। क्षेत्र की काया पलट हो गयी । वहाँ भव्य पंच कल्याणक एवं गजरथ महोत्सव हुआ । जिन नर-नारियों और बालक-बालिकाओं ने क्षेत्र के दर्शन किए वे उसके किञ्चित सुधरे हुए रूप को देखकर प्रसन्न हो उठे । पूज्य आचार्य महाराज विद्यासागर जी पूज्य सुधा सागर जी एवं समस्त मुनि संघ के जय जयकारों से क्षेत्र का नभोमण्डल गूँज उठा ।

दिनाङ्क १० दिसम्बर १९९१ के पत्र में साहू अशोक कुमार जी ने लिखा था- श्रमण संस्कृति के धर्म और कलातीर्थ देवगढ के पुनरुद्धार के लिए मैं पूज्य मुनि श्री की वन्दना करता हूँ । जैन इतिहास का यह निस्सन्देह गौरवशाली स्वर्णिम काल है, जब एक साथ 400-500 जिनबिम्बों के जीर्णोद्धार के पश्चात पंच कल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव द्वारा पूजनीय बनाया जा रहा है । पूज्य तपोनिधि आचार्य विद्यासागर जी महाराज के प्रेरणा और मुनि श्री की साधना का ही यह प्रतिफल है कि देवगढ़ का रूप आज फिर निखर आया है । मेरे लिए तो यह समस्तकार्य और भी अधिक हर्ष एव उल्लास का कारण है, क्योंकि हमारा परिवार तो पिछले ५० वर्षो से देवगढ़ तथा बुन्देलखण्ड के अन्य तीर्थों के सरक्षण एवं सवर्द्धन में लगा रहा है । पूज्य बाबू जी के बाद यह भार मेरे कन्धो पर आया तो धर्म के प्रति समर्पित भावना स्वंय मन में जागृत हो आयी और पूज्य आचार्य विद्यासागर जी के दर्शनों ने उसे त्वरित गति प्रदान की । समय समय पर रमेश जी के साथ शिल्पकारो का व पुरातत्व विभाग के शीर्ष अधिकारियो का जाना एवं प्रशासन का सहयोग आदि सभी कार्य इसी क्रम में होते चले गए । इसके बाद मुनि श्री के कुशल एवं कल्पनाशील निर्देशन ने देवगढ़ की सम्पूर्ण कला को सँवार दिया । प्रत्येक जैन के लिए यह हर्ष और गौरव की बात है ।

सकल दिगम्बर जैन समाज बृहर ग्वालियर की ओर से लिखा गया-

"पूज्य मुनिप्रवर ने जैन संस्कृति का जीर्णोद्धार पुनर्निर्माण एवं प्रभावना का जो कार्यक्रम समाज को दिया है तथा विश्व कल्याण की भावना सहित मोक्षमार्ग को प्रशस्त कर महान कार्य किया है । इस हेतु समस्त जैन धर्म के अनुयायी आपके प्रति हमेशा स्तुति करते रहेंगे । आपके द्वारा नगर

नगर में धर्म प्रभावना तथा धर्म सस्कार के विकास हेतु कार्य हुए हैं । आपकी कार्यक्षमता से सभी आश्चर्यन्वित हैं । आप गोपाचल पर्वत ग्वालियर स्थित विशाल जैन संस्कृति तथा विशाल मूर्तियो, गुफाओं के उद्धार हेतु ग्वालियर पधार कर इस महान कार्य को गति प्रदान करें । आपकी अनुकम्पा से तथा आचार्य श्री के आशीर्वाद से गोपाचल का महान कार्य हो सकेगा ।''

दिगम्बर जैन परिषद के देवगढ अधिवेशन के अवसर पर स्वागत मन्त्री एव जीर्णोद्धार कार्य हेतु समीर्पित कर्मठ सभा जनसेवी डॉ बाहुबली कुमार ने कहा-

''जीर्णोद्धार कार्य के माध्यम से हमे श्रमण सम्कृति के पुरावैभव की रक्षा करने का पुण्य अवसर प्राप्त हुआ है । आचार्य विद्यासागरजी महाराज की प्रेरणा एव मुनि सुधासागर जी व ऐलक निशक सागर जी के निर्देशन मे तथा साहू अशोक कुमार जैन व साहू रमेशचन्द्र जैन एव पुरातत्व विभाग के महानिदेशक डॉ मुनीशचन्द्र जोशी सहित समाज के सहयोग से मूर्तियों की भव्यता निखर आयी।''

इस अवसर पर साहू रमेशचन्द्र जी ने कहा-

''परम पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज एवं उनके परम तपस्वी शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी के चरणों की वन्दना करता हूँ, जिनकी सद प्रेरणा से देवगढ जी क्षेत्र पर सक्रियता जीर्णोद्धार सम्भव हुआ । ३१ जिनालयों में से ३० का जीर्णोद्धार किया गया तथा लगभग ५०० मूर्तियाँ भी ठीक की गई । करीब ३०० दर्शनीय मूर्तियों को जिनालयो में उच्चासन पर स्थापित किया गया । दिसम्बर में आयोजित पचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव में यह दर्शनीय मूर्तिया पूजनीय हो जावेगी । इस प्रकार अन्त में मैं देवगढ़ के जीर्णोद्धार एव जीर्णोद्धारक के प्रति कोटि कोटि नमोस्तु करता हूँ ।

देवगढ़ पंचगजरथ महोत्सव - एक सिंहावलोकन

परमपावन श्री देवगढ़ क्षेत्र के जीर्णोद्धार [illegible]

ससार के इस अशान्त वातावरण में कही न कही किसी न किसी रूप मे, किसी न किसी साधन से शान्ति का बीजारोपण करना नितान्त आवश्यक है। अनेक प्रकार की खोज करने के बाद शान्ति पाने का सोपान मात्र प्रभु- आराधना ही दृष्टिगोचर होती है। इसी भावना को लेकर हमारे भारतवर्ष मे साक्षात भगवन्तों का अभाव होते हुये भी उनकी प्रतिच्छाया के रूप मे जिनबिम्बो की स्थापना होती चली आयी है। इसका एक ज्वलन्त उदाहरण अतिशय क्षेत्र देवगढ़ है, जहा पर अनगिनत देवो की प्रतिच्छाया को पाषाण मे प्रतिबिम्बित किया गया। लेकिन जब ससार मे कोई अच्छे कार्य किये जाते हैं, तो उनको विनाश करने वाले भी दुनिया मे पीछे से पैदा हो जाते है। देवगढ़ में भी यही हुआ कि किन्ही भक्तो ने देवगढ़ को गढ़ा तथा किन्ही आतताईयो ने इस गढ़े हुये देवगढ़ को खण्ड- खण्ड कर धरा पर बिखेर दिया। परिणामस्वरुप यह खडित और खण्डहर देवगढ़ सैकड़ो वर्षो से एक अपाहिज की तरह जमीन पर पड़ा- पड़ा कराहता रहा।

पाप के बाद पुण्य तथा पुण्य के बाद पाप की पद्धति चलती रहती है और इसी प्रकार देवगढ़ का भी फिर से पुण्य का समय बीसवी सदी के सन् १९९१ में आया। इन कराहते हुये देवों को अपनी गोदी में उठाकर सिहासन पर बैठाने वाले, देवपत, खेवपत जैसे रूप में अवतरित होकर परम दिगम्बर मुद्रा को धारण कर जिन धर्म की ध्वजा एवं सस्कृति की रक्षा करने का बीड़ा जिन्होंने उठा लिया है, ऐसे मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का नाम सभी लोग जानते हैं। जब परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने देवगढ़ की यह दयनीय दशा देखी, तो आपका करुण हृदय कराह उठा तथा आखे बरस पड़ी। ऐसी ही वेदना से व्यथित होकर जब मुनि श्री ने अपनी ओजस्वी वाणी से जनसमुदाय को सम्बोधित किया, तब सारी दिगम्बर जैन समाज इतनी प्रभावित हुई कि अपने जीवन का ग्यारहवा तथा बारहवा प्राण समझा जाने वाला, प्राणो से भी प्यारा धन, देवगढ़ की प्रतिमाओं एव मदिरों के जीर्णोद्धार के लिये अच्छे- अच्छे कजूसों ने भी दिया। किसी व्यक्ति ने एक मदिर का, किसी ने चार मदिरों का तथा किसी ने एक प्रतिमा का, किसी ने दस प्रतिमाओ का जीर्णोद्धार कराने का सकल्प किया। इस प्रकार से कुछ ही दिनो मे लगभग ५०० प्रतिमाओ का एव ४१ मदिरो का जीर्णोद्धार करने के लिये करोड़ों रुपये की राशि दान के रूप में एकत्रित हो गयी।

ललितपुर जैन समाज के अबाल वृद्धों को सोते- जागते, उठते- बैठते, खाते- पीते देवगढ़ की दयनीय दशा की कराह सुनायी पड़ने लगी, अर्थात २४ घटे देवगढ़ के जीर्णोद्धार की बात सोचने लगे।

सैकड़ों वर्षो से पड़े हुये इन जिन मदिरों को तथा जिन- प्रतिमाओं को उठाने के लिये ताकत भी तो चाहिये थी। लेकिन वह ताकत कैसे आये और कहा से आये ? इस प्रकार की चिन्ता से व्यथित जैन समाज मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरणों मे पहुची। क्योंकि ससार में जब कोई शरण नही होता कोई उपाय नही सूझता तो अत में साधु ही एकमात्र आशा की किरण होते है। ललितपुर दिगम्बर जैन

समाज ने मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के चरणो में निवेदन किया कि इस जीर्णोद्धार के कार्यक्रम को किस मागलिक कार्यक्रम से शुरू किया जाये ? विद्वानो ने, समाज ने तथा मुनि श्री ने मिलकर निर्णय लिया कि एक ऐसा अलौकिक और अनोखा इन्द्रजध्वज महामडल विधान किया जाये, जिसमे लगभग १००८ इन्द्र- इन्द्राणिया बनाये जाये, तब कही इस देवगढ़ जैसे महान कार्य का भार अपने कधो पर सहन हो सकता है। क्योंकि इन्द्रजध्वज विधान की ध्वजा जब अपन सम्हालेगे, तो देवराज इन्द्र जैसी ताकत भी अपने अन्दर आयेगी। जैसे इन्द्र अपनी ताकत से जम्बू दीप को पलट सकता है वैसे ही अपन देवगढ़ की कायाकल्प कर सकते है।

बस! इसी भावना के साथ गुरु महाराज से आशीर्वाद लेकर सारी समाज द्वारा जय- जयकार बोल कर ललितपुर एव निकटवर्ती गावो मे सूचना दे दी गयी और यह सूचना मिलते ही सारी समाज मे देवगढ़ के प्रति ऐसी भक्ति जागी कि १००८ तो ठीक बल्कि ११७३ इन्द्र- इन्द्राणियो की लिस्ट उपस्थित हो गयी। इस गणना को देखकर व्यवस्थापक लोग थोड़ा भयभीत हुये कि जगल मे इतने लोगों की व्यवस्था कैसे कर पायेगे। लेकिन गुरु का आशीर्वाद होने के कारण सभी लोग बड़ी लगन और उत्साह के साथ व्यवस्था मे जुट गये और बड़ी सरलता एव सुगमता से सम्पूर्ण व्यवस्थाए पूर्ण कर दी गयी।

इस इन्द्रजध्वज कार्यक्रम का ध्वजारोहण प. मोतीलाल जी मार्तण्ड (केसरिया राजस्थान) के द्वारा गुरुवर सुधासागर जी महाराज एव ऐलकनिशक सागर जी के सान्निध्य मे किया गया और इन्द्रध्वज महामण्डल विधान हजारों इन्द्र- इन्द्राणियों की नृत्य क्रियाओ द्वारा आनन्द मगल से प्रारम्भ हो गया एव प्रतिदिन मुनि महाराज के देवगढ़ की महानता, गहनता, अतिशयता एव दिगम्बर धर्म की सस्कृति की सुरक्षा एव दिगम्बर धर्म के ऊपर अतीत मे आये हुये अत्याचारो पर मर्मभेदी प्रवचन होने लगे। ऐसा उल्लेख एव इतिहास कही नही मिलता कि भारत मे हजारों सालो में इतना बड़ा इन्द्रध्वज विधान कही किया गया हो। अत इन हजारो इन्द्र- इन्द्राणियो की भीड़ एव गुरुदेव के प्रवचन को सुनने के लिये लाखो की जनता देवगढ़ मे उमड़ने लगी। जिस क्षेत्र पर इक्का- दुक्का व्यक्ति मात्र पर्यटन की दृष्टि से आते थे, वहा पर हजारो- लाखो लोग विधान के भक्ति गान मे इतने तल्लीन हो गये कि समय का भान ही नही हुआ कि इतने दिन कैसे व्यतीत हो गये।

यह विधान कैसे क्या हुआ ? इतना बड़ा महान विधान घनघोर जगल मे कैसे तथा किस प्रकार हुआ यह बात जनमानस में आज भी आश्चर्य का विषय बनी हुई है। लेकिन मुनि श्री की वाणी के अनुसार यह सब देवगढ़ की उन अनगिनत प्रतिमाओ का अतिशय ही मानना चाहिये।

प्रभात काल के ५ बजे से लेकर शाम के ५ बजे तक निरन्तर इन्द्रजध्वज विधान की पूजाए चलती थी, समस्त इन्द्र- इन्द्राणियो एव आगन्तुक जनता के लिये दिगम्बर जैन समाज ललितपुर के सहयोग से एव श्री रामप्रसाद सर्राफ तथा श्री हीरालाल सर्राफ द्वारा पगते (प्रीतिभोज) दी गयी। एक- एक पगत में एक- एक लाख व्यक्तियों ने भोजन किया, तो भी भण्डार समाप्त नही हुआ।

इसी विधान के मध्य अखिल भारतवर्षीय

पुरातत्व विभाग के महानिर्देशक टंडन जी पधारे और वह इस विधान के दृश्य को देखकर इतने हर्ष-विभोर हो गये कि अपना वक्तव्य देते- देते उनका गला भर आया एव हर्ष के आंसुओं से आखे बरस पड़ी। उन्होंने कहा कि इस क्षेत्र में इस विधान का भक्ति भाव देखकर मुझे ऐसा लगता है कि जिस समय इस क्षेत्र की रचना की गयी होगी, तब इसी प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान किये गये होंगे।

इस विधान के उद्यापन मे पहाड़ी की तलहटी से अर्थात नीचे मदिर से एक गजरथ जिसमे ३५ इन्द्र-इन्द्राणी सवार थे, हाथियो के द्वारा नीचे से ऊपर ३ किमी की घाटी ऐसे चढ़ गया जैसे कि उन हाथियो के ऊपर कोई वजन ही न हो, कोई चढ़ाव ही न हो। जब रथ घाटी पर चढ़ रहा था और पीछे से लाखो जनता घाटी पर चढ़ रही थी उस समय का दृश्य अलौकिक और अनुपम था। इस इन्द्रजध्वज विधान के लिये जब वेदी बनाई जा रही थी उस समय नीव खोदने पर नेमिनाथ भगवान की ५ फुट पद्मासन अष्ट प्रातिहार्य सहित अखण्ड प्रतिमा प्राप्त हुई जिस प्रतिमा को चौबीसी में २२वे नम्बर पर विराजमान किया गया है।

इस प्रकार से ११७३ इन्द्र- इन्द्राणियों के द्वारा यह अनोखा प्रभावनापूर्ण इन्द्रजध्वज मण्डल विधान देवगढ़ क्षेत्र के जीर्णोद्धार को प्रारम्भ करने के लिये मगलाचरण के रूप में किया गया था। इसके बाद अबाध गति से मदिर की प्रतिमाओं एव मंदिर का जीर्णोद्धार किया गया। यत्र- तत्र बिखरी, जमीन में गड़ी प्रतिमाए निकाली गयी और इन सब प्रतिमाओं को उच्चासन देकर विराजमान किया गया। जो जीर्णोद्धार सैकड़ों वर्षों मे नही हो पाया, वह एक वर्ष में ही मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के आशीर्वाद से सम्पन्न हो गया। सम्पूर्ण जीर्णोद्धार के समय मुनि श्री की सान्निध्यता देवगढ़ मे रही। परम पूज्य गुरुवर सुधासागर जी महाराज के विराजमान रहने से ही समाज में हर्ष उल्लास व साहस बना रहा। इस समय मुनि श्री की साधना, तपस्या, एव धर्म तथा सस्कृति की रक्षा करने की लगन देखते ही बनती थी। ज्येष्ठ मास की दुपहरी में मुनि श्री आहार करने के लिये नीचे आते तथा आहार करके तुरन्त ही पहाड़ी पर चढ़ जाया करते थे। ऐसी गर्मी कि व्यक्ति जब एक कदम भी धूप मे नही रख सकता तब मुनि श्री आहार कर नगे पैर ३ किमी की पहाड़ी पर जाकर समस्त प्रतिमाओ का निरीक्षण अपनी आखों से करते थे तथा यह सावधानी भी रखते थे कि प्रतिमाओ के जीर्णोद्धार में कोई कमी न रह जाये।

इस प्रकार समस्त जीर्णोद्धार पूर्ण होने पर इन प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा तथा पूज्यता लाने के लिये ललितपुर जैन समाज ने मुनि श्री के चरणो मे पुन निवेदन किया और प मोतीलाल मार्तण्ड जी को बुलाकर जीर्णोद्धार पचकल्याणक की तारीख निश्चित की गयी, जो ५-१२-९१ से ११-१२-९१ तक तय की गयी तथा साथ मे पचकल्याणक के समापन पर पचगजरथ महोत्सव का आयोजन किया गया। इस कार्यक्रम का प्रचार- प्रसार ऐसा हुआ कि इन्द्रों की बोलिया लाखों रुपये में गयी। सारे भारत की जनता इस कार्यक्रम को देखने के लिये उमड़ पड़ी। भारत का ऐसा कोई भी प्रान्त नहीं बचा था, जहा से श्रद्धालुजन न आयें हों। इस कार्यक्रम के प्रारम्भ में १००८ कलशों द्वारा घट यात्रा ललितपुर में नगर भ्रमण करती हुई वाहनो द्वारा देवगढ़ पहुची

तथा नीचे से १००८ कलशो का जुलूस घाटी पर चढ़ा और वहा पर घटयात्रा के कार्यक्रम का ध्वजारोहण किया गया ।

यह पचकल्याणक १००८ शान्तिनाथ भगवान का किया गया था (प्राय सभी जगह आदिनाथ भगवान का किया जाता है)। दो दिन तक गर्भ कल्याणक का कार्यक्रम चला तथा तीसरे दिन जन्म कल्णायक का जलूस निकला जो अवणर्नीय था। जिस जलूस के आगे ऐरावत हाथी भगवान शान्ति कुमार को लेकर चल रहा था उसके पीछे- पीछे २४ हाथी समस्त इन्द्र परिवार को लेकर चल रहे थे। यह २४-२५ हथियों का जलूस ऐसे शोभायमान हो रहा था जैसे स्वय सौधर्मेन्द्र श्री जी को पाण्डुक शिला पर ले जा रहे हो ।

इस जलूस के आगे कम से कम २५ प्रकार के सेवादल अलग- अलग बैण्ड बाजे लेकर नृत्यगान करते हुये चल रहे थे। लगभग ४ किमी के इस जलूस का मार्ग बड़ा ही शोभनीय लग रहा था, क्योकि पाण्डुक शिला मूल पाण्डाल से ४ किमी की दूरी पर थी। दीक्षा कल्याणक का भी आलोकिक कार्यक्रम होते हुये केवलज्ञान कल्याणक के दिन आलौकिक एव अद्‌भुत समवशरण की रचना एक युवा सुनील इमलिया द्वारा बड़े ही सुन्दर ढग से की गयी थी। केवलज्ञान कल्याणक के दिन के लिये समवशरण की रचना की सजावट के लिये लगभग ५० हजार रुपया खर्च किया गया था। फिर मोक्ष कल्याणक मनाया गया तथा इसी दिन उत्तर प्रदेश के मुख्यमत्री कल्याण सिंह देवगढ़ जी मे पधारे ।

राजा और महाराजा का मिलन एक स्टेज पर देखकर जनता भाव- विभोर हो गयी। श्री कल्याण सिह का वक्तव्य और मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का प्रवचन सारी जनता के लिए अनुकरणीय तथा देश के उद्धार के लिये उपयोगी था। उसी समय श्री कल्याण सिंह द्वारा इस क्षेत्र की रक्षा के लिये १८ लाख रुपये की घोषणा की गयी। इसके बाद पचगजरथ महोत्सव का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। इस महोत्सव के लिये एक और अनोखी बात यह देखी गयी कि गजरथ परिक्रमा का मार्ग पक्का डम्मर का सरकार द्वारा बनाया गया था। अन्य सभी जगहो पर जहा गजरथ चले वहा केवल पाण्डाल की ही परिक्रमा दी जाती थी। लेकिन इस क्षेत्र पर पाण्डाल के साथ- साथ क्षेत्र के सभी ४१ मदिरो की भी पचगजरथ के द्वारा परिक्रमा लगायी गयी। इस पचगजरथ की परिक्रमा का दृश्य बड़ा अद्‌भुत था। विश्व के इतिहास मे यह कार्यक्रम प्रथम बार सम्पन्न किया गया था। जनता का लगभग ८-१० लाख का अपार समूह सारे भारतवर्ष से उमड़ पड़ा। क्षेत्र छोटा सा था, पहाड़ी इलाका था और जनता का अपार समूह। यह सब देखकर प्रशासक वर्ग घबरा उठा।, कलेक्टर तथा एसपी महाराज के पास पहुचे और कहा कि मुनिवर इतनी अपार जनता को कैसे सम्हाला जाये ? क्या होगा ? तब मुनि श्री ने कहा कि आप लोग चिन्ता न करे, अभी पचमकाल का अन्त नही आया है, अभी हमारे मदिरो मे, क्षेत्रों मे, मुनियो में तथा मुनियों की साधना मे इतना अतिशय विद्यमान है कि यदि आपके प्रधानमत्री भी सारे देश की ८० करोड़ जनता को लेकर यहां देवगढ़ में आ जाये, तब भी यह छोटा सा देवगढ़ का क्षेत्र कम पड़ने वाला नही। जाओ। आप लोग चिन्ता मत करो।

मुनि श्री सुधासागर जी महाराजने आगे कहा

कि आप सभी प्रशासक वर्ग के लोग आचार, विचार तथा शुद्धि का ध्यान रखना कि कोई भी जनता का व्यक्ति एव कोई भी पुलिस वाला परिक्रमा के अन्दर जूते- चप्पल पहनकर नही आ पाये । यदि आप लोगो ने इतना भी नियम पाल लिया तो कार्यक्रम में किसी भी प्रकार की परेशानी आने वाली नही है ।

इस गजरथ महोत्सव मे एसपी श्री सुखदेव सिंह सिद्धू का समर्पण सारी जनता मे एक चर्चा का विषय बना रहा । गजरथ फेरी के दिन एसपी होकर के भी आप नगे पैर घूमते रहे। आपने सरदार (सिक्ख) होकर के भी मुनि श्री के चरणो मे मास तथा शराब का त्याग पूरे जीवन भर के लिये कर दिया। श्री सिद्धू साहब की अनुशासनप्रियता के कारण ही कोई अप्रिय घटना नही घटी ।

गजरथ फेरी का कार्यक्रम सानद सम्पन्न हुआ । चारो ओर श्रद्धालु जनता हर्ष- विभोर होकर नाच उठी । कार्यक्रम समाप्त होने के ४ दिन बाद तक यह अपार जनसमूह देवगढ़ से जा पाया । इस लेख मे हम यह बात भी दर्शाना चाहेगे कि इस कार्यक्रम मे किस- किस प्रकार की कैसी- कैसी व्यवस्था थी ।

पाण्डाल मे एक लाख व्यक्तियो के बैठने की व्यवस्था बनायी गयी थी। स्टेज १२५ x ९० की बनायी गयी थी। फिर स्टेज एव पाण्डाल का डेकोरेशन एक आकर्षण का केन्द्र था। सारे देवगढ़ को उदयपुर (राजस्थान) से आये हुये इलेक्ट्रिक कर्मचारियों ने दुल्हन की तरह सजा दिया था । ऊपर पहाड़ी से लेकर नीचे तलहटी के मंदिर तक लगभग ३ किमी तक पन्नी (चमकने वाले कागज) से सजाया गया था । रास्ते मे लगभग ५० गेट बनाये गये थे, जिन पर महावीर भगवान के सदेशो एव शाकाहार के सुन्दर कुटेशन (मुक्तक, छन्द, पद्य) आदि लिखे हुए थे ।

आवास व्यवस्था हेतु लगभग ५००० से अधिक टेंट लगाये गये थे। जल एव विद्युत की व्यवस्था सरकार की ओर से की गयी थी जिसके ऊपर लगभग २५ लाख रुपया व्यय किया गया था ।

पहाड़ी पर होने वाले समस्त कार्यक्रम को TV सर्किट द्वारा प्रसारित किया गया था । इस कार्यक्रम की सुरक्षा व्यवस्था हेतु लगभग १००० पुलिस सुरक्षाकर्मी थे तथा १५०० के लगभग स्वय सेवक वर्ग था । स्वास्थ्य व्यवस्था हेतु सरकार के द्वारा १० लाख रुपया एव समस्त ललितपुर के जैन डाक्टरो के द्वारा ५ दिन का फ्री शिविर लगाया गया था ।

अस्थायी वायरलैस सेटों की व्यवस्था मेले में सरकार की ओर से कई स्थानों पर की गयी थी तथा सरकार के द्वारा गुप्तचर विभाग भी स्थापित किया गया था ।

देवगढ़ के पास बेतवा नदी ने बहुत विस्तृत रूप धारण कर लिया है, इसलिये सुरक्षा हेतु पहाड़ी के पास नदी के किनारे गोताखोर PA C. तैनात की गयी थी ताकि नदी मे होने वाली किसी अप्रिय घटना को टाला जा सके, क्योकि उस समय नदी में दर्शकों को घुमाने के लिये नावें चल रही थी तथा आतकवाद का भी खतरा था। इसके अतिरिक्त लगभग २००-३०० महिला पुलिस भी थी ।

इस कार्यक्रम में भारत सरकार के केन्द्रीय मत्रिमण्डल में से तथा राज्य सरकार के कोई न कोई मत्री अवश्य आये । एक दिन वित्त मत्री, वाणिज्य मंत्री एवं मुख्यमत्री पधारे थे । इन समस्त मत्रियों को बुलाने का श्रेय झांसी- ललितपुर क्षेत्र के सासद श्री

राजेन्द्र अग्निहोत्री को मुख्यता से जाता है एव आपके ही सतत् प्रयासो से सरकार के द्वारा दिये गये ३५-४० लाख रुपयो का इस गजरथ महोत्सव कार्यक्रम में सदुपयोग किया गया था।

ऊपर पहाड़ी से कार्यक्रम को प्रसारित करने के लिये ३ किमी की पूरी घाटी पर एव पहाडी की तलहटी मे माइक सेट लगाये गये थे जिससे पहाड़ पर होनेवाले कार्यक्रम नीचे सुनायी देते थे। इस प्रकार यह मेला लगभग २०-२५ एकड़ की जमीन मे फैला हुआ था।

इस प्रकार से इस महोत्सव में अनेक उपलब्धिया ऐतिहासिक रूप से अनुकरणीय रही। इतने बड़े महोत्सव मे इतनी अधिक जनता की भीड होने के बाद भी किसी प्रकार की दुर्घटना नही हुई। पहाड़ी का घाटी से उतार इतना तेज होते हुये भी किसी भी प्रकार की दुर्घटना नही हुई। भारी वाहना को मेलाप्रागण से ४ किमी दूर ही रोक दिया गया था। इसलिये कोई दुर्घटना होने की आशका भी नही रही।

व्यक्ति, महिलायें अपने सोने- चादी के आभूषण पहने रहे लेकिन किसी की एक अगूठी की भी चोरी नही हुई। यह इस मेले का सबसे बड़ा अतिशय है।

इस प्रकार सन् १९९१ देवगढ़ के लिये एक ऐतिहासिक वर्ष रहा, जिसमे देवगढ़ का कायाकल्प हुआ। इस महत्वपूर्ण तथा प्रभावना पूर्ण कार्यक्रम से देवगढ़ जन- जन के हृदय मे बस गया। सारे भारतवर्ष से करोड़ों रुपया दान के रूप मे जीर्णोद्धार के रूप में प्राप्त हुआ। देवगढ़ का जीर्णोद्धार सारे भारतवर्ष के खण्डहर मदिरो के लिये अनुकरणीय है। देवगढ़ जैसा जीर्णोद्धार सारे भारत के खण्डहर पड़े मदिरो का होना चाहिये जिससे जीर्णोद्धार स्थायित्व धारण कर सके। देवगढ़ के जीर्णोद्धार को देखकर सभी लोग आज भी प्रशसा किये बिना नही रहते है कि पुरातत्व की सुरक्षा करते हुये जिनालय एव जिनबिम्बो को बड़े ही व्यवस्थित ढग से जीर्णोद्धारित किया गया। इसके पूर्व जिन अन्य क्षेत्रो के जीर्णोद्धार किये गये, उनमे पुरातत्व एव सस्कृति नष्ट हुई लेकिन देवगढ़ क्षेत्र में किसी भी प्रकार के पुरातत्व को नष्ट नही किया गया।

इस जीर्णोद्धार के समय ऐसे- ऐसे इतिहास सामने आये है जोकि पूर्व शोधकारो ने लिपिबद्ध नही किये। इन पूर्व शोधकारों ने देवगढ़ के अन्दर चिन्ह सहित प्रतिभाओ के होने की बात का कोई उल्लेख नही किया। लेकिन देवगढ़ मे सैकड़ो चिन्ह सहित प्रतिमाए विद्यमान है। भगवान महावीर की प्रतिमा देवगढ़ मे नही इस बात को पूर्व शोधकारो ने लिखा है। लेकिन इस जीर्णोद्धार के समय मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के द्वारा जो प्रायोगिक शोध किया गया, उसके अनुसार 'सूक्ष्मता से देखने पर लगभग ८ प्रतिमाओं मे शेर का चिन्ह-चिन्हित पाया गया'। इस प्रकार की बहुत सी अन्य विशेषताए जीर्णोद्धार के समय इस क्षेत्र पर देखने मे आयी है।

जिन व्यक्तियो ने जीर्णोद्धार से पहले इस क्षेत्र के दर्शन किये, वे धर्म की सस्कृति को खण्डहर के रूप मे देखकर रो उठते थे। लेकिन उन्ही व्यक्तियो ने जब जीर्णोद्धार के बाद देवगढ़ अतिशय क्षेत्र के दर्शन किये, तो उनका हृदय गद्- गद् हो गया और वे धन्यता का अनुभव करने लगे। जो कार्य असम्भव सा प्रतीत होता था, उसे कार्यरूप देखकर लोग

आश्चर्यचकित होकर, इसे एक दैवीय शक्ति के द्वारा सुन्दर रूप परिवर्तनीय दृश्य मानने लग जाते है। समस्त भारतवर्ष के जैनियों की धारणा यही थी कि देवगढ़ का कभी जीर्णोद्धार नही हो सकता है। कई बार जीर्णोद्धार करने का प्रयास किया गया लेकिन सफलता हासिल नही हुई, क्योंकि इस प्रकार के खण्डहर मदिरो व प्रतिमाओ को देखकर दिमाग ही नही चलता था कि इस क्षेत्र का किस ढग से जीर्णोद्धार किया जाये।

लेकिन यह सब जीर्णोद्धार करने की एक सुव्यवस्थित अनुकरणीय पद्धति पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी महाराज की अतिशयकारी साधना से परिमार्जित ज्ञान की, आराधना की उपज एव उनके चमत्कारी आशीर्वाद, वीतरागता, रत्नत्रय एव ओजस्वी वाणी के प्रताप से ही यह सरल और सहज रूप से सब असम्भव सम्भव मे बदल गया। क्योंकि दिगम्बर साधुओ के ज्ञान कोष मे असम्भव शब्द होता ही नही, इसलिये यह सब कार्य उनके लिये सरल व सहज सिद्ध हुआ।

धन्य है। ऐसे गुरू महाराज। आज पचम काल मे जहा चारो ओर शरीर हीन सहनन के साथ है, भौतिक चकाचौंध का वातावरण है, लोगो के मस्तिष्क में नास्तिकता भरी हुई है, उसके बावजूद भी परम पूज्य मुनि सुधासागर जी महाराज अपनी साधना एव वाणी से जनता को धर्ममार्ग मे दान- पूजा का उपदेश देकर देश की धार्मिक सस्कृति की रक्षा करने के लिये प्रेरित कर देते है।

मुनि श्री सुधासागर जी जब अपने प्रवचनों में श्रावको के आचरण तथा दुराचार के फल का वर्णन करते है, तब अच्छे- अच्छे दुराचारी सदाचारी हो जाते है। नास्तिक आस्तिक बन जाते हैं और मुनि श्री के चरणो मे नतमस्तक हो जाते हैं।

मै मुनि श्री की अधिक प्रशसा क्या करू, क्योंकि आपके गुणो की प्रशसा करना सूर्य को दीपक दिखाना है। अन्त में मै इतना ही कहूगी कि मुनि श्री के अतिशय पूर्ण आशीर्वाद की छाया मे देवगढ़ का जीर्णोद्धार एव पचगजरथ महोत्सव केवल ललितपुर को ही नही सारे भारतवर्ष के लिये एक आदर्श प्रस्तुत करेगा।

जब तक आकाश मे सूर्य- चन्द्र रहेगे, तब तक इस जीर्णोद्धार, जीर्णोद्धारक (मुनि श्री सुधासागर जी महाराज) एव पचगजरथ महोत्सव की यशोगाथाए गायी जायेगी।

ऐसे ज्ञान, ध्यान तथा तप में लीन रहने वाले वीतरागी साधु, आध्यात्मिक सत, जिन धर्म के प्रभावक, देवगढ़ जीर्णोद्धारक परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज को मैं कोटि- कोटि नमन करती हुई बदन करती हुई इस लेख को समाप्त करती हू।

किसी कवि के श्ब्दो में इतना निवेदन अवश्य करूँगी -

हे धर्म प्रेमियो, कला- प्रेमियो आओ,
गढ़ देख देवगढ़ आँखे सफल बनाओं।

- महावीर भगवान की जय -

...के ऐतिहासिक गवाक्ष

...ललितपुर

अनादि अनन्त काल से यह ससारी प्राणी एक वर्तुलाकार रास्ते के समान ८४ लाख योनियो मे घूमता चला आ रहा है । ऐसे कोई भी क्षेत्र, कोई भी काल, कोई भी भव तथा कोई भी ऐसा भोग्य पदार्थ शेष नही बचे जिनसे यह परिचित न हो ।आचार्य कुन्द कुन्द जी समयसार मेकहते है कि -

सुद परिचिदाणुभूदा सव्वस्स विकाम भोग बध कहा

एयत्त सुवलभो णवरि ण सुलहो विहत्तस्स ।

अर्थात् समस्त ससार मे काम और भोग के अलावा कोई भी वस्तु नही जो इस मानव द्वारा अनुभव मे/ परिचय मे आयी हो । मात्र वह एकत्र विभक्त रूप जो अदृश्य पदार्थ है- आज तक परिचय मे नही आया और उसका परिचय किये बिना मोक्ष मार्ग पहचाना नही जा सकता । अब ऐसे पदार्थ का परिचय कैसे करे, तो एक सूत्र आता है-

अभ्यस्त विषया तु स्वत

अनभ्यस्त विषया तु परत

अर्थात अभ्यस्त विषय का ज्ञान तो सरल व सहजता से हो जाता है लेकिन अनभ्यस्त विषय का ज्ञान पर के आलम्बन के बिना सम्भव नही और मोक्ष मार्ग आज तक इस सासारिक प्राणी को अनभ्यस्त रहा है, इसलिये पर के आलम्बन के बिना मोक्ष मार्ग सम्भव नही । आलम्बन वही दे सकता है, जिसने पहले किसी का आलम्बन लेकर मोक्षमार्ग अनुभूत किया हो । वे हैं अनन्त चतुष्टय के धनी भगवान जिनेन्द्र देव । लेकिन जिनेन्द्र देव की उपलब्धि हर जगह, हर समय तो सम्भव नही है । भरत तथा ऐरावत क्षेत्र की अपेक्षा तो मात्र १० कोड़ा कोड़ी के ६ कालो मे से मात्र चौथे काल में एक कोड़ा- कोड़ी सागर काल मे अतराल को लिये हुये २४ तीर्थकर होते है और इसी काल मे सामान्य केवली आदि भी उपलब्ध होते हैं अन्य कालो मे नही ।

जिस काल मे अपन लोगो का जन्म हुआ, वह समय इस भरत क्षेत्र में पचम काल का चल रहा है । ऐसी स्थिति मे जिनेन्द्र देव का मार्गदर्शन सम्भव नही है तो उनकी प्रतिच्छा धातु अथवा पाषाण के रूप मे स्थापित करके उनकी मूक मुद्रा से सदुपदेश ग्रहण कर लेते है ।

इसके सम्बध मे एक उदाहरण ध्यान आता है कि जब भगवान आदिनाथ को मोक्ष प्राप्त हो गया तो भरत चक्रवर्ती भयभीत हो गये कि अब मुझे कौन मार्गदर्शन देगा । ऐसी चिन्ता मे पड़े हुये चक्रवर्ती को गणधर परमेष्ठी सम्बोधन करते है कि हे चक्रवर्ती ! मोक्ष जाना तो तीर्थकरो का नियत है लेकिन उनके मोक्ष जाने के बाद, उनके धर्म को आगे बढ़ाने के लिये तीर्थकरो के द्वारा स्थापना निक्षेप का विधान किया गया है । अत आप त्रिकाल चौबीसी की रत्नमयी ७२ प्रतिमाओं का निर्माण कराकर, स्थापना निक्षेप के माध्यम से अरहन्त देव के मार्ग की प्रभावना करो और भव्य जीवों को इसके माध्यम से सम्यक दर्शन के निमित्त रूप जिन मदिरों की स्थापना करो । ऐतदर्थ ७२ जिनालयों की स्थापना कैलाश पर्वत पर की गयी । इसका पूर्ण इतिहास आप लोग शास्त्रों से ज्ञात कर लेना ।

बन्धुओं ! यहां पर आपको एक जिज्ञासा उठ रही होगी कि मूक अचेतन जड़ प्रतिमाए हमें क्या उपदेश तथा क्या लाभ प्राप्त करा सकती हैं ? क्या सम्यक् दर्शन उपलब्ध करा सकती है ? क्या कर्मो का क्षय करा सकती हैं ? इन प्रश्नो के उत्तर मे, मै तो केवल आगम का आलम्बन लेकर ही कथन कर सकूगा, क्योकि साधु को आगम चक्खु (आगम चक्षु) अर्थात आगम ही साधु के नेत्र है, ऐसा कहा गया है ।

शास्त्रों में सम्यक् दर्शन की उत्पत्ति के कारणो मे जिनबिम्ब को देशनालब्धि की उपलब्धि का कारण बताया है एव सम्यक् दर्शन की प्राप्ति मे निमित्त बताया है । धवलाकार वीर चन्द स्वामी तो यहा तक लिख गये है कि जिनबिम्ब के दर्शन करने से एसे निधत्त- निकाचित कर्म काटे जा सकते है, जा कर्म बड़ी- बड़ी तपस्याओ से तथा ज्ञान की आराधनाओ से भी नही काटे जा सकते है । अर्थात जिनबिम्ब सम्यक् दर्शन की प्राप्ति एव कर्मो के क्षय मे कारण है ऐसा जिनवाणी का कथन है । इसी आगम की बात को मानकर पचम काल के भव्य मुमुक्षु जीव पचकल्याणक के माध्यम से जिनबिम्बों की स्थापना करते हैं । इन जिनबिम्बो की स्थापना अनादि अनन्त काल से होती आयी है, जिसका ज्वलन्त उदाहरण यह देवगढ़ क्षेत्र है ।

लेकिन बधुओ ! जब- जब किसी सन्मार्ग की स्थापना की जाती है तो उस समय के अतराल के साथ- साथ उस मार्ग को नष्ट- भ्रष्ट करने वाले पैदा होते रहते हैं । इसके प्रमाण के लिये हमारे सामने देवगढ़ क्षेत्र खण्डहर के रूप मे एव जिनबिम्ब जो खण्डित किये गये है, वे हमें दृष्टिगोचर हो रहे है । जिन प्रतिमाओं को खण्डित देखकर हृदय बरबस होकर रो पड़ता है ।

मैने (मुनि श्री सुधासागर जी महाराज) इस देवगढ़ क्षेत्र को बचपन में देखा था, उस समय मुझे विशेष ज्ञान नही था, लेकिन इतना आभास जरुर हुआ था कि इन प्रतिमाओं को किसी न किसी ने खण्डित किया है । बधुओ ! आज तो मैं जिनधर्म के मार्ग पर आरुढ़ हू । जिनधर्म मेरा जीवन है तथा जैन सस्कृति मेरे प्राण है । और आज मै जब अपने इन प्राणो को अर्थात् जैन सस्कृति को खण्डहर के रूप में देख रहा हूँ तो मेरे अन्दर एक तीव्र वेदना हो रही है । मैं इस वेदना को कैसे व्यक्त करू ? मेरे अन्दर यह दुख इतना तीव्र रूप धारण कर रहा है कि इस क्षेत्र पर आहार चर्या कैसे करू । जिसके प्राण सकट मे हो वह आहार कैसे कर सकता है । अर्थात जिसके आराध्य देव का मकान खण्डहर रूप में हो चमगादड़ो से भरा हो और जिसके आराध्य देवता के कान, नाक आदि जर्जरित हो, वह आराधक कैसे सुख साता से आहार कर सकता है ।

बन्धुओ ! मै आप लोगो से भी पूछना चाहता हू कि इस क्षेत्र को इस दशा में देखते हुये भी अर्थात इन मदिरो की दुर्दशा देखते हुये भी आप लोगो नेअपने महल कैसे खडेकर लिये । आपके आराध्य का मदिर खण्डहर हो और आराधक का महल सगमरमर से जडा हुआ हो । आप ऐश- आराम की जिन्दगी बिता रहे हों और आपके आराध्य जर्जरित दशा में पड़े हों । बंधुओं ! यह सब विरोधाभास कैसे सम्भव हो सका ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह सब पचम काल की बलिहारी है ।

सैकड़ों सालो से नास्तिकों तथा जिन धर्म विरोधियों द्वारा खण्डित किये गये इस देवगढ़ का

आप लोगों द्वारा जीर्णोद्धार नही किया जाना, यह आपके प्रमाद का सूचक है। चतुर्थ आदिकाल मे लोग मदिर से अच्छा व ऊचा अपना मकान नही बनाते थे। बधुओ! यही आराध्य तथा आराधक सम्बध है। श्रद्धा भक्ति का अर्थ मात्र नमस्कार करना नही है बल्कि हर तरफ से बहुमान करना आवश्यक है।

बधुओ! कुछ लोग सोचते है कि जीर्णोद्धार के नाम से कही पुरातत्व नष्ट न हो जाये, तो उन लोगो से मै पूछना चाहता हू कि यदि उनकी नाक कट जाये तो वह प्लास्टिक सर्जरी क्यो कराते है? इससे तो आपका पुरातत्व नष्ट हो जायेगा, आप पुराने न रहकर नये हो जायेगे, बड़े न रहकर छोटे हो जायेग। यदि आपके हाथ पेर टूट जाते है तो आप पलस्तर क्यो चढ़वाते हो, हाथ पेर यथावत टूटे रहने दो? क्या? इससे आपका पुरातत्व नष्ट नही होगा बल्कि साबित रहेगा। बधुओ! कितनी मिथ्या धारणा है कि व्यक्ति अपने शरीर को टूटा हुआ नही रखना चाहता लेकिन अपनी आराध्य प्रतिमाओ को खण्डहर के रूप म रखना चाहता है। यह सकुचित दृष्टि इस कलिकाल के जनमानस की अज्ञानता की ही सूचक ह। आप सरकारी बाधा की बात करो, तो भैया सरकार कोई हउआ है क्या। सरकारी आदमी कोई जानवर ह क्या? ध्यान रखना सरकारी अधिकारी, अधिकारी बाद मे है पहले वह भारतीय व्यक्ति ह। उन्हे भारतीय व्यक्ति होने के नाते सोचना चाहिये कि यह देवगढ़ उपासना- केन्द्र ह। यहा के विकास मे बाधा डालकर अपने अधिकारो का दुरुपयोग न करे।

इस प्रसग पर मुझे एक उदाहरण याद आ रहा है कि एक जगल मे एक मदिर था। मदिर मे अनेक लोग दर्शन करने के लिये आते थे। दर्शन करने वाले भक्तो में एक भील भी दर्शन करने के लिये आता था। उस भील की भक्ति की चर्चा स्वर्गों में देवो के द्वारा हुई और कुछ देवता उसकी परीक्षा लेने आ गये। परीक्षा के रूप मे देवो ने उस प्रतिमा की एक आख निकाल दी। सारे लोग प्रात उस प्रतिमा के दर्शन करने के लिये आये, तो प्रतिमा की एक आख न देखकर चिल्लाने लगे, कुछ लोग हड़ताल पर बैठ गये, कुछ लोग राजा के दरबार मे शिकायत करने गये कि जिन्होने हमारी प्रतिमा की आख निकाली उनको पकड़ा जाये। सजा दी जाये बडा अनर्थ हो गया, भगवान की कोई एक आख निकाल ले गया।

लेकिन जब भील ने आकर देखा कि भगवान की एक आख निकल गयी है, तो वह विचार करने लगा कि ओ हो। बड़ा अनर्थ हो गया। यह क्या? मै दो आख वाला और मेरे आराधक भगवान एक आख वाले। अत उसने तीर से तुरन्त अपनी एक आख निकालकर भगवान को लगा दी। जैसे ही उसने अपनी एक आख निकालकर भगवान को लगायी वैसे ही देवता प्रकट होकर जय- जयकार करने लगे। कहते है कि धन्य है ऐसा भक्त जो अपने भगवान को खण्डित नही देख सकता चाहे स्वय भले ही खण्ड- खण्ड हो जाये। उधर सारी जनता जो दुनियाभर की हड़ताल आदि करने लगी थी, वह यह दृश्य देखकर आश्चर्यचकित हो गयी, और अपनी थोती भक्ति से शर्मिन्दा हो गयी। वहा पर बड़े- बड़े सेठिया, पुजारी व दानी भी मौजूद थे, लेकिन देवताओं ने उन्हे भक्त शिरोमणि की उपाधि नही दी बल्कि उस भील को भक्त शिरोमणि की उपाधि देकर स्वर्ग चले गये।

बंधुओं ! यहा विचारणीय बात यह है कि जब उस भील ने प्रतिमा में अपनी आख लगायी होगी तो क्या उस प्रतिमा का पुरातत्व नष्ट नही हुआ होगा ? कहा प्रतिमा की आख और कहा भील की आख । क्या बेढगी नही लगी होगी ? क्या पुरातत्व नष्ट नहीं हुआ होगा ? बधुओ ! यदि पुरातत्व और सस्कृति नष्ट हुई होती तो वे देवता लोग उस भील की जय-जयकार नही बोलते बल्कि उसको अभिशाप तथा ताड़ना देते । ध्यान रखना बधुओ ! भक्त कभी भी सस्कृति का नष्ट नही कर सकता भक्त तो सस्कृति का रक्षक होता है । आप लोग पुरातत्व के नाम पर इस सस्कृति का काल का ग्रास बना रहे है इसलिये आप लोग इस सस्कृति के रक्षक नही भक्षक है ।

आपके पुरातत्व की परिभाषा सुनकर मुझे कष्ट होता है कि आप लोग पुरातत्व उसे मानते है कि जो वस्तु जैसी दुर्दशा मे है, जहा पड़ी है, उसको वहा वैसी ही पडी रहने दो, चाहे वह सर्दी गर्मी तथा बरसात से नष्ट हो जाये चोर डाकू लूट ले जाय, तब भी आप पुरातत्व- पुरातत्व चिल्लाते रहेगे । यदि कोई सस्कृति की रक्षा, सुधार तथा जीर्णोद्धार करता है तो आप लोग उस पर पुरातत्व नष्ट होने का आरोप लगाते है, रोक लगाते है । मै पूछता हू कि इतने पुरातत्व क्षेत्रो मे से चोर, डाकू मूर्तिया के सिर काट कर ले गये, तो क्या आपकी सस्कृति तथा पुरातत्व नष्ट नही हुआ ? क्या आपने एव आपकी सरकार ने उस चौरकर्म के ऊपर रोक लगायी ? क्या सरकार ने इसकी सुरक्षा की ? यदि सुरक्षा की होती तो फिर आज इन क्षेत्रो पर से प्रतिमाए चोरी क्यो जा रही है ? आप लोग यदि खण्डहर एव खण्डित प्रतिमाओ को पुरातत्व मानते हो तो हमारे देश का यह दुर्भाग्य है कि ऐसे विपरीत बुद्धि वाले भारत मे पैदा हो गये । जिन- जिन क्षेत्रों पर सरकारी कब्जा है, उस क्षेत्र की सारी सस्कृति लुट जाती या फिर लुटवा दी जाती है या फिर लूट ली जाती है । अर्थात अपने धार्मिक क्षेत्रो पर सरकार का कब्जा कभी मत होने दो ।

बधुओं ! औरगजेब आदि आततायियो ने तो इन प्रतिमाओं तथा मंदिरो को खण्डित करके खुशी मनायी थी लेकिन आप लोगो ने एव आपकी सरकार ने इनको खण्डित देखकर खुशी मनायी तो मेरी दृष्टि मे इन दोनो मे कोई अन्तर नही । बधुओ ! ऐसी दृष्टि वालो के लिये मैं एक उदाहरण देता हू कि एक बार एक पिता ने अपने चार पुत्रो की योग्यता का ज्ञान करने के लिये उनको एक- एक बोरा गेहू दिया और अपने चारो पुत्रों से कहा कि मै तीर्थयात्रा पर जा रहा हूँ । जब मै लौटकर आऊ तो यह गेहू मुझे वापिस कर देना । और एक- एक बोरा गेहू चारो बेटो को देकर वह तीर्थयात्रा पर चला गया ।

अब चारो बेटो मे से प्रथम बेटा सोचता है कि बाप के द्वारा दी हुई निधि रखने के लिये नही होती है, वह तो खाने- पीने योग्य होती है, और उसने गेहू को बाजार मे जाकर बेच दिया और शराब आदि पी कर मौज- मस्ती कर ली । इस प्रकार इस प्रथम बेटे ने बाप के द्वारा दी हुई निधि को थोड़े से लोभ के कारण नष्ट कर दिया ।

दूसरा लड़का सोचता है कि पिताजी न जाने कितने दिनो के बाद लौटेगे और गेहू को बेच दिया कि जब पिता जी वापिस आयेंगे तो फिर से खरीदकर लौटा दूगा ।

तीसरा बेटा सोचता है कि पिता के द्वारा दी गयी वस्तु पूज्य होती है । अतः उसने एक अच्छा सा

चबूतरा बनाकर उस पर गेहू के बोरे को रख दिया और प्रतिदिन सवेरे- शाम उसकी पूजा व आरती करने लग जाता है-

ओम् जय बाप देवा

जय हो गेहू का बोरा

—आदि- आदि, अनेक पवित्र भावनाओ के साथ उस गेहू के बोरे की भक्ति होने लगी। धन्य है वह गेहू का बोरा, जिसकी सुबह शाम आरती उतारी जा रही है।

चौथे नम्बर के लड़के ने एक खेत को जोत बखर करके गेहू का बोरा उसमे बो दिया। धीरे- धीरे वह गेहू अकुरित होने लगा और वह चौथा बेटा उन अकुरो मे रोज पानी देता रहता। इस प्रकार से पिता के द्वारा दिये हुये गेहू के बोरे का उपयोग चारो बेटा ने अलग- अलग प्रकार से किया।

कुछ दिनो के बाद पिताजी लौटते है। सबसे पहले वह प्रथम बेटे से पूछते है कि बेटा गेहू का बोरा कहा है तो वह कहता है कि गेहू का बोरा कोई रखने" की चीज थी या खाने- पीने का वह तो मैने सब खा पीकर बराबर कर दिया ह।

इस प्रकार से प्रथम बेटे ने पिता के द्वारा दी गयी निधि को अपने ऐश- आराम म मिटा दिया।

पिताजी दूसरे बेटे से पूछते है तो उत्तर मिलता है कि पिता जी मे अभी लाता हू। वह गेहू मैने बेच दिया था। आपको दूसरा गेहू खरीदकर देता हू। इस प्रकार इस बेटे ने अपनी प्राचीन निधि को तो मिटा दिया और नवीन निधि बदले मे दे रहा है। वह भी विवेक शून्य है।

पिताजी तीसरे बेटे के पास गये तो वह तो बेचारा बोरे की आरती उतारने मे तल्लीन था। पिताजी ने कहा, बेटा मेरा गेहू वापिस दे दो, तो वह बोला कि पिताजी आपके द्वारा दी गयी निधि चबूतरे (उच्चासन) पर रखी है। पिताजी यह सब देखकर माथा ठोक कर रह गये, क्योकि उस बोरे मे से तिरूला (छोटे- छोटे जीव) निकल रहे थे तथा बोरे का गेहू घुन कर राख हो गया था।

बधुओ! इस लडके के अन्दर भक्ति श्रद्धा तो है, पर विवेक का अभाव है क्योकि उसे यह नही मालूम कि पिता के द्वारा दी गयी निधि की सुरक्षा कैसे की जाती है।

फिर वह पिता चौथे बेटे के पास गया तो वह चौथा बेटा बोला कि पिताजी आपके द्वारा दी गयी निधि बिल्कुल सुरक्षित है। आप खेत पर चलिये, मै दिखाता हू।और वह पिता को खेत पर ले गया। पिताजी ने जब लहलहाती फसल देखी तो गद्-गद् हो गये। वह चौथा पुत्र कहता है कि पिताजी अब कुछ दिन की देर और है जब मै आपको एक बोरा गेहू के स्थान पर ५० बोरा गेहू दूगा। बधुओ! इसे बोलते हैं ज्ञानी भक्त। सच्चा बेटा।

अब मै आप लोगो से पूछना चाहता हू कि आपके पूर्वज आपको देवगढ़ रूपी गेहू का बोरा दे गये थे तो अब आप इसकी सुरक्षा करने के लिये कौन से नम्बर के बेटों मे से हो यह स्वय निर्णय कर लीजिये। इतना तो पक्का है कि आप लोग पहले नम्बर के बेटे नही हो, क्योकि पहले नम्बर का बेटा तो वह है जो इन प्रतिमाओं के सिर काट- काटकर धन के लिये अपनी भारतीय सस्कृति को विदेशों मे बेच रहे हैं।

दूसरे नम्बर के पुत्र भी आप लोग नही हो, क्योकि न तो आपने यहा से कुछ बेचा है और न ही

यहा कुछ आपने लाने का प्रयास किया है ।

और चौथे नम्बर के बेटे की चर्चा करना तो व्यर्थ है, क्योंकि उसके एक भी लक्षण जैसे ज्ञान व विवेक आपके पास नही है ।यदि होता तो देवगढ़ की यह दुर्दशा नही होती, बल्कि अभी तक देवगढ़ कई गुना बढ़ गया होता ।

मेरी दृष्टि से, तो तीसरे नम्बर का जो बेटा बचा हुआ है आप लोग वही हो । 'ओम जय बाप देबा' कहने वाला अर्थात् आप लोग यह चिल्लाते रहते हो कि हमारे पूर्वजो की सस्कृति की थाती है, बस । इस अहकार की गध आपके हृदय से उठती है और नासिका को एक क्षण के लिये तृप्त करती हुई, सुगन्ध को दुर्गन्धित कर आकाश मे उड़ जाती है ।

जिस प्रकार तीसरे नम्बर के बेटे ने अपने पिता के द्वारा दिये गये गेहू को सड़ा- घुना दिया था, उसी प्रकार आप लोग भी देवगढ़ के भक्त तो हो लेकिन विवेक नही है । इसीलिये आप लोग देवगढ़ को सैकड़ो सालो से जमीन पर पड़ा यथावत् देख रहे है लेकिन फिर भी आपने उसे सम्हालने का प्रयास नही किया ।

इस प्रकार पिताजी चौथे नम्बर के बेटे को योग्य समझकर अपना वसीयतनामा उसके नाम से लिख गये । इसी प्रकार जब आप लोग चौथे नम्बर के बेटे के समान बन जायेगे और देवगढ़ का चहुमुखी विकास करेगे, तब आपके भी पूर्वज आप पर प्रसन्न होंगे । अत बधुओं ! चेतो, जागो, और अपने पूर्वजों की सस्कृति को सम्हालो । कई लोग तो यहा तक कहते हुये पाये जाते है कि क्षेत्र के जीर्णोद्धार के लिये बहुत पैसा चाहिये । मै माथा ठोक लेता हू कि केवल पैसे के कारण से देवगढ़ क्षेत्र की यह दुर्दशा हो रही है । धिक्कार है । आज समाज में पैसो की कमी नही है, भोग विलास मे कितना पैसा खर्च हो रहा है । लोग २०-२५ लाख रुपया अपने मकान बनाने मे मिटा रहे है, विवाह- बरातों मे लाखो रुपया फिजूल खर्च हो जाता है, घर- घर २०-२५ हजार रुपये की रगीन TV खरीदी जा रही है । केवल धर्म के नाम पर तथा क्षेत्रो के जीर्णोद्धार के लिये पैसा नही है । वाह रे ! स्टेण्डर्ड के भिखारी- ऐसे कैसे गरीब है आप लोग भोगो के लिये तो लाखो रुपया लुटा देते हो लेकिन धर्म के लिये एक छदाम भी नही है ।

बधुओ ! धन का उपयोग करने वाले एक से एक महान् उन दान दातारो को याद करो, जिन्होने अपने धन का सदुपयोग देवगढ़ जैसे अतिशय क्षेत्र के निर्माण के लिये किया और अमर हो गये । बड़े- बडे अमीर लोग मरते हैं- भोग विलास करते हुये, उनको कोई याद नही करता लेकिन देवगढ़ निर्माण कराने वालो को सभी आज तक याद करते हैं । धन्य है वे श्रावक जिन्होने अपने धन का उपयोग एक- दो नही बल्कि लाखो प्रतिमाओ के निर्माण मे कर दिया ।

बधुओ ! इस देवगढ़ एव देवगढ़ के निर्माता के सम्बध मे अनेक प्रकार की कथाए चर्चा मे आती है । उनको भी अपन यहा पर समझने का प्रयास करेगे ।

कुछ लोग कहते हैं कि देवगढ़ की रचना सर्वप्रथम देवोपुनीत किसी यक्ष के द्वारा उद्घाटित हुई थी लेकिन यह चर्चा मात्र किवदन्ती ही प्रतीत होती है ।

दूसरी चर्चा यह आती है कि यहा देव गढ़े जाते थे अर्थात् प्रतिमाओं का निर्माण होता था । जिस प्रकार आज वर्तमान मे सगमरमर की प्रतिमाओ का

निर्माण जयपुर मे होता है, उसी प्रकार बहुत प्राचीन काल मे यहा देवगढ़ मे भी देशी पाषाण की प्रतिमाओ का निर्माण होता था। इसलिये इस क्षेत्र का नाम देवगढ़ पड़ा। यह चर्चा कुछ सत्य प्रतीत होती है, क्योकि देवगढ़ के लगभग ५० किमी के क्षेत्रफल मे पत्थरो की खदानो के पास प्रतिमाए टूटी पडी हुई मिलती है जो इस बात को सिद्ध करती है कि जब शिल्पकार खदानो पर प्रतिमाए बनाते होगे और बनाते हुये प्रतिमाए टूट जाती होगी तो वे उनको वही पर छोड देते होगे। यही भग्नावशेष हमे इतने लम्बे चाड़ क्षत्र म पत्थरा की खदानो के पास उपलब्ध होते है।

दूसरी बात यह ह कि आर जो प्रतिमाऐं साबित मिलती है वे उस समय सम्भवत बिक्री केन्द्र के रूप मे रखी जाती हा। इसलिये बहुतायत प्रतिमाआ म न तो प्रसस्ति मिलती ह और न ही उन प्रतिमाआ के विराजमान करने के याग्य कोई वेदी दृष्टिगोचर होती है और कई प्रतिमाए तो इतनी ऊची- ऊची है कि उनके विराजमान करने याग्य इतनी ऊचाई को लिये हुये कोई मदिर ही नही ह और जा मदिर ह उनम पहले से ही प्रतिष्ठित प्रतिमाए विराजमान है। अर्थात जितनी प्रतिमाए मदिरा म विराजमान है उनके याग्य वेदी भी ह तथा मदिर भी ह। इसलिय मदिर म विराजित प्रतिमाए प्रतिष्ठित ह। मदिरा के बाहर जो प्रतिमाए होता है वे मात्र एक निर्माण केन्द्र की स्थिति को व्यक्त करती ह। इन सब प्रमाणा स यह सिद्ध होता है कि प्राचीन समय म यह देवगढ़ क्षेत्र मूर्ति निर्माण कला केन्द्र के रूप म जाना जाता रहा होगा। यहा से निर्मित होकर प्रतिमाए भारत के कोने- कोने म जाकर भक्त तथा श्रद्धालु लोगा के द्वारा प्रतिष्ठित होकर मदिरों में विराजमान होती होगी।

तीसरी चर्चा भी कई आलेखों से सिद्ध होतीहै कि इस क्षेत्र का निर्माण देवपत तथा खेवपत नाम के दो श्रेष्ठिया के द्वारा किया गया था। इन श्रेष्ठियों के सम्बध में भी दो प्रकार का इतिहास मिलता है।

प्रथम इतिहास तो यह है कि देवपत- खेवपत के पास एक पारस पत्थर था। उस पत्थर की विशेषता यह थी कि उस पत्थर का स्पर्श शुद्ध लोहे से करा दिया जाये तो लोहा सोने मे बदल जाता था। ये दोनों श्रेष्ठी भाई- भाई थे, तथा साथ ही साथ सम्यक् दर्शन को धारण करने वाले और जैन धर्म के परम श्रद्धालु थे। दोनो भाई धन के निर्लोभी तथा दान देने के लोभी थे, और अपने तन मन, धन का सदुपयोग देव- शास्त्र गुरु के निमित्त से करने का जिनका ध्येय था। ससार तथा शरीर के भोगो से उदासीन थे तथा अपने धन का उपयोग ससार की भोग विलासिता मे न करके देव- शास्त्र गुरु की प्रभावना मे करते थे।

अत देवपत- खेवपत पारस पत्थर स जितना सोना बनाते थे उसको बेचकर प्राप्त धनराशि का उपयोग देवगढ़ मे जिनमदिरो तथा जिनप्रतिमाआ के निर्माण म करते थे। इसलिये उन्होने अपने जीवनकाल म इतनी अधिक प्रतिमाओ का निर्माण कराया कि गिनती करना भी कठिन था क्योकि उनका संकल्प था कि जब तक मेरे पास धन है तथा घट मे प्राण है, तब तक मै इस देवगढ़ क्षेत्र पर प्रतिमाओ का निर्माण कराता रहूगा और कराया भी।

देवगढ़ म इतनी अधिक प्रतिमाए आज भी उपलब्ध है कि एक बार एक व्यक्ति ४०-५० वर्ष पूर्व एक कुन्टल चावल लेकर देवगढ़ गया। उसने

प्रति प्रतिमा पर एक चावल चढ़ाया, तो उसके पूरे एक बोरा चावल समाप्त हो गये लेकिन उसने दर्शन सब प्रतिमाओ का नही कर पाया ।अर्थात एक कुन्टल में जितने चावल के दाने होते हैं उतनी प्रतिमाओ के दर्शन तो उसने कर लिये और उसके बाद भी प्रतिमाए शेष रह गयी। इस प्रकार से देवपत-खेवपत के द्वारा तथा पारस पत्थर के निमित्त से उपलब्ध धन से ये देव- देवालय बनाये गये । देखिये बधुओ ! एक सम्यक् दृष्टि की विशेषता कि पारस पत्थर से उपलब्ध धन को ससारिक क्षेत्र म दुरुपयोग न करके पारमार्थिक क्षेत्र मे सदुपयोग किया ।

एक बार देवपत- खेवपत के पारस प्त्थर की महिमा का पता राजा को चल गया । तब राजा न उनसे पारस पत्थर को छीनना चाहा, क्योकि राजा उससे सोना बनाकर अपना राजकोष बढ़ाता, ओर जिस राजा का राजकोष बढ़ जाता है, वह युद्ध की विभीषिका म कूदने का प्रबल प्रयास करता है, क्योकि वह अपने राज्य की सीमाओ को बढाना चाहता हे ओर युद्ध म लाखो जीवो की हत्या तो होती ही हे ।

जब यह सब जानकारी देवपत- खेवपत को हुई कि राजा हमारे पारस पत्थर को छीनना चाहता है, तब उन्होने सोचा कि हमारा सकल्प तो यह है कि इस पारस पत्थर के निमित से बना हुआ सोना केवल धर्म कार्य मे लगायँगे लेकिन राजा इससे सोना बनाकर के इसे अपने युद्ध तथा राजकीय वैभव मे अपव्यय करेगा । इस प्रकार उन्होंने सोच समझकर वह पारस पत्थर बेतवा नदी के हाथी द्वार स्थल पर गहरे पानी में फेक दिया ।

जब राजा को यह जानकारी हुई कि देवपत- खेवपत ने वह पत्थर नदी में फैंक दिया है, तब इस बात की सत्यता की परीक्षा करने के लिये कि इन्होने पत्थर नदी में फैंका गया है या नही या अपने पास छिपाकर रख लिया है- ऐसी शक को दूर करने के लिये राजा ने हाथियों के पैरों मे साकले बाधकर उनको नदी मे उतारा । तब हाथियों की बधी हुई साकलें सोने की हो गयी । तब जाकर राजा को विश्वास हुआ कि यह पारस पत्थर वास्तव में नदी में फंक दिया है । राजा द्वारा वह पत्थर बहुत खोजा गया लेकिन गया नदी मे वह पत्थर प्राप्त न हो सका ।

बधुओं ! कितने महान थे वे देवपत- खेवपत, जिन्होने अपने पारस पत्थर को नदी मे तो फेक दिया लेकिन उसका दुरूपयोग नही होने दिया ।

इन्ही देवपत- खेवप्त के सम्बध में दूसरा इतिहास यह मिलता है कि देवपत- खेवपत का जन्म जिन माता- पिता से हुआ था, वे माता- पिता इनको शैशवकाल में ही अनाथ छोड़कर स्वर्गवासी हो गये थे । माता- पिता के स्वर्गवासी होने के बाद इन अनाथ बालको की पैतृक सम्पत्ति दूसरे लोगो ने हडप ली थी, जिससे ये दोनों बालक दाने- दाने को मुहताज होते रहे । दूसरों के द्वारा दिये हुये भोजन से या मेहनत- मजदूरी करके अपनी उदर- पूर्ति करते थे । उसी समय एक बार ललितपुर के एक श्रेष्ठी ने शिखर जी की वदना करने के लिये अपने काफिले के साथ जाने का संकल्प किया । इसकी चर्चा इन दोनो बालको के कान मे पहुची । ये दोनों बालक देवपत और खेवपत सोचते हैं कि भगवान हम भी कभी इस अनादि- निधन सिद्धक्षेत्र शिखर जी के दर्शन कर सकेगे या नही ? दोनो भाई सलाह करके ललितपुर श्रेष्ठी के पास पहुचे और कहा कि हमने सुना है कि आप शिखर जी जा रहे हैं , और आपको अपनी यात्रा

मे कुछ सेवको की जरुरत पडेगी। हमारी भावना है कि आप हम बच्चों को सेवा करने का अवसर देकर हमे अनुग्रहीत करे। हम आपसे अधिक वेतन नही लेगे। २४ घटे मे मात्र एक बार भोजन दे देना, उतने मे ही हम सतुष्ट होकर आपकी नौकरी करने को तैयार है। हम रात्रि मे भी आपके काफिले की सुरक्षा करगे इसलिये हम दोनो भाई आज से रात्रि म सोने का त्याग करते है। हम रातोरात जागकर आपकी सुरक्षा करेगे अर्थात दिन मे हम आपके काफिले के लिय जगल से लकडी व कण्डे (उपले) बीनकर लायग भोजन तैयार करेगे, बर्तन साफ करेगे वस्त्रा को साफ करेगे तथा रात्रि म आपकी सुरक्षा करगे।

तब सेठ जी ने यह सब सुनकर दया करके दोनो बच्चो को अपने यहा सेवा के लिय रख लिया। अब परिवार सहित सेठ जी शिखर जी सिद्ध क्षेत्र की यात्रा के लिये चल दिये। देखा बधुआ! इन बालका की भावना, इसी को कहते हे 'हानहार विरवान के होत चीकने पात'। देखा इतनी छोटी अवस्था म भी इतने पवित्र धार्मिक परिणाम कि शिखर जी के दर्शन करने के लिये इतना कठिन परिश्रम करन का गव रात्रि- जागरण का सकल्प कर लिया। वधुआ! जिसकी होनहार अच्छी होती ह वे धर्म के लिय कठिन से कठिन विपत्ति झेलने क लिये तयार हो जाते है। इस प्रकार से वे दोना बालक दिन भर भोजन बनाते और रात मे सुरक्षा करते। यह क्रम कई दिनो तक चलता रहा तथा एक दिन वह काफिला शिखर जी पहुच गया।

अब शिखर जी जाकर बच्चे सोचते हे कि शिखर जी पहाड़ की वदना हम कैसे और कब कर क्योकि दिन म सेठ जी पर्वत पर जाते है और मुझे उनके लिये भोजन पानी तैयार करना पड़ता है तथा रात्रि मे उनके काफिले की सुरक्षा करनी पड़ती है। इस प्रकार मन मे विचार करते हुये उनको एक विकल्प आया कि अर्द्धरात्रि में काफिले की सुरक्षा का प्रबध करके हम पर्वत की वदना करने के लिये चलेगे। और अर्द्धरात्रि मे ऐसा ही किया। दोनो बालक वदना करने के लिये चल पडे। जल्दी- जल्दी जाकर गोतम गणधर की टाक पर पहुचे। गौतम गणधर के चरणो मे अपने घर ललितपुर से ले जाये हुय मक्क के दाने चढ़ा दिय और जल्दी से दूसरी टाक पर दोड़ लगा दी। इस प्रकार थोडे- थोड़े मक्के के दाने चढ़ाकर सभी टोको की वदना दोड- दोड़कर कर ली, ओर सुबह होने के पहले ही सेठ जी के काफिले पर उपस्थित होकर अपनी ड्यूटी करने लगे। बधुओ! शिखर जी की वदना करने मे इन दोनो बालको को कितना आनन्द आया होगा, इसका वर्णन तो केवलज्ञानी ही कर सकते ह, क्योंकि जो वस्तु बहुत कठिन परिश्रम करने के बाद प्राप्त होती ह। उसका आनन्द अकथनीय होता है।

उधर सुबह होते ही सेठ जी टोको पर चढाने के लिये हीरे जवाहरात से सजा हुआ थाल लेकर पहाड़ पर जात ह और जैसे ही सेठ जी गोतम गणधर की टोक पर पहुचते है, तो वहा पर गोतम गणधर के चरणो म चढ़े हुये मोतियो को देखते है, जो अपनी आभा से चारो ओर के वातावरण को चकाचौंधित कर रहे थे। सेठ जी वदना करना भूल जाते है। उनके अन्दर का अहकार जाग जाता है तथा सेठ जी के अहकार म चोट लगने के कारण अन्दर ही अन्दर तड़फने लगते है। सेठ जी तो इस अहकार के साथ पर्वत पर आये थे कि मै आज भर- भर थाली रत्न

चढ़ाऊंगा, जो आज तक किसी ने भी नही चढ़ाये होंगे। दुनिया मुझे तीर्थ भक्त तथा दानवीर कहेगी आदि- आदि अनेक लिप्साओं के साथ सेठ जी महत्वाकाक्षा लेकर चले थे। वे सब अहकार की अटारिया ढह गयी, क्योंकि वे रत्न जो पूर्व मे चढ़े हुये थे, इतने ज्योतिपुज थे कि सेठ जी के रत्न उनके सामने काच के टुकड़े प्रतीत हो रहे थे। वदना का भाव सेठ जी के मन से समाप्त हो गया और उदासीन मन से सेठ जी ने जैसे- तैसे वदना की। उस समय सेठ जी का चेहरा ऐसा था कि माना उनका सब कुछ लुट गया हो।

बधुओ! ससारी प्राणी की विचित्रता देखो कि सेठ जी का कुछ भी नही लुटा था, लेकिन दूसरा के रत्नो के प्रभाव ने उनक चेहरे की आभा को नष्ट कर दिया। सेठ जी जेसे- तेसे वदना करके नीचे आये, उस दिन उनका भोजन करने मे भी मन नही लगा।

फिर सेठ जी ने तुरन्त शिखर जी के समस्त कमेटी के अधिकारियो को बुलाकर पृछा यह बताओ कि आपके क्षेत्र मे कोई मुझसे बड़ा सेठ ठहरा है क्या? सभी ने उत्तर दिया कि यहा पर आपके अलावा कोई भी सेठ किसी भी धर्मशाला मे नही ठहरा है। यह सुनकर अब तो सेठ जी का आश्चर्य और भी बढ़ गया कि यह सब मामला क्या है। फिर सेठ जी ने अपने गुप्तचर विभाग द्वारा पता लगाया कि मुझसे पहले पर्वत पर वदना करने कौन गया था। बेचारे दोनो बालक देवपत व खेवपत पकड़े गये और उनको सेठ के समक्ष उपस्थित किया गया। कहा गया कि ये दोनों बालक रात्रि में आपसे पहले वदना करने गये थे।

सेठ जी उन दोनों बालको को देखकर आग बबूला हो गये और उनका सारा शोक तथा खेद आग मे बदल गया। सेठ जी भाण्ड शब्द बोलते हुये बोले कि तुम दोनों बालक बड़े ईमानदार बनते थे। तुम दोनो ने पहली गलती तो यह की है कि तुम रात्रि में हमारी सुरक्षा के लिये तैनात थे, फिर डेरे को असुरक्षित करके पहाड़ पर क्यो गये। दूसरी गलती बिना अनुमति के गये। यदि ऐसे मे कोई घटना घट जाती तो! हम तो तुम्हारे भरोसे निश्चित सो रहे थे। तुम धोखेबाजो की धोखेबाजी के कारण यदि कोई हमे सदा के लिये सुला जाता या कोई लूट ले जाता, तो इसका जिम्मेवार कौन होता। और तीसरा महा अपराध यह है कि तुम इतने दरिद्र हो कि दाने- दाने के लिये मुहताज हो, फिर ये रत्न तुमने कहा से चोरी करके टोंको पर चढ़ाकर दान का पुण्य लूटना चाहा। तुम दोनो बालको को इन तीनो अपराधों के प्रतिफल मे फासी की सजा दी जायेगी।

अत सेठ जी कहते है कि अपराध कबूल करो, और सच-सच बताओ कि जो रत्न तुमने पहाड़ की टोको पर चढ़ाये है, कहाँ से चुराये है। दोनों बच्चे भयभीत थे और गिड़गिड़ाते हुए बोले कि सेठ जी हमसे दो अपराध तो हुये हैं क्योंकि हम अपने अन्दर के भावो को सम्हाल नही सके और इस सिद्ध क्षेत्र के दर्शन करने की तीव्र भावना व लगन हमारे अन्दर थी इसलिए हम आपके एक समय के अल्प भोजन को लेकर के भी दिन-रात आपके काफिले की सेवा करते रहे। हम लोगों को लगने लगा था कि दिन मे आपकी भोजन आदि की व्यवस्था तथा रात्रि में सुरक्षा के कारण, हम अभागों को क्या इस पर्वत के पास भी आकर इस सिद्ध क्षेत्र की रज माथे पर लगाने का सौभाग्य नही मिलेगा? ऐसा विकल्प

हमारे मन में आया तो हमने आपकी अनुमति के बिना ही अर्धरात्रि में पहाड़ पर जाने का विचार कर लिया। क्योकि हम लोगो को ऐसा आभास हुआ कि आप हमे क्षेत्र पर जाने की अनुमति नही देगे।

सेठ जी, इसके अलावा तीसरा अपराध रत्नो की चोरी का, आपने हमारे ऊपर लगाया, वह हमने नही किया ।हमने तो अपने जीवन मे कभी रत्न देखे भी नही है, और प्राण भी निकल जाये तो हम चोरी करने का भाव नही कर सकते। हमने वन्दना करते समय मात्र मक्के के दाने-चढ़ाये थे। सेठ जी यह सुनकर व्यग करते है कि (हा) तुम नीच लोगों की भक्ति मे इतनी ताकत है कि वे मक्के के दाने मोती बन गये होगे। इतने पुण्य तुम बालको के होते तो तुम दरिद्रतामय जीवन क्यो बिता रहे होते ?

लेकिन बच्चे अपनी बात पर डटे रहे तथा सेठ जी बच्चों की बात स्वीकार करने के लिए तैयार नही थे। अन्त में सभा ने यह निर्णय लिया कि बच्चो की बात की परीक्षा कर ली जाय। यदि ये अपनी परीक्षा मे फेल हो जाते है तो इन्हे फासी दे दी जाय। निर्णय इस प्रकार हुआ कि इन बालको को हथकड़ी डाल कर कोतवालों के सरक्षण मे पर्वत के ऊपर ले जाया जाय और गौतम स्वामी के चरणो मे इनके हाथो से मक्के के दाने चढ़वाये जाये। यदि मक्के के दाने मोती बन गये तो छोड़ दिया जाय यदि मोती नही बने तो इनके सिर वही पर कलम किये जायेगे।

यह निर्णय बालकों ने सुना और अपने जीवन का अन्तिम दिन मानकर प्रभु- भजन में अपने मन को लगाने लगे, क्योंकि वह जानते थे कि हम दीन हीन गरीबों के मक्के के दाने न मोती बने है और न ही कभी बनेंगे। मक्के के दाने भी कभी मोती बने हैं क्या ? इस प्रकार सोचते हुये कुछ उदासीन भाव से अन्दर ही अन्दर सोचते हैं कि प्रभु-दर्शन का यही फल मिलना होगा सो मिलेगा, जो भी इस सिद्ध भूमि पर होगा अच्छे के लिये ही होगा। यदि मरण भी होगा तो सिद्ध क्षेत्र पर ही होगा। इस प्रकार से हथकड़ी पहने हुये दोनो बालक गौतम गणधर की टोक ले जाये गये। गौतम स्वामी की टोक के दोनो तरफ दो सैनिक नगी तलवार लेकर खड़े है, दोनो बालको ने अपने जीवन का अन्तिम क्षण मानकर अन्तिम णमोकार मत्र पढ़कर गौतम स्वामी को याद किया तथा आख बन्द करके गौतम स्वामी के चरणो मे अपने दोनो हाथो की मुट्ठिया से मक्के के दाने गौतम स्वामी के चरणो मे छोड़ दिये। गौतम स्वामी के चरणो का स्पर्श पाते ही मक्के के दानो ने मोतियो का रूप धारण कर लिया, और उन मोतियो का इतना प्रकाश फैल गया जैसे मानो लाखों सूर्य एक साथ निकल आये हो।

चारो ओर जय-जयकार होने लगी, देवो के द्वारा आकाश वाणी हुयी, और दुनिया को पता चल गया कि वीतराग शासन मे अमीरी और गरीबी नही चलती। अमीर धर्म को कभी खरीद नही सकता तथा गरीब कभी धर्म से वचित नही रह सकता, क्योंकि धर्म भावना ही प्रधान है। भावना अमीरी तथा गरीबी की रेखा को पार करके निवास करती है।

सेठ जी यह दृश्य देखकर शर्मिन्दा हो गये। पश्चाताप की अग्नि में जलने लगे। धिक्कार है, मुझे तथा मेरे जीवन को। मेरे दान में, भक्ति मे, तथा धन मे इन गरीब बालकों के मक्के के दानों से भी गया बीता प्रभाव है, और मेरी बुद्धि को भी धिक्कार है जो इन होनहार तथा अतिशयी बालकों से सेवा करवाता

रहा, जिनकी भक्ति में इतना चमत्कार है कि देवता भी प्रभावित हो जाते हैं। लेकिन मैंने इनको फांसी पर चढ़ाने का प्रयास किया। ऐसा विचार करते-करते श्रेष्ठी (सेठ) सवेगित हो गया, अपनी पूरी सम्पत्ति का वसीयत नामा एव काफिले का मुखिया अर्थात् श्रेष्ठी की गद्दी स्वय गौतम स्वामी की टौंक पर चरणो के सामने वस्त्राभूषण फेककर दिगम्बर मुद्रा धारण कर, पच मुट्ठी केशलोंच कर लिये, और जैनेश्वरी दीक्षा धारण करके तपस्या मे लीन हो गये।

देखिये बन्धुओ। वह दोनों बालक कहा गरीबी की रेखा म पड़े थे, और अब कहा अमीरी के सिहासन पर बैठ गये। कहा दोनो तरफ नंगी तलवारें खिची थी, लेकिन एक क्षण के बाद दोनो तरफ चँवर ढुलने लगे। सारे सेवक आज्ञा में होकर सलामी दने लगे। बन्धुओ इस ससार की लीला बड़ी विचित्र है। ये पाप- पुण्य का नाटक एक क्षण मे अमीर-गरीब बना देता है।

काफिला शिखर जी सिद्ध क्षेत्र की वन्दना करता हुआ नये मुखिया, के निर्देशन में ललितपुर नगर वापिस लौट आया। ललितपुर से सेवा करते हुये गये थे और ललितपुर लौटते समय सेवा करवाते हुये लौट रहे है। यह सब धर्म तथा भक्ति की महिमा है।

लौटने के बाद उन दोनों बालकों ने सोचा कि यह धन दौलत हमें अपने पुरुषार्थ से नही मिली बल्कि भगवान की भक्ति से मिली है। अत इस धन दौलत को देव- शास्त्र-गुरु के निमित्त से ही खर्च करना चाहिये। ऐसा विचार कर उन्होंने, समस्त सम्पत्ति जो स्वय को मिली थी, वह देवगढ़ में जिनबिम्बों एवं जिनालयों के निर्माण में व्यय करना शुरू कर दिया। बन्धुओ इसे कहते हैं सातिशय पुण्य या पुण्यानुबधी पुण्य। पुण्य से धन आया और पुण्य में ही जा रहा है, धन्य है ऐसे जीव।

निकांक्षित अग की पूर्णता का अनुभव करने वाले जीवों को धन, षट आयतनों की उत्पत्ति मे व्यय करने का भाव आया, और पूरे धन से देवगढ़ मे जिनबिम्ब तथा जिनालय बनवा दिये।

बन्धुओं ! यदि ऐसा धन वर्तमान में किसी व्यक्ति को मिल जाये तो वह क्या करेगा ? यह तो आप लोग स्वय अपने आप से सोच सकते हैं। देवपत्त खेवपत्त, को स्वयं धन मिला था लेकिन उस धन को उन्होने धर्म- कार्य मे लगा दिया। आप लोग तो धर्म के लिये बोले गये दान को भी कर्म मे लगा देते हो। इसके सम्बध में एक उदाहरण ध्यान आ रहा है कि एक व्यक्ति मदिर में भगवान के पास जाकर कहता है कि भगवान मेरा मकान ५० साल से नही बिक रहा है। यदि आपकी कृपा से २०००० में बिक जाये तो आधा आपको दे दूगा। उसकी भक्ति ने चमत्कार दिखाया और मदिर से जैसे ही घर आया तो देखता है कि मकान खरीदने वाला खड़ा है दरवाजे पर देखिये उसकी भक्ति, कितनी लगन से की होगी कि जो पचास वर्षों से मकान नही बिक रहा था लेकिन भक्ति करते ही खरीदने वाला घर पर आ गया। सौदा २० हजार रुपये मे तय हो गया। वह भक्त सोचता है कि मामला तो बिगड़ गया, अभी १० हजार भगवान को देना पड़ेगा तो उसने बनियाई चाल चली बोला देखो भाई मकान में एक बिल्ली रहती है उसकी कीमत है १९९९९ रुपया, एक रुपया मकान की कीमत। इस प्रकार से मै रजिस्ट्री करुगा। खरीदार बोला कि मुझे क्या लेना देना, जैसे चाहो

वैसे ले लो, मुझे तो मकान चाहिए ।और रजिस्ट्री हो गयी मकान की कीमत एक रुपये मे । इसके बाद एक रुपया भगवान के पास लेकर पहुचा कि भगवान आपकी भक्ति के प्रभाव से मकान तो बिक गया लेकिन एक रुपया मे बिका है, ये रजिस्ट्री है, य रुपया है । अब इसमे से आधा आप ले लीजिय, ५० पैसे आपके, ५० पसे मेरे । उसने ५० पैसे भगवान के चरणो मे डाल दिये और ५० पैसे अपनी जेब म रख लिये, और भगवान से कहा- देखा मै वचन का कितना पक्का हू । भगवान भी इसकी चालाकी का देखकर विचार रहे हाग कि वचन का ता पक्का ह लेकिन बनिया का पट्ठा है ।

लेकिन देवपत खेवपत एसे बनिया नही थ । व तो जेन थे और जिनेन्द्र दव के भक्त थे, तभी ता अपने लिये मिली सम्पत्ति का प्रयाग देवगढ जस क्षेत्र को बनाने मे किया था ।

देवपत खेवपत के अलावा एक और श्रेष्ठी पाडाशाह के नाम से प्रसिद्ध हुये जो महादानी तथा देव- दर्शन के बड़े पक्के थे । ये सारे भारत म चादी और जस्ते का व्यापार करते थे और अपने चादी जस्ता को बैलगाड़ी या पाड़ो पर लादकर लाते थे । इनका व्यापार अक्सर राजस्थान से चलता था । जब राजस्थान से माल खरीदकर बैलगाड़िया से चलते थे तब रास्ते मे देव- दर्शन की समस्या आती थी और इनका नियम था कि वे बिना देव- दर्शन के मुह मे पानी की एक बूद भी नही डालते थे । इसीलिए ये रास्ते मे २४ घण्टे के अन्दर जितना रास्ता तय कर लेते थे और जहा पर इनका २४ घण्टे के बाद पडाव पड़ता था वही पर ये जिन मदिर की स्थापनाकरते थे ।

इनके विशेष उपासय शान्ति कुन्थ तथा अरह नाथ थे, इसीलिए इनके मदिरो मे शाति कुन्थ तथा अरहनाथ की प्रतिमायें विशेष कर मिलती है । देवगढ भी पाडाशाह के व्यापारिक रास्ते मे पड़ता था । इसीलिए राजस्थान से चलते समय उनका पहला पड़ाव झालरा पाटन मे पड़ा, वहा जिन मदिर स्थापित किया । दूसरा आकर बजरगगढ़ मे जिन मदिर की स्थापना की, तीसरा थूवोन जी, चौथा देवगढ़ तथा आगे जाकर ईश्वरवारा आदि जिन मदिरा की स्थापना की । ये इनके एक दिशा से व्यापारिक रास्ते थे । अन्य दिशाओ से जो व्यापारिक रास्ते थे उन पर अलग मदिर बनाये जसे आहार पजनारी आदि ।

पाडाशाह की भक्ति म इतना अतिशय था कि कई चमत्कार उनके व्यापारिक क्षेत्र मे हुये । पहला चमत्कार तो बजरग गढ़ मे घटा कि उनका एक पड़ा खो गया । उसे ढूढते-ढूढते एक खोह म पहुचे । वहा पर उनका पड़ा बैठा हुआ था, लेकिन उसके गले मे लोह की साकल न होकर सोने की साकल लटक रही थी । यह देखकर पाडाशाह चकित हो गये कि मने तो लोह की साकल पहनाई थी । रहस्य तब खुला जब दूसरी साकल पड़े को बाधने के लिए ल गये थे उसका स्पर्श एक छोटे से पत्थर से हुआ तो वह सोने की हो गयी । पारखी तो थे । उस पत्थर को पारस पत्थर जानकर अपने पास रख लिया । बजरग गढ़ का वह स्थान आज भी पड़ा खोह के नाम से प्रसिद्ध है ।

दूसरी घटना देवगढ़ में घटी कि वह बैलगाड़ियों पर जस्ता लादकर लाये और पडाव देवगढ़ की पहाड़ियो पर डाला । रात्रि विश्राम के बाद

उन्होने अपनी बैल गाड़ियो की चेकिंग की तो आश्चर्य चकित रहे कि मै तो जस्ता लाया था चादी कहा से आ गया बैलगाड़ियों में शायद व्यापारियो ने धोखे से जस्ते के स्थान पर चादी भर दी। उन्होने गाड़ियो को लोटाकर व्यापारी के पास पहुचे और व्यापारी को निश्चिन्त बैठा हुआ देखकर बोले कि मैंने तो जस्ते के पैसे दिये आपने तो चादी भर दी। ऐसी भूल करेगे तो दिवालिया हो जाओगे। व्यापारी बोलता हे कि नही भाई मैंने तो जस्ता ही दिया था चादी नही। पाड़ाशाह उस व्यापारी का हाथ पकड़कर बैलगाडी के पास लाते है, देखो चादी ही भरी ह। दोनो व्यापारी बेलगाडी के पास जाकर खोलकर देखते है ता जस्ता भरा था। पाडाशाह शर्मिन्दा हो गये और वह व्यापारी पाडाशाह से कहता है कि आपको व्यापार करते-करते जस्ता भी चादी दिखने लगा हे। पाडाशाह निरुत्तर होकर गाड़ियो को पुन लौटा कर चलते हुए देवगढ आये तो पुन जब गाड़िया को देखते है तो उसमे जस्ता नही था। चादी थी तो पाडाशाह समझ गये कि यह सब देवगढ़ क्षेत्र का चमत्कार है। तभी से यह क्षेत्र अतिशय क्षेत्र के नाम जाना जाने लगा। पाड़ाशाह ने वह सारी चादी जो देवगढ़ के चमत्कार से जस्ता बन गयी थी बेंच कर देवगढ़ मे जिन मदिरो की स्थापना कराई। धन्य है, ऐसे निर्लोभी निर्मोही जिनेन्द्र भक्तो को, आप लोगो के जीवन में यदि ऐसी घटना घटे तो आप कहेंगे कि मेरे पुण्यकर्म के उदय से जस्ता चांदी हुआ है देवगढ़ के अतिशय से नही, और एक छदाम भी दान में न देकर सारा का सारा घर ले आते और विषय भोगों मे खर्च करते। हालांकि ऐसे लोभी मोही व्यक्ति के जीवन म ऐसी घटना नही घटती। लेकिन किसी क्षेत्र पर मदिरों पर आपको थोड़ा बहुत कुछ मिल भी जाय तो आपकी प्रवृत्ति कैसी होती है, इसके सम्बन्ध मे मुझे एक उदाहरण याद आ रहा है।

एक व्यक्ति को एक चादी का सिक्का एक क्षेत्र पर मिला। अब उसके मन मे सिक्के उठाने का भाव आया, लेकिन सोचता है कि कही ये सिक्का भगवान का तो नही है। लेकिन वह भी होशियार बनिया था इसीलिए वह सोचने लगा कि किस तरकीब से मै यह सिक्का ले लू और मुझे चोरी का दोष न लगे। तो वह सोचता है कि मै एक रेखा खीचता हू यदि सिक्का रेखा के उस तरफ चला गया तो भगवान का और यदि इस तरफ आ गया तो मेरा। लेकिन वह सोचता हैकि सिक्का का कोई भरोसा नही। उस तरफ चला गया तो हाथ मे आया हुआ सिक्का चला जायेगा और यदि चित पट करता हूँ। तो भी उसमे खतरा है। तो वह एक तीसरी युक्ति सोचता है कि हे भगवान मै सिक्का उछालता हू। यदि ऊपर चला गया तो आपका और नीचे आ गया तो मेरा होगा। इस प्रकार की चालाकी से वह सिक्के को लेना चाह रहा था, और लेकर आ भी गया, क्योकि सिक्का तो ऊपर जाता नही और भगवान को चाहिए भी नही। इस प्रकार सिक्का उछाला और वह सिक्का नीचे गिर गया।

उसे अपना सिद्ध करके घर चला आया और सोचता है कि भगवान का होता तो ऊपर न चला जाता। इससे सिद्ध है कि सिक्का मेरे लिए ही वहा पड़ा हुआ था सो मैंने उठाकर रख लिया। इसमे मेरा कोई दोष नही। लेकिन पाड़ाशाह इन अमानवीय प्रवृत्तियों से बहुत दूर थे और उन्होंने जस्ते से बनी

हुई चादी देवगढ़ के जिनालय बनाने में दान दे दी। देवगढ़ के अन्दर मूल शान्ति नाथ भगवान का मदिर पाड़ाशाह द्वारा निर्मित प्रतीत होता है।

देवगढ़ के सम्बन्ध मे तीसरी कथा पुराण पर आधारित उद्घाटित करना चाहूगा। जब मै वराग चरित्र का स्वाध्याय कर रहा था उस समय वराग चरित्र के वर्णन में ऐसा प्रतीत हुआ कि देवगढ़ का और वराग के जीवन का घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। वह इस प्रकार है-

वराग एक राजा का पुत्र था और वह किसी कारण से शत्रुओ द्वारा (समयाभाव के कारण वराग चरित्र को सक्षिप्त मे सुनाया जा रहा है) राज्य से निकाला गया। षडयत्र पूर्वक एक घोड़े को विपरीत प्रशिक्षण देकर के राजकुमार का घोड़े पर बैठा दिया गया घोड़ा अपने दुसस्कार के कारण राजकुमार को जगल मे ले गया। राजकुमार भटकता-भटकता ललितपुर आकर एक निसन्तान सेठ के यहा शरण पाता है और सेठ उसे पुत्र के समान प्रशिक्षण देते है। उस समय ललितपुर के राजा ललित नरेश थे। और ललित नरेश के कारण से ही इस नगर का नाम ललितपुर पड़ा। उससे पहले इस नगर का कोई दूसरा नाम रहा होगा। उसी समय ललितपुर नरेश के ऊपर मथुरा नरेश ने आक्रमण की घोषणा कर दी। चूकि मथुरा नरेश का सैन्य बल प्रबल था इसीलिए ललित नरेश भय भीत को प्राप्त हो गये और परिणाम स्वरुप ललितपुर नरेश की सेना मे इस युद्ध के लिए कोई सेनापति पद स्वीकार करने को तैयार नही हो रहा था, क्योकि सभी योद्धा जानते थे कि मथुरा नरेश से जीतना असम्भव है। या तो प्राणो से हाथ धोना पड़ेगा या अपयश हाथ लगेगा। ,जब कोई भी सेनापति बनने को तैयार नही हुआ तो ललितपुर नरेश ने ढिढोरी पिटवा दी कि जो भी मथुरा नरेश से युद्ध लड़ने के लिए सेनापति पद सम्हालना चाहे वह राजसभा मे आकर बीड़ा उठाये यह ढिढोरी की आवाज सुनकर वराग ने राजसभा मे जाकर बीड़ा को उठाकर चबा लिया ।सारी राज सभा और वीर योद्धा हसी उड़ाने लगे कि यह सेठ का पुत्र क्या युद्ध जीतेगा। सेठ-पुत्र भी युद्ध लड़ते है , लेकिन वह बाहर से सेठ-पुत्र था अन्दर से राजपुत्र क्षत्रिय ही था। यह सारा इतिहास राजसभा को मालूम न था इसीलिए हसी उड़ा रहे थे। और ढिढोरी पिटवाने के समय ललितनरेश ने यह घोषणा भी की थी कि जो मथुरा नरेश को जीत कर आयेगा उसे आधा राज्य देकर अपनी पुत्री का विवाह उससे कर देग। वराग सेनापति नियुक्त हुआ और युद्ध मे अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार मथुरा नरेश को बदी बनाकर राजसभा म उपस्थिति कर दिया। ललित नरेश ने अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार आधा राज्य तथा अपनी कन्या वराग को देना चाही तब वराग अपना वास्तविक इतिहास बताता है कि मै श्रेष्ठी का पुत्र नही हू बल्कि राजपुत्र क्षत्रिय हू और अपनी व्यथा राजदरबार मे राजा के सामने प्रस्तुत करता है ।वह कहता है कि राजन्, जो क्षत्रिय होता है वह कन्या के अलावा और कुछ भी स्वीकार नही करता। क्षत्रिय दान देता है लेता नही। इसीलिए मै आपका राज्य नही ले सकता। तब ललित नरेश बोलते है राजकुमार आपने ठीक कहा हैकि क्षत्रिय दान स्वीकार नही करते लेकिन मै भी क्षत्रिय हू ।क्षत्रिय दिया हुआ कभी वापस नही लेता। आप राजकुमार है मैं राजा, और राजकुमार की अपेक्षा राजा को क्षत्रियता की सुरक्षा करना नितान्त

आवश्यक है, इसीलिए मैं जीतने वाले को आधा राज्य दूगा इस घोषणा को मै वापस नही ले सकता।

इधर राजा अपने वचन पर अडिग है। उधर राजकुमार अपनी क्षत्रियता के स्वाभिमान को नही छोड़ना चाहता था। अन्त में राजकुमार को झुकना पड़ा। लेकिन जब क्षत्रिय झुकता है तो झुककर भी अपने स्वाभिमान की रक्षा करता है। और उसने राजा के द्वारा दिये गये सारे राज्यवैभव स्वीकार करते हुए भी स्वीकार न करने जैसी युक्ति के द्वारा समस्या का हल निकाल लिया और घोषणा कर दी कि ललितपुर के चारो तरफ जिन मदिरो की स्थापना कर दी जाये इस दिये गये राज्य के धन से।

आज ललितपुर के चारो तरफ जिन मदिरो की शोभा देखी जा रही है जैसे देवगढ थूवोन जी, सीरोंनजी बानपुर, मदनपुर आदि आदि। अत इस पौराणिक दृष्टान्त् से प्रतीत होता है कि इस देवगढ की स्थापना वराग के काल मे हुयी हो, और बाद मे देवपत्त खेवपत तथा पाडाशाह द्वारा भी जीर्णशीर्ण मदिरो एव जिनबिम्बो के स्थान पर नवीन जिन बिम्ब तथा मदिर स्थापित किये हो और प्राचीन जीर्ण शीर्ण प्रतिमाओ को बेतवा नदी में विसर्जित कर दिया हो, क्योंकि जेन आगम के अनुसार जीर्णशीर्ण प्रतिमाओ को गहरे जल मे विसर्जित करने का विधान हे। परिणाम स्वरुप बेतवा नदी मे खण्डित एव जीर्णशीर्ण अवशेष उपलब्ध होते है।

अब विचारणीय विषय यह है कि वराग किस समय के थे। तो वरांग चरित्र से ज्ञात होता है कि वराग सम्यक दृष्टि चरम शरीरी तद्भव मोक्षगामी जीव थे। ये वराग नेमी नाथ के काल में हुये थे। इस प्रसंग की पुष्टि देवगढ मे उपस्थिति उन शासन देवियो की मूर्ति से होती है, जो अपने साथ दो-दो बच्चे लिये हुए है।देवियों के तो सन्तान होती नही, फिर ये शासन देवी दो-दो बच्चे क्यों लिए हुए हैं। इसका इतिहास भी पौराणिक कथाओं से जुड़ा है। वह इस प्रकार है -

वर्तमान में नेमिनाथ भगवान की निर्वाण स्थली गिरनार के नाम से जानी जाती है। वही के पास के गाव मे एक दम्पति रहते थे। पत्नि जिनधर्म की उपासक थी और पति जिन धर्म विरोधी। धर्म के प्रसग को लेकर पति पत्नि मे विवाद हुआ, तथा पति ने पत्नी की पिटाई करके जिन धर्म छोड़ने को बाध्य किया। उस पिटाई से व्यथित होकर पत्नी अपने दोनो बच्चो को लेकर पहाड़ के ऊपर चली गयी। (उस समय यह पहाड़ ऊर्जयन्त् नाम से जाना जाता था) थोड़ी देर बाद पति का गुस्सा शात हुआ और वह पत्नी को मनाने के लिए पहाड़ पर जाने लगा। उस स्त्री ने अपने पति को आता हुआ देखकर सोचा कि यह अभी भी मेरी पिटाई करके सन्तुष्ट नही हुआ, और मुझे अब जान से मारने के लिए आ रहा है। अत पति के हाथो न मरकर मैं स्वय ही आत्महत्या किये लेती हू। ऐसा विचार कर बच्चों को वही पहाड़ पर छोड़कर, पहाड़ से गिर गयी और मरकरके व्यन्तरणी हुई ।यहा से नारी गिरकर मरी, इसीलिए इस उर्जयन्त पर्वत का नाम गिरनार पड़ा। अब वह व्यन्तरणी अपने अवधि ज्ञान से अपने बच्चो को रोता बिलखता देखती है तो उसे करुणा आ जाती है। और वह अपना पूर्व स्त्री पर्याय का रूप धारण् कर बच्चों के पास आती है और गोदी मे उठा लेती हे उसी समय पति कहता है कि घर चलो, तब वह कहती है कि जिस शरीर के साथ तुम्हारा सम्बन्ध है

वह पहाड़ के नीचे पड़ा हैं, मै तो अब इस समय देवी पर्याय मे हूँ मात्र बच्चो की दया एव मोह के कारण यहा पर आयी हू । वह छोटे बच्चे को कमर पर ले लती है और बड़े बच्चे की ऊगली पकड़कर बहलाने लग जाती है । छोटा बच्चा उस देवी को मा समझकर स्तनपान करना चाहता है लेकिन देवी के स्तन मे दूध होता ही नही । तब वह देवी अगूर एव आम के फल लाकर उन बच्चो का पालन पोषण करती है ।

उसी समय नेमीनाथ भगवान गिरनार पर्वत पर मुनि अवस्था मे तपस्या कर रहे थे। तो यह देवी भक्तन बन जाती है और बाद मे यही उनकी शासन देवी के रूप मे प्रसिद्ध हुई । जब भी नेमिनाथ भगवान की शासन देवी बनायी जाती है तब इसी प्रकार बच्चो के साथ दर्शायी जाती है, इस प्रकार की शासन देवी, जो बच्चो को लिए हुये है । इस प्रकार की प्रतिमाये देवगढ़ मे सैंकड़ो की तादाद मे है ।इससे सम्भव है कि इस क्षेत्र की स्थापना नेमिनाथ भगवान के समय हुयी हो, तथा मूलनायक शान्तिनाथ भगवान के नाम से माने जाने वाली प्रतिमा शान्तिनाथ की न होकर नेमिनाथ की प्रतीत होती है क्योकि इस प्रतिमा के दोनो तरफ शासन देवी बच्चो को लिए स्थापित हैं ।

इस प्रकार देवगढ़ के सम्बन्ध म अनेक प्रकार की किवदतियो, पौराणिक कथाओ, जनश्रुतिओ, एव आलेखो से मैने जो जाना सुना वह सब विचारणीय एव शोध का विषय है ।

इस प्रकार से यह देवगढ ऐतिहासिक एव पौराणिक यशोगाथा को हजारो वर्षो से अनेक अनेक रुप मे गाता हुआ जीवन्त रहा लेकिन इसकी यशोगाथा की जीवन्तत्ता को कुछ दानवो ने जो मानव के रुप मे जन्म गये, उनकी दानवीय प्रवृत्तियो ने, दानियो के द्वारा निर्मित इस देवगढ को नष्टभ्रष्ट कर धराशायी कर दिया और देवगढ़ के जिन बिम्ब एव जिनमदिर उन दानवो के अत्याचार से खण्डित एव खण्डहर बनकर जमीन पर पड़े-पड़े कराहते रहे । कोई भी मानव इन खडित जिन प्रतिमाओ एव खण्डहरो की कराहती हुयी पीड़ा को अपने कानों से नही सुन सका, और सुनते भी कैसे क्योंकि हर व्यक्ति हर भाषा को नही समझ सकता । इनकी पीड़ा तो वही समझ सकता है जिसने इनके जैसा रूप धारण कर लिया होगा । मैंने जब इस क्षेत्र पर प्रवेश किया तो ऐसा लगा कि चारो ओर व्यथा से भरी चीत्कारे -आवाजे आ रही है , मानो ये जमीन पर पड़ी हुई प्रतिमाये कह रही हो कि हे साधु मुझे सीधा करके उच्चासन पर बैठा दो । मै भयभीत हुआ कि इतनी महान जीवन्त जैसी जिनबिम्ब प्रतिमाओ को मै छोटा-सा साधु कैसे उठा सकता हू लेकिन जहा चाह है वहीं राह है । जहा पर भावना होती है वहा पर भगवान भी सहायता कर देते है और हुआ भी यही कि जमीन मे पडी हुयी लगभग ५०० प्रतिमाओ को समाज एव जयपुर के शिल्पियो के सहयोग से सम्हाल कर पोछ कर उच्चासीन किया और इनके उच्चासीन होने की खुशी म इन अर्धमृत प्रतिमाओ की पुन जागृति मे जीर्णोद्धार जिनबिम्ब पचकल्याणक एव विश्व के इतिहास मे प्रथम बार एक अभूतपूर्व प्रभावना के साथ ललितपुर दिगम्बर जैन समाज मे पचगजरथ महोत्सव देवगढ़ मे सम्पन्न हुआ । इन पाच गजरथ की प्रभावना देखकर के मेरा ह्रदय गद्-गद् हो गया कि धन्य है जो पचम काल में भी ऐसे पचगजरथ महोत्सव जैसे धर्मप्रभावना के कार्यक्रम करके सम्यग्दर्शन के प्रभावना अग अवधारण करते है ।

कई लोग पापों में, बरातो आदि मे लाखों रुपया मिटा देते है पाप की प्रभावना मे ,और ऐसे पुण्य मय गजरथ महोत्सव आदि में धन के व्यय को अपव्यय कहते हैं ।ऐसे जीव मिथ्यादृष्टि ही कहे जाते है। धन्य है ऐसे श्रावक जिन्होंने ऐसे पचगजरथ चलाकर अपने धन का सदुपयोग किया। इसमें सरकार की भी सम्पूर्ण सहायता उपलब्ध हुई। सुखदेव सिह सिद्धू जैसे एस० पी० ने सुरक्षा व्यवस्था इतनी तगड़ी की कि किसी की सुई भी नही खोई और लगभग ८-१० लाख जनता ने निर्विकल्प एव निर्भीक होकर धर्मानन्द प्राप्त किया।इस प्रभावना को देखकर लगता है कि अभी हमारा धर्म बहुत लम्बे काल तक टिकने वाला है।

इस देवगढ़ क्षेत्र पर ज्ञानियो के निर्देशन पर प्राचीन काल म शिल्पियो के द्वारा अनकानेक कला-कृतिया अकित की गयी है जैसे बाहुबलि जिस समय मुनि दीक्षा लेकर १ साल से तपस्या मे खडे है, ऐसी दशा म भरत चक्रवर्ति का नमस्कार करना दिखाया गया है। एक मदिर के दरवाजे पर रावण द्वारा केलाश पर्वत को उठाना तथा बालि मुनिमहाराज द्वारा अगूठे से पहाड दबाना, रावण् का रुदन तथा मन्दोदरी द्वारा पति के प्राण की भिक्षा मांगना आदि पौराणिक कथाओं को मूर्ति के रुप् मे अंकित करना, देवगढ़ के शिल्प की विशेषता है। यहा पर एक पत्थर ऐसा पड़ा हुआ है कि जिस पर एक तरफ १ गुणस्थान के जीत समास की सरचना दूसरी तरफ तीन लोक का नक्शा और तीसरी तरफ द्वादशाग का चित्राकन चौथी तरफ का चित्रपट अस्पष्ट है। इस प्रकार देवगढ़ की चार विशेषताये एवं महिमा कालिदास जैसे महाकवियों ने अपने मेघदूत महाकाव्यो मे ग्रथित की है। उन्होंने मेघदूत मे मेघ को दूत बनाकर एक प्रेमी के समाचार को प्रेयसी के पास भिजवाने का प्रयास किया गया। तब उस मेघ को कालिदास रास्ते का निर्देशन देते हुए लिखते है कि हे मेघदूत तुम देवगिरी के रास्ते से जाना। नदी की शीतल छाया तथा पहाड़ की सुरभि एव पर्वत पर पवित्र भगवन्तों के स्पर्श से बहती हुई पवन तुम्हे अद्भुत शक्ति प्रदान करेगी। उस पवित्र देवगढ़ पर्वत की रज अपने माथे से लगाना आदि आदि अनेको प्रकार से देवगढ की प्रशसा कालिदास ने अपने काव्यो मे की है।

वस्तुत इस देवगढ़ में पवित्रता, विद्वता अनेक-अनेक अतिशय कारी घटनाओं के माध्यम से हम सबको दृष्टिगोचर होती है। समय आपका हो रहा है देवगढ़ की एक घटना और याद आ रही है उसे सुनाकर समाप्त करुगा।

जब मै मुगावली चातुर्मास कर रहा था, वहा पर कठनेरा जैन समाज के कुछ घर है। मैने इस कठनेरा समाज का नाम पहली बार सुना। जब मैने उनका इतिहास जानना चाहा तब उन्होने मुझे एक पुस्तक दी। उस पुस्तक मे कठनेरा समाज की उत्पत्ति का स्थान देवगढ़ सिद्ध किया गया है ।वह इस प्रकार से है कि टीकमगढ़ के आगे के कुछ राजपूत मुसलमानी सत्ता के आक्रमण् करने पर पराजिता को प्राप्त हुए। मुसलमान राजाओ की दुर्नीति थी कि मरो या मुसलमान बनो। तब ये राजपूत न तो मरना चाहते थे न मुसलमान बनना चाहते थे। इसीलिए रातो रात वहा से भाग खड़े हुए। मुसलमान राजा को पता चला कि ये राजपूत यहा से भाग गये है, तो उसने इन राजपूतो को पकड़ने के लिए सेनाओं को आदेश दे

दिया ।

ये लोग भागते-भागते देवगढ़ क्षेत्र पर आय । वहा पर एक ललितपुर के सेठ द्वारा विधान कराया गया था । उसकी समाप्त पर एक पगत की जा रही थी । वे सभी राजपूत उस पगत मे जाकर शामिल हो गये । पीछे- से सेना ढूढते -२ आती हे, लेकिन य पगत मे विलीन हो जाने के कारण् सेना पहचान नही पाती हे परिणाम स्वरुप सैनिक वापस लौट जाते हें । और उनके प्राण बच जाते है । अब ये राजपूत सोचत है कि जिस धर्म ने जिस क्षेत्र ने तथा सेट की पगत ने हमारे प्राण बचागे है उसी सेठ का धर्म स्वीकार करगे और उन राजपूतो ने अपना सकट टला जानकर जन समाज से हाथ जोडकर बोले कि हम लोगा को अपनी जात मे मिलाकर अनुग्रहीत करे । लकिन जन समाज सहज मे ही किसी दूसरे को अपनी जात म नही मिलाती बल्कि परीक्षा करके मिलाती हे । बिना परीक्षा किये किसी को मिला लिया जाये तो खतरे की बात होती ह । अत जन समाज ने मिल करक उनकी बुद्धि की परीक्षा लेनी चाही, क्याकि जनी जो होता हे वह बुद्धिहीन नही बुद्धिमान होता ह । अत यह जैन बनकर कही जनियो की बुद्धिमत्त का कलकित तो नही कर दग । अत समाज न निर्णय लिया कि तुम लोग इस उत्सव मे पधार कर सारा जनता को लकडी, कण्डे के बिना पक्की रसोई बना करके खिलाआ तो हम अपनी जाति म मिलायगे । राजपूतो की होनहार भली थी उनकी बुद्धि म सूझी । उन्होने अपनी जो कुछ भी धन दौलत थी उससे रुई कपड़े तथा घी खरीदा तथा उस रुई को घी मे भिगोकर भट्टी जलाई और कड़ाई के ऊपर घी मे मिठाइया बनाई गयी । नीचे भट्टी तथा कड़ाई में भी घी जल रहा है, कैसी अद्भुत मिठाइया होगी घी की अग्नि मे तपती और घी मे ही पक रही है । लकड़ी कण्डा लगा नही सकते थे, इसीलिए लाखो लोगो की मिठाई उस रुई व घी की जलती हुई भट्टी से रसोई बनाकर कठिनाई से पगत दी, और पगत खाकर समस्त जैनियो ने उन्हें सहर्ष सम्मान के साथ अपनी समाज मे मिला लिया । कठिनाई से बने इसीलिए कठनेरा कहलाये ।

इस प्रकार से मैने देवगढ़ के सम्बन्ध म जो पढा था एव अपने अनुभव म लाया वह सब चिन्तन करके आप लोगो के सामने प्रस्तुत किया । जो प्रस्तुत किया गया ह यह शोध का विषय है । सभी लोग इस पर विचार कर देवगढ़ के अतिशय पर अनुभूति कर एव देवगढ़ की पवित्रता पर अपने मस्तक को झुका ए ।इस पवित्र माटी को अपने मस्तक पर लगा ल आर देवगढ़ के प्रति अपनी श्रद्धा कायम कर आर इस सस्कृति की रक्षा करके अपना तन मन धन न्योछावर करक अपन आप को धन्य मान । अब यह जीर्णोद्धरित क्षेत्र पुन खण्डहर के रुप म न हो जाये इसका ध्यान सारी जैन समाज को रह, आर जीर्णोद्धार से जो सुन्दरता, नवीनता आयी है वह युगा युगो तक जयवन्त रहे, ऐसी भावना के साथ म विराम लेता हू ।

"महावीर भगवान की जय"

पत्रकार वार्ता, मुनि श्री से

प्रस्तुति : ऐलक निःशंकसागर जी

प्र० - महाराज श्री क्या आप देवगढ़ क्षेत्र पहले भी आ चुके हैं, अथवा नही यदि आ चुके हैं तो इस अविकसित क्षेत्र पर ग्रीष्मकाल मे इतने लम्बा विश्राम का क्या उद्देश्य है ?

उ०- इससे पहले सन् १९७९ म गजरथ महोत्सव के समय ब्रम्हचारी अवस्था मे आये थे। साधु को गर्मी अथवा सर्दी से कोई फर्क नही पड़ता, उनका तो अपनी धर्मा साधना एव धर्मा आयतनो का सवर्धन एव सरक्षण करना ही मूल लक्ष्य होता है।

प्र० - यह क्षेत्र सिद्ध क्षेत्र, अतिशय क्षेत्र, अथवा कला- क्षेत्र या मूर्ति- निर्माण क्षेत्र इनमे से किस तीर्थ क्षेत्र के रूप मे माना जाना चाहिए ?

उ० - अतिशय क्षेत्र एव मूर्ति निर्माण क्षेत्र के साथ-साथ कला क्षेत्र भी है।

प्र० - यदि यह क्षेत्र मूर्ति- निर्माण क्षेत्र के अन्तर्गत आप मानते है तो इसके प्रमुख कारण आपकी दृष्टि म कौन-कौन से है ?

उ० - प्रथम तो जगल मे खदानो के स्थान पर लगभग ५० किलोमीटर के क्षेत्र मे खण्डित मूर्तिया मिलनी है जो बनाते समय टूटने के कारण वही छोड़ दी गई है। दूसरा इतनी अधिक मात्रा मे प्रतिमाये है तो इनकी वेदी और मदिर भी इतनी अधिक मात्रा मे मिलना चाहिए। तीसरा- मूल वेदी की प्रतिमाओ को छोड़कर के शेष प्रतिमाओं के ऊपर प्रशस्ति नही है, इससे लगता है कि इन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा भी नही हुई है, बाहर भेजी जाती होंगी निर्माण करके।

प्र० - देवगढ़ क्षेत्र की प्राचीनता के सम्बन्ध में आपके क्या विचार है ? अर्थात् इसका निर्माण काल आपकी दृष्टि से कौन से सन् मे माना जावेगा।

उ० - १ सभी मदिर एक काल के बने हुए नही है, और न ही एक शिल्पकार के द्वारा।

२ क्षेत्र का जीर्णोद्वार समय-समय पर होता रहा है, जिससे यह अनुमान लगाना कठिन है कि शिलालेख जीर्णोद्वार के हैं अथवा मूल निर्माण के।

प्र० - कुछ पुस्तकों मे इस क्षेत्र का भगवान महावीर की प्रतिमा न होने के कारण लगभग ३००० वर्ग प्राचीन माना गया है। अर्थात महावीर के पूर्व का यह क्षेत्र माना गया है। क्या यह प्राचीनता सही मानी जा सकती है।

उ० - भगवान महावीर स्वामी की प्रतिमायें यहा पर विद्यमान है। इसलिए यह नही कहा जा सकता कि यह भगवान महावीर स्वामी के पहले का क्षेत्र है।

प्र० - इस तीर्थ के सभी मदिरो मे, जो कि सख्या मे ३१ है, विराजित तीर्थंकर प्रतिमाए एक रूप की हैं इनका निर्माण- विन्यास समान है अथवा नही ? यदि नही तो इसका क्या कारण हो सकता है ?

उ० - प्रतिमायें एक रूप नही है, भिन्न-भिन्न कलाकृतिया शिल्पकारों ने व्यक्त की है।

प्र० - महाराज श्री, आपने देवगढ़ क्षेत्र पर अभी

पत्रकार वार्ता मुनि श्री सुधासागर जी महाराज से

अभी इन्द्र ध्वज मण्डल विधान के आयोजन मे भाग लिया। विधान देवगढ़ समीपस्थ नगर ललितपुर अथवा जाखलौन में भी आयोजित हो सकता था। देवगढ़ मे जनसाधारण को आवागमन का साधन भी उपलब्ध नही है, अर्थात कम है, इसका क्या कारण माना जा सकता है ?

उ० - समवशरण हमेशा पर्वतो के ऊपर ही लगते है शहरो मे नही। शहरो मे धार्मिक अनुष्ठान करने मे शुद्धि का अभाव रहता है। क्षेत्र पर करने से क्षेत्र का प्रचार- प्रसार एव श्रावकगणो की भावना क्षेत्र से जुडने से क्षेत्र का उद्धार होता है।

प्र० - यदि देवगढ़ क्षेत्र का जीर्णोद्धार का आपका विचार है तो यह वास्तव मे जिनागम संस्कृति के लिए एक गौरवमय बात है। जीर्णोद्धार ? । विशाल प्रतिमाओ वाले क्षेत्र का क्या आसानी से अल्प समय की अवधि मे पूर्ण हो जावेगा ?

उ० - आसानी से अल्प समय मे भी हो सकता है यदि कार्यकर्ता आसपास की दि० जैन समाज सकलित होकर क्षेत्र के प्रति श्रद्धा भक्ति प्रगट करे। क्योकि इस आज के वैज्ञानिक युग मे कोई भी कार्य असम्भव नही है। अभी तक कार्य क्या नही हुआ इसमे जो बाधाये थी वह समस्त बाधाये दूर हो चुकी है। इसलिए कार्य शीघ्र सम्पन्नहोगा। उन बाधाओ को श्री इन्द्रध्वज मण्डल विधान के दौरान तीन तरफ से दूर किया गया- १ जन समूह २ प्रशासन ३ साधु। तीनो ने बैठकर सरल एव युक्तिपूर्ण ढग से बाधाओ को सुलझा लिया है।

प्र० - महाराज श्री आप रचनात्मक कार्य कर जैन संस्कृति की रक्षार्थ एक अभिनव कार्य कर रहे है। यह समाज के स्वागत योग्य है। क्या इस विशिष्ट कार्य मे यहा की स्थानीय समाज भी रुचि ले रही है।

उ० - आस पास की समाज रुचि ले रही है, तभी तो जीर्णोद्धार कार्य तीव्र गति से प्रारम्भ हुआ है। साधु तो केवल आशीर्वाद एव उपदेश देता है कार्य तो समाज ही करती है।

प्र० महाराज श्री, आपने इस विशाल कार्यक्रम- जीर्णोद्धार मे क्या देश के धर्म -प्रेमी श्रावक आर्थिक सहयोग देने को तत्पर है ?

उ० समस्त भारतवर्ष की दि० जैन समाज इस क्षेत्र के जीर्णोद्धार मे सहयोग कर रही है।

प्र० - मुनि श्री आपने जीर्णोद्धार हेतु इस क्षेत्र का चुनाव किन आधारो पर किया है ?

उ०- संस्कृति की सुरक्षा के लिए क्योकि जितनी प्राचीन संस्कृति सुरक्षित रहेगी उतना ही धर्म भविष्य मे मजबूत रहेगा जैसे नीव मजबूत होने पर महल अधिक समय तक टिकता है।

प्र० - क्या आप इससे पूर्व भी किसी क्षेत्र का जीर्णोद्धार करवा चुके है , यदि हा तो कहा और उसका कार्यकाल कौन सा रहा था ?

उ०- साधु समस्त भारतवर्ष के प्राचीन तीर्थक्षेत्रो की सुरक्षा करने के लिए आशीर्वाद एव उपदेश देते है।

प्र० इस क्षेत्र मे २१ जिनालय है। क्या सभी मदिरो का जीर्णोद्धार आपके सान्निध्य मे हो रहा है

आचार्य साधु की गुरु मूर्ति करती अभाव की सकल पूर्ति।
शासन देवी - अंबिका प्रभु की भक्ति मिल मिल करें।

अथवा २४ प्रमुख जिनालयो तक ही यह कार्य सीमित रहेगा ?

उ० - साधु अतिथि होता है, उनके रुकने और बिहार का समय निश्चित नही होता। रमता योगी बहता पानी। इसलिए कहा नही जा सकता कि यह कार्य हमारे सान्निध्य में पूर्ण हो सकेगा या नही।

प्र० इस क्षेत्र मे जीर्णोद्धार हेतु आपने किस प्रकार की योजनाये कार्यशैली प्रयोग मे करने का विचार मुख्यत बनाया है ?

उ० - प्रतिमाओ का स्थायी रुप मे जीर्णोद्धार हो और उनको उच्चासन पर विराजमान कर पूज्यता के योग्य बनाना मुख्य लक्ष्य है।

प्र० महाराज जी, देवगढ़ क्षेत्र की प्रतिमाओ की विशेषताये जो आपको विशिष्ट लगी है उनसे अवगत कराये ?

उ० - दरवाजे के ऊपर प्रथमानुयोग की कथाओ को मूर्तिक रुप देकर व्यक्त किया गया है। जैसे म० न० ४ मे रावण द्वारा बालि मुनि महाराज को कैलाश सहित उठाने का उपक्रम एव साथ मे मन्दोदरी का पति से प्राण- भिक्षा का चित्र, रौद्र उत्पत्ति आदि, मुनियो की वैयावृत्ति आदि के दृश्य, मुनियो की नवधा भक्ति एव आहार का चित्रण। मदिर न ९ में चतुर्विधि सघ जिसमे आर्यिकाओ को विनीत भाव से पचपरमेष्ठी की आराधना करते दिखाया गया है। प्रतिमाओ के केश बिन्यास विचित्र प्रकार से चित्रित किय गये है। तीर्थकर की माताओ के चित्र बच्चे को विभिन्न आकृति के लिए हुए बनाय गये हैं। कही-कही तीर्थंकर के पिता को भी बालक अवस्था मे गोद मे लिए दिखाया गया है।

प्र० - क्या देवगढ़ क्षेत्र में भगवान बाहुबली जी की प्रतिमा है ? यहा स्थित प्रतिमा मे अन्य प्रतिमाओं की अपेक्षा क्या कुछ नवीनता है ?

उ०- भगवान बाहुबली जी की प्रतिमाये है, जिनको विशिष्ट उपसर्गित कर दिखाया गया है।, विच्छु छपकली , सर्प अनेक प्रकार के जीव जन्तु शरीर पर उपसर्ग करते हुए चित्रित किये गये है।

प्र०- देवगढ़ में खण्डित प्रतिमाओ के सम्बन्ध मे आपके क्या विचार है ? अर्थात ये अर्द्ध- निर्मित रही है या किसी शासक के काल मे इनको खण्डित किया गया है ?

उ० - कुछ खण्डित की गयी है, कुछ अव्यवस्था के कारण खण्डित हो गयी है।

प्र० - क्षेत्र की पूजयनीय प्रतिमा भगवानशांतिनाथ की किस काल की है ?

उ० - इस सम्बन्ध में कोई विशेष ठोस अनुमान नही है, क्योकि इस प्रतिमा का कई बार जीर्णोद्धार हो चुका है ?

प्र० - यदि मूल प्रतिमा भ० शान्तिनाथ जी की पाड़ाशाह द्वारा प्रतिष्ठित है, माना जाए, जैसा कि मूर्ति पर अकित आलेख से स्पष्ट है, तो क्या बाहर से लाकर यहा प्रतिष्ठित की गई है, जबकि क्षेत्र पर स्वय मूर्ति- निर्माण होता रहा हैं ? क्या पाड़ाशाह ने भी यहा आकर प्रतिमाए खरीदी होंगी ऐसा कहना सम्भव व उचित होगा ?

उ० - प्रतिमा का निर्माण यही पर किया गया है, क्योकि प्रतिमा का पाषाण और पहाड़ी का पाषाण एक सा प्रतीत होता है।

प्र० - क्या मूलनायक प्रतिमा भगवान शान्तिनाथ का भी जीर्णोद्धार किया जायेगा ?

उ० हा ,क्यो नही।

प्र० - देवगढ़ क्षत्र का जीर्णोद्धार चरण आपने किन मदिरो से प्रारम्भ किया है ? उन मदिरो की क्या विशिष्टताए है, जिनसे आप प्रभावित हुए और जिनका कार्य प्राथमिकता के आधार पर प्रारम्भ कराया गया ?

उ० - सबसे पहले एक- सी प्रतिमाओ का सग्रह करके त्रिकाल- चौबीसी बनाने का विचार किया, जिसमे वर्तमान चौबीसी म० न० ३ के विस्तार को देखते हुए स्थापित करने का आशीर्वाद दिया एव भूत- भविष्य की चौबीसी मदिर न० १९ एव २० म स्थापित करने का विकल्प किया है। शेष मदिरो को क्रम से विधिवत् स्थापित किया जायेगा।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र देवगढ़ एक परिचय

प्रस्तुति : नरेन्द्र कुमार

आत्म दर्शन करने के लिए पहले परमात्मा के दर्शन करना आवश्यक है यह नियत है, परम सत्य है और यह अनादि अनन्त काल की परम्परा है । साक्षात् परमात्मा के दर्शन करने के पूर्व स्थापना निक्षेप परमात्मा के दर्शन करने से निधत्ति और निकाचित कर्मों का नाश होता है । समोशरण मे भी साक्षात् भगवान के दर्शन करने के पूर्व मानस्थम मे जिन विम्ब के दर्शन करना वन्दन करना आवश्यक है ।

साक्षात् परमात्मा का हर काल मे हर क्षेत्र मे उपलब्ध होना सम्भव नही है । इसलिए भव्य मुमुक्षु जीव परमात्मा की आकृति को पाषाण आदि मे उत्कीर्ण करके स्थापना-निक्षेप के माध्यम से भगवतता का स्वरूप मानकर अपने स्वरूप की पहचान करने के लिए साधन बना लेता है । इसी का प्रतीक यह श्री देवगढ़ जी है । हजारो साल से हजारो प्रकार की कलाकृतियो मे अकित दिगम्बरत्व के प्रतीक विद्यमान है । यहाँ की (श्रीदेवगढ़ जी की) वास्तविक ऐतिहासिकता इसी स्मारिका मे पँचगजरथ महोत्सव पर परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी द्वारा दिये गये प्रवचनो के सारांश के रूप मे दी है । उसमे आप बड़े अच्छे ढग से समझ सकेगे ।

देवपत खेवपत द्वारा स्थापित यह श्री देवगढ़ जी क्षेत्र कालान्तर मे आतातताइयो द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किया गया । जिन धर्म-विरोधियो द्वारा जिन-विम्बों एव जिन-मन्दिरो को खण्डित करके खण्डहर का रूप दे दिया। खण्डहरों की यह दुर्दशा सैकड़ो सालो तक पड़ी-पड़ी कराहती रही है । जंगल मे होने के कारण यह क्षेत्र लोगों की दृष्टि से ओझल हो गया । किसी प्रकार से गाय चराने वाले (ग्वाला) से इस क्षेत्र की जानकारी प्राप्त हुई । बाद मे दार्शनिको एव शोधकर्ताओं को वायुयान से यात्रा करते समय यह क्षेत्र (श्री देवगढ़ जी) दृष्टिगोचर हुआ । उसके बाद समाज के विभिन्न कार्यकर्ताओं ने अनेक-अनेक प्रकार से क्षेत्र के विकास करने का प्रयास किया । लेकिन जिन-विम्ब वा जिन-मन्दिर खण्डहर का रूप धारण किये हुये व्यथित कथा का विषय बने रहे । सन् १९९१ मे परम पूज्य सतशिरोमणि आचार्य १०८ श्री विद्यासागर जी महाराज के परम शिष्य आध्यात्मिक सत महाकवि मुनि १०८ श्री सुधा सागर जी महाराज पूज्य ऐलक १०५ श्री निशक सागर जी महाराज के साथ पधारे, और इस क्षेत्र की दुर्दशा देखकर उनका हृदय व्यथित हो गया । मुनिश्री ने अपनी साधना एव आराधना के बल पर, बुद्धि और विवेक से, जिन-विम्ब एव जिन-मन्दिरो का उद्धार करने के लिए, पुरातत्व को दृष्टि मे रखकर, समाज एवं सरकार को निर्देशन दिये।

मुनिश्री सुधासागर जी के प्रवचन रूपी धर्मामृत से प्रेरित होकर श्री जैन वीर व्यायामशाला सयोजक श्री नरेन्द्र कुमार (छोटे पहलवान) के कुशल नेतृत्व मे श्री वीर व्यायामशाला व ललितपुर नगर की अनेक सामाजिक सस्थाओं ने कार सेवा द्वारा मुनिश्री की भावना को साकार किया, जिसके फलस्वरूप छ महीने की अल्पावधि मे ही ४१ जिनालय एवं ५०० जिन-विम्बो को अखण्डता का रूप देकर वेदी पर विराजमान किया गया । देवगढ़-प्रांगण के पर्वत पर लगभग सोलह प्राचीन मानस्तम्भों का जीर्णोद्धार कर उन्हें प्रांगण मे यथा-स्थान स्थापित किया गया है । एक समानस्थम तलहटी के प्रांगण मे मन्दिर के सामने

स्थापित है । देवगढ़ के कई द्वारो के ऊपर एव दीवालो के ऊपर चौमुखी जिनबिम्ब सहित मानस्तम्भ मड़ियाँ रखी हैं, एव मानस्तम्भ सहित चौमुखी मड़ियाये मन्दिर के प्रागण मे जीर्णोद्धार की हुई रखी है, जिन्हे यथा योग्य स्थान पर विराजमान किया जाना है । इनकी सख्या लगभग १०-१५ हैं । पर्वत के प्रागण मे खण्डित प्रतिमाओं को रखने के लिए लगभग ३२९ छोटे-बड़े सभी प्रकार के स्तूप (पेडस्टल) बने हुये है, जिनके ऊपर देवगढ़ के भग्नावशेष विराजमान है और, बहुत सारे भग्नावशेष पर्वत के सग्रहालय मे एव तलहटी के सग्राहालय मे रखे हुए है ।

जीर्णोद्धरित प्रतिमाओं को अखण्डता का रूप देकर जिनालय मे वेदी पर विराजमान करने पर उनकी शुद्धि के लिए एक विशाल पचकल्याणक एव पचगजरथ महोत्सव का आयोजन हुआ । जिसमे उ प्र सरकार के मुख्यमन्त्री श्री कल्याण सिह ने शासन की ओर से महोत्सव की स्वीकृति दी, एव क्षेत्र के विकास के लिए सासद, विधायक, एव जिला के जिलाधिकारी, तथा महोत्सव की सुरक्षा के लिए पुलिस अधीक्षक श्री एस एस सिद्धू ने काफी सक्रिय भूमिका निभाई इससे काफी, विकास हुआ, एव क्षेत्र मे जल, विद्युत् तथा सड़क की अच्छी व्यवस्था स्थायी रूप से हुयी । अभी उ प्र शासन ने सुरक्षा की दृष्टि से क्षेत्र पर (पर्वत पर) जिन-मन्दिरो के चारो तरफ परकोटे के लिए अनुदान, स्वीकार किया था, जो कि कतिपय कारणो से अभी देवगढ़ की कमेटी को नही मिला ।

श्री पचकल्याणक एव पचगजरथ मोहत्सव मे जिन-प्रतिमाओं को जीर्णोद्धारित किया गया था, उन्ही प्रतिमाओं के साथ, लगभग १२५-१५० जीर्णोद्धारित प्रतिमाओं की, स्थानाभाव के कारण, प्रतिष्ठा नही की जा सकी, और न ही उन्हे जिनालय मे विराजमान किया जा सका । ये प्रतिमाये प्रतिष्ठा एव जिनालय का इन्तजार करती हुयी पर्वतवाले संग्रहालय व नीचे तलहटीवाले सग्रहालय मे दीवाल के सहारे से रखी हुई है ।

जीर्णोद्धारित मन्दिर एव प्रतिमाओं मे एक मन्दिर न ३ सहस्त्रकूट चैत्यालय है, जिसका इतिहास अपनी गाथा अपने आप प्रकट करता है । यह मन्दिर सहस्त्रकूट के नाम से प्रसिद्ध है । कई शिलाखण्डो के ऊपर कलाकृति के साथ जिन-बिम्बो को उत्कीर्ण किया गया है । बाद मे समस्त शिलाखण्डो को मिलाकर स्तूप का रूप दिया गया है । चारो दिशाओं मे प्रतिमाये अकित है । प्रत्येक दिशा मे २५२-२५२ प्रतिमाये दृष्टिगोचर होती हैं । पूर्व और पश्चिम मे दरवाजे खुले हैं, जिन पर लोहे के दरवाजे लगे हुये है । उत्तर और दक्षिण दिशा की तरफ अन्दर से कोई दरवाजे का आकार नही दिखता । लेकिन बाहर से देखने पर स्पष्ट रूप से एक पत्थर के ऊपर किवाड़ो सहित बन्द दरवाजे को बड़ी सुन्दर कलाकृति द्वारा बनाया गया है, जो शास्त्रो के अनुसार इस बात का प्रतीक है कि कोटिभट्ट राजा श्रीपाल ने बहुत समय से बन्द सहस्त्रकूट जिनालय के दरवाजे अपनी गुण-सम्पन्नता के कारण खोले थे। तो, वह पूर्व के दरवाजे से प्रवेश कर पश्चिम के दरवाजे से निकल गये थे, और उत्तर दक्षिण के दरवाजे उन्होने नही खोले थे । इसलिए सहस्त्रकूट जिनालय मे उत्तर-दक्षिण के दरवाजे बनाये तो जाते है, लेकिन उन्हे बन्द रखा जाता है, जिसका प्रतीक देवगढ़ की सहस्त्रकूट जिनालय है । इस जिनालय के स्तूप की लम्बाई चौड़ाई निम्न है—

(i) एक दिशा मे ल २४ × चौड़ाई २९" है

(ii) चारो दिशाओं की ल ९६ × चौड़ाई २९"

(iii) वेदी की सम्पूर्ण ल १२०× ३९" चौड़ाई है।

अन्य जिन मन्दिरो एव जिन-बिम्बो को, जिन्हे जीर्णोद्धारित करके पुन. प्रतिष्ठित किया गया है, विवरण सलग्न किया जा रहा है ।

बिलखते देवगढ़ में अलख जग गया

रचयिता: देवगढ़ जीर्णोद्धारक संत मुनि
श्री सुधासागर जी महाराज द्वारा

कब देखा था ? कब सुना था ?
अनुभव भी तो नही किया था -कि...
सूर्य के आलोक में भी अन्धकार होता है,
लेकिन सुना ही नहीं, अनुभव भी किया है -
देवगढ़ मे/ धर्म के दिवाकर तले/ अंधेरा ! हॉ...
ऐसा क्यो होता है । ऐसा क्यों हुआ है ?
गवेषणा शुरू हुई, मार्गणा प्राप्त हुयी
फिर क्या था... !
घोषणा उद्घोषित हुई सुराग मिल गया कि...
प्रमाद के आवरण पड़े थे न समाज के ऊपर
देवगढ़ के प्रति श्रद्धा ग्राह रूप ले चुकी थी
भौतिकता फैल चुकी थी,
कहा किस को फुरसत थी
दृष्टि से ओझल कर दिया था देवगढ़ ।
अनेक बाधाओ का दिशा शूल
लग गया था देवगढ़ पर
इस दिशा -शूल को देखकर ,
चिन्तातुर हो बैठ गया ।
शान्ति नाथ के चरणों मे
चिन्तामणि बाबा ने चिन्ता दूर की ।
दिशा शूल को हटाने का,
सुराग मिल गया ।
मिलते ही संकल्प किया सकल्प हुआ
प्रयास पूरा हुआ फली भूत हुआ -
अन्धकार पलायन हुआ ।
मुझे पालना मिल गया , और ... ।
मैं... झूला बनाकर बैठ गया ।
देवगढ़ की सम्पदा का अवलोकन किया
हॉं... ! डबडबा कर, बरस पड़ी आंसू की धार ।
मेरी आँखों से ... ।

अध्यात्म की कलाकृति — "परमेश्वर की
आकृति की, विकृति लखकर
भाव -विभोर हो धरातल से उठाकर
सिर पर धरना चाहा,
सुकृत पुण्य ने साथ दिया,
मंगलाचरण इन्द्रध्वज विधान से हुआ
हो गया कार्य शुरू विकृति को
आकृति का रूप देने का
सस्कृति की सुरक्षा का ।
परिणाम स्वरुप -बैठ गयी
परमेश्वरी प्रतिमा सिहासन पर
पर हॉं...अब भी परमेश्वरी
शक्ति का दर्शन नही हुआ ।
क्यों नही हुआ ... ?
मात्र परमेश्वर का प्रदर्शन हुआ -
फिर क्या था -
शक्ति के दर्शन का उपक्रम शुरू हुआ -
फिर क्या था -
शक्ति के दर्शन का
उपक्रम शुरु हुआ,
पचकल्याण/पचगजरथ महोत्सव ने
परमेश्वरी शक्ति को
परमेश्वरी प्रतिमा में
विराजमान जरा किया
अतिशय प्रकट हुआ ... ।
जय जय कार गूज उठा ।
प्रत्येक जिनालय मे नमोस्तु नमोस्तु कर
नतमस्तक होता गया,
उन अनगणित परमेश्वरी प्रतिमाओं में प्रकट हुये
पंच परमेष्ठी के चरण -कमलो में, धन्य हुआ मैं ... ।
धन्य हुयी समाज
भूले वैभव को फूल- सा फूला देखकर,
तृप्त हुईं आंखे फूल फूल को लखकर !

देवगढ़ का आँखों देखा हाल

प्रस्तुति सवाई सिंघई
संजय मुंगावली

धन्य हुई यह शिखर श्रृंखला पावन तीरथ धाम बने।
जहाँ अनेको वीतराग के मन्दिर अति अभिराम बने ॥
जिन मन्दिर का पता बताती वही पताका कहलाती।
मुनि की मुद्रा जिन मुद्रा का स्वय पताका बतलाती ॥
जिन शासन की स्वय पताका मुनि दिगम्बर सत रहे।
सुधा सागर जी युगा-युगा तक ध्वज फहरात जयवत रहे ॥
सुधा सागर ह जीर्णोद्धारक भू पर वा जयवत रहे।
निशक सागर नि शक बनकर ध्वजा साथ ले डटे रहे।
वीतरागता की जिन प्रतिमा जिनने यहा दिखाई ह।
विद्या सिन्धु के शिष्य सुधा को दुनिया देती दुहायी है ॥
नयन टिके न जहा दर्शकर देवा का देवगण हो।
कितना विस्मय किसे नही हो आज देख लो देवगढ़ को ॥
देवा के भी देव शाति जिन पर्वत उपर शात रहे
युगो-युगो तक दिगम्बरो का जिन शासन जयवत रहे ॥
वही जैन सस्कृति की कृतिया जगह-जगह मनमोह रही।
वीतराग जिन शासन के उस दिगम्बरत्व से जोड रही ॥
मुनि दिगम्बर सुधा सिन्धु न जिनसा रुप बनाया है।
तभी जिनेश्वर की महिमा को जीवन म लख पाया ह ॥
यहा जिनेन्द्र की प्रति कृतिया एक नही लाखा मिलती।
बिन बोले ही भव्य जनो क मनके सब कालुष हरती ॥
नाम रहे दवपत खेवपत द्वय जिन शासन क भक्त रहे।
गिरि सम्मेद शिखर मे जिनके ज्वार चढ़ा मोती बने।
जस्ता, चादी बनी थी जिनकी जिससे शाति सदन रचा ॥
देवो के गढ़ का जो अतिशय सदिया से आज बचा।
कलाकृति का क्षेत्र बिन्दु सा परमार्थ सस्कृति सन्धि रही।
प्रतिबोधित थे मुख्यमत्री जब अध्यात्म सिधु नेवात कही ॥
सधा सागर क उपदेशो ने गजब प्रभाव दिखाया है।
जगल मे मगल बरसा के अनुपम मार्ग दिखाया ह ॥
लोभी कृपणो क जीवन म दान उजला प्रगट हुआ।
तीर्थो के उद्वार हेतु यह गजरथ मला सफल हुआ ॥
समाज शासन आर साधु न दवगढ तीर्थाद्वार किया।
विश्व के इतिहास म पहला महात्सव पूर्ण किया ॥
पाचा गजरथ एक साथ हा गिरि के ऊपर सम्पन्न हुये।
छब्बीस हाथी गजरथ आगे लख प्रभावना धन्य हुय ॥
पाच लाख जनता न आकर जिन शासन महिमा दखा।
सतो की सत्कार सत के साथ जहा बठा दखा ॥
धर्म गैढ थ सुधा सिन्धु जी जन समाज की भीड रही।
मुख्यमत्री कल्याणसिह थे यू पी की जा नाव रही ॥
श्री धीमाना न बिम्बा का उच्चासन दकर पधराया।
सुधा सिन्धु ने सूर्य मत्र द पचकल्याणक करवाया ॥
पचशतक ही प्राण प्रतिष्ठा हुई चतर्विध सघ रहा।
पाप मला को जा धोयेगा उनका जीवन धन्य रहा ॥
मुनि आर्यिका एलक क्षुल्लिका भी सग थी।
आचार्य श्री विद्यासागर की रही पिच्छिका तरह थी ॥
सघ शिरोमणि सुधा सिन्धु थे नि शक सागर लहर रहा।
ग्यारह रही आर्यिका माता दृढमति मृदुमति प्रमुख रही ॥
जहाँ एस पी सिद्धू भाई थो सत भक्त जागृत प्रहरी।
जिनके अडर म पुलिस श्री धर्मोल्लास से हरीभरी ॥
जैन-अजैन का भेद नहीं था अपार जनता उमड पड़ी।
छोटा सा ये देवों का गढ़ फैल रहा था घड़ी घड़ी ॥

श्री दिगम्बर जैन त्रिकाल चौबीसी, अशोकनगर (गुना) म. प्र.
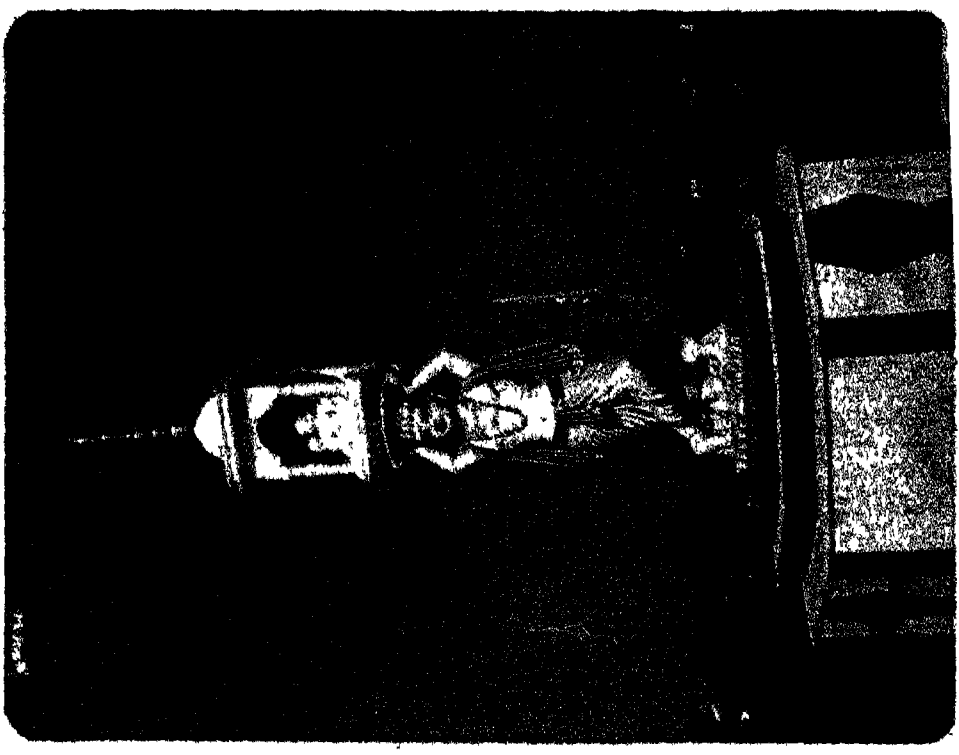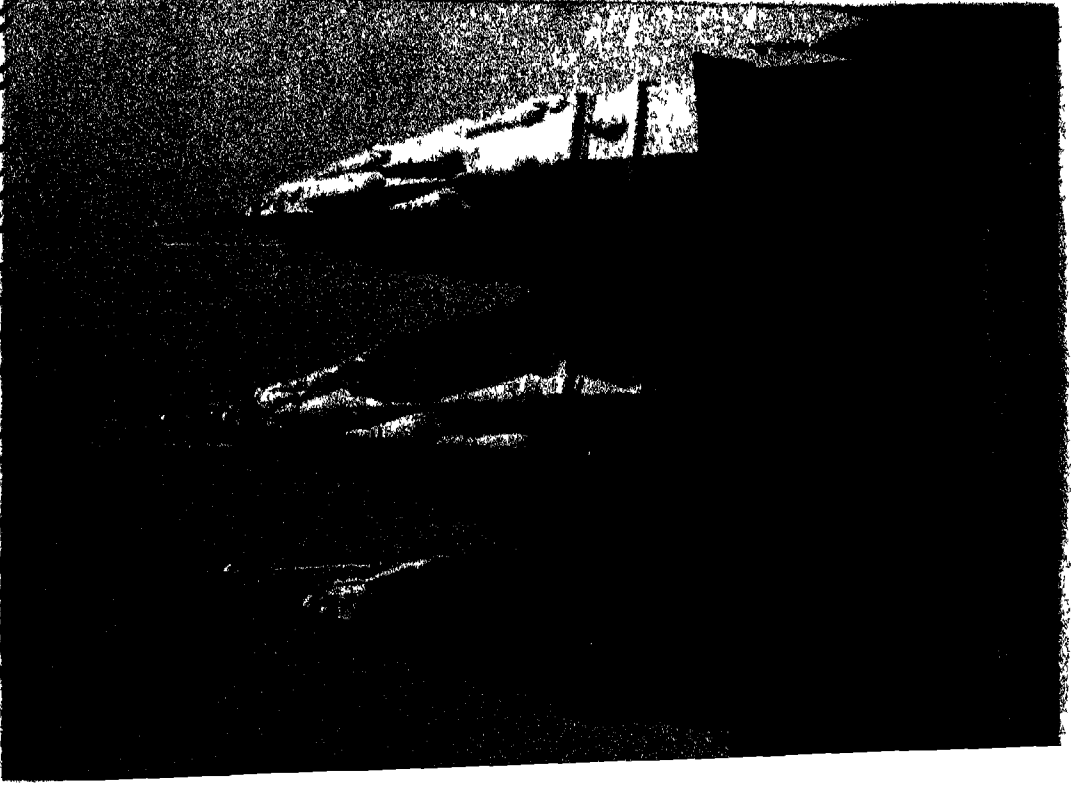
त्रिकाल चौबीसी के मन्दिर का विहंगम दृश्य

अशोकनगर
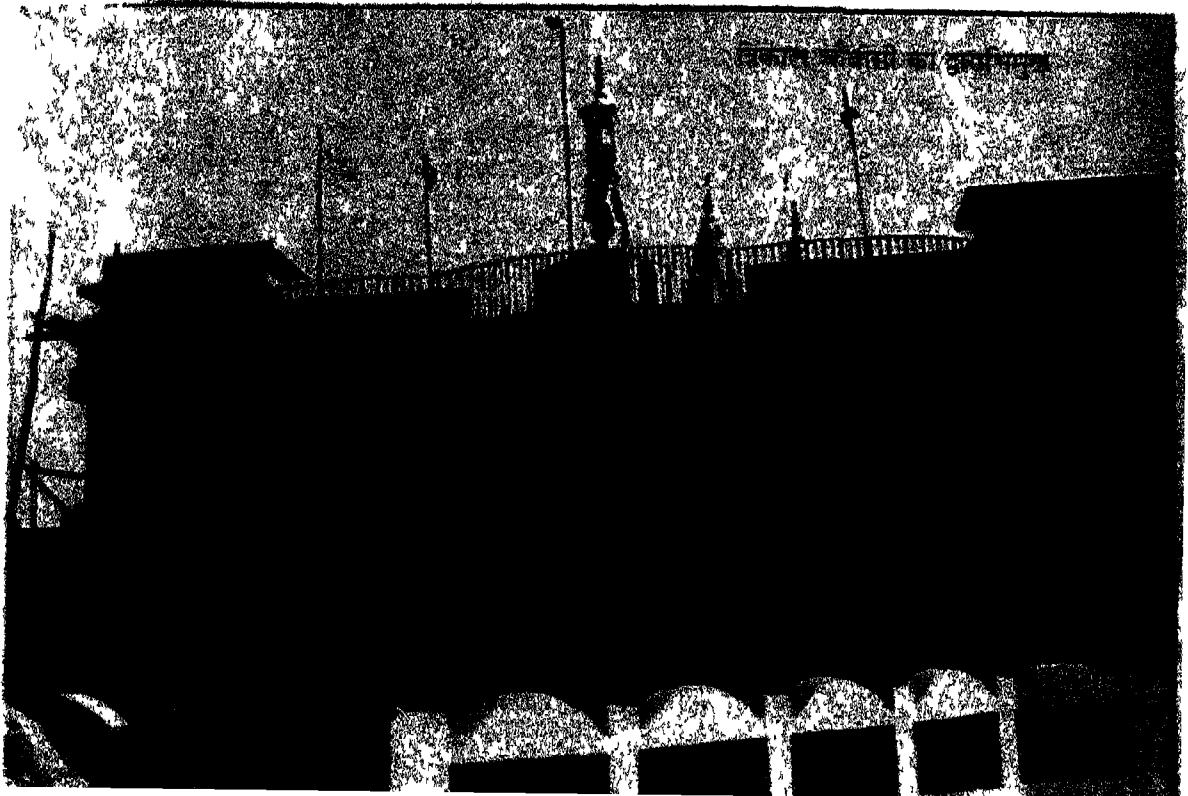
जैन संस्कृति एवं त्रिकाल चौबीसी, अशोकनगर

ब्र. बहिन विमलेश प्रियदर्शनी ब्राह्मी विद्या आश्रम सागर

(१) जैन संस्कृति शाब्दिक अर्थ - जिन का अर्थ है जीतना, दुनियाँ जहाँ हार जाती है वहा भी जिन्होंने जीत लिया। ये सारा जगत मन और इन्द्रियो का गुलाम है उस गुलामी के बधन से जो आजाद मुक्त हो गये। कषाय और कर्म रूपी शत्रुओ को जिन्होने जीत लिया है उसे ही जैन दर्शन ने जिन कहा है जिनकी प्रत्येक क्रिया जैसे चलना, बोलना, उठना, बैठना होना, जीना सब सस्कृति नाम पा जाती है। ऐसा मुक्त व्यक्ति जिस क्षेत्र को स्पर्शित करता है वहा का कण-कण पावन हो जाता है। जिस तन से ये साधना करत हे वह तन भी मदिर हो जाता है। इस प्रकार अर्हन्त जिन से सम्बन्धित द्रव्य, क्षत्र, काल, भव, और भाव ये पाचो ही सस्कृति है।

(२) जैन संस्कृति कब से कहाँ तक - यह सस्कृति अनादि काल से है यानि उसका कोई आदि अत नही हे। शुरु आत नही है और अन्तिम छोर भी नही हे इसीलिये ये जन सस्कृति परम्परा अनादि अनिधन है इसकी अनादि अनिधनता अकारण नही है क्योकि ससार में रहन वाले जितने-जितने भी जीव है उन सबको सुख शान्ति की प्यास सदा से रही है और ये बात सच है कि दुनिया मे यदि कोई समस्या है तो उसका समाधान निश्चित है। ये समस्या दुख की अनादि काले से है तो समाधान भी अनादि कालेसे होना चाहिए जैसे व्यक्ति के अन्दर प्यास है तो उसका समाधान पानी है ऐसे ही जो लोग जो सुख के प्यासे थे उनमे से कुछ लोगों ने पानी ढूढ लिया और शांत हो गये कुछ ऐसे हैं जो प्यासे हैं लेकिन पानी का पता नही है आर कुछ उसके पनघट के करीब चल दिय है। परन्तु दुनिया में ऐसे लोगों की भी कमी नही रहेगी जो पनघट से दूर रहेगे यानि प्यासे ही रहेगे जो प्यासे थे प्यासे ही रहेंगे इससे ससार को अनादि अनिधनता सिद्ध है और कुछ तृप्त हो गये और आगे भी होते रहेंगे यानि मुक्त होते रहेगे इसकी अपेक्षा मोक्षमार्ग भी अनादि निधन है। मोक्ष मार्ग के नेता जिनेन्द्र भगवान हैं इसलिये ये जैन सस्कृति की सनातन परम्परा है जिसका कोई आदिम छोर-अतिम छोर नही है।

(३) जैन सस्कृति के प्रतीक - देव शास्त्र गुरु जो मजिल पर पहुच गये अर्थात् मुक्त हो गये एव १८ दाषो से रहित सर्वज्ञ हितोपदेशी, वीतरागी होते है वे सच्चे देव हैं। मजिल पर पहुचकर जो उन्होने जाना देखा पाया वह ही बाद मे वाणी से मुखरित हुआ वह आगम शास्त्र है। ऐसे आगम की वाणी मे स्थापना निक्षेप का बहुत महत्व है। प्राचीन दि० जैन ग्रन्थो मे तीनो लोको मे असख्यात अकृतिम जिन प्रतिमाओ का उल्लेख है। इससे ही सिद्ध है कि अनादिकाल से जिन प्रतिष्ठा का महत्व रहा है। जब साक्षात् अर्हन्त देव बिहार नही करते थे तब धातु या पाषाण की मूर्ति बनाकर उसमे अपनी बुद्धि से अर्हन्त के गुणों की स्थापना करके साक्षात् भगवान जिसे उनकी पूजा/सम्मान/ करते हैं इन जिन बिम्बो को अर्हन्त के अभाव में ही नही बल्कि साक्षात जिनेन्द्र देव के समवशरण मे भी जो मानस्तभ है उनमे भी जिनबिम्ब विराजमान रहते हैं जिन बिम्बो के दर्शन से हमे अपने अन्दर छुपा हुआ परमात्मा का ख्याल आ जाता है। तथा तीर्थंकर यानि धर्म के नेता

कहलाते है ये दुनियां में सबसे ऊंचा पद है। जो सातिशय पुण्य के फल से बनते है। जैसे कहा है **"पुण्य फला अर्हन्ता"**

(४) त्रिकाल चौबीसी - काल यानि समय। यह अनत है लेकिन लोक व्यवहार म इसे ३ भागो म विभाजित किया हे। १ भूतकाल २ वर्तमान काल ३ भविष्य काल। भूत काल अनन्त है इसका काई आदिम छोर नही है। इन दोनो के बीच वर्तमान काल है जो लोगो के अनुभव मे आता ह जन दर्शन मे व्यवहार काल के दो भेद किये है उत्सर्पिणा आर अवसर्पिणी काल उत्सर्पिणी काल का अर्थ है जिस काल मे अनुभव सुख आयु अच्छाइया क्रमश वृद्धि को प्राप्त होती है। अवसर्पिणी काल का अर्थ ह जिस काल मे सुख आयु अच्छाइया घटती जाती है। यह प्रत्येक काल दस कोड़ा कोड़ी सागर का ह तथा इसके ६ भेद है। १ सुखमा सुखमा काल २ सुखमा काल ३ सुखमा दुखमा काल ४ दुखमा सुखमा काल ५ दुखमा काल ६ दुखमा दुखमा काल उर्पयुक्त काल के नामा की अपनी अपनी सार्थकता ह। इस प्रकार ६ कालो का परिवर्तन भूतकाल के अनन्त समया स होता आया ह और भविष्य काल म भी होता रहेगा हरेक ६ कालो के अन्तर्गत चतुर्थ काल दुखमा सुखमा काल जो ४२००० वर्ष कम एक कोड़ा कोड़ी सागर प्रमाण मे कुछ-कुछ समय का अन्तराल करके क्रमश २४-२४ तीर्थकर होते हे जो धर्म के नेता कहलाते हैं। ये स्वय शाश्वत सुख की खोज करके ससार के समस्त प्राणियो को शाति का उपदेश भी देते है जिन्हे कुछ भी अनदेखा अन जाना और अनचला नही रहा। इनका व्यक्तित्व चम्बक की तरह हे जो सभी देवो देवताओं को खीच लेता है। जो आज तक नही जाना था उसे जानने लगते है ऐसे तीनो कालो के तीर्थकरा की प्रतिमा बना कर पच कल्याणक महोत्सव मनाकर उन मूर्ति को भगवत्ता से भरा जाता है ऐसे महोत्सवो से जैन सस्कृति की महती प्रभावना भी होती है। २००० वर्ष पूर्व जैन दर्शन के महान ग्रन्थराज षटखडागम ग्रथ मे श्री १०८ दिगम्बराचार्य पुष्पदत भूतवलि देवने जिन महिमा को और जिन बिम्ब के दर्शन को सम्यक दर्शन का कारण कहा है तथा जिन बिम्ब के दर्शन से निधत्ति निकाचित जैसे कर्म नष्ट हो जाते है।

(५) पच कल्याणक के साथ गजरथ की भी अपनी महिमा -

जैन आगम मे प्रत्येक तीर्थकर के जीवन काल के पाच प्रसिद्ध घटना स्थला का वर्णन मिलता ह इन्हे पच कल्याणक के नाम से जाना जाता ह क्याकि वे अकसर जगत के लिये अत्यन्त कल्याण व मगलकारी होते है। नव निर्मित जिन बिम्ब की शुद्धि करने के लिए जो पच कल्याणक प्रतिष्ठा की जाती ह वह उसी प्रधान पच कल्याणक की कल्पना ह जिसके आरोपण द्वारा प्रतिमा मे असली तीर्थकर स्थापना होती है। जम्बू द्वीप पण्णन्ति मे आचार्य श्री ने लिखा है कि

गब्भावयार काले जम्मणकाले तवेहणिक्खमणे :
केवलणाणुप्पण्णे परिणिव्वाणम्मि समयम्मि ॥

जो जिनदेव गर्भावतार काल, जन्म, काल, निष्क्रमण काल, केवलज्ञानोत्पत्ति काल और निर्वाण समय इन पाच स्थानो मे पच कल्याण को प्राप्त होकर, महाऋद्धियुक्त सुरेन्द्र इन्द्रों से पूजित है।

(१) **गर्भ कल्याणक :-** भगवान के गर्भ मे आने से ६ माह पूर्व से लेकर जन्म पर्यन्त मास तक उनके जन्म स्थान में कुबेर द्वारा प्रतिदिन तीनबार ३१/२ करोड़ रत्नों की वर्षा होती रहती है दिक्कुमारी देवियां माता कि परिचर्या व गर्भशोधन करती है। गर्भ वाले दिन से पूर्व रात्रि को माता को १६ उत्तम स्वप्न दिखते है।

(२) **जन्म कल्याणक -** भगवान का जन्म होने पर देव भवनो व स्वर्ग आदि में स्वय घण्टे आदि बजने लगते हे ओर इन्द्रा के आसन कम्पायमान हो जाते जिससे उन्हे भगवान के जन्म का निश्चय हो जाता हैं सभी इद्र व देव भगवान का जन्मोत्सव मनाने को बड़ी धूमधाम से पृथ्वी पर आतें हे। ऐरावत हाथी पर भगवान को लेकर इन्द्र सुमेरु पर्वत की ओर चलता हे वहा पहुचकर पाण्डुक शिलापर भगवान का क्षीर सागर से देवो द्वारा लाये गये जल के १००८ रत्नजडित कलशो द्वारा भगवान का अभिषेक करता है।

(३) **तपकल्याणक -** कुछ काल तक राज्य विभूति का उपभोग कर लेने के पश्चात किसी एक दिन कोई कारण पाकर भगवान को वैराग्य उत्पन्न होता हे। उसी समय ब्रम्ह स्वर्ग से लोकान्तिक देव भी आकर वेराग्य की सराहना करते है। कुबेर द्वारा निर्मित पालकी मे भगवान स्वय बैठ जाते है। इस पालकी को पहले तो मनुष्य अपने कन्धो पर लेकर कुछ दूर पृथ्वी पर चलते है और फिर देव लोग लेकर आकाश मार्ग में चलते हैं। तपोवन में पहुचकर भगवान वस्त्रालकार का त्याग कर केश लोच करते हैं। और दिगम्बर मुद्रा धारण कर लेते है। भगवान बेला तेला आदि के नियम पूर्वक नम सिद्धेभ्या कहकर स्वय दीक्षा लेते हैं क्योंकि वह स्वयं जगत गुरु है।

(४) **ज्ञान कल्याणक.-** यथाक्रम में तप सयम की साधना करते हुए ध्यान की श्रेणियो, पर आरुढ़, होते हुए चार घातिया कर्मो का नाश हो जाने पर भगवान को केवलज्ञान आदि, अनत चतुष्टय लक्ष्मी प्राप्त होती है तब पुष्प वृष्टि, दुन्दुभी शब्द, अशोक वृक्ष, चमर भामण्डलछत्र त्रय, स्वर्ण मयी सिंहासन और दिव्य ध्वनि ये आठ प्रतिहार्य प्रकट होते हे। इन्द्र की आज्ञा से कुबेर समवसरण रचता हे जिसकी विचित्र रचना से ससार चकित होता है १२ सभाओ मे यथा स्थान देव, मनुष्य, तिर्यच मुनि, आर्यिका, श्रावक श्राविका आदि सभी बैठ कर भगवान के उपदेशामृत का पान कर जीवन सफल करते है।

(५) **निर्वाण कल्याणक -** अतिम समय आने पर भगवान योग निरोध द्वारा ध्यान मे निश्चल होकर चार अघातिया कर्मों का भी नाश कर देते है। और निर्वाण धाम को प्राप्त होते है देव लोग निर्वाण् धाम की पूजा करते है भगवान का शरीर कपूर की भाति उड़ जाता है।

(६) **गजरथ -** ये रथ इन्द्र विमान के प्रतीक है तथा उसमे बैठने वाले लोग इन्द्र है जब भगवान के साक्षात् पचकल्याणक मनाये जाते है तब ये देवी देवता अपने अपने विमान मे बैठकर यहा आते है तथा परिक्रमा करते हैं समवशरण की। दूसरी बात ये रथ धर्म रथ का प्रतीक है और रथ मे विराजित श्री जिनेन्द्र देव सारथी हैं जो धर्म रथ को दिग दिगन्तरो मे घूम-घूमकर जीवों को मुक्ति का सदेश देते है इसलिए ये गजरथ महान प्रभावना का साधन है। इसी प्रभावना अग को आचार्यो ने सम्यक दर्शन का

अंग भी माना है । इसी मे जिनेन्द्र भगवान कि महिमा आती है जिससे सम्यक् दर्शन की उत्पत्ति भी हो जाती है तथा सात परिक्रमा लगाने का प्रयोजन भी सातवा जो मोक्ष तत्व है उसको प्राप्त करने की लिये है ।

उपसंहार - इस प्रकार त्रिकाल चोबीसी की प्रतिमाये जैन सस्कृति की अनादि निधनता को सिद्ध करती है । इन त्रिकाल प्रतिमाओ की स्थापना अहार जी सिद्ध क्षेत्र मे भी है तथा मुक्ता गिरी के गुफा वाले मदिर के अन्दर चारो तरफ भित्ति मे ७२ प्रतिमाय उकेरी गयी है जिससे त्रिकाल चौबीसी का उल्लेख मिलता है । और अतिशय क्षेत्र देवगढ़ जो बहुत ही प्राचीन माना जाता है । इस क्षेत्र मे चार मानस्तभ है । उनके ऊपर भी त्रिकाल चौबीसी नही वरन् तीस चौबीसी के ७२० प्रतिमाओ का सकेत मिलता है । तीस चौबीसी का अर्थ पाच भरत क्षेत्र, पाच ऐरावत इन क्षेत्र मे प्रत्येक की भूत, भविष्यत, वर्तमान काल की तीन चौबीसी इस प्रकार तीस चोबीसी यानि ७२० जिन बिम्बों के अवशेष अभी है तथा उसी क्षेत्र देवगढ़ म जम्बूद्वीप क भरत क्षेत्र से सम्बन्धित त्रिकाल चौबीसी के दर्शन जिनबिम्ब के रुप मे जो हजारो वर्ष पहले स्थापित किये गये है । उनके दर्शन भी आज सहजता और सुलभता से कर सकते हैं । इस त्रिकाल चाबीसी का वर्णन सर्वप्रथम करणानुयोग का प्राचीन ग्रथ तिलोय पण्णति मे श्री दिगम्बराचार्य १०८ यति वृषभ जी ने किया है ।

अभी वर्तमान काल मे भव्य त्रिकाल चौबीसी - इसके बारे मे कुछ लिखू जो वर्तमान मे अशोक नगर (गुना) में विश्व के इतिहास में प्रथम बार सप्त गजरथ महोत्सव के साथ प्रतिष्ठित की जा रही है । वह समस्त प्रतिमा श्री दिगम्बर जैन शांति नगर पचायती मदिर में विराजित की जा रही है और इसी मदिर में विद्यमान बीस तीर्थकर तीन अन्तिम केवली शाति नाथ कुन्थनाथ, अरह नाथ वर्तमान चौबीसी के १६ वे १७वे १८वे तीर्थकर कृमश ११फुट साढे दस फुट, साढे दस फुट की ओर इसी चोबीसी के प्रथम तीर्थकर वृषभ देव भरत भगवान और बाहुबली भगवान कुल मिला कर १११ प्रतिमाओ के मनमोहक । आत्ममोहक शाति के स्तभ, ऐसे जिन बिम्बो की छवि देखते ही बनती है, साक्षात् इन्द्र भी यदि स्वर्ग मे आये तो हजार ही नहा कई हजार नेत्र बनाने पड़ेगे फिर आदमी का जीवन धन्य हुए बिना कैसे रहेगा अत वह कृत कृत्य हो जायगा ?

परम पूज्य सुधा सागर जी महाराज
का उपदेश एव आर्शीवाद -

इस विशाल कार्य का आयोजन सत शिरोमणि परमपूज्य १०८ दिगम्बराचार्य श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी एव ऐलक श्री निशक सागर जी महाराज के आर्शीवाद से हुआ । मुनि श्री का जब यहा ग्रीष्म कालीन वाचना चल रही थी तब इनके मार्मिक, प्रभावक, प्रवचनो से प्रभावित होकर यहा के लोगों में जेन सस्कृति के प्रतीक मदिर ओर मूर्तियो को निर्मित करने के भाव जागृत हुये तब यहा के जैन श्रावकों ने एक सामान्य मदिर बनवाने की भावना महाराज श्री के चरणों में व्यक्त की फिर पुन काल का अतराल पड़ने के बाद यहां की समाज के तीव्र सामूहिक पुण्य के उदय से पूज्य महाराज श्री के चरण पुन एक बार फिर यहां पडे जिससे यहा के लोगों की भावना उत्साह और भी वृद्धिगत हो गयी

जिससे प्रभावित होकर यहा के श्रावकों ने त्रिकाल चौबीसी को स्थापित करने का सकल्प ले लिया वही सकल्प धीरे-धीरे प्रयास से साकर रुप परिणित हो गया। पश्चात् महाराज श्री का यहा से चातुर्मास पूर्ण कर बिहार हो गया, मदिर एव मूर्ति का कार्य निरन्तर तीव्र गति से चलता रहा जब करीब दो वर्ष हो गये तब यहा के श्रावकों को तीव्र भावनात्मक के अथक प्रयासों से पुन महाराज श्री के चातुर्मास अशोकनगर का सौभाग्य के लोगो को प्राप्त हुआ तथा पूरे चातुर्मास के दौरान महाराज श्री के उत्साह वर्द्धक एव प्रेरणात्मक प्रवचनो से समाज की भावनाओं को बल मिला और बड़ हो उत्साह से पचकल्याणक एव सप्त गजरथ महोत्सव का कार्य विश्व के इतिहास मे प्रथम बार सानन्द सम्पन्न हुआ। इस कार्यक्रम के परमपूज्य आचार्य गुरुवर १०८ दिगम्बराचार्य विद्यासागर के आशीर्वाद से एव पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी के सानिध्य मे चार चाद लग गये और विश्व के कोने-२ मे त्रिकाल चौबीसी एव सप्त गजरथ महोत्सव की चर्चा सुगधित वायु की तरह फैल गयी तथा आगे भी इसका नाम भारत भूमि पर हमेशा के लिये शाश्वत बना रहेगा।इसके बाद इन्ही मुनि श्री के प्रेरणा एव आशीर्वाद के प्रभाव से इतिहास के पन्ने मे एक और अद्वितीय अध्याय जुड़ गया जो वर्तमान कालीन चौबीसी के पचकल्याणक नवगजरथमहोत्सव के रूप मे उत्तर प्रदेश के ललितपुर नगरी मे सारी जनता को धन्य - धन्य करने वाला आयोजन हुआ वह भी हमेशा अमर रहेगा। धन्य है ये सत जिनके माध्यम से हमे मोक्ष का मार्ग प्राप्त हो रहा है। अतिम मेरी यही भावना है कि ये जैन सस्कृति दि० मुनि आचन्द्रार्क इस धरता पर जीवित रहे और ससार के पतित, दुखित आत्माओ को आत्मिक सुख का सदेश देते रहे स्वय भी अपने लक्ष्य पर बढ़ते रहे।

पूज्य गुरुदेव के चरणो मे मेरा
शत्-शत् नमन/
वदन/अर्चन/ समर्पण।

श्री पंचकल्याणक एंव सप्त गजरथ महोत्सव अशोकनगर

जहाँ सघन प्यास होती है, वहा नदी का सानिध्य समीप प्रतीत होता है । निरन्तर ३५ वर्षो की सघन प्यास, प्रतीक्षा और प्रयोसो के उपरान्त वर्ष १६८६ के माह जुलाई मे वह मगल दिन आया, जव अशोकगर की धरती श्रमण सस्कृति के रक्षक आध्यात्मिक सत परम पूज्य आचार्य रत्न १०८श्री विध्यासागर जी महारज के परम शिष्य मनोज्ञ मुनिश्री १०८ सुधासागर जी महाराज एव उनके सघ के पावन चरण कमलो का स्पर्श पाकर पवित्र हुई । *इस नगर मे महाराज श्री ने वर्ष १६८६ मे जव* प्रथम वर्षायोग की स्थापना की तो सपूर्ण नगर हर्ष विमोर हो ओउठा और आनन्द से झुमने लगा । महाराजश्री ने अपनी आत्मीयता, भावुकता व उद्धार वात्सल्य को, गगा जमुना और सरस्वती के त्रिवेणी सगम की धार के रुप मे एक आध्यात्मिक सरिता का रुप देकर इस नगर मे ऐसे प्रवाहित किया कि इम सरिता के पवित्र जल को प्राप्त करने के लिये इस नगर का प्रत्येक नगरवासी जा पिछले ३५ वर्षो से निरन्तर प्यासा था, अपनी प्यास की तृप्त करने के लिये, इस आध्यात्मिक सरिता के पास पहुचकर अवसर रुपी उन घाटो की तलाश करने मे जुट गया जहा खड़े होकर वह पवित्र जल प्राप्त कर सके ।

सन्तो के सानिध्य का प्रत्येक क्षण एक इतिहास का सृजन करता है । अशोकनगर मे जैन समाज की वृद्धि को देखते हुये, महाराज श्री के मगल आशीर्वाद मे वर्ष १६८६ मे यहा १०८ श्री शातिनाथ दिगम्बर जैन पंचायती मदिर का निर्माण प्रारम्भ किया गया और इस मंदिर मे १००८ श्री शातिनाथ, अरहनाथ एव कुथनाथ की खड्गासन प्रतिमाओं को स्थापित कराये जाने का विचार किया गया लेंकिने वर्ष १६८६ मे प्रवाहित इस आध्यात्मिक सरिता ने नगर का वातावरण इतना धर्ममयी वना दिया कि यह आध्यात्मिक सरिता उन्मुक्त प्रवाह के रुप मे अपने संपूर्ण वेग से वह निकली और आगे चलकर इतनी विकसित हो गई कि कल प्रवाहिणी भागीरथी मे परिणत होकर अपने कूलो-उपकूलो *को शस्य श्यामल* वनाती हुई वर्ष १६६२ मे द्वितीय वर्षायोग मे त्रिकाल चौबीसी और विदेह क्षैत्र के वीस तीर्थकरो के महासागर मे मिलित होने के लिये निरन्तर आगे वढ़ती चली गई और इस नगर को ८१ धवल शिखरो से शुशोभित १००८ श्री शातिनाथ जिनालय की भव्य कृति का कलश सोप कर तथा दिनाक २६-११-६२ से दिनाक २-१२-६२ तक श्री त्रिकाल चौवीसी पचकल्याणक प्रतिष्ठा एव विश्व के इतिहास मे प्रथम वार सप्त गजरथ महोत्सव का अभूतपूर्व कार्यक्रम आयोजित करके, इस नगर का नाम मागलिक अक्षरो मे इतिहास के पन्नो मे अँकित करा दिया । आने वाली पीढ़ीया हजारो वर्षो तक इस ऐतिहासिक घरोहर से पुण्यलाभ प्राप्त कर अपने जीवन को धन्य करती रहेगी तथा इस भव्य जिनालय मे प्रतिष्ठित १०१ मुर्तिया आत्मकल्याण के मार्ग पर आगे वढ़ने के लिये सदैव प्रेरणा देती रहैगी। मदिर की ऊपरी मजिल पर, सोधर्म इन्द्र, श्री जिनेन्द्र भगवान की चर्तु मुखी प्रतिमा को अपने सिर पर लिये हुये, की आकृति का मानस्तम्भ भी स्थापित किया । जो इस प्रदेश की इस अनुपम कृति के रुप मे है । इन सभी प्रतिमाओं को प्रतिष्ठित कर वेदियो पर विराजमान करने के लिये तथा आत्मा को परमात्मा बनाने की विधि से सस्कारित करने के लिये, श्री पचकल्याणक एव सप्त गजरथ महोत्सव के आयोजन परम पूज्य आचार्य १०८ श्री विधासागरजी महाराज के परम शिष्य मुनि १०८ श्री सुधासागर जी महाराज एव उनके सघ के महाराज के मगल आशीर्वाद एव सनिध्य मे किया गया है ।

श्री पंचकल्याणक एंव सप्त गजरथ महोत्सव अशोकनगर (२)

इस पंचकल्याणक एंव सप्त गजरथ महोत्सव मे धार्मिक प्रभावना के लिये श्री सुगनचन्दजी अथाइखेड़ा वालो ने महायज्ञ नायक के रुप मे, तथा श्री शीतलचन्दजी अथाइखेड़ा, श्री मिन्टूलालजी कस्तूरचन्दजी भारत रेडियो, श्री छैगालालजी वर्तन, श्री गोरेलालजी राजेन्द्र कुमारजी होटल, श्री फूलचन्दजी वामौर, श्री महेन्द्रकुमारजी वड़कुल, श्री लालचन्दजी अशोक कुमार जी अमरोद वाले, तथा श्री रतीरामजी राधेलालजी घुरी वालो ने कुल आठ यज्ञ नायको के रुप मे सातिशय पुण्य अर्जित किया है । इस प्रकार सोधर्म इन्द्र के रुप म श्री वावूलाल जी सुमत कुमार जी अखाई, मातापिता के रुप मे श्री एव श्रीमती कंवलचन्द जी भसरवास, ईशानेन्द्र के रुप मे श्री अमर चन्दजी अखाई, सनतकुमार इन्द्र के रुप मे श्री विनयचन्दजी पसारी, माहेन्द्र इन्द्र क रुप मे श्री मगल लालजी भण्डारी, कुवेर के रुप मे श्री श्री शिखर चन्दजी मालथोन ने धर्मप्रभावना क लिये प्रमुख भूमिकाये लेकर पुण्य अर्जिक किया है । श्री पचकल्याणक महोत्सव मे प्रतिष्ठाचार्य क पंडित श्री गुलावचन्दजी पुष्प टीकमगढ़ वालो द्वारा प्रतिष्ठा विधि सम्पन्न कराई गयी तथा इस अभूतपूव महोत्सव के परम सरक्षक के रुप मे मध्य-प्रदश शासन क मुख्यमत्री श्री सुन्दरलालजी पटवा एव गुना-शिवपुरी क्षेत्र की सासद श्रीमत राजमाता विजयाराजे जी सिंधिया तथा विशिष्ट सरक्षक के रुप मे भारत सरकार के नागरिक उड्डयनमत्री श्री माधवरावजी सिंधिया श्री निर्मलकुमारजी सेठी लखनऊ तथा साहू श्री अशोक कुमार जी जैन साहू श्री रमेश चन्दजी, तथा श्री अक्षय कुमार जी जैन दिल्ली है । इस महोत्सव के अध्यक्ष मध्यप्रदेश शासन के वाणिज्य कर मत्री श्री वावूलाल जैन है तथा स्वागत अध्यक्ष अशोकनगर क्षेत्र के विधायक श्री नीलम सिह जी यादव है । महोत्सव के सरक्षक मण्डल में म.प्र. शासन के उद्योग एव ऊर्जा मंत्री कैलाश जी जोशी, स्थानीय शासन मत्री श्री वावूलाल जी गोर, लोक निर्माण विभाग के मंत्री श्री हिम्मत जी कोठारी, लोक स्वास्थय मत्री श्री ध्यानेन्द्र सिह जी, आवस एव पर्यावरण मत्री श्री जयन्तजी मलेया, म प्र कांग्रेस (ई) के प्रदेशाध्याक्ष श्री दिग्विजय सिंह जी, गुना क्षेत्र के विधायक श्री भागचन्द जी सोगानी, चाचौड़ा क्षेत्र के विधायक श्री रामवहादुर सिंह जी परिहार, मुगावली क्षेत्र के विधायक श्री देशराज सिह जी, राघोगढ़ क्षेत्र के विधायक श्री लक्ष्मण सिह जी, शाडोरा क्षेत्र के विधायक श्री गोपीलाल जी जिला गुना के जिलाधीश महोदय श्री के सी श्रीवास्तव साहव, जिला एव सत्र न्यायाधीश महोदय गुना श्री शम्भूसिह जी, पुलिस अधिक्षक महोदय गुना श्री मैथलीशरण जी गुप्त, अपर कलेक्टर महोदया श्रीमती सलीना सिह जी एव विक्रयकर अधिकारी गुना धी सुभाष जी जैन है । सहायक मण्डल के रुप मे इस नगर के सभी विभागो के पदाधिकारीगण, सभी सस्थाओं के प्रमुखजन, ललितपुर, गुना, सिरोज, मुगावली, इन्दौर, के अधिकाश गणमान्यजन एव गुना, शाडोरा, मुंगावली, पिपरई, वहादुरपुर, चन्देरी, वामौर, आडेर, सतराई, ईसीगढ़, कदवाया, म्याना, विजय पुर, रुठियाई, वमनावर, राजपुर, थुवौनजी, महिदपुर, कचनार, अथाईखेड़ा, वजरगगढ़, आरोन, जामनेर, कम्भराज, वीनागज, राघोगढ़, ललितपुर, सिरोज, वा,ओदा, सागर, वीना, मण्डीवामोरा, ईश्वरवारा, देवगढ़, खजुराहो, करवाई, वरवाई, शिवपुरी, दमोह, एव पवाजी की जैन समाज तथा नगर के धार्मिक व परमार्थिक ट्रस्ट एव नगर की सभी समाजो एव सभी संगठनो परिषदो व ऐसोसियेशन्स एंव सभी राजनैतिक पार्टियो ने व नगर के नगरवासी पधारे एवं सहयोग किया । आनन्दपुर ट्रस्ट का विशेष सहयोग इस आयोजन मे प्राप्त हुआ है ।

[illegible]

श्री पंचकल्याणक एवं सप्त गजरथ महोत्सव अशोकनगर (३)

सभी नगर वासी आशान्वित है कि इस अभूतपूर्व आयोजन मे परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महराज का सघ सानिध्य प्राप्त करने के लिये और आशीर्वाद प्राप्त करने के लिये आचार्य श्री के समक्ष अपनी भावनाये प्रकट करने के लिये इस नगर से लगभग १०० युवक वालको ने आशोकनगर से कुण्डलपुर तक पदयात्रा कर आचार्य श्री मे विनय की तथा लगभग १०० युवको ने साईकिल यात्रा कर आचार्य श्री से विनय की । महिलाये भी पीछे नही रही और उनकी भी एक वस महिला मण्डल क तत्वाधान मे कुण्डलपुर गई । शान्तिनाथ की प्रतिमा ११ फुट एव कून्थुनाथ एव आदिनाथ की १० $\frac{१}{२}$

१० $\frac{१}{२}$ फुट ऊची है । स्थापित की गइ त्रिकाल चोवीसी क रूप मे ७२ प्रतिमाये स्थापित की गई तथा भरत वहुवली आदिनाथ तथा गौतम स्वामी जम्वू स्वामी एव सुधर्म स्वामी की खड्गासन प्रतिमाये स्थापित की गई तथा दूसरी मजिल पर सगमरमर का ११ फुट ऊँचा द्विमुखी सौधर्म इन्द्र स्थापित किया गया जो भारत वर्ष मे अभी तक कही भी देखने मे नही आता है । यह मन्दिर ३१ शिखरो वाला एव ३१ फुट ऊँचा है ।इसमे ग्रनाइट एव सगमरमर लगभग १६ लाख रु का लगाकर सुसज्जित किया गया है । पूरे मन्दिर की तैयारी करने मे लगभग १ करोड़ रु लगाकर तीन वर्ष मे पूर्ण किया गया है । इतना सुन्दर और विशाल मदिर भारत वर्ष मे अन्यत्र नही है ।

इस त्रिकाल चौवीसी की प्रतिष्ठा मे सप्त गजरथ चलाये गये इसकी प्रभावना मे ५० लाख रु का व्यय कर समाज ने अपने को धन्य माना ।

इस महोत्सव के मेले का विस्तार लगवग ३६ एकड़ जमीन थी जिसमे ५,००० लगभग टेन्ट लगाये गये । पडाल ४०० X ५०० बनाया गया था । गजरथ परिक्रमा मार्ग P W P द्वारा लगभग १ किलो मीटर रोड का निर्माण किया गया सात गजरथो मे प्रथम रथ यहाँ की समाज ने नया बनाकर चलवाया था । इस प्रकार से अशोक नगर (जि गुना) इस त्रिकाल चौवीसी मन्दिर से एव सप्त गजरथ महोत्सव से एक ऐतिहासिकता को प्राप्त हुआ । इस मन्दिर की मान्यता एव ऐतहासिकता का रूप परम पूज्य आध्यात्मिक सत देवगढ़ क्षेत्र जीर्णोद्धार श्री १०८ श्री सुधासागर जी महाराज की साधना एव तपस्या के प्रभाव से परिपूर्ण सतिशय आशीर्वाद के कारण से ही सभव हो सका ।

इस अभूतपूर्व आयोजन मे लगभग ५ लाख व्यक्तियो ने सम्मलित होकर धर्म लाभ लिया है अत इस आयोजन की सफलता के लिये श्री दि जैन पचायत अशोकनगर के तत्वाधान मे गजरथ समिति ने लगभग ५३ समितियो का गठन कर उन्हे विभिन्न व्यवस्थाये सोपी और समितिया वड़े उत्साह व रुचि से अपने दायित्व का निर्वाह किया । समितियाँ ही नही वरन नगर की सपूर्ण सस्थाये व प्रत्येक नगर वासी उत्साहित पूर्वक आयोजन को सफल वनाया ।

वीतराग शासन की प्रभावना तथा आत्म साधना मे रत साधको को नर से नारायण बनाने की विधि का यह पचकल्याणक महोत्सव एक विशुद्ध आध्यात्मिक मेला है जिसेक साथ प्रत्येक व्यक्ति की धार्मिक भावनाये जुड़ी हुई है । इतिहास का अनुसार सर्वप्रथम गजरथ महोत्सव का आयोजन लगभग ४०० वर्ष पूर्व चन्देरी मे हुआ था और अव उसी जिले के अशोकनगर मे सप्त गजरथ का यह आयोजन विश्व मे प्रथम वार हुआ ।

सुख चाहो तो मिल करो, [illegible] सिद्धान्त ।
सुजश बढ़े या चीज ही, [illegible] ॥

जैन धर्म का प्रभाव

पू. क्षु. श्री गणेश प्रसाद जी वर्णी

हम वैष्णव धर्म के अनुयायी थे । हमारे घर के सामने जैन मंदिर जी था । वहाँ त्याग का कथन हो रहा था । मुझ पर भी प्रभाव पड़ा और मैंने सारी उम्र के लिए रात्रि भोजन का त्याग कर दिया । उस समय मेरी आयु दस साल की थी ।

एक दिन मैं और पिता जी गांव जा रहे थे । रास्ते में घना जंगल पड़ा हम अभी बीच में ही थे कि एक शेर-शेरनी को अपनी ओर आते देखा । मैं डर, परन्तु मेरे पिता ने धारे धीरे णमोकार मंत्र का जाप आरम्भ कर दिया । शेर-शेरनी रास्ता काट कर चले गये । मैंने आश्चर्य से पूछा, ''पिता जी । वैष्णव धर्म के अनुयायी होते हुए जैनधर्म के मन्त्र पर इतना गहरा विश्वास'' ? पिता जी बोले की इस कल्याणकारी मंत्र ने मपझे बड़ी-बड़ी आपत्तियों से बचाया है । यदि तुम अपना कल्याण चाहते हो तो जैन धर्म में दृढ़ श्रद्धा रखना । मुझे जैन धर्म की सच्चाई का विस्वास हो गया । इसकी सचाई से प्रभावित होकर समस्त घर बार और कुटुम्ब को छोड़ कर फाल्गुन सुदी सप्तमी वीर सं २४७४ को आत्मिक कल्याण के हेतु मैंने जैन धर्म की क्षुल्लक पदवी ग्रहण कर ली ।

उदयाचल से उदित गुरुकुल परम्परा

प्रस्तुति रवि जैन

भारत का गौरव - एक समय था जब यह भारतवर्ष अपने उत्कर्ष पर था, अन्य देशो का गुरू बना हुआ था, सब प्रकार से समृद्ध था और स्वर्ग के समान समझा जाता था ।

भारत की कीर्ति लता दशो दिशाओ मे व्याप्त थी । उसका विज्ञान कला कौशल और आत्मज्ञान अन्य समस्त देशो के लिये अनुकरणीय था । उसमे जिधर देखा उधर प्राय ऐसे ही मनुष्यो का सद्भाव पाया जाता था जो दृढाङ्ग, निरोगी ओर बलाढय थे, स्वभाव से ही जो तेजस्वी, मनस्वी ओर पराक्रमी थे रूप और लावण्य मे जो स्वर्गो के देव-देवाङ्गनाओ से स्पर्धा करते थे सर्वाङ्ग सुन्दर और सुकुमार शरीर होने पर भी वीर रस मे जिनका अङ्ग-अङ्ग फडकता था, जिनकी वीरता धीरता ओर दृढ प्रतिज्ञा अटूट रहती थी, जो कायरता भीरूता ससव्यसन ओर आलस्य को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे आत्मबल मे जिनका चेहरा चमकता था, उत्साहि जिनके रोम-रोम मे स्फुरायमान था चिन्ताओ मे,सकटो मे और दुखो मे जो अपना आत्म-समर्पण (आत्मघात) करना नहीं जानते थे, जन्म भर मे शायद कभी जिनका रोग का दर्शन होता हो, जो सदैव अपने धर्म कर्म मे तत्पर ओर पापो मे भयभीत रहते थे ।

शिक्षा का प्रभाव - जो अपने हित अहित का विचार करने में चतुर तथा जो एक दूसरे का उपकार करते हुए परस्पर प्रीति पूर्वक रहा करते थे । क्योंकि पहले गुरुकुल मे शिक्षा प्राप्त करते थे,गुरुकुल अर्थात सच्चरित्र साधुओ के सत्सङ्ग मे शिक्षा प्राप्त करते थे ।

जीने की कला - वहाँ मात्र ज्ञान ही नहीं दिया जाता था बल्कि जीवन कैसे जीया जाय यह कला सिखाई जाती थी जिसमे आत्मनिर्भर चारित्र सम्पन्नन बनकर आनद के साथ जीवन जीते थे । उदाहरण के तोर पर बलभद्र रामचन्द्र जी देशभूषण-कुलभूषण जी अकलक-निकलक जी विजय-विजया आदि का जीवन चारित्रपढकर देखें । तो पता चलता है कि प्रारम्भिक जीवन किस प्रकार से सस्कारित करना चाहिये तभी जीवन की जीवतता, भीरुता का त्याग कर वीरमय बन जाती है ।

आनन्द का अभाव - लेकिन आज की शिक्षा पद्धति मे प्राचीन सस्कार विधि पूर्णत समाप्त हो चुकी है । इसलिए व्यक्ति शब्दिक ज्ञान तोअर्जित कर लेता है लेकिन जीवन मे चारित्र न आने के कारण जिन्दगी का वास्तविक आनन्द नही ले पाता ।

अतीत का प्रयास - उस प्राचीन सस्कार युक्त ज्ञान की पद्धति को पुन जीवित करने के लिए दशलक्षण महापर्व राज पर्यूषण पर दिनाक 20 9 93 से 29 9 93 तक ललितपुर चतुर्मास में परम पूज्य प्रात स्मरणीय सत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज केपरम शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज क्षुल्लक द्वय-परम पूज्य क्षु गम्भीर सागर जी परम पूज्य क्षु धर्मसागर जी, एव ब्र आदरणीय ब्र सजय जी आदरणीय ब्र अजित जी (सौरई) के सान्निध्य मे श्रावक सस्कार शिविर लगा । जिसमें प्राचीन संस्कार देने के जो प्रयास किये गये थे वह साकार हुए अत मुझे इस शिविर के लग जाने केबाद ऐसा अनुभव हुआ कि-

कल जो कायर ओर डरपाक बने हुए थे, वे आज वीर क्यो बन गये ? मूर्खता और असभ्यता की मूर्तिया विज्ञान ओर सभ्यता की मूर्तिया में कैसे परिणित हो गई ? जिस पुण्य के कार्य से कल जिन्हे घृणा थी आज उसी को वे प्रेम के साथ क्या कर रहे है ? एक असदाचारी सदाचारिता क्यों करने लग गया ? कल जो सप्त व्यसनो मे फसे थे वे अब श्रावक के मूलगुण पालन क्या करने लग गये जिन्हे घर दुकान मे समय नहीं मिलता था वे अधिक समय जिन मदिर धर्म ध्यान मे कैसे लगाने लग गये? किसने इनके हृदय मे धर्म प्रभावना ससार भीरुता का सचार भर दिया है । इन सारे प्रश्नों का एक ही उत्तर है कि-

श्रावकसस्कार शिविर की उपलब्धि - जैन सस्कृति के सर्वोत्कृष्ट पर्वराज पर्यूषण पर्व के पुण्यावसर पर सत शिरोमणि, प्रात स्मरणीय, आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के आदर्श शिष्य, सस्कृति के रक्षक ओजस्वी वक्ता, मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने प्राचीन जैन गुरुकुल परम्परा द्वारा जो गुरुकुलों मे अन्तेवासी सयमधारियो को दर्शन ज्ञान चारित्र की त्रिवेणी के तट पर एकत्रित करके उनकी कर्म चेतना को उपादेय बनाकर, धर्म

प्रभावना तथाधर्म वृद्धि की भूमिका में प्रशिक्षित किया जाता था। इस परम्परा को प्रकाशित करने के लिये मुनि श्री ने इस शिविर के शिवरार्थियों को दस दिन का गृह त्याग करवाके श्रावक की साधना का अभ्यास करने के लिये अनेक प्रयोग बताये।

आगम युक्त विवेचन - पञ्च परमेष्टि, श्रावक के छ. आवश्यक, सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि, निमित्त-उपादान, व्यवहार नय-निश्चयनयादि विषयों पर आगम के अनुसार ऐसा स्पष्ट विवेचन किया कि सभी शिवरार्थियों के हृदय की कालिमा धुल गयी तथा उज्जवल जीवन के लिये यम-नियम धारणकर शिविर की यादगार अपने पास रखी। मुनि श्री ने जो ध्यान की प्रक्रिया बतायी वह अभूतपूर्व थी।

आगन्तुक शिविरार्थी - शिविर में उत्तर प्रदेश, मध्यप्रदेश, आदि स्थान के शिविरार्थियों ने भाग लिया। श्रावक संस्कार शिविर का कुशल सचालन आदरणीय ब्र अजित जी 'सौरई' ने किया। जिसमे शिविरार्थियो का हृदय दस दिनो में सरोवर मे रहने वाले कमलो की भाती खिल गया।

शक्ति का प्रदर्शन- शिविरार्थियों ने शिविर के सम्पूर्ण कार्यक्रम में भाग लेने के साथ मे 5 से 10 दिनो के उपवास करके इस भोतिक युग में भी देखा कि आज भी आलौक शक्ति हम युवको में है।

महती प्रभावना - पर्यूषण पर्व के उपरान्त जिनदर्शन तथा नगर परिक्रमा में शिविरार्थीगण शान्ति के प्रतीक धवल ध्वज व ड्रेस धारण करके जुलुस में चल रहे थे। उस समय का दृश्य नगर में अभूतपूर्व था।

शिविर की विशेष उपलब्धि - हमने अनुभव किया कि दस दिन के बाद शिविरार्थियो को घर जाने की भावना नही हो रही थी। लेकिन शिविर समाप्ति के कारण घर गये। पर घर जाने पर गृहस्थी के (माया जाल) कार्य में मन नही लग रहा था जैसे पक में कमल होता है उसी प्रकार इन शिविरार्तियों का जीवन हो गया है और श्रावक संस्कार की एक विशेष उपलब्धि देखी गई कि जहां मंदिरों में पूजा प्रक्षालन करने वाले नहीं मिलते थे वहाँ अब पूजा-स्वाध्याय सामायिक करने वालों को मंदिर का स्थान छोटा पड़ जाताहै, यह ललितपुर श्रावक संस्कार शिविर का साक्षात् प्रभाव रहा।

गृह में आदर्श - शिविरार्थियों कि घर की चर्या क्या कहूँ मात्र उनका कुछ आदर्श रख रहा हूँ प्रतिदिन धोती दुपट्टा में देव दर्शन-पूजन करना। रात्रि भोजन नहीं करना। पानी छानकर पीना। लाटरी की टिकिट नहीं खरीदना। चमड़े की वस्तु का प्रयोग नहीं करना। हिंसाजन सौंदर्य प्रसादन का प्रयोग नहीं करना। सप्त व्यसनों से सदा दूर इत्यादि यम-नियम उनके सह जीवन के अंग बन गये।

जीवन के लिए आवश्यकता - जीवन का उद्देश्य केवल जीना नही है, बल्कि इस रूप में जीवन-यापन करना है कि इस जीवन के पश्चात् जन्म और मरण के चक्र से छुटकारा मिल सके।

आज सुविचारित क्रमबद्ध और व्यवस्थित जीवन यापन की अत्यन्त आवश्यकता है। धर्माचरण व्यक्ति को लौकिक और पारलौकिक सुख प्राप्ति के साथ आकुलता और व्याकुलता से मुक्त करताहै। वह जीवन कदापि उपादेय नहीं, जिसमें भोग के लिए भौतिक वस्तुओं की प्रचुरता समवेत की जाय। जिस व्यक्ति के जीवन में भोगो का बाहुल्य रहता है और त्यागवृत्ति की कमी रहती है, वह व्यक्ति अपने जीवन में सुखका अनुभव नहीं कर सकता। भोग जीवन का स्वार्थपूर्ण और संकीर्ण दृष्टिकोण है। ऐसा जीवन उच्चतर आदर्श प्रतिनिधित्व नही कर सकता, क्योंकि सर्वोच्च एश्वर्य भी शनै शनै नष्ट होते-होत एक दिन बिलकुल नष्ट हो जाता है और अभावजन्य आकुलताएँ व्यक्ति के जीवन को अशान्त, अतृप्त और व्याकुल बना देती है।

मनुष्य की विविध रुचियो, इच्छाओ संघर्षात्मक आवश्यकताओं एव उत्तरदायित्वों के बीच सामञ्जस्य उत्पन्न करने का कार्य आचारात्मक धर्म ही करता है। विश्वास और ज्ञान तब तक जीवन में सकार नहीं हो पाते, जब तक मनुष्य अपने आचार व्यवहार को मानवोचित रूप प्रदान नही करता। व्यक्ति या समाज के विभिन्न सदस्य जब धर्म के निर्देशानुसार अपने करणीय कर्तव्य को निश्चित ढंग से तथा निष्ठापूर्वक करते हैं, तो समाज में सुव्यवस्था, शान्ति और समृद्धि को फेलाना सरल हो जाता है। केवल अर्थ और केवल काम जीवन में भोग तो उत्पन्न कर सकतेहैं, पर जीवन को उदात्त नहीं बना सकते। अतएव सदाचार विश्वास और सन्तोष ही मानव-जीवन में व्यवस्था, शान्ति और बन्धनों से मुक्ति कराते हैं। क्षणिक जीवन के बदले शाश्वत जीवन का लाभ होता है और संसार के निस्सार सुख-दुःखों से ऊपर उठकर आत्मा

अनन्त सुखमय मुक्ति लाभ पाती है । अतः संक्षेप में जीवन को सुव्यवस्थित और नियन्त्रित करने के लिए ऐसे श्रावक संस्कार शिविर की परम आवश्यकता है ।

समाज का कर्तव्य - इस तरह यदि आप अपने सपूर्ण देश या समाज का उत्थान चाहते है और उसके सुधार की इच्छा रखते है तो आप उसमें उत्थानात्मक और सुधार विषय के ऐसे शिविर को सर्वत्र फैलायि अर्थात अपने देश व समाज के व्यक्तियो को स्वावलम्बन की शिक्षा दीजिये उन्हें अपने पैरा पर खडा हाना सिखलाइये, भाग्य के भरोमे रहने की उनकी आदत छुडाइये 'कोई दैवी शक्ति हमें सहायता देगी' इस ख्याल को दिलसे भुलाइये, अकर्मण्य और आलसी मनुष्यों को कर्मनिष्ठ और पुरुषार्थी बनाइये, पारस्परिक, ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, निन्दा और अभिमान भाव का हटाकर आपस में प्रेम का संचार कीजिये निष्फल क्रिया काडो और नुमायशी (दिखावे के) कामो मे होने वाले शक्ति के ह्रास को रोकिये द्रव्य और समय का सदुपयोग करना बतलाइये, विलाम प्रियता की दलदल मे फँसने और अन्धश्रद्धा के गडढे मे गिरने से बचाइये,सच्चरित्रता और सत्यका व्यवहार फैलाइये विचार स्वतन्त्रता को खूब उत्तेजना दीजिए, योग्य अहार-विहार द्वारा बलाढय बनना सिखलाइये, वीरता, धीरता निर्भीकता समुदारता, गुणग्राहकता सहनशीलता और दृढप्रतिज्ञता आदिगुणों का सचार कीजिये, मिलकर काम करना, एक दूसरे को सहायता देना तथा देश और समाज के हित को अपना हित समझना सिखलाइये ।

शिक्षा का इतना प्रचार कर दीजिये कि देश या समाज मे कोई भी स्त्री, पुरुष बालक ओर बालिका अशिक्षित न रहने पावे। इन सब बातो के सिवाय जो जो रीति-रिवाज आचार व्यवहार अथवा मिद्धान्त उन्नीत और उत्थान मे बाधक हो, जिनमें कोई वास्तविक तत्व न हो और जो समय समय पर किसी कारण विशेष से देश या समाज में प्रचलित हो गए हो उन सबकी खुले शब्दो में आलोचना कीजिए और उनके गुण-दोष सर्वसाधारण पर प्रगट कीजिये ।

सच्ची आलोचना में कमी सकोच न करना चाहिए । बिना समालोचना के दोषों का पृथक्करण नहीं होता । माथ ही, इस बात का भी ख्याल रखिये कि इन सब कार्यों के सम्पादन करने ओर कराने में अथवा यह सब फैलाने में आपको अनेक प्रकार की आपत्तियाँ आवेगी, रुकावटें पैदा होगी, बाधाएँ उपस्थित होगी, और आश्चर्य नहीं कि उनके कारण कुछ हानि या कष्ट भी उठाना पड़े, परन्तु उन सबका मुकाबला बड़ी शान्ति और धैर्य के साथ होना चाहिए, चित्त मे कमी क्षोभ न लाना चाहिए- क्षोभ में योग्य अयोग्य का विचार नष्ट हो जाता है और न कभी इस बात की पर्वाह ही करना चाहिए कि **हमारे कार्यों का विरोध होता है, विरोध होना अच्छा है, वह शीघ्र सफलता का मूल है । कैसा ही अच्छे से अच्छा काम क्यों न हो, यदि वह पूर्व संस्कारों के प्रतिकूल होता है तो** उसका विरोध जरुर हुआ करता है ।

विरोधी अनुयायी - अमेरिका आदि देशो में जब गुलामों को गुलामी से छुडाने का आन्दलोन उठा तब खुद गुलामों ने विरोध किया था । पागल मनुष्य अपना हित करने वाले डाक्टर पर भी हमला किया करता है । इसलिए महान पुरुषो को इन सब बातों का कुछ भी ख्यान न होना चाहिए । अन्यथा वे लक्ष्य भ्रष्ट हो जावेंगे और सफल मनोरथ न कर सकेंगे । उन्हें अपना कार्य और आन्दोलन बराबर जारी रखना चाहिए । आन्दोलन के सफल होने पर विरोधी शान्त हो जायेगे, उन्हें स्वय अपनी भूल मालूम पडेगी और आगे चलकर वे तुम्हारे कार्यों के अनुमोदन और सहायक ही नहीं बल्कि अच्छे प्रचारक और तुम्हारे अनुयायी भी बन जायेंगे इसलिये विरोध के कारण घबराकर कभी अपने हृदय में कमजोरी न लाना चाहिये और न फल प्राप्ति के लिये जल्दी करके हताश ही हो जाना चाहिये । बल्कि बडे धैर्य और गाम्भीर्य के साथ बराबर उद्योग करते रहना चाहिये ।

सच्चे हृदय से काम करने वालो और सच्चे आन्दोलन कारियो को सफलता होगी और फिर होगी। उन्हें अनके काम करने वाले महायता देनेवाले और उनके कार्यों को फैलाने वाले मिलेंगे। इसलिए घबराने की कोई बात नहीं है । जो लोग देश या समाज के सच्चे हितैषी होते हैं वे मब कुछ कष्ट उठाकर भी उसका हित-साधन किया करते हैं । अत स्वपर हितकारक ऐसे श्रावक संस्कार शिविर का आयोजन सकल समाज हमेशा करतीरहे ताकि समस्त समाज सदाचारी और धर्ममय हो जाय ।

"कि किं न साधयति कल्पलतेन विद्या"

श्री आदिवीर ज्ञानविद्या सुधासागराय नमः

जैन धर्म और दीक्षा

प्रस्तुति - ब्र.बहिन गीताजी, अशोक नगर

भारत की संस्कृति और सभ्यता बहुत प्राचीन है । यहाँ समय-समय पर अनेक महापुरुषों ने जन्म लिया और विश्व को नीति एवं कल्याण का मार्ग प्रदर्शित किया है । भगवान ऋषभदेव इन्ही महापुरुषों में से एक और प्रथम महापुरुष है, जिन्होंने इस विकसित युग के आदि में नीति व स्व पर कल्याण का संसार को पथ प्रदर्शित किया । श्रीमद्‌भागवत में इनका उल्लेख करते हुए लिखा है-

'जब ब्रह्माने देखा कि मनुष्य-संख्या नहीं बढ़ी तो उसने स्वयम्भू मनु और सत्यरुपा को उत्पन्न किया । उनके प्रियव्रत नाम का पुत्र हुआ । प्रियव्रत के अनीध्र, अनीध्र के नाभि और नाभि तथा मरुदेवी के ऋषभदेव हुए । ऋषभदेव ने इन्द्र के द्वारा दी गई जयन्ती नाम की भार्या में सौ पुत्र उत्पन्न किये और बडे पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके सन्यास ले लिया । उस समय उनके पास केवल शरीर था और वे दिगम्बर वेष में नग्न विचरण करते थे। मौन से रहते थे । कोई डराये, मारे, ऊपर थूके, पत्थर फैंके, मूत्र-विष्ठा फैंके तो इस सबकी ओर ध्यान नहीं देते थे । इस प्रकार कैवल्यपति भगवान् ऋषभदेव निरन्तर परम आनन्द का अनुभव करते हुए विचरते थे ।

जैन वाङ्मय में प्राय इसी प्रकार का वर्णन है । कहा गया है कि भगवान् ऋषभदेव युग के प्रथम प्रजापति और प्रथम सन्यास मार्ग प्रवर्तक थे । उन्होंने ही सबसे पहले लोगों को खेती करना, व्यापार करना, तलवार चलाना, लिखना-पढ़ना आदि सिखाया था और बाद को स्वयं प्रबुद्ध होकर संसार का त्याग करके सन्यास लिया था तथा जगत को आत्म कल्याण का मार्ग बताकर ब्रह्मपद (अपार शान्ति के आगार निर्वाण) को प्राप्त किया था ।

इन दोनों वर्णनों से दो बातें ज्ञातव्य हैं। एक तो यह कि भ ऋषभदेव भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के आद्य प्रवर्तक हैं। दूसरी यह कि उन्होंने आत्मिक शान्ति को प्राप्त करने के लिए राज-पाट आदि समस्त भौतिक वैभव का त्यागकर और शान्ति के एकमात्र उपाय सन्यास-दैगम्बरी दीक्षा को अपनाया था । इससे यह ज्ञात होता है कि जैन धर्म में प्रारम्भ से दीक्षा का महत्व एवं विशिष्ट स्थान है ।

एक बात और है । जैन धर्म आत्मा की पवित्रता की शिक्षा देता है । शिक्षा ही नहीं [illegible] आक्रमण पर भी वह पूरा जोर एवं भार देता है और ये दोनों चीजें बिना सबको छोडे एवं दिगम्बरी दीक्षा लिये प्राप्त नहीं हो सकती । अत. आत्मा की पवित्रता के लिये दीक्षा का ग्रहण आवश्यनीय है ।

यद्यपि संसार के विविध प्रलोभनों में रहते हुए आत्मा को पवित्र बनाना तथा इन्द्रियों व मन और शरीर को अपने काबू में रखना बड़ा कठिन है । किन्तु इन कठिनाइयों पर विजय पाना और समस्त विकारों को दूर करके आत्मा को पवित्र बनाना असंभव नहीं है । जो विशिष्ट आत्माएँ उन पर विजय पा लेती हैं उन्हीं महान आत्माओं को जैन धर्म में 'जिन' अर्थात् विकारों को जीतने वाला कहा है तथा उनके मार्ग पर चलने वालों को 'जैन' बतलाया है।

ये जैन दो भागों में विभक्त है - गृहस्थ और साधु । जो अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पाच व्रतों को एक देश पालते हैं उन्हें गृहस्थ अथवा श्रावक कहा गया है । इनके ऊपर कुटुम्ब, समाज और देश का भार होता है और इसलिये उनके संरक्षण एवं समृद्धि में योगदान देने के कारण ये इन व्रतों को साधु की तरह पूर्णत· नहीं पाल पाते । पर ये उनके पालने की भावना अवश्य रखते हैं । खेद है कि आज हम उक्त भावना से भी बहुत दूर हो गये हैं और समाज, देश, धर्म तथा कुटुम्ब के प्रति अपने कर्तव्यों को भूल गये है ।

जैनो का दूसरा भेद साधु है । साधु उन्हें कहा गया है जो विषयेच्छा रहित हैं, अनारम्भी हैं, अपरिग्रही हैं और ज्ञान-ध्यान तथा तप में लीन हैं । वे कभी किसी बुरा नहीं सोचते और न बुरा करते हैं । मिट्टी और जल को छोड़कर किसी भी अन्य वस्तु को ये बिना दिये ग्रहण नहीं करते । अहिंसा आदि उक्त पाँच व्रतों को ये पूर्णत: पालन करते हैं । जमीन पर सोते हैं । यथाजात दिगम्बर नग्न वेष में रहते हैं । सूक्ष्म जीवों की रक्षा के लिये पीछी, शौच-निवृत्ति के लिये कमण्डलु और स्वाध्याय के लिये शास्त्र इन तीन धर्मोपकरणों के सिवाय और कोई भी परिग्रह नहीं रखते । ये जैन शास्त्रोक्त 28 मूलगुणों का पालन करते हुए अपना तमाम जीवन परकल्याण में तथा आत्मसाधना द्वारा बन्धनमुक्ति में व्यतीत करते हैं । इस तरह कठोरचर्या द्वारा साधु 'जिन' अर्थात् परमात्मा पद को प्राप्त करते हैं और हमारे उपास्य एवं पूज्य होते हैं। भर्तृहरिने भी वैराग्यशतक में इस दि साधु वृत्ति की आकाँक्षा एवं प्रशंसा की है । यथा-

एकाकी निस्पृह· शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बर ।

कदाऽहं संभविष्यामि कर्मनिर्मूलन–क्षमः ॥

'कब मैं अकेला विहार करने वाला, नि स्पृही, शान्त, पाणिपात्री (अपने ही हाथों को पात्र बना कर भोजन लेने वाला), दिगम्बर नग्न होकर कर्मों के नाश करने में समर्थ होऊँगा ।'

नग्न-मुद्रा का महत्व

नग्नमुद्रा सबसे पवित्र, निर्विकार और उच्च मुद्रा है । श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव का चरित वर्णित है । उसमें उन्हे नग्न ही विचरण करने वाला बतलाया है । हिन्दू-परम्परा के परमहंस साधु भी नग्न ही विचरते थे । शुक्राचार्य शिव और दत्तात्रेय ये तीनो योगी नग्न रहते थे । अवदूतो की शाखा दिगम्बर वेष को स्वीकार करती थी और उसी को अपना खास बाह्य वेष मानती थी । ऋकसंहिता (10-136 -2) मे 'मुनयो वातवसना' मुनियों को वातवसन अर्थात् नग्न कहा है । पद्मपुराण मे नग्न साधु का चरित देते हुए लिखा है-

नग्नरुपो महाकाय सितमुण्डो महाप्रभ ।

मार्जनीं शिखिपक्षाणा कक्षाया स हि धारयन् ॥

'वे अत्यन्त कान्तिमान् और शिर मुडाये हुए नग्न वेष को धारण किये हुए थे । तथा बगल मे मयूर पखो की पीछी भी दबाये हुए थे।' इसी तरह जाबालोपनिषद्, दत्तात्रेयोपनिषद्, परमहंसोपनिषद्, याज्ञवल्क्योपनिषद् आदि उपनिषदो मे भी नग्नमुद्रा का वर्णन है।

ऐतिहासिक अनुसन्धान से भी नग्नमुद्रा पर अच्छा प्रकाश पडता है । मेजर जनरल जे जी आर फर्लाङ्ग अपनी Short Studies in Science of Comparative Religions (वैज्ञानिक दृष्टि से धर्मों का तुलनात्मक सक्षिप्त अध्ययन) नाम की पुस्तक में लिखते हैं कि हमने दुनिया के सर्व धार्मिक विचारो को सच्चे भाव से पढ़कर यह समझा है कि इन सबका मूल कारण विचारवान जैनियों का यतिधर्म है । जैन साधु सब भूमियो में सुदूर पूर्वकाल से ही अपने को ससार से भिन्न करके एकान्त वन व पर्वत की गुफाओं में पवित्र ध्यान में मग्न रहते थे।

डाक्यर टाम्स कहते हैं कि 'जैन साधुओ का नग्न रहना इस मत की अति प्राचनीता बताता है।'

सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में नग्न गुरुओ की बडी प्रतिष्ठा थी । मुद्राराक्षस के कर्ता प्रसिद्ध विद्वान कवि कालिदास ने लिखा है कि इसीलिये जासूसो को नग्न साधु के वेष मे घुमाया जाता था। नग्न साधुओं के सिवा दूसरो की पहुँच राजघरानो में उनके अन्त पुर तक नहीं हो पाती थी । इससे यह विदित हो जाता है कि जैन निर्ग्रन्थ साधु कितने निर्विकार, नि स्पृही, विश्वासपात्र और उच्च चारित्रवान होते हैंऔर उनकी यह नग्नमुद्रा बच्चे की तरह कितनी विकारहीन एव प्राकृतिक होती है ।

साधु दीक्षा का महत्व

इस तरह आत्म-शुद्धि के लिये दिगम्बर साधु होने अथवा दीक्षा ग्रहण करने का महत्व स्पष्ट हो जाता है । जब मुमुक्षु श्रावक को संसार से निर्वेद एव वैराग्य हो जाता है तो वह उक्त साधु की दीक्षा लेकर साधनामय जीवन बिताता हुआ आत्म-कल्याण की ओर उन्मुख होता है । जब उसे आत्मसाधना करते-करते आत्मदृष्टि (सम्यग्दर्शन), आत्मज्ञान (सम्यग्ज्ञान) और आत्मचरण (सम्यक्चारित्र) ये तीन महत्त्वपूर्ण आत्मगुण प्राप्त हा जाते हैं और पूर्ण वीतराग सर्वज्ञ बन जाता है तो वह उन गुणो को प्राप्त करने का दूसरो को भी उपदेश करता है । अतएव साधु-दीक्षा तपका ग्रहण स्वपर-कल्याण का कारण होने से उसका जैन धर्म में विशिष्ट स्थान है । दूसरो के लिये तो वह एक आनन्दप्रद उत्सव है ही किन्तु साधु के लिये भी वह अपूर्व आनन्दकारक उत्सव है । और इसी मे पण्डितप्रवर दौलतरामजी ने निम्न पद्य में भव-भोगविरागी मुनियो के लिये बडभागी कहा है

'मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव–भोगनते वैरागी ।

वैराग्य उपावन माई, चिन्तौ अनुप्रेक्षा भाई ॥

जेन शास्त्रो मे बतलाया गया है कि तीर्थंकर जब ससार मे विरक्त होते हैं और मुनि दीक्षा लेने के लिये प्रवृत्त होते हैं तो एक भवावतारी सदा ब्रह्मचारी और सदैव आत्मज्ञानी लौकान्तिक देव उनके इस दीक्षा उत्सव मे आते हैं और उनके इस कार्य की प्रशसा करते हैं । पर वे उनके जन्मादि उत्सवो पर नहीं आते । इससे साधु-दीक्षा का महत्त्व विशेष ज्ञात होता है और उसका कारण यही है कि वह आत्मा के स्वरूप लाभ में तथा पर कल्याण में मुख्य कारण है ।

दिगम्बर मुनि के पर्यायवाची नाम आकच्छ, आकिञ्चन, अचेलक, अतिथि, अनगारी, अपरिग्रही, अहीक , आर्य, ऋषि, गणी गुरु, जिनलिगी, तपस्वी, दिगम्बर दिग्वास, नग्न, निश्चैल निर्ग्रंथ निरागार, पाणिपात्र, भिक्षुक, महाव्रती माहण मुनि यति योगी वातवसन विवसन, संयमी, स्थिविर साधु सन्यस्थ श्रमण क्षपणक ।

अजैन दृष्टि से जैन अष्टमूल गुण

शुभ विचार, प्रेम व्यवहार, शुद्ध आहार और निरोगता के उपयोगी मार्ग

1 **मांस का त्याग**-International Commission के अनुसार मनुष्य का भोजन माँस नहीं है। जिन पशुओं का भोजन मांस हैं वे जन्म से ही अपने बच्चों को मांस से पालते हैं, यदि मनुष्य अपने बच्चों को जन्म से माँस खिलाये तो वे जिन्दा नहीं रह सकते। मनुष्य के दांत, आंख, पंजा, नाखून, नसें, हाजमा और शरीर की बनावट, मांस खाने वाले पशुओं से बिल्कुल विपरीत है। मनुष्य का कुदरती भोजन निश्चित रूप से मांस नहीं है।

Royal Commission के अनुसार मांस के लिये मारे जाने वाले पशुओं में आधे तपेदिक के रोगी होते हैं इसलिये उनके मांस भक्षण से मनुष्य तो तपेदिक का रोग लग जाता है। उनके अनुसार मांस को हज्म करने के लिए शाकाहारी भोजन से चार गुणा हाज्मे की शक्ति की आवश्यकता है इसलिए संसार के प्रसिद्ध डाक्टरों के शब्दों में बदहज्मी, दर्दगुर्दा, अन्तड़ियो की बीमारी, जिगर की खराबी आदि अनेक भयानक रोग हो जाते है। Dr Josiah Oldfield के अनुसार 99 प्रतिशत मृत्यु मांस भक्षण से उत्पन्न होने वाली बीमारियों के कारण होती है, इसलिए महात्मा गांधी जी के शब्दों में मास भक्षण अनेक भयानक बीमारियों की जड़ है।

मांस से शक्ति नहीं बढ़ती। घोड़ा इतना शक्तिशाली जानवर है संसार के इंजनों की शक्ति को इसकी शक्ति से अनुभव किया जाता है। वह भूखा मर जायेगा, परन्तु मांस भक्षण नहीं करेगा। वैज्ञानिक खोज से यह सिद्ध है- 'सब्जी में मांस से पांच गुणा अधिक शक्ति है।' Sir (Willam Cooper C.I.E) के कथनानुसार घी, गेहू, चावल, फल आदि मांस से अधिक शक्ति उत्पन्न करने वाले हैं। यह भी एक भ्रम ही है कि मांस-भक्षी वीरता से युद्ध लड़ सकता है। प्रो. राममूर्ति, महाराणा प्रताप, भीष्म-पितामह, अर्जुन आदि योद्धा क्या मांस भक्षी थे।

मांस-भक्षण के लिये न मारा गया हो, स्वयं मर गया हो, ऐसे प्राणियों का मांस खाने में भी पाप है, क्योंकि मुर्दा मांस में उसी जाति के जीवों की हर समय उत्पत्ति होती रहती है जो दिखाई भी नहीं देते और वे जीव मांस भक्षण से मर जाते है। वनस्पति भी तो एक इन्द्रिय जीव है फिर अनेक प्रकार की सब्जियां खाकर अनेक जीवों की हिंसा करने की अपेक्षा तो एक बड़े पशु का वध करना उचित है, ऐसा विचार करना भी ठीक नहीं है क्योंकि चल-फिर न सकने वाले एक इन्द्रिय स्थावर जीवों की अपेक्षा चलते-फिरते दो इन्द्रिय त्रस जीवों के वध में असंख्य गुणा पाप है बकरी, गाय, भैंस, बैल आदि पंच इन्द्रिय जीवों का वध करना तो अनन्तानन्त असंख्य गुणा दोष है। अन्न-जल के बिना तो जीवन का निर्वाह असम्भव है, परन्तु जीवन की स्थिरता के लिये मांस की बिल्कुल आवश्यकता नहीं है।

विष्णुपुराण के अनुसार, 'जो मनुष्य मांस खाते हैं वे थोड़ी आयु वाले, दरिद्री होते हैं। महाभारत के अनुसार, जो दूसरों के मांस से अपने शरीर को शक्तिशाली बनाना चाहते हैं, वे मर कर नीच कुल में जन्म लेते हैं और महादुखी होते है। पार्वती जी शिव जी से कहती हैं- जो हमारे नाम पर पशुओं को मार कर उनके मांस और खून से हमारी पूजा करते हैं, उनको करोड़ों कल्प नरक के महादुख सहन करने पड़ेंगे। महर्षि व्यास जी के कथनानुसार-जीव-हत्या के बिना मांस की उत्पत्ति नहीं होती इसलिए मांस भक्षी जीव हत्या का दोषी है। महर्षि मनु जी के शब्दों में, जो अपने हाथ से जीव-हत्या करता है, मांस खाता है, बेचता है, पकाता है, खरीदता है या ऐसा करने की रायदेता है वह सब जीव हिंसा के महापापी हैं। भीष्मपितामह के शब्दो में, मांस खाने वालों को नरक में गरम तेल के कढ़ाओं में वर्षों तक पकाया जाता है। श्रीकृष्ण जी के शब्दों में, यह बड़े दुख की बात है कि फल, मिठाई आदि स्वादिष्ट भोजन छोड़कर कुछ लोग मांस के पीछे पड़े हुए हैं। महर्षि दयानन्द जी ने भी मांस भक्षण में अत्यन्त दोष बताये हैं। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार, मांस भक्षण तहजीब के विरुद्ध है। मौलाना रूमी के अनुसार, हजारों खजाने दान देने, खुदा की याद में हजारों रात जागने और हजार सजदे करने और एक-एक सजदे में हजार बार नमाज पढ़ने को भी स्वीकार नहीं करता, यदि तुमने किसी तिर्यंच का भी हृदय दुखाया। शेखसादी के अनुसार, जब मुंह का एक दांत निकालने से मनुष्य को अत्यन्त पीड़ा होती है तो विचार करो कि उस जीव को कितना कष्ट होता है जिसके शरीर से उसकी प्यारी जान निकाली जावे। फिरदौसी के अनुसार कीड़ों को भी अपनी जान इतनी ही प्यारी है, जितनी हमें, इसलिये छोटे से छोटे प्राणी को भी कष्ट देना उचित नहीं। हाफिज अलामा उलरहीम साहिब के अनुसार-शराब पी, कुरान शरीफ को जला, काबा को आग लगा, बुतखाने में रह, लेकिन किसी भी जीव का दिल न दुखा। हिन्दू मुसलमान सिख, ईसाई तथा फारसी आदि सब ही धर्म मांस-भक्षण का निषेध करते हैं इसलिए महाभारत की कथनानुसार सुख-शान्ति तथा Supreme Peace के अभिलाषियों को मांस का त्यागी होना उचित है।

2. **शराब का त्याग**: शराब अनेक जीवों की योनि है जिसके पीने से वह मर जाते हैं, इसलिए इसका पीना निश्चित रूप से हिंसा है। Dr. A.C.Selman के अनुसार यह गलत है कि शराब से

थकावट दूर होती है या शक्ति बढ़ती है। फ्रांस के experts खोज के अनुसार, शराब पीने से बीबी-बच्चों तक से प्रेम-भाव नष्ट हो जाते हैं। मनुष्य अपने कर्तव्य को भूल जाता है, चोरी, डकैती आदि की आदत पड़ जाती है। देश का कानून भंग करने से भी नहीं डरता, यही नहीं बल्कि पेट, जिगर, तपेदिक आदि अनेक भयानक बीमारियां लग जाती हैं। इगलैण्ड के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री Gladstone के शब्दों में युद्ध, काल और प्लेग की तीनो इकट्ठी महा-आपत्तियाँ भी इतनी बाधा नहीं पहुचा सकती जितनी अकेली शराब पहुचाती है।

3 **मधु का त्याग** - शहद मक्खियों का उगाल है। यह बिना मक्खियो के छत्ते को उजाडे प्राप्त नहीं होता इसलिये महाभारत में कहा है, "सात गावा को जलाने से जो पाप होता है, वह शहद की एक बूद खाने में है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि जो लोग सदा शहद खाते हैं, वे अवश्य नरक में जावेगे। मनुस्मृति में भी इनके सर्वथा त्याग का कथन है। जिसके आधार पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के समुल्लास ३ मे शहद के त्याग को शिक्षा दी है। चाणक्य नीति में भी शहद को अपवित्र वस्तु कहा है इसलिये मधु-सेवन उचित नहीं है।

4 **अभक्षण का त्याग** - जिस वृक्ष से दूध निकलता है उसे क्षीरवृक्ष या उदुम्बर कहते हैं। उदुम्बर फल त्रस जीवो की उत्पत्ति का स्थान है इसलिए अमरकाष मे उदुम्बर का एक नाम 'जन्तु फल' भी कहा है और एक नाम हेमदुग्धम है, इसलिये पीपल,गूलर, पिलखन, बड और काक 5 उदुम्बर के फलो को खाना त्रस अर्थात चलते-फिरते जन्तुओ की सकल्प हिसा है। गाजर मूली, शलजम आदि कन्द-मूल में भी त्रस जीव होते हैं, शिवपुराण के अनुसार, जिस घर मे गाजर मूली शलजम आदि कन्द-मूल पकाये जाते हैं वह घर मरघट के समान है। पितर भी उस घर मे नहीं आते और जो कन्दमूल के साथ अन्न खाता है उसकी शुद्धि और प्रायश्चित सौ चान्द्रायण व्रतों से भी नहीं होती। जिसने अभक्षण का भक्षण किया उसने ऐसे तेज जहर का सेवन किया जिसके छूने से ही मनुष्य मर जाता है। बैंगन आदि अनन्तानन्द बीजो के पिण्ड के खाने से रौरव नाम के महा दु खदायी नरक में दु ख भोगने पडते है। श्रीकृष्ण जी के शब्दो में अचार, मुरब्बा आदि अभक्ष्य, आलू-शकरकन्द आदि कन्द और गाजर, मूली, गंठा आदि मूल खाने वाले को नरक की वेदना सहन करनी पड़ती है।

5 **बिना छने जल का त्याग** - जैन धर्म अनादि काल से कहता चला आया है कि वनस्पति, जल, अग्नि वायु और पृथ्वी एक इन्द्रिय स्थावर जीव है परन्तु ससार न मानता था। डा जगदीश चन्द्र बोस ने वनस्पति को वैज्ञानिक रूप से जीव सिद्ध कर दिया तो संसार को जैन धर्म की सच्चाई का पता चला। इसी प्रकार जल को जीव मानने से इन्कार किया जाता रहा तो कैप्टिन स्ववोर्सवी ने वैज्ञानिक खाज सेपता लगाया कि पानी की एक छोटी सी बूँद में 36450 सूक्ष्म जन्तु होते हैं, जिसके आधार पर महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने भी सत्यार्थ प्रकाश के दूसरे समुल्लास में जल को छान कर पीने के लिये कहा है।

36 अंगुल चौडे, 48 अगुल लम्बे मजबूत, मल रहित, गाढ़, हुरे, शुद्ध खद्दर के वस्त्र से जो कहीं से फटा न हो, पानी छानना उचित है। यदि रतन का मुंह अधिक चौड़ा है तो उस वरतन के मुँह से तीन गुणा दाहरा खद्दर का प्रयोग करना चाहिये। और छने हुए पानी से उस छनने को धोकर उस धोवन को उसी बावड़ी या कुए मे गिरा देना चाहिये जहां से पानी लिया गया हो। यह कहना कि पम्प का पानी जालो से छन कर आता है उचित नहीं। क्योंकि जालो के छेद सीधे होने के कारण छोटे सूक्ष्म जीव उन छेदों में से आमानी से पार हो जाते हैं। यह समझना भी ठीक नहीं है- "म्युनिसिपेल्टिी फिल्टर से शुद्ध पानी भरती है इसलिये टकी के पानी को छानने से क्या लाभ ?" एक बार के छने हुए पानी में 48 मिनट के बाद फिर जन्तु उत्पन्न हो जाते हैं इसलिए जीव-हिंसा से बचने तथा अपने स्वास्थ्य के लिये छने हुए पानी को भी यदि वह 48 मिनट से अधिक काल का हे, ऊपर लिखी हुई विधि के साथ दोबारा छानना उचित है।

6 **रात्रि भोजन का त्याग** - अन्धेरे में जीवो की अधिक उत्पत्ति होने के कारण रात्रि में भोजन करना या कराना घोर हिसा है। यह कहना कि बिजली की तेज रोशनी से दिन के समान चादना कर लेने पर रात्रि भोजन में क्या हर्ज है ? उचित नहीं विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया कि (Oxygen) तन्दुरुस्ती को लाभ और (Carbonic) हानि पहुचाने वाली है। वृक्ष दिन में कारबॉनिक चूसते हैं और आक्सीजन छोड़ते हैं जिसके कारण दिन में वायु-मण्डल शुद्ध रहता है और शुद्ध वायु मण्डल में किया हुआ भोजन तन्दुरुस्ती बढाता है। रात्रि के समय वृक्ष भी कारबॉनिक गैस छोड़ते हैं जिसके कारण वायुमण्डल दूषित होता है ऐसे वातावरण में भोजन करना शरीर को हानिकारक है। सूरज की रोशनी का स्वभाव सूक्ष्म जन्तुओ को नष्ट करने और नजर न आने वाले जीवों की उत्पत्ति का है। दीपक, हण्डे तथा बिजली की तेज रोशनी में भी यह शक्ति नहीं बल्कि इसके विरुद्ध बिजली आदि का स्वभाव मच्छर आदि जन्तुओं को अपनी तरफ खींचने का है, इसलिये तेज से तेज बनावटी रोशनी में भोजन करना वैज्ञानिक दृष्टि से भी अनेक रोगो की उत्पत्ति का कारण है।

सूर्य की रोशनी में किया हुआ भोजन जल्दी हजम हो जाता है इसलिये आयुर्वेदिक के अनुसार भी भोजन का समय रात्रि नहीं बल्कि सुबह और शाम है।

रात्रि को तो कबूतर और चिड़िया आदि तिर्यंच भी भोजन नहीं करते। महात्मा बुद्ध ने रात्रि भोजन की मनाही की है।

श्रीकृष्णजी ने युधिष्ठर जी को नरक जाने के जो चार कारण बताये हैं रात्रि भोजन उन सब में प्रथम कारण है। उन्होंने यह भी बताया कि रात्रि भोजन कात्याग करने से 1 महीने में 15 दिन के उपवास का फल प्राप्त होता है। महर्षि मार्कण्डेय के शब्दों में रात्रि भोजन करना, मांस खाने और पानी पीना लहू पीने के समान महापाप है। महाभारत के अनुसार, रात्रि भोजन करने वाले का जप, तप, एकादशी व्रत, रात्रि जागरण, पुष्कर यात्रा तथा चन्द्रायण व्रतादि निष्फल है। इसलिए वैज्ञानिक, आयुर्वेदिक धार्मिक, सब ही दृष्टि से रात्रि भोजन करना और कराना उचित नहीं है।

7 **हिंसा का त्याग** – मास, शराब, शहद, अभक्षण, बिन छाना जल तथा रात्रि भोजन के ग्रहण करने में तो साक्षात् हिंसा है ही परन्तु महर्षि पातंजली के अनुसार यदि हमारी वजह से हिंसा हो तो स्वयं हिंसा न करने पर भी हम हिंसा के दोषी हैं, इसलिये ऐसी हिसा का भी त्याग किया जावे, जिसको हम हिंसा नहीं समझते।

(क) फैशन के नाम पर हिंसा – सूत के मजबूत कपड़े, टीन के सुन्दर सूटकेस, अटैची, घडी के पट्टे, बटवे आदि के स्थान पर रेशमी वस्त्र और चमड़े की वस्तुएं खरीदना।

(ख) उपकारिता के नाम पर हिंसा – बिच्छू, साँप भिरड़ आदि को देखते ही डण्डा उठाना, चाहे व शान्ति से जा रहे हो या तुम्हारे भय से भाग रहे हों। महात्मा देवात्मा जी के शब्दो में, जहरीले जानवरों को भी कभी-कभी पृथ्वी पर चलने का अधिकार है इसलिये अपने जीवन की रक्षा करते हुए उनको शान्ति से जीने देना चाहिये।

(ग) व्यापार के नाम पर हिंसा – महाभारत के अनुसार मांस तथा चमड़े की वस्तुएं खरीदना-बेचना और ऐसा करने का मत देना।

(घ) अहिंसा के नाम पर हिंसा – कुत्ता आदि पशु के गहरा जखम हो रहा है, कीड़े पड गये, मवाद हो गया, दुख से चिल्लाता है तो उसका इलाज करने के स्थान पर पीड़ा से छुटाने के बहाने से उसे जान से मार देना। यदि यही दया है तो अपने कुटुम्बियों को जो शारीरिक पीड़ा के कारण उनसे भी अधिक दुःखीहैं क्यों नहीं जान से मार देते?

(ङ) सुरक्षा के नाम पर हिंसा – बड़ों का कहना है नीयत के साथ बरकत होती है। जब से हमने अनाज की बचत के लिये चूहे, कुत्ते, बन्दर टिड्डी आदि जीवों को मारना आरम्भ किया अनाज की अधिक पैदावार तथा अच्छी फसल होना ही बन्द हो गई।

(च) धर्म के नाम पर हिंसा – देवी-देवताओं के नाम पर तथा यज्ञों में जीव बलि करना और उससे स्वर्ग की प्राप्ति समझना।

(छ) भोजन के नाम पर हिंसा – मांस का त्याग करने के स्थान पर मछलियों की काश्त करके मांस भक्षण का प्रचार करना और कराना।

(ज) विज्ञान के नाम पर हिंसा – शरीर की रचना और नसें हड्डी आदि चित्रादि से समझने की बजाय असंख्यात खरगोश तथा मैंढक आदि को चीर फैंकना।

(झ) दिल बहलाव के नाम पर हिंसा – दूसरों की निन्दा करके, गाली देकर, हँसी उड़ाकर, चूहे को पकड़कर बिल्ली के निकट छोड़कर, शिकार खेलकर, तीतर बटेर लड़वाकर और दूसरों को सताकर आनन्द मानना।

(8) अर्हन्त भक्ति – श्री भर्तृहरि कृत, शतकत्रय के अनुसार 'अर्हन्त' समस्त त्यागियों में मुख्य हैं। स्कन्ध पुराण के अनुसार, वही जिह्वा है जिससे जिनेन्द्र की पूजा की जावे वही दृष्टि है जो जिनेन्द्र के दर्शनों में तल्लीन हो और वही मन है जो जिनेन्द्र में रत हो। विष्णु पुराण के अनुसार, अर्हन्त मत (जैन धर्म) से बढ़कर स्वर्ग और मोक्ष का देने वाला कोई दूसरा धर्म नहीं है। मुद्राराक्षस नाटक में अर्हन्तों के शासन को स्वीकार करने की शिक्षा है। महाभारत में जिनेश्वर की प्रशंसा का कथन है। मुहुत चिन्तामणि नाम के ज्योतिष ग्रन्थ में जिनदेव की स्थापना का उल्लेख है। ऋग्वेद में लिखा है, हे अर्हन्त देव आप विधाता है, अपनी बुद्धि से बड़े भारी रथ की तरह संसार चक्र को चलाते हैं। आपकी बुद्धि हमारे कल्याण के लिये हो। हम आपका मित्र के समान सदा संसर्ग चाहते है। अर्हन्तदेव से ज्ञान का अंश प्राप्त करके देवता पवित्र होते हैं। हे अग्निदेव। इस वेदी पर सब मनुष्यों से पहले अर्हन्त देव का मन से पूजन और फिर उनका आहवान करो। पवन देव, अच्युत देव, इन्द्रदेव और श्री देवताओं की भांति अर्हन्त का पूजन करो वे सर्वज्ञ हैं। जो मनुष्य अर्हन्तों की पूजा करता है, स्वर्ग के देव उस मनुष्य की पूजा करते हैं।

यह तो स्पष्ट है कि अर्हन्त, अर्हन्, जिनेन्द्र, जिनदेव जिनेश्वर अथवा तीर्थंकर की पूजा का कथन वेदों और पुराणों में भी है। अब केवल प्रश्न इतना रह जाता है कि यह जैनियों के पूज्यदेव हैं या अन्य महापुरुष? हिन्दी शब्दार्थ तथा शब्द कोषों के अनुसार इनका अर्थ जैनियों के 'पूज्यदेव' हैं। यही नहीं बल्कि इनके जो गुण और लक्षण जैनधर्म बताता है वही ऋग्वेद स्वीकार करता है, अर्हन्तदेव। आप धर्मरूपी बाणों, सदुपदेश (हितोपदेश) रूपी धनुष तथा अनन्तज्ञान आदि आभूषणों के धारी, केवलज्ञानी (सर्वज्ञ) और काम, क्रोधादि कषायों से पवित्र (वीतरागी) हो। आप के समान कोई अन्य बलवान नहीं, आप अनंतानन्त शक्ति के धारी हो। फिर भी कहीं किसी दूसरे महापुरुष का भ्रम न हो जाये, स्वयं ऋग्वेद ने ही स्पष्ट कर दिया, अर्हन्त देव आप नग्न स्वरूप हो, हम आपकी पूजा-भक्ति की प्राप्ति के लिए यज्ञ की वेदी पर बुलाते हैं।

कहा जाता है -मूर्ति जड है इसके अनुराग से क्या लाभ है? सिनेमा जड़ है लेकिन इसकी बेजान मूर्तियो का प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता, पुस्तक के अक्षर भी जड़ हैं, परन्तु ज्ञान की प्राप्ति करा देते है चित्र भी जड़ है लेकिन बलवान योद्धा का चित्र देख कर क्या कमजोर भी एक बार मूछों पर ताव नहीं देने लगते ? क्या वैश्या का चित्र हृदय में विकार उत्पन्न नहीं करता ? जिस प्रकार नक्शा सामने हो तो विद्यार्थी भूगोल को जल्दी समझ लेता है। उसी प्रकार अर्हन्त की मूर्ति को देख कर अर्हन्तो के गुण जल्दी समझ में आ जाते है। मूर्ति को केवल निमित्त कारण (Object of devotion) है।

कुछ लोगों को शका है कि जब अर्हन्तदेव इच्छा तथा रागद्वेष रहित हैं, पूजा से हर्ष और निन्दा से खेद नहीं करते, कर्मानुसार फल स्वयं मिलने के कारण अपने भक्तो की मनोकामना भी पूरी नहीं करते तो उनकी भक्ति और पूजा से क्या लाभ ? इस शंका का उत्तर स्वा समन्तभद्राचार्य जी ने स्वयम्भूस्तोत्र मे बताया-

न पूजयाऽर्थस्त्वयि वीतरागे ने निन्दया नाथ विवान्तवैरे।

तथाऽपि ते पुण्य-गुण स्मृतिर्नः पुनाति चित्त दुरिताजंनेभ्यः ॥५७॥

अर्थात् - श्री अर्हन्तदेव। राग-द्वेष रहित हाने के कारण पूजा- वन्दना से प्रसन्न और निन्दा से आप दुखी नहीं होते और न हमारी पूजा अथवा निन्दा से आपको कोई प्रयोजन है। फिर भी आपके पुण्य गुणों का स्मरण हमारे चित्त को पापमल से पवित्र करता है। श्रीमानतुगांचार्य ने भी भक्तामर स्तोत्र मे इस शंका का समाधान करते हुए कहा -

आस्तां तव स्तवनमस्त समस्त दोष त्वत्सकथापि जगता दुरितानि हन्ति।

दूरे सहस्त्र किरण कुरुते प्रभैव पदमाकरेषु जलजानि विकासभांजि।

अर्थात् - भगवान सम्पूर्ण दोषों से रहित आपकी स्तुति की तो बात दूर है, आपकी कथा भी प्राणियो के पापों का नाश करती है। सूर्य की तो बात जाने दो उसकी प्रभामात्र से सरोवरों के कमलों का विकास हो जाता है। आचार्य कुमुचन्द्र ने भी बताया -

हृद्वितिनि स्वयि बिभो शिथिलिप भवन्ति, जन्तौ क्षणेन निबिडा अपि कर्मबन्धा।

सद्यो भुजंगममया इव मध्यभागमभ्यागते वनशिखिण्डिनि चन्दनस्य ॥

अर्थात् - हे जिनेन्द्र। हमारे लोभी हृदय में आपके प्रवेश करते ही अत्यन्त जटिल कर्मो का बन्धन उसी प्रकार पड़ जाता है जिस प्रकार वन मयूर से आते ही सुगन्ध की लालसा में चन्दन के वृक्ष से लिपटे हुए लोभी सर्पों के बन्धन ढीले पड़ा जाते हैं।

कुछ लोगो को भ्रम है कि जब माली की अव्रतीकन्या अर्हन्त भगवान् के मन्दिर की चौखट पर ही फूल चढ़ाने से सौ धर्म नाम के प्रथम स्वर्ग की महाविभूतियों वाली इन्द्राणी हो गई। धनदत्त नाम के ग्वाले को अर्हन्तदेव के सम्मुख कमल का फूल चढ़ाने से राजा पद मिल गया। मेंढक पशु तक बिना भक्ति करे, केवल अर्हन्न भक्ति की भावना करने से ही स्वर्ग में देव हो गया तो दो घण्टा अर्हन्त वन्दना करने पर भी हम दुःखी क्यों है। इस प्रश्न का उत्तर श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने कल्याण मन्दिर स्तोत्र में सि प्रकार दिया है

आकर्थितोऽपि महितोऽपि निरीक्षतोऽपि नून न चेतसि मया विधृतोऽसि भक्त्या।

जातोऽस्मि तेन जनबान्धवा दु.खपात्र यस्मात् क्रिया प्रतिफलन्ति न भावशून्या ॥

अर्थात् हे भगवान। मैंने आपकी स्तुतियो को भी सुना, आपकी पूजा भी की, आपके दर्शन भी किये किन्तु भक्ति पूर्वक हृदय में धारण नहीं किया। हे जनबान्धव। इस कारण ही हम दुख का पात्र बन गये क्योंकि जिस प्रकार प्राण रहित प्रिय से प्रिय स्त्री -पुत्र आदि भी सच्चे नहीं लगते, उसी प्रकार बिना भाव के दर्श न, पूजा आदि सच्ची अर्हन्ति भक्ति नहीं बल्कि निरी मूर्तिपूजा है इसके लिए बैरिस्टर चम्पतराय के शब्दों में जैन धर्म में कोई स्थान नहीं। भावपूर्वक अर्हन्त भक्ति के पुण्य फल से आज पंचमकाल में भी मनवांछित फल स्वय प्राप्त हो जाते हैं। मानतुंगाचार्य की श्री ऋषभदेव की स्तुति से जेल के 48 लौह कपाट स्वयं खुल गये। समन्त भद्राचार्य की तीर्थंकर वन्दना से चन्द्रप्रभु तीर्थंकर का प्रतिबिम्ब प्रकट हुआ। चालुक्य नरेश जयसिंह के समय वादीराज का कुष्ट रोग जिनेन्द्र भक्ति से जाता रहा। जिनेन्द्र भगवान् पर विश्वास करने से गंगवंशी सम्राट विनयादित्य ने अथाह जल से भरे दरिया को हाथो से तैर कर पार कर लिया। जैन धर्म को त्याग कर भी होयसल वंशी सम्राट विष्णुवर्धन को श्री पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाने में,पुत्र सोलंकी सम्राट कुमारपाल को श्री अजितनाथ की भक्ति से युद्धों में विजय और भरतपुर के दीवान को वीर भक्ति से जीवन प्राप्त हुआ। कदम्बवंशी सम्राट रविवर्मा ने सच कहा है जनता को श्री जिनेन्द्र भगवान की निरन्तर पूजा करनी चाहिए, क्योंकि जहां सदैव जिनेन्द्र पूजा विश्वासपूर्वक की जाती है वहीं अभिवृद्धि होती है, देश आपत्तियों और बीमारियों के भय से मुक्त रहता है और वहां के शासन करने वालों का यश और शक्ति बढ़ती है।

ओम् आदिवीर-ज्ञानविद्या सुधासागराय नमः

विभिन्न दृष्टियों में आहार

लेखक - पू० क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी महाराज

आहार (भोजन) को तीन प्रकार से सन्तों, महन्तों, डाक्टरों, वैद्यो, वैज्ञानिकों ने अनेक धार्मिक शास्त्रो में विभाजित किया है, क्यों कि आहार हमारे विचारों तथा जीवन में स्वाभाविक क्रियाओ पर विशेष प्रभाव डालता है। इसलिए इसको तीन कोटियो में विभाजित किया गया है - ।

१— तामसिक आहार

२— राजसिक आहार

३— सात्विक आहार

१— तामसिक आहार - तामसिक भोजन हमारे जीवन म शान्ति की दृष्टि से शान्ति को भग करता है, क्योंकि इससे प्रभावित हुआ मन अधिकाधिक विवेकशून्य कर्तव्यविमुख होता चला जाता है। तामसिक वृति वाले व्यक्ति अपने लिए ही नही, अन्य मुहल्ले वालो को, समाज और रिश्तेदारो के लिए भी दुखो का, भय का कारण बने रहते है। उनकी अन्दर की भावना का झुकाव मुख्यत अपराधों, हत्याओ, अन्य जीवों के प्राणो को हरण करने, शोषण करने मे लगा रहता है, तथा व्यभिचार, अत्याचार, बलात्कार आदि क्रियाओ की ओर इनका झुकाव अधिक देखा जाता है।

तामसिक भोजन का अर्थ है जो आहार विवेक से रहित होकर निर्दयता से बनाया गया हो जिसे मास, मद्य, मधु, अंजीर, लहसुन, प्याज, कन्दमूल, फूल आदि पदार्थों को ग्रहण करके बनाया गया हो, बड़े या छोटे प्राणियों को समाप्त करके या घात करके बनाया गया हो।

ऐसे जीवों का विभाजन चार भागो में किया गया है-

१— नरक, २— तिर्यन्च, ३—मनुष्य, ४ —देव

तिर्यन्च गति का विस्तार बहुत अधिक है। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति, कीट, पतंग, पशु, पक्षी में सभी तिर्यन्च गति में आते हैं। और भी छोटे-छोटे जीव, (माइक्रोस्कोप सयुक्त सूक्ष्म दर्शी यन्त्र) के माध्यम से दिखने में आने वाले जीव भी, तिर्यन्च गति म आते है।

आज लोगो ने अण्डो को शाकाहार समझ लिया है। इनके सेवन करने वालों के बारे में जब विचार किया जाता है, तब ऊपर लिखे अपराधों में से किसी न किसी प्रकार का अपराध उनके अन्दर रहता है, या कोई न कोई बीमारी के शिकार हुए बिना रह नही सकते। इसलिए हमारे जीवन में तामसिक आहार एक कुष्ठ आहार, निन्दनीय आहार है। इसका सेवन साधु, सन्त, महन्त आदि महापुरुष नही करते हैं। इसको दूर से ही त्याग देना चाहिए।

२ राजसिक आहार- यह आहार अपने जीवन में विलासिता लाता है। इन्द्रियों का पोषण करता है। आज के युग में इसका प्रभाव और भी अधिक देखा जाता है। इस प्रकार के भोजन बनाने की प्रक्रिया टी० वी०, पत्र- पत्रिकाओ में कई प्रकार के व्यन्जन, चटपटे भोजन बनाने के लेख आदि में आती हैं। होटलो व चॉट के ठेलों पर भी इस प्रकार का आहार मिलता है। यहां तक कहो कि ५६ प्रकार के व्यन्जन या भोजन की किस्में अथवा पौष्टिक, रसीले पदार्थ सब राजसिक भोजन में ही गर्भित हैं। ऐसा भोजन करने से व्यक्ति अपनी जिव्हा इन्द्रि का दास बने

बिना नही रह सकता, इसलिए अपने विचार- विवेक, आदि पर इसका प्रभाव पड़ता है। इस राजसिक आहार से कोसो दूर रहना ही उचित है।

३ सात्विक आहार.- इस भोजन का तात्पर्य है कि जिसमे ऐसी भी वस्तुओ का ग्रहण होता है जिनकी प्राप्ति के लिए स्थूल हिसा नही करनी पडे अर्थात् ऐसा भोजन जो शुद्ध साफ अन्न से बनाया गया हो। पथ्य, दही, घी, खाँड शक्कर व ऐसी वनस्पतिया जिसमें त्रस जीवो अर्थात् छोटे-छोटे जीव जो चलते फिरते है। न हो, ऐसा शुद्ध आर पवित्र वैक्टीरिया जीवो से रहित, भोजन करने से विवेक सादगी, दया, अहिसा आदि के परिणाम सुरक्षित रहते है ,और यह परिणाम विशुद्धता लिए हुए चरित्र की सुरक्षा भी करते है। यदि इसी आहार को अधिक मात्रा मे सेवन कर लिया जाये तो यही आहार हमारे लिए तामसिक राजसिक आहार मे परिवर्तित हो जाता है। अगर हम इस आहार को कम मात्रा म यानि भूख से कम खाये तो हमारे जीवन मे सादगी बनी रह सकती है।अधिक खाने मे निद्रा, पेट-विकार, आदि परेशानिया आ जाता है। इसलिए अधिक भोजन प्रमाद का कारण बन जाता है। एक सीमा तक घी सात्विक आहार मे आ जाता है। इससे अधिक प्रयोग ऊपर के दो प्रकार के भोजन मे फिर गर्भित हो जाता है। हमारे जीवन के लिए यही भोजन परमावश्यक है।

तीनो प्रकार के सम्बध मे एक उदाहरण दे रहा हूँ। एक बार अमेरिका मे चौबीस व्यक्ति थे जिन्होंने हत्याये की थी, जेलर ने १२ व्यक्तियो का पूर्ण रूप से तामसिक आहार दिया। उसमे मास, शराब, अण्डे, मछली, प्याज, लहसुन आदि था। छह माह तक १२ व्यक्तियो को राजसिक आहार दिया जो चटपटे,चॉट, पकौड़ी, घी मे तले पदार्थ आदि आपको राजसिक भोजन मे बनाया गया। वही भोजन उन्होने उन्ही १२ लोगो को राजसिक आहार के रूप के दिया फिर उसके बाद उनसे जेलर साहब ने पूछा अगर हम आज सजा माफकर देगे तो फिर हत्या करना बन्द कर दोगे ? दो तो व कहते है कि जिनको तामसिक के रूप आहार दिया गया था कहते है कि हम छूटने के बाद उनके परिवार को नष्ट कर देंगे आर उनके हाथ उस जेलर के ऊपर तक फडक उठे। वह जेलर फिर उन राजसिक आहार लेने वाला के पास गया वह जेलर बोला, क्यो भाई, आप लोग अगर अब हत्या करना छोड़ दो तो हम आपको सजा मे कटौती करवा सकते हैं। व कहने लगे हम छूटने के बाद उनके परिवार से कुछ राशि ले लेगे, फिर राजसिक आहार जिसको दिया गया था, इन्ही भाइयों को छह माह शुद्ध सात्विक आहार दिया गया।तब उनसे पूछा गया कि अब आपका क्या विचार है, ता इन भाइयो ने बताया कि हम कभी भी अपने जीवन मे किसी भी प्राणी की हत्या नही करेंगें और शुद्ध शाकाहारी सात्विक आहार ग्रहण करेगें। यह हम आपके सामने सकल्प (नियम) लेते है। हम अपने ईश्वर की कसम खाते है ।

अत विचारो की निर्मलता के लिए, चरित्र की सुदृढ़ता के लिए जीवन में शान्ति प्राप्त करने के लिए तामसिक और राजसिक आहार को छोड़ कर सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए।

मै यही भावना और यही कामना करता हूँ ।

ऐतिहासिक गजरथ परम्परा: एक दृष्टि

प्रस्तुति- क्षु. धैर्यसागर

गजरथ कोई प्रदर्शन नहीं है अपितु जिनशासन की प्रभावना के लिये एक महोत्सव है जो सम्यग्दर्शन के प्रभावना अंग का प्रतीत है । यह प्रभावना दो प्रकार से होती है एक निश्चयात्मक दूसरी व्यवहारात्मक । निश्चय प्रभावना स्वगत होती है, व्यक्तिवाचक होती है, निवृत्ति परख आत्म-स्थिति रूप होती है । किन्तु व्यवहार प्रभावना में आत्म कल्याण लक्ष्य भूत होता है और पर कल्याण की बात होती है । सोची जाती है ।

व्यवहार प्रभावना मे लक्ष आत्म कल्याण का ही होता है किन्तु क्रियायें मोक्षमार्ग की सुरक्षा करती हैं । जिनेन्द्र देव की महिमा की प्रभावना के लिये सम्यक दृष्टि भव्यात्मायें ही इस प्रकार की क्रियाओं का अवलम्बन लेती हैं और मोक्ष मार्ग को एक अविरल प्रवाह प्रदान करती है ।

और फिर जिन शासन सर्वोदयी शासन है जो प्राणी मात्र को आत्यन्तिक क्षायिक सुख को प्राप्त करने का रास्त बताता है, एवं प्राणी मात्र को अनन्त सुख प्राप्त करने के अधिकार को भी उद्घोषित करता है । ऐसे शासन के शास्ता तीर्थंकर भगवानों के पंच कल्याण की प्रक्रिया का उपसंहार के रूप में गजरथों के द्वारा श्रीजी की शोभा यात्रा निकाली जाती रही है रहेगी ।

और फिर जिनेन्द्र देव की शोभायात्रा एक महायात्रा है, जो अनन्त की जय पर विजय है, जिस विजय में यह दर्शन छिपा हुआ है कि एक जीव पतित से पावन नर से नारायण कैसे बना ? उसी प्रकार प्रत्येक प्राणी भी महक सकता है सुगंध बनकर इस सफलतम विजय का हर्षोल्लास का प्रतीक होती है शोभायात्रा ।

एक प्रश्न होता है कि श्री जी की शोभायात्रा गजरथों पर ही क्यों ? तो इसका समाधान यह है कि गजरथों की परम्परा आज की नहीं अपितु अनादि अनन्त है क्योंकि जब कोई चक्रवर्ती षटखण्ड विजय पर निकलता है तब नित्य प्रति देव दर्शन पूजन आदि करने हेतु वो गजरथों में श्री जिनेन्द्रदेव की प्रतिमाओं को स्थापित करके ले जाता है। ऐसे चलते फिरते जिनालयों के दर्शन से सहस्रों म्लेच्छ मिथ्या दृष्टियों को सम्यक दर्शन हो जाता है ऐसी महती प्रभावना चक्रवर्ती करते हैं यह उल्लेख भरत चक्रवर्ति के बारे में मिलता हैं आदि पुराण,इत्यादि पुराण साहित्य में ।

और फिर यह भी है कि जिस प्रकार से सौधर्म इन्द्र भगवान के जन्म कल्याणक का महान उत्सव मनाता है और ऐरावत हाथी पर बैठाकर सुमेरु पर्वत पर ले जाता है जन्माभिषेक के लिये और भव्य शोभायात्रा निकालता है तो शक्यानुष्ठान को देखते हुये इसी प्रतीक के रूप में गज को शुभ मानकर श्री जी की भव्य शोभायात्रा में हस्ति का प्रयोग करना कोई अनुचित नहीं अपरच परम्परा का निर्वाह है । दूसरा समाधान यह भी है कि गज शुद्ध शाकाहारी और प्रशस्त विहायो गति वाला होता है । दयालू और निर्भीक होता है । ज्योतिष शास्त्रों में हस्ति दर्शन शुभ माना गया है । शुभ कार्य को शुरु करने से पहले यदि दिख जावे तो कार्य की सफलता का द्योतक माना गया है । भगवान की माता ने जो 16 स्वप्न दर्शन किये थे उनमें हस्ति भी एक था जिसका मायना थी कि एक भद्र शक्ति शाली पुत्र की प्राप्ति । चक्रवर्ति के 14 रत्नों में भी हस्ति एक रत्न है और फिर सौधर्म इन्द्र भगवान के कल्याणकों में ऐरावत हाथी पर ही क्यों आता है दूसरे वाहन पर क्यों नहीं?

लक्ष्मी जी के चरणों में माला लिये हुये चित्र कला में हस्ति दिखाये गये हैं ।

और पुरातत्व के वैभव की ओर दृष्टि पात करें तो हमें भगवानों की मूर्तियों के परिकर में हाथी कलश लिये दृष्टिगोचर होते हैं । देवगढ़ इसका साक्षी है ।

तीर्थंकर पत्रिका के एक लेख में मि. एंडरसन ने लिखा है कि यहाँ के लोग ऐसे कहते पाये जाते हैं कि हाथी जीवन के अन्त में जल समाधि ले लेता है, वो बात सिद्ध हो गई जब एंडरसन के हाथी दोस्त ने जल समाधि ले ली थी ।

ऐसे भद्र परिणामी हाथियों की ऊपर जिनेन्द्र देव की महिमा की प्रभावना मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने भी की थी। ऐसी जनश्रुति है कि जब रामचन्द्र जी वनवास से वापिस अयोध्या आते थे तब उन्होंने राज-गद्दी सम्हालते ही सर्वप्रथम चारों दिशाओं में नवीन जिन मंदिर बनवाये थे और जिनबिम्बों

को पंच कल्याणक करा कर के प्रतिष्ठित किये थे उस समय उन्होंने सैंकड़ो गजरथों के ऊपर सम्पूर्ण अयोध्या की परिक्रमा कर श्री जी की भव्य शोभा यात्रा निकाली थी ।

ऐसे मंगलकारी गज ने भगवान अजितनाथ के दायें अंगूठे के नाखून पर भी चिन्ह रूप में स्थान पाया है ऐसे सातविक गज पर श्री जी की शोभा यात्रा निकालना युक्ति युक्त सार्थकता रखता है और गोख भी ।

दूसरा प्रश्न होता है कि गजरथों में पैसों का अपव्यय होता है कोई सस्ते साधन से भी हो प्रभावना की जा सकती है ? इसका समाधान यह है कि आज लौकिकता में विवाह बारात्तों में, चुनावो में, अपनी शान शौकत मे कितना अपार धन खर्च किया जा रहा है इस सम्बध में कोई विरोध नहीं कोई रोक रुकाव नहीं फिर जिन शासन की प्रभावना में प्रश्न चिन्ह क्यों लगाये जाते हैं? और फिर जो इस प्रभावना के लिये दान पुण्य करते हैं वो तो इस प्रकार के प्रश्न करते नहीं? करते वो हैं जो कभी दानादि पवित्र कार्य करते नहीं है यह एक विडम्बना ही है और है एक अनधिकार चेष्टा ।

और फिर जिनेन्द्र देव की महिमा की प्रभावना के लिये सस्ता साधन का अवलम्बन क्यों लिया जावें ? अरे जिनकी प्रभावना के लिये शास्त्रो मे उल्लेख मिलते हैं कि धनपति कुबेर ने सद्धर्म सखा रूप समवशरण जी में कला और वैभव का मानो अम्बार ही लगा दिया हो, तब यह प्रश्न होताहै कि कुबेर को क्या आवश्यकता पडी थी कि समवशरण में कला और वैभव को दिखाने की, वहाँ तो सर्वज्ञ देव के उपदेश प्राणी मात्र सुन सके इस हेतु रचना की जानी चाहिये थी, न की नाटय शालायें, भोजन शालायें आदि बनाना थी ? ये तो एक शोभा है सभा की और है जिनेन्द्र देव की महिमा की प्रभावना । उसी प्रकार आज इस भौतिकता की चकाचौंध में यदि गजरथों के द्वारा जिनेन्द्र देव की महिमा को प्रगट किया जा रहा तो अनौचित्य नहीं है ।

दूसरी बात यह है कि यह गजरथ परम्परा कोई अर्वाचीन परम्परा नहीं है अपितु अनादि अनत है, जबसे इस पृथ्वी पर जन्ममरण से स्वतन्त्रता मिली है, मोक्ष के द्वार खुले हैं । सम्यक दर्शन का प्रभावना अंग विद्यमान है, तब से अब तक गजरथों का निर्बाध रूप से सतत् प्रवाह बना हुआ है ।

आग और अंगार गजरथ विशेषांक में - आठ प्रकार के रथो का उल्लेख मिलता है जिनमें अश्वरथ, वृषभ रथ, गजरथ प्रमुखता रखते हैं । सामान्यत जनश्रुति ऐसी है कि गजरथों की देन तो बुन्देल खण्ड की है । शिलालेखो में इसका कहीं कोई वर्णन नहीं मिलता तो इसकी खोज निर्मल कुमार जैन देवरी सागर निवासी ने बुन्देलखण्ड की गजरथ परम्परा के लेख में लिखा है कि-खारवेल के शिलालेखों से हमें ज्ञात होता है कि पाटली पुत्र से कलिंग जिन की प्रतिमा को रथोत्सव के साक पुन प्रतिष्ठित किया गया। इससे स्पष्ट हो जाता है कि गजरथ परम्परा बुन्देलखण्ड की देन नहीं अपरंच बुन्देलखण्ड में पोषित हुई है, सरक्षित रही है ।

चदेरी के शिलालेखों से ज्ञात होता है कि लगभग दो सौ वर्ष पूर्व वहाँ गजरथ सहित प्रतिष्टा समारोह सम्पन्न हुआ था जो कि महाराजा सिंधिया के सरक्षण में हुआ था इसका उल्लेख मिलता है ।

सन् 1950 के पूर्व तक आयोजित गजरथ महोत्सव किसी एक व्यक्ति विशेष के द्वारा कराये जाते थे तब उसका चंदेरी समाज के द्वारा सिघई या सवाई सिंघई की पदवी से विभूषित करके पगडी बाँधी जाती थी ।

एक रथ चलाने वाले को सिघई, दो रथ चलाने वाले को सवाई सिघई, तीन रथ चलाने वाले को डेवडिया चार रथ चलाने वाले को श्रेष्ठि (सेठ) और पाँच रथ चलाने वालो को श्रीमत सेठ की उपाधि से विभूषित किया जाता था । तब रथ चलवाने वाले यज्ञ नायकों के द्वारा सामूहिक भोज की पगते दी जाती थी ।

लगभग दौ सौ वर्ष पूर्व सगोरिया (जिला-नरसिंहपुर) में गजरथ समारोह सम्पन्न हुआ था जो पंड़ित कुंजमन नायक, देवरी वालों के प्रतिष्ठाचार्यत्व में सम्पन्न हुआ था । गजरथों की परम्परा में बीना बारहा का महत्वपूर्ण स्थान है । बीना बारहा क्षेत्र पर स्वर्गीय नदंराम चौधरी की करीब 88 वर्ष पूर्व लिखी गयी लावनी से ज्ञात होता है कि भट्टारक महेन्द्र कीर्ति की परम्परा के लश्कर से पधारे भट्टारक इन्द्रकीर्ति द्वारा प्रतिष्टा समारोह सम्पन्न करवाया गया तथा गजरथ चलवाया गया । जो लगभग सन् 1865 के आस-पास हुआ होगा।

कुण्डलपुर में 1831 में गजरथ महोत्सव का लेख मिलता है । लगभग सन् 1881 में हीरों की नगरी पन्ना में पंड़ित बलदेव प्रसाद जी द्वारा गजरथोत्सव के प्रमाण

मिलते हैं । जिसके प्रतिष्ठा समारोह के प्रतिष्ठापक पंडित समबकस जी फोजदार थे ।

दरगुवाँ, गुलगैंज, बमनी, छाई कुँआ ये स्थान हीरापुर के निकटस्थ हैं इस सभी स्थानों पर सन् 1874 (सवंत 1830) के आसपास गजरथों के चलने का प्रमाण मिलता है और हीरापुर में सवंत 1931 में श्री गणेश प्रसाद जी द्वारा गजरथ चलवा गया था ।

सवंत 1960 के आस पास द्रोणगिरि में श्री लक्ष्मीचंद्र जी बमराना वालो ने एक भव्य जिनालय का निर्माण कराया था और गजरथ महोत्सव करवाया था । और इसके बाद इसी स्थल पर कारी-टौरन के एक प्रतिष्ठित परिवार ने भी रथोत्सव का आयोजन किया था । सन् 1755 में इस क्षेत्र पर पुन गजरथ का आयोजन हुआ और यह पहला गजरथ मिलता है कि एक व्यक्ति के स्थान पर समाज के लोगों ने मिलकर चलवाया था । शायद समस्त समाज के द्वारा रथ चलाने की परम्परा यही से प्रारम्भ हुई सी लगती है।

विक्रम सवत 1965 में अजयगढ में श्री कन्हैयालाल अच्छेलाल ने गजरथ महोत्सव करके पंच कल्याणक प्रतिष्ठायें कराई थी । और द्रोणगिरि के श्री कमलापत जी फोजदार इस आयोजन के प्रतिष्ठापक थे ।

महराजपुर (देवरी) में सन् 1910 में श्री निरपतलाल नंदकिशोर बजाज ने रथ चलवाया था और सिघई की पदवी प्राप्त की थी । इस क्षेत्र में यह जनश्रुति आज भी प्रचलित है कि गजरथ के समय जो पंक्ति भाज हुआ था, उसकी भोजनसामग्री बहुत समय तक बची रही और बाद मे उसे बरमान तथा अन्य स्थानों पर ले जाकर बाँट गया था ।

सन् 1916 (सवत 1975) में श्री हीरालाल रामरतन द्वारा जबेरा में और सन् 1919 (सं 1975) में धर्मप्राण महिला सिंघैन दुर्जन बहू, छोटी बहू ने कुण्डीला ग्राम मे गजरथ चलवाया था ।

दमोह जिले के तारादेही के पास कुलपुरा में सन् 1924 (सवंत 1980) में श्री कल्यान सिंह के पुत्र चौधरी दरबारीलाल प्रेमचंद ने गजरथ चलवाया था ।

पंडित मोतीलाल जी वर्णी पं नरसिंहदास जी, और पं मन्नीलाल जी के प्रतिष्ठाचार्यत्व में ललितपुर में सवंत 1980 बसंत पंचमी को गजरथ चलवाया गया था ।

सवंत 1980 में श्री कालीराम दरीलाल द्वारा गजरथोत्सव का आयोजन सढ़ई में हुआ था । सवंत 1980 में ककरहटी में ली रथ चला था, किन्तु रथकारक के सबन्ध में कोई जानकारी उपलब्ध नहीं है ।

सवंत 1981 में रथोत्सव ककरवेल में सम्पन्न होने की जानकारी स्थानीय अनुश्रुतियों से मिलती है । तथा सवंत 1981 में ही श्री भैयालाल लक्ष्मणप्रसाद जी ने गैंज में रथ चलवाया था । जिसके प्रतिष्ठापक पं अमरचंद जी बक्सवाहा वाले थे ।

द्रोणगिरि के निकट बड़ा मलहरा गाँव में संवत 1891 में श्री वृन्दावन लाल डयोढ़िया ने गजरथ समारोह पूर्वक प्रतिष्ठा कराई थी । सन् 1925 में सागर जिले के हरदी ग्राम में रथ कारक सिंघई लक्ष्मणप्रसाद जी द्वारा गजरथ का आयोजन किया गया था । यहाँ एक साथ दो रथ चले थे ।

टड़ा केसली यह स्थान सागर जिले में है यहाँ सन् 1934 में श्री हीरालाल काशीराम सिंघई सिलवानी वालों ने गजरथ का आयोजन किया था जहाँ पर शिखर बंद मंदिर बनवाया था । तथा सन् 1938 मे कोहा वाले और समाज के सहयोग से शाहपुर में गजरथ महोत्सव सम्पन्न हुआ था तथा सन् 1987 में पुन गजरथ का आयोजन हुआ ।

सन् 1940 के आस-पास देवगढ़ के इस पुरातत्व क्षेत्र मे गजरथ का विराट आयोजन हुआ था । तथा सन् 1979 में यहाँ पुन गजरथ का विराट आयोजन हुआ । तथा सन् 1955 मे सिघई धर्मचंद जी ने केवलालीरी (पथरिया) में गजरथ चलवाया था ।

सन् 1985 (सवंत 2014) जबलपुर मे पचायती रथ का आयोजन हुआ जिसमें जिन शासन कीबड़ी भारी प्रभावना हुई थी ।

मुरेना (सन् 1766), रहली (सन् 1968) पथरिया (सन् 1870) भोपाल (सन् 1875), कुण्डलपुर (सन् 1975) के गजरथ महोत्सव ने इस जीर्ण-शीर्ण परम्परा को एक नई गति प्रदान की है । सतना (सन् 1976) कुरवाई (सन् 1977), द्रोणगिरि (सन् 1977), बीना बारहा (1978) आदि स्थानों में आयोजित गजरथ महोत्सव इसके जीते जागते प्रमाण हैं ।

परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी महाराज को अपने बीच पाकर के आज मानव जन्म सार्थक हो गया । जन मानस के हृदय पटल में उनकी तस्वीर ऐसी उभर गई है मानों वे शरीर का आवरण क ओढ़ी हों । ऐसे प्रातः स्मरणीय गुरुवर एवं उनके संघ के सानिध्य

में (सन् 1977) द्रोणगिरि में एक गजरथ, (सन् 1978) बीना बारहा में एक गजरथ (सन् 1971) किशनगढ मदनगज (राजस्थान) मे एक गजरथ (सन्1981) खुजराहो मे तीन गजरथ, (सन् 1985) शहपुरा भिटौनी मे एक गजरथ (सन् 1985) गंज बासौदा में तीन गजरथ (सन् 1986) केसली (गौरआमर) में एक गजरथ, (सन् 1987) नरसिंहपुर में एक गजरथ (सन् 1989) पथरिया में एक गजरथ, (सन् 1991) सिवनी में एक गजरथ (सन् 1993) जबलपुर मे आचार्य श्री के प्रेरणा से नदीश्वर द्वीप की प्रतिष्ठा हुई और पाँच गजरथ चले, (सन् 1993) देवरी (जिला सागर) में एक गजरथ (सन् 1993) सागर मे तीन गजरथ चले ।

परम पूज्य सन्त शिरोमणि आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य परम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी एव ऐलक निशंक सागर जी के सान्निध्य मे (सन् 1988) बीना इटावा में एक गजरथ चला । मन् 1989 सिरोज मे पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी की प्रेरणा से ही बाहुबलि भगवान की प्रतिष्ठा हुई जो लगभग 14-15 फीट ऊँची एवं मनोज्ञ प्रतिमा है । यहाँ पर सिघई एव सवाई सिघई की उपाधियाँ दी गई । एक सुप्त परम्परा का जीर्णोद्धार हुआ था । यहाँ पर आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी का सन्निध्य एव तीन गजरथ चले थे । सन् (1981) देवगढ मे पूज्य मुनि श्री की प्रेरणा से जीर्णोद्वार एव पाँच गजरथ, सन् 1992 मुगावली में तीन गजरथ, सन् 1992 तालबेहट मे एक गजरथ, (सन 1992) अशोक नगर में उनकी ही प्रेरणा से त्रिकाल चोबीसी की प्रतिष्ठा एव सात गजरथ चले (सन् 1993) ललितपुर में पूज्य मुनि श्री एव क्षु श्री गम्भीर सागर जी के साथ मैं भी उपस्थित था तब 9 (नव) गजरथ चले हैं । यह अभी तक के इतिहास में प्रथम बार ही है । मुनि श्री की प्रेरणा से यहाँ पर अटा मदिर में विशाल भव्य चोबीसी, क्षेत्रपाल जी मदिंर में ऋषभ देव, भरत जी, बाहूबलि जी की भव्य प्रतिमा और नये मंदिर जी मे 5 फुट लम्बी बाहुबलि की पीतल की प्रतिमा स्थापित हुई है ।

दमोह में लगभग सन् (1981) में गजरथ चले ओर बरगी में लगभग सन् (1983) में गजरथ चले । सन् (1986) पनागर में परम पूज्य आचार्य गुरुवर के द्वय परम शिष्य परम पूज्य मुनि श्री समयसागर जी एव मुनि श्री सुधासागर जी के सान्निध्य में एक गजरथ चला था ।

सन् (1986) बरायठा में आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य पूज्य मुनि श्री योगसागर जी एवं पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी के सान्निध्य में गजरथ चले ।

लगभग सन् (1987) गौसलपुर में मुनि श्री सम्मेद सागर जी के सान्निध्य में गजरथ चला । लगभग सन् (1988) बनवार मे भी गजरथ चले एव लगभग सन् 1988 में ही सहजपुर में गजरथ चले हैं ।

सन् 1988 शाहपुर में परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य पूज्य मुनि शरीयोग सागर जी, पूज्य मुनि श्री क्षमासागर जी, पूज्य मुनि श्री स्वभाव सागर जी के सान्निध्य में गजरथ चले । मदनपुर में लगभग सन् 1990 में गजरथ चले । लगभग सन 1990-92 बड़ा मलहरा मे भी गजरथ चले हैं ।

सन् 1990 टडा (सागर) में आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री क्षमा सागर जी, मुनि श्री समता सागर जी, मुनि श्री स्वभाव सागर जी के सान्निध्य में गजरथ चले ।

सन् (1991) कटगी में आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री क्षमा सागर जी, पूज्य मुनि श्री समतामागर जी पूज्य मुनि श्री प्रमाणसागर जी के सान्निध्य मे गजरथ चले । लगभग सन् (1991-92) तारादेही में गजरथ चले । भोपाल मुखी समैया मे लगभग (1991) में गजरथ चले ।

सन् 1992 सिरोन मे आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री क्षमासागर जी मुनि श्री समतासागर जी मुनि श्री प्रमाणसागर जी के सान्निध्य में तीन गजरथ चले थे । सिवनी में पुन सन् (1992) में गजरथ चले।

सन् (1993) परतवाडा (महाराष्ट्र) में आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी के परम शिष्य मुनि श्री योगसागर जी एव मुनि श्री पवित्र सागर जी के सान्निध्य में गजरथ चले। पदमपुरा (राजस्थान) में सन् (1993) में गजरथ चले हैं। आगरा में मुनि श्री क्षमासागर जी सुधासागर जी एं श्री सम्यक्त्व सागर, उदारमागर क्षु श्री गम्भीरसागर एव धैर्यसागर जी के सानिन्ध्य में पंच गजरथ चले ।

उपरोक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि गजरथों की पुरातन परम्परा में 20वीं शताब्दी का एक ऐतिहासिक अध्याय जुड गया है जिममें परम पूज्य आचार्य गुरुवर श्री विद्यासागर जी एवं उनकी शिष्य मण्डली का अमिट नाम स्वर्णाक्षरों से लिखा गया है जो हजारों हजार वर्षो तक दिगम्बर जैन शासन की यशो गाथा गाते रहेंगे । साथ ही राजस्थान, महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश में गजरथों की परम्परा की शुरुआत करने का श्रेय था ।

बुन्देलखण्ड की गजरथ परम्परा

कमल कुमार जैन

(१) पंचकल्याणक एवं गजरथ की पृष्ठभूमि—

सागर और झाँसी सभागो से घिरा हुआ बुन्देलखण्ड औद्योगिक क्षेत्र मे चाहे जितना पिछड़ा हुआ हो परन्तु आध्यात्मिक, धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र मे देश मे अग्रणी रहा है । हिन्दू, जैन, शैव, सम्प्रदायों ने अपनी अध्यात्मिक-धार्मिक चेतना को सर्वदा जागृत रखा है । इसी का परिणाम है कि बुन्देलखण्ड मे सभी सम्प्रदायो के धार्मिक तीर्थ-स्थल वहुत अधिक हैं । ऋषि-मुनियो की साधनास्थली भी यही भूमि रही है । जैन धर्म की अक्षुण्ण परम्परा बुन्देलखण्ड मे रही है । जैन धर्म की परम्परा को बनाये रखने के लिए यहाँ जैन श्रावको के द्वारा अपने न्याय से उपार्जित द्रव्य से धार्मिक भावना से प्रेरित होकर जिन-मन्दिरो का निर्माण, जिन-बिम्बों की प्रतिष्ठा, स्थापना प्राय हमेशा होती रही है । बुन्देलखण्ड में भट्टारको की (चन्देरी, सोनागिरी) गद्दियाँ रहने के कारण भट्टारकों का कार्य जिनवाणी का सम्वर्द्धन, सरक्षण, जिन-मन्दिरो का निर्माण, जिन-बिम्ब प्रतिष्ठायें कराना प्रमुख रूप से रहा है । बुन्देलखण्ड मे एक परम्परा जिसे बुन्देलखण्ड की धार्मिक परम्परा मानी जाती है , जिन-बिम्ब प्रतिष्ठा का समापन गजरथ परिक्रमा से होता है । यह गजरथ परम्परा बुन्देलखण्ड की अपनी परम्परा है और प्रभावना की दृष्टि से धार्मिक समारोह इससे अधिक प्रभावनापूर्ण अन्य नहीं है । सम्पन्न व्यक्ति प्रायः जिन-बिम्ब प्रतिष्ठायें गजरथ महोत्सव के साथ ही कराते रहे हैं । बुन्देलखण्ड में विरला ही ऐसा ग्राम होगा जिसमे जैन-समाज रहती हो, जैन-मन्दिर हो और उसमे पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा गजरथमहोत्सव के साथ सम्पन्न न हुई हो । प्रायः सिंघई, सवाई सि. सेठ, श्रीमन्त सेठ आदि उपाधियाँ जैन-समाज में बुन्देलखण्ड मे ही पाई जाती हैं । ये उपाधियाँ व्यक्ति को गौरवशाली तो बनाती ही हैं, साथ मे उनकी धार्मिक भावना, उदारता, सम्पन्नता और प्रतिष्ठा का भी बोध कराती हैं ।

बुन्देलखण्ड में यह गजरथ परम्परा बहुत पहले से चली आ रही है, इसका प्रारम्भ कब से, किसके द्वारा हुआ है यह अभी-भी शोध का विषय बना हुआ है । इस सम्बन्ध में अभी तक जो जानकारी प्राप्त हो पाई है उससे लगभग दो शताब्दियो से यह गजरथ परम्परा अक्षुण्ण रूप से चली आ रही है । समय के परिवर्तनो के साथ रूप में परिवर्तन भले होते रहे है। पहले व्यक्ति विशेष अपनी न्याय से कमी हुई सम्पत्ति से स्वयं ही गजरथ महोत्सव कराते रहे हैं, और इस उत्सव में सम्मिलित सभी श्रावकों का गजरथ महोत्सव कराने वाला बड़े आदर और विनम्रता के साथ आतिथ्य करता था । इस उत्सव की तैयारी बहुत पहले से चलने लगती थी । विपुल भोजन सामग्री तैयार होने के लिए पर्याप्त समय लगता था, क्योंकि उत्सव मे पधारे सभी महानुभावो को भोजन कराया जाता था। गजरथ सानन्द सम्पन्न होने के बाद जहाँ गजरथ चलवाने वाला अपार प्रसन्नता का अनुभव करता था, वहीं उपस्थित समाज उसका इस महान् पुण्योत्सव कराने के कारण सम्मान करती थी । समाज के गणमान्य व्यक्ति पगड़ी बाँधकर तिलक श्रीफल के साथ उसे सिंघई, सवाई सिंघी, सेठ, श्रीमन्त आदि की उपाधि से अलंकृत करते थे । ये उपाधियाँ बुन्देलखण्ड की बहुमान्य उपाधियाँ हैं । एक रथ चलाने वाले को सिंघई, दो रथ चलाने वाले को सवाई तथा तीन रथ चलाने वाले को सेठ, तथा इससे अधिक रथ चलाने वाले को सेठ, तथा इससे अधिक रथ चलाने वाले

को श्रीमन्त की उपाधि से सम्मानित किया जाता रहा है । इन उपाधियो के माध्यम से इसकी कुल परम्परा की प्रतिष्ठा, सम्पन्नता आकी जाती रही है । रथ चलाने वाला बड़ी विनम्रता के साथ समाज द्वारा प्रदत्त इस सम्मान को स्वीकार करता था ।

बुन्देलखण्ड की यह प्रभावनापूर्ण गजरथ परम्परा पर्याप्त प्राचीन है, कुण्डलपुर मे १८३१ मे गजरथ महोत्सव का लेख मिलता है । लगभग सन् १८८१ मे हीरो की नगरी पन्ना मे बलदेव प्रसाद जी द्वारा गजरथोत्सव के प्रमाण मिलते है, जिसके प्रतिष्ठापक प. रामबक्स फौजदार थे ।

जो प्रशंसा और निन्दा से हर्ष-विषाद नहीं करते हैं, उन्हें नमस्कार करो । जो गुण का समादर करता है, उसी के लिये भगवान् भेता है । दर्पण उठकर यह नहीं कहता कि मेरे में शक्ति है मुझे देखकर अपनी सूरत देखो । चेहरा देखने वाला व्यक्ति स्वयं दर्पण के पास जाता है । अतः हमे अपने आपको देखने के लिए भगवान् के पास जाना ही पड़ेगा ।

जब तीर्थकरभगवान होते है तब समशरण की साक्षात् रचना सौधर्म इन्द्र की आज्ञा से धनपति कुबेर करता है। समवशरण के चारों द्वारों के आगे धर्मध्वजाओं सहित मानस्तम्भ और धर्मचक्र सुशोभित होते हैं। समवशरण के चारो ओर अठारह सौ किमी० तक अहिसा, सत्य,भाईचारे, विश्ववन्धुत्व और विश्वमैत्री की भावनाओ का प्रचार- प्रसा॰ रहता है। पशुपक्षी मानव आदि अपना जन्मजात वैर भूलकर सिह और गाय सर्प और नेवला एक घाट पर पानी पीते है। सभी श्वेत हरेभरे, वृक्ष फूला से परिपूर्ण रहते है। कैसर, टी० वी० मस्तिष्क् ज्वर, हार्टअटेक जैसी जानलेवा बीमारियो से कोई भी मानव ग्रसित नही रहता है। ज्ञान- गगा को अवतरित सचरित- सचालित करने के लिए किसी भगीरथ की आवश्यकता होती है, उसी भगी॰थ को गणधर परमेष्ठी कहते हैं। ये गणधर परमेष्ठी दिगम्बर मुद्राधारी और मति- श्रुत - अवधि -मनपर्यज्ञान एव त्रेसठ ऋद्धियो के धारी होते है, जिस प्रकार तार्थकर के अभाव मे पचकल्याणक प्रतिष्ठा द्वारा प्रतिमा में पूज्यता लायी जाती है उसी प्रकार यह समवशरण की रचना साक्षात् समवशरण की प्रतिकृति है। इस रचना में कुल आठ भूमिया रहती है। आठवी भूमि को श्रीमण्डप भूमि कहते है। इसी भूमि में यज्ञप॰ि कुबेर वारह सभाओं की रचना करता है, जिसमे मुनिराज आर्यिकाए श्रावक- श्राविकाए देव- देवांगनाए तथा पशु पक्षी आदि सभी एक साथ् बैठते है जहां समवशरण जाता है, वह वहा -वहा करुणा की सरिताएं प्रवाहित होने लगती हैं।

अन्तरात्मा का कलुष धुल जाता है, वह राजमहल से झोपड़ी तक बिना किसी भेदभाव के जाता है, और भारत के कोने-कोने को अपने उपदेशों से आलोकित करता है। जातीयता और साम्प्रदायिकता की झूठी मर्यादायें टूट जाती है। बोझिल कर्मकाण्ड समाप्त हो जाता है। प्राणिमात्र को सुखपूर्वक शान्ति की श्वास लेने के लिए अनेकात की वर्णमाला और व्रतो के आचार- विचार प्रस्तुत कर भगवान ने बतलाया कि ईश्वर कही बाहर नही है।वह प्रत्येक आत्मा के भीतर है। जो अपने आप को पहिचान लेता है, वही ईश्व॰ बन जाता है। उन्होंने अनेकान्त् सिद्धान्त् का प्रतिदान कर जनता के बैरभाव को दूर किया और राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत किया। भगवान ने धर्म की समस्त विकृतियों को चुनौती दी। इनके उपदेश ने विश्वशान्ति की सम्भावनाओ को सुस्पष्ट किया जो प्राणिमात्र के लिए हितकारी था। समवशरण यानि जहा सर्वोदय की भावना का पाठ सीखने को मिलता है। समवशरण यानि जहा हृदय नम्रता एव पावनता से भर जाय। समवशरण यानि तीर्थकर के उपदेश देने की सभा। समवशरण उस महान आत्मा का लगता है, जिसने कागज, ताड़पत्र भोजपत्र ताम्र॰त्र प॰ लिखने से पहले अपने जीवन पर, तन -मन पर लिखा हो, समवशरण वह है जहा पर अहकार का विसर्जन होता है।

समवशरण यानि जहा धर्म की व्यापक लोकोपयोगिता समझी जाती है । समवशरण यानि जिसके समीप पहुचते ही अपने वास्तविक स्वरुप् का परिज्ञान हो जाता है । समवशरण यानि जिसके निकट पहुचते ही सुख- शान्ति का अनुभव होने लगे । समवशरण यानि जहा सुख शान्ति पाने का वास्तविक सकेत मिलता है । समवशरण यानि जहा श्रद्धा का द्वार खुला रहता है । समवशरण यान जहा अहकार- मान गल जाता है । समवशरण यानि जहा हृदय की समस्त् गाठे खुल जाती है । समवशरण यानि जहा हृदय परिवर्तन होता है विवेक जागृत होता है । समवशरण यानि जहॉ आत्म - शोधन हो । समवशरण यानि जहा मोह छिन्न हो जाय, समवशरण यानि जहॉ मिथ्यात्व -तिमिर का ध्वस हो जाय । समवशरण यानि जहॉ सम्यक्त्व का प्रकाश हो । समवशरण यानि जहाँ योग से भोग को दिशा समवशरण यानि जहा पुरुषार्थ करने की प्रेरणा मिले मिलती हो ।समवशरण यानि

जहा पर भोग से योग की दिशा दिखती हो । समवशरण यानि जहॉ भ्रम और सन्देह समाप्त हो जाय ।समवशरण यानि जहॉ व्यक्ति रत्नत्रय का उपहार लेकर लौटता है ।समवशरण-मानो सम्यग्ज्ञान का एक चलता -फिरता विश्वविद्यालय है ।समवशरण यानि आतरिक जीवन को उद्दीपन एव पोषण प्रदान करने वाली एक जड़ है । ये रचना हम सभी को वात्सल्यता भाई चारे, एकता, सहानुभूति, सहिष्णुता और आत्मीयता से रहने की शिक्षा देती है । हम कामना करते है कि जो इस समवशरण रचना को देखे, अगले भव मे वे सब समवशरण को पाये ।

वर्तमान चौबीसी का संक्षिप्त परिचय

वर्त मान भव के पिताओं के नाम	वर्तमान भव की माताओं के नाम	वंश	गर्भ-तिथि	गर्भ-काल	जन्म-तिथि	जन्म-नक्षत्र	शरीर की ऊँचाई
नाभिराय	मरुदेवी	इक्ष्वाकु	आषाढ़ कृ २	ब्रह्ममुहूर्त	चैत्र कृ ९	उत्तराषाढा	धनुष ५००
जितशत्रु	विजय सेन	,	ज्येष्ठ कृ १५	,,	माघ सु १०	रोहिणी	धनुष ४५०
दृढ़राज्य	सुषेणा	'	फा शु ८	प्रात	कार्तिक शु १५	ज्येष्ठा	४०० ,
स्वयंवर	सिद्धार्था	,	वै.शु ६	पिछली रात्रि	माघ शु १२	पुनर्वसु	३५० ,
मेघरथ	मगला		श्र.शु २	,	चैत्र शु ११	मघा	३०० ,
धरण	सुसीमा	,	माघ कृ ६	प्रात'	कार्तिक कृ १३	चित्रा	२५० ,
सुप्रतिष्ठ	पृथ्वीषेणा	,	भाद्र शु ६	,,	ज्येष्ठ शु १२	विशाखा	२०० ,
महासेन	लक्ष्मणा	,	चैत्र कृ ५		पौष कृ ११	अनुराधा	१५० ,,
सुग्रीव	जयरामा	,	फा कृ ९	,,	मार्ग शु १	मूल	१०० ,
दृढ़रथ	सुनन्दा	,	चैत्र कृ ८	,,	माघ कृ १२	पूर्वाषाढा	९० ,
विष्णु	सुजन्य	इक्ष्वाकु	ज्येष्ठ कृ ६	,	फा कृ ११	श्रवण	८० ,,
वसुपूज्य	जयावती	इक्ष्वाकु	आषा कृ ६	,	फा कृ १४	विशाखा	७० ,,
कृतवर्मा	जयश्यामा	इक्ष्वाकु	ज्येष्ठ कृ १०	प्रात	माघ शु ४	पूर्वभाद्र	६० ,
सिंहसेन	जयश्यामा	इक्ष्वाकु	कार्तिक कृ १	अष्टमासीया	ज्येष्ठ कृ १२	रेवती	५० ,,
भानु	सुप्रभा	कुरु	वैशाख शु १३	,,	माघ शु १३	पुष्य	४५
विश्वसेन	ऐरादेवी	इक्ष्वाकु	भाद्र कृ ७	,,	ज्येष्ठ कृ १४	भरणी	४० ,,
सूरसेन	श्रीकान्ता	कुरू	श्रावण कृ १०	,,	वैशाख शु १	कृत्तिका	३५ "
सुदर्शन	मित्रसेना	कुरू	फा कृ ३	,,	मार्ग शु. १४	रोहिणी	३० ,
कुम्भ	प्रजावती	इक्ष्वाकु	चैत्र शु १	,	मार्ग शु ११	आश्विनी	२५ ,,
सुमित्र	सोमा	यादव	श्रावण कृ २	,,	आश्विन शु १२	श्रवण	२० ,,
विजय	महादेवी	इक्ष्वाकु	आश्विनी कृ २	,,	आषाढ १०	अश्विनी	१५ ,,
समुद्रविजय	शिवदेवी	यादव	कार्तिक ६	,,	श्रावण शु ६	चित्रा	१० ,,
विश्वसेन	ब्राह्मी	उग्र	वैशाख कृ २	,,	पौष कृ ११	विशाखा	९ हाथ
सिद्धार्थ	प्रियकारिणी	नाथ	आषाढ शु ६	,,	चैत्र शु १३	उत्तराफाल्गुन	७ ,,

क्र	शरीर वर्ण	वैराग्य कारण	दीक्षा तिथी	दीक्षा काल	दीक्षोपवास	दीक्षावन	दीक्षावृक्ष	केवलज्ञान ति.	केवल.काल
१	सामान्य स्वर्ण	नीलांजनामरण	चैत्र कृ ९	अपरान्ह	६ माह का	सिद्धार्थ	वट	फाल्गुन कृ ११	पूर्वान्ह
२	स्वर्ण	उल्कापात	माघ शु. ९	"	अष्टमभक्त	सहेतुक	सप्तवर्ण	पौष शु. १४	अपरान्ह
३	"	मेघ	मार्ग. शु १५	"	तृतीय उप	"	शाल्मलि	कार्ति. कृ ५	"
४	"	गन्धर्व नगर	माघ शु. १२	पूर्वान्ह	" "	उग्र	सरल	कार्ति.शु ५	"
५	'	जाति स्मरण	वैशा शु ९	"	' "	सहेतुक	प्रियंगु	पौष. " १५	"
६	रक्त		कार्ति कृ १३	अपरान्ह	तृतीय भक्त	मनोहर	"	वैशा. शु. १०	"
७	हरित	पतझड़	ज्येष्ठ शु १२	पूर्वान्ह	"	सहेतुक	शीष	फा कृ. ७	"
८	धवल	तड़िद	पौष कृ ११	अपरान्ह	तृतीय उप	सर्वार्थसिद्धी	नाग	" " "	"
९	"	उल्कापात	मार्ग शु १	"	" भक्त	पुष्प	साल	कार्ति. शु. ३	"
१०	स्वर्ण	हिमनाश	मार्ग कृ १२	"	" उप	सहेतुक	पलाश	पौष कृ १४	"
११	"	पतझड़	फा कृ ११	पूर्वान्ह	" भक्त	मनोहर	तेन्दु	माघ " १५	पूर्वान्ह
१२	रक्त	जाति स्मरण	फा कृ १४	अपरान्ह	एक उप	"	कदम्ब	माघ शु २	अपरान्ह
१३	स्वर्ण	मेघ	माघ शु ४	"	तृतीय "	सहेतुक	जम्बु	पौष शु १०	"
१४	"	उल्कापात	ज्ये कृ १२	"	" भक्त	"	पीपल	चैत्र कृ १५	"
१५	'	"	माघ शु १३		" "	शालि	दधिपर्ण	पौष शु. १५	"
१६	"	जाति स्मरण	ज्ये कृ १४	"	" उप.	आम्रवन	नन्द	पौष शु ११	"
१७	"	"	वैशा शु १	"	" भक्त	सहेतुक	तिलक	चैत्र शु ३	"
१८	"	मेघ	मार्ग शु १०	"	" "	"	आम्र	कार्ति. शु १२	"
१९.	"	तड़िद्	" " ११	पूर्वान्ह	षष्ठ भक्त	शालि	अशोक	फाल्गु कृ. १२	पूर्वान्ह
२०	नील	जाति स्मरण	वैशा. कृ १०	अपरान्ह	तृतीय उप	नील	चम्पक	" " ६	अपरान्ह
२१.	स्वर्ण	"	आषा. कृ १०	"	" भक्त	चैत्र	बकुल	चैत्र शु. ३	"
२२.	कृष्ण	"	श्राव. शु ६	'	" "	सहकार	मेषशृंग	आश्वि शु. १	पूर्वान्ह
२३.	हरित	"	पौष कृ ११	पूर्वान्ह	षष्ठ भक्त	अश्वत्थ	धव	चैत्र कृ ४	"
२४.	स्वर्ण	"	मार्ग कृ १०	अपरान्ह	तृतीय "	नाथ	साल	वैशा. शु. १०	अपरान्ह

केवल ज्ञान स्थान	केवल ज्ञान के पूर्व उपवास	केवल ज्ञान वृक्ष	समवसरण	योग नि का	निर्वाण तिथि	निर्वा का	नि क्षेत्र	सहमुक्त	ती सम में केवली सं.
पूर्वतालपुर	तेला	न्यग्रोध	१२ योजन	१४ दि पूर्व	माघ कृ १४	पूर्वान्ह	कैलाश	१०,०००	२०,०००
अयोध्या	बेला	सप्तपर्ण	११½ यो	१ मास	चैत्र शु. ५	'	सम्मेद	१०००	
श्रावस्ती	"	शाल	११ यो	'	चैत्र शु ६	अपरान्ह	"	"	१५ ०००
अयोध्या	"	सरल	१०½ यो	"	चै शु ७	पूर्वान्ह	'	"	१६ ०००
"	तेला	प्रियंगु	१० यो		चैत्र शु १०		'		१३ ०००
कौशाम्बी	बेला		९½ यो	'	फा कृ ४	अपरान्ह	'	३२४	१२ ००८
काशी	"	शीष	९ यो		६	पूर्वान्ह		५००	११,०००
चन्द्रपुरी	"	नाग	८½ यो		भाद्र शु ७	"	'	१०००	१८ ०००
काकन्दी	"	बहेड़ा	८ यो	"	आश्वि शु ८	अपरान्ह	'	'	७५००
भद्रिल		धूलीशाल	७ यो	'	कार्ति शु ५	पूर्वान्ह	'		७०००
सिंहनादपुर	"	तेन्दु	७ यो	"	श्राव शु १५	'	'	'	६५००
चम्पापुरी	'	पाटल	६ यो	"	फा कृ ५	अपरान्ह	चम्पापुर	६०१	६०००
कम्पिला	'	जम्बू	६ यो	'	आषा शु ८	सांय	सम्मेद शि	६००	५५००
अयोध्या	"	पीपल	५½ यो		चैत्र कृ १५	"	"	७०००	५०००
रत्नपुर	तेला	सप्तच्छद	५ यो	'	ज्येष्ठ कृ १४	प्रात	"	८०१	४५००
हस्तनागपुर	'	नन्दी	४ यो		" " "	सांय	"	९००	४०००
"	"	तिलक	४½ यो	"	वै शु १	"	'	१०००	३२००
"	बेला	आम्र	३½ यो	"	चैत्र कृ १५	प्रात	'	"	२८००
मिथिला	तेला	अशोक	३ यो	"	फा कृ ५	सांय	"	५००	२२००
कुशाग्रनगर	"	चम्पक	२½ यो.	'	१२	'	'	१०००	१८००
मिथिला	बेला	बकुल	२ यो	"	वै कृ १४	प्रात.	"	"	१६००
गिरनार	तेला	बाँस	१½ यो	"	आषा कृ. ८	सांय	उर्जयन्त	५३६	१५००
आश्रमखेड़ा	८ उपवास	देवदारु	१½ यो.	"	श्रा. शु. ७	"	सम्मेद	३६	१०००
ऋजुकूला	बेला	शाल	१ यो	२ दिन पूर्व	कार्ति. कृ. १४	प्रात	पावापुरी	एकाकी	७००

क्र	गणधर सं.	मुख्य गणधर	आर्यिका सं.	मुख्य आर्यि	आयु	कुमार काल	राज्य काल
१.	८४	वृषभसेन	३,५,००००	ब्राह्मी	८४ ला पूर्व	२० ला पूर्व	६३ लाख पूर्व
२	९०	केसरिसेन	३,२,००००	प्रकुब्जा	७२ " "	१८ " "	५३ ला पूर्व + १ पूर्वांग
३	१०५	चारुदत्त	३,३,००००	धर्मश्री	६० " "	१५ " "	४४ " " + ४ "
४	१०३	वज्रचमर	३,३०,६००	मेरुषेणा	५० " "	१२½ " "	३६½ " " + ८ "
५	११६	वज्र	३,३०,०००	अनन्ता	४० " "	१० " "	२९ " " + १२ "
६	१११	चमर	४२००००	रतिषेणा	३० " "	७½ " "	२१½ " ' + १६ "
७	९५	बलदत्त	३३००००	मीना	२० " "	५ " "	१४ " " + २० "
८	९३	वैदर्भ	३८००००	वरुणा	१० " "	२½" "	६½ " " + २४ "
९	८८	अनगार	"	घोषा	२ " "	५०००० पूर्व	१½ " " + २८ "
१०	८७	कुन्थु	"	धरणा	१ " "	२५०००	५०,००० पूर्व
११	७७	धर्म	१३,००००	धारणा	८४ ला वर्ष	२१ लाख वर्ष	४२ लाख वर्ष
१२	६६	मन्दरार्य	१०,६०००	वरसेना	७२ " "	१८ " "	X X X
१३	५५	जय	१०,३०००	पद्मा	६० " "	१५ " "	३० ला वर्ष
१४	५३	अरिष्ट	१०,८०००	सर्वश्री	३० " "	७½ " "	१५ " "
१५	४३	अरिष्टसेन	६२४००	सुव्रता	१० " "	१½ " "	५ " "
१६.	३६	चक्रायुध	६०३००	हरिषेणा	१ " "	२५००० वर्ष	५०००० वर्ष
१७	३५	स्वयंभू	६०३५०	भाविता	९५००० "	२३७५० "	४७५०० "
१८	३०	कुम्भ	६००००	कुन्थुसेना	८४००० "	२१००० "	४२००० "
१९	२८	विशाख	५५०००	मधुसेना	५५००० "	१०० "	X X X
२०	१८	मल्लि	५००००	पूर्वदत्ता	३०००० "	७५०० "	१५००० वर्ष
२१	१७	सुप्रभ	४५०००	मार्गिणी	१०००० "	२५०० "	५००० "
२२	११	वरदत्त	४००००	यक्षिणी	१००० "	३०० "	X X X
२३.	१०	स्वयंभू	३८०००	सुलोचना	१०० "	३० "	X X X
२४.	११	इन्द्रभूति	३६०००	चन्दना	७२ वर्ष	३० वर्ष	X X X

छद्मस्थ का	कैवल्य-काल	परस्पर केव उत्प अत	परस्प नि अत	तीर्थकाल	तीर्थ व्युच्छित्ति	मुख्य श्रोता
१००० वर्ष	१ लाख पूर्व १००० वर्ष	५० ला को सा + ८३९९०१२ व	५० ला को सा	५० ला को सा + १ पूर्वांग	अज्ञात	भरत
१२ "	१ ' ' - पूर्वांग १२०	३० " " " + ३ पूर्वा २ वर्ष	३० " "	३० " " " + ३ "	"	सगर
१४ "	१ " " - ४ ' १४ "	१० ' ' ' + ४ ' ४	१० " " '	१० ' ' + ४ "	'	सत्यवीर्य
१८ "	१ " " ८ " १८	९ " " + ४ २	९ ' " "	९ " ' ' + ४ '	"	मित्रभाव
२० "	१ ' १२ ' २० '	९०,००० ' ' + ३ पूर्वा 1/1 व ८३९९९८०५	९०,००० को सा	९० ००० " + ४ "		मित्रवीर्य
६ मास	१ " " - १६ " ६ मा	९००० ' ' + ४ " ८ 1/1	९०००	९,००० + ४ '	'	धर्मवीर्य
६ वर्ष	१ " - २० ' ६ वर्ष	९०० " ' + ३ ' ८३९९९११ व ४	९०० ' "	९०० ' + ४	'	दानवीर्य
३ मास	१ ' ' २४ " ३ मा	९० ' ' + ४ ' ३ 1/1 वर्ष	९० ' "	९० ' ' + ४	'	मघवा
४ वर्ष	१ " - २८ ' १४ वर्ष	९ को सा ७४९९९ पूर्व ८३९९९१ पूर्वा ८३९९९९९ व	९ ' "	(९ को सा १/४ व) + (१ ला पूर्व २८ पूर्वांग)	१/४ पल्य	बुद्धिवीर्य
३ '	२५००० पू. - ३ वर्ष	९९९९९०० सा २४९९९ पू ७०५५९९९१२७३९९९ वर्ष	३३७३९०० सा	१ को सा {(१०० सा १/२ प) + (२५००० पू ६६२६००० वर्ष)}	१/२ पल्य	सीमंधर
२ "	२०९९९९८ वर्ष	५४ सा ३३००००१ वर्ष	५४ "	(५४ सा + २१ ला वर्ष) ३/४ प	३/४ पल्य	त्रिपृष्ठ
१ "	५३९९९९९	३० सा ३९००००२ वर्ष	३० '	(३० सा + ५४ ला व) १ पल्य	१ पल्य	स्वयंभू
३ "	१४९९९९७ '	९ सा ७४९९९९ वर्ष	९	(९ सा १५ ला व) ३/४ प	३/४ पल्य	पुरुषोत्तम
२ "	७४९९९८ "	४ सा ४९९९९९ वर्ष	४ "	(४ सा + ७५०००० व) ३/४ प	१/२ पल्य	पुरुष पुंडरीक
१ "	२४९९९९ "	३ सा २२५०१५ वर्ष ३/४ पल्य	३ सा - ३/४ पल्य	(३ सा + २५०००० व) - १ पल्य	१/४ पल्य	सत्यदत्त
१६ "	२४९८४ '	१/२ पल्य १२५० वर्ष	१/२ पल्य	१/२ पल्य + १२५० वर्ष	अज्ञात	कुनाल
" "	२३७३४ "	१/४ पल्य - ९९९९९९७२५० वर्ष	१/४ प १००० को व	१/४ प - ९९९९९९७२५० वर्ष	"	नारायण
' '	२०९८४ "	९९९९९६६०८४ वर्ष ६ दिन	१००० को वर्ष	९९९९९९६१०० वर्ष	'	सुभौम
६ दिन	५४९०० वर्ष - ६ दिन	५४४७४०० वर्ष १० मा २४ दिन	५४ ला व.	५४४७४०० वर्ष		सार्वभौम
११ मास	७४९९ + १ मास	६०५००८ वर्ष १ मास	६ " "	६०५००० वर्ष	"	अजितंजय
९ वर्ष	२४९१ वर्ष	५०१७९१ वर्ष ५६ दिन	५ " "	५०१९०० वर्ष	"	विजय
५६ दिन	६९९ वर्ष १० मा ४ दि.	८४३८० वर्ष २ मा ४ दिन	८३७५० वर्ष	८४३८० वर्ष	"	उग्रसेन
४ मास	६९ वर्ष ८ मास	२७९ वर्ष ८ माह	२५० वर्ष	२७८ वर्ष	"	महासेन
१२ वर्ष	३० वर्ष			२१०४२ वर्ष	"	श्रेणिक

	१२ यक्ष	१३ यक्षणी	२३ दीक्षानक्षत्र	२६ केवल ज्ञान नक्षत्र	३७ निर्वाण नक्षत्र	३८ निर्वाण आसन
1	गौवदन	चक्रेश्वरी	उत्तराषाणा	उत्तराषाणा	उत्तराषाणा	पद्मासन
2	महायक्ष	रोहिणी	रोहिणी	रोहिणी	भरणी	खड्गासन
3	त्रिमुख	प्रज्ञप्ति	ज्येष्ठ	ज्येष्ठ	ज्येष्ठ	खड्गासन
4	यक्षेश्वर	वज्रश्रृखला	पुर्नवसु	पुर्नवसु	पुर्नवसु	खड्गासन
5	तुम्बुज	वज्रकशा	मघा	हिस्त	मघा	खड्गासन
6	मातग	सुप्रति चक्रेश्वरी	चित्रा	चित्रा	चित्रा	खड्गासन
7	विजय	पुष्पदत्ता	विशाखा	विशाखा	अनुराधा	खड्गासन
8	अजित	मनोवेगा	अनुराधा	अनुराधा	ज्येष्ठा	खड्गासन
9	ब्रह्मा	काली	अनुराधा	मूला	मूला	खड्गासन
10	ब्रह्मश्वेरी	ज्वालामालिनी	मूला	पूर्वाषाणा	पूर्वाषाणा	खड्गासन
11	कुमार	महाकाली	श्रवण	श्रवण	घनिष्ठा	पद्मासन
12	षणमुख	गीरी	विशाखा	विशाखा	अश्विन	खड्गासन
13	पाताल	गाधारी	उत्तरा भाद्रापद	उत्तराषाणा	पूर्व भाद्रपदा	खड्गासन
14	किन्नर	पैरोटी	रेवती	खेती	खेती	खड्गासन
15	कि पुरुष	लोल्सा अनन्तमति	पूण्य	पूण्य	पूण्य	खड्गासन
16	गरुण	मानसी	भरणी	भरणी	भरणी	खड्गासन
17	कुबेर	जया	रेवती	रेवती	रोहिणी	खड्गासन
18	गधर्व	महामानसी	कृतिका	कृतिका	कृतिका	खड्गासन
19	वरुण	विजया	अश्विनी	अश्विनी	भरणी	खड्गासन
20	भुकृति	अपराजित	श्रवण	श्रवण	श्रवण	खड्गासन
21	गोमघ	बहुरूपिणी	अश्विनी	अश्विनी	अश्विनी	खड्गासन
22	पार्श्व	कुपमाडी	चित्रा	चित्रा	चित्रा	पद्मासन
23	मातंग	पदमा	विशाखा	विशाखा	विशाखा	खड्गासम
24	पुष्पोत्तर	ग्रह्मक	उत्तरा-फाल्गुनी	मघा	स्वाति	स्वाति

राजस्थान खण्ड

राजस्थान के ऐतिहासिक चमत्कार

मुनि श्री १०८ सुधासागरजी महाराज

ससंघ के सन् 1994 में राजस्थान के अनेक स्थानों पर विहार के दौरान
हुए ऐतिहासिक कार्यक्रमों की संक्षिप्त झलकिया इस खण्ड में प्रस्तुत की जा रही है।

अनुक्रमणिका

श्री सोनी जी की नसियाँ

सांगानेर के भूगर्भ-स्थित जिन चैत्य का चमत्कार

जयपुर नगरी प्राचीन समय से जैन नगर के नाम से प्रसिद्ध रही है । इस नगर से तेरह कि मी दक्षिण की ओर स्थित सागानेर नगर राजस्थान के प्राचीनतम नगरों में से एक है । यहाँ एक पुरातात्विक और धार्मिक विरासत को अपने अंग में समेटे श्री दिगम्बर जैन मन्दिर संघी जी का है, जो प्राचीनतम स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करने वाला और विदेशी पर्यटको का आकर्षण स्थल है । मन्दिर के अनेकानेक जैन शिलालेख उपलब्ध थे, जो अब वहाँ नहीं है । मैंने अपनी आँखो से प्रथम वेदी के तोरण में सवत् 1011 का एक शिलालेख देखा है (सं 1011 लिखित पं तेजा शिष्य आ पूरणचन्द) जिनके अनुसार मन्दिर का अंतिम चरण 10 वीं शताब्दी का सिद्ध होता है । मदिर कई चरणो मे बना, ऐसा वस्तु कला से प्रतीत होता है । मन्दिर पर अठारह गगनचुम्बी शिखर हैं, जो खजुराहों शैली के शिखरबन्द मदिरो से सदृश है । मन्दिर के तौरण और कलाकृतियों, भित्ति चित्रो को देखकर माउण्ट आबू के दिलवाडा मन्दिर की स्मृति ताजा हो जाती है। तोरण लाल पाषाण के बने हैं । छज्जों के नीचे स्तम्भों पर वाद्ययत्र लिये नृत्य करती नारियों की मूर्तिया बडी मनोरम है । मृदग, ढप ढाल, पखावज, मुरज, वीणा अलापिनीवीणा, रावण हस्तक वाणी एकतत्री से लेकर पच तत्री तक के वाद्य उकेरे हुए हैं । सुषिर वाद्य, अवनद्धवाद्य, ततुवाद्य भी किन्नर किन्नारियो के साथ चित्रित किए हुये हैं । यदि यहाँ के भित्ति चित्रों पर दृष्टि डाले तो उन पर रोना आता है। ज्यादातर भित्तचित्रों पर चूने की पुताई की जा चुकी है । छत और ऊपर की दीवालो पर चित्रो के अवशेष अपने पुरातत्व की कहानी कहते हुए मेरे साथ हो जाते हैं । इंटैक सस्था को इनके सरक्षण के लिये मैंने आज ही पूरी प्राजेक्ट भेजी है ताकि इनके सरक्षण के लिये समय रहते कुछ किया जा सके । सगीत वाद्यो के पुरातत्त्व पर ओर ललितकला पर शोध की पर्याप्त सामग्री है ।

सघी जी के मदिर में वेदी के पीछे जिनालय में मूलनायक प्रतिमा बिना चिन्ह व लेख के स्थित है । काल की प्राचीनता से यह मूर्ति गहरे गेरू रग की हो गयी है और इसमे क्षरण के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे हैं । इसे यहाँ के निर्मित आदिनाथ की प्रतिमा कहते हैं । प्रतिमा की बनावट और शल्प से तथा लांछ-चिह्न न होने की स्थिति में इसका काल गुप्तकाल है जो 5 वीं शताब्दी का इससे पहले का सिद्ध होता है । मैंने जयपुर के पुरातत्ववेत्ताओं तथा डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल जो जैन पुरातत्त्व के मूर्धन्य विद्वान और इतिहास पुरुष हैं, से भी इस बारे मे चर्चा की । व इसे लगभग चार हजार वर्ष पूर्व की कृति मानते हैं । यह मन्दिर पूर्वमुखी है । द्वार पर गणेश की मूर्ति भी उत्कीर्ण है । मुझे इसे देखकर एक स्लोक याद आया-श्री आदिनाथ प्रमुखा जिनेश श्री पुडतेज प्रमुखा गणेश· ॥

दूसरे चौक मे प्रवेश द्वार पर मैंने ढोलामारू के चित्र उकेरे हुए दोमो और देखे । अन्य कलाकृतियो के साथ साथ जो विराजे हैं। दक्षिणी तिवारे की दीवार पर एक लेख काली स्याही से अंकित है, जिससे ज्ञात हुआ हैं कि संवत् 1829 जेष्ठ सुदी 3 को बसवा-निवासी प मूलचद एवं साहिबराम विलाला ऋषभदेव की यात्रा करते हुए यहां आये थे । चौक की वेदी मे बीच की पार्श्वनाथ प्रतिमा संवत् 1664 तथा अन्य एक प्रतिमा संवत् 1224 की प्रतिष्ठित है। दक्षिण तिवारे की वेदी में शांतिनाथ जी की श्वेत पाषाण खड्गासन प्रतिमा सवत् 1185 की प्रतिष्ठित है। बाहर के चौक में उत्तर पूर्वी कौने में एक तलघर है, जिसमें पाषाण की चौदह मूर्तियाँ हैं । इनमें से तीन प्रतिमाएं भूगर्भ से प्राप्त है । दूसरा भौहरा (तलघर) दक्षिण की ओर वाले तिवारे में पूर्व की लाइन में हैं, जिसे किसी महनीथ मुनि बलवेदी के संकल्प से ही खोला जा सकता है । यह मन्दिर सात मंजिल है । दो मजिल ऊपर क्षत्रिय है और पांच मंजिल नीचे है मदिर की सबसे नीचे की मजिलो में यक्षदेव (मणयुक्त साक्षात् सर्प) द्वारा रक्षित भूगर्भ स्थित अति प्राचीन जैन चैत्य है, यहां 5 बड़ी पाषाण की मूर्तियां और चौसठ रत्नो की विभिन्न अत्या युक्त मूर्तियां हैं जो एक पीतल के पात्र में सुरक्षित रखी रहती है ।

दिनाक 12 6 94 की सुबह एक विलक्षण सुबह थी । उसका न जाने कितने नर-नारियों, बच्चों को बेताबी से इंतजार था । हजारो हजार जैन समुदाय आंधी की भांति सांगानेर में छाया जा रहा था, मेरे ये चर्मचक्षु भी ऐसे अलोकित वातावरण के साक्षी बने थे । मैंने अपने और अपने जीवन को धन्य माना कि मैं यहाँ उपस्थित हूँ । मेरा बालक आशुतोष भी मेरे साथ था वह उत्सुकता वश सैंकड़ों चाहे/ अनचाहे प्रश्न पूछ रहा था । बादल घिर-घिर कर आ रहे थे । भीषण गर्मी और उमस से वातावरण असह्य हो रहा था । जयपुर में अभी तक बरसात नहीं हुई थी लेकिन बादलों को देखकर सभी मन ही मन भगवान के अतिशय से प्रभावित होकर जय जयकार कर रहे थे। अजमेर से पधारे कोई कवि मंच पर कविता पाठ

करके भगवान की स्तुति कर रहे थे। इसी बीच वाणीभूषण प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी मच पर आये और कहा कि शीघ्र ही महाराज प्रवर सुधासागर जी भूगर्भ चेत्यालय की मूर्तियों को ला रहे हैं । थोडी ही देर मे इन्द्रों की वेशभूषा में सुसज्जित लोग भूगर्भ स्थित मूर्तियो को लेकर मच पर विराजमान करने लगे । विदेह क्षेत्र के इन्द्र भी यह सब अप्रत्यक्ष रूप से देख रहे थे। जैसे ही पूरी 72 मूर्तियां मच पर आयी मूसलाधार वर्षा होने लगी । भगवान के अभिषेक करने का ऐसा मौका देवों को भी कहा मिलता है । मृत्यु लोक के इन्द्रो की वेशभुषा के लोग भगवान् के अभिषेक करने का ऐसा मौका देवों को भी कहाँ मिलता है । मृत्यु लोक के इन्द्रो की वेशभूषा के लाग भगवान् पर अभिषेक करें, इससे पहले ही देवो ने बाजी मार ली ऐसा प्रत्यक्ष अतिशय देखकर सभा दाता तले कि ऊगली दबा रहे थे । जन समुदाय के आग्रह पर महाराज श्री सुधासागर जी ने अपने उद्घोष मे बताया कि मूर्तियो को लाने का मार्ग अनदेखा था। एक सर्प ने उनका मार्ग प्रशस्त किया और सर्प रूप मे यक्ष बोला बहुत जल्दी आ गये । फिर भी आप मूर्तियाँ सकल्पित समयावधि के लिए ले जाइये। महाराज श्री दिनाक 15 6 94 की सुबह आठ बजे तक के लिये मूर्तियाँ लाये थे । मूर्तियो मे तीर्थंकर महावीर, पार्श्वनाथ, शातिनाथ आदिनाथ, चदाप्रभु और पद्मप्रभु की मूर्तियाँ उल्लेखनीय थी । उनमे मे कुछ गोमेद, स्फटिक, गुरुडमणि, पन्ना नीलम, मरकतमणि, माणिक और मूगा की थी । अनेकानेक मत्र भी चैत्य मे स्थापित है, उनमें से कुछ ऊपर दर्शनाथ भी लाये गये थे ।

महाराज श्री ने बताया कि अतिशय पूर्ण स्थान उन्होंने अपने जीवन में पहली बार देखा है । यदि आगामी जन्म लेना पडा तो प्रभू से यही विनती है कि इसी साँगानेर मे मेरा जन्म हो ।

सक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि मेरे जीवन का यह अवसर अभूतपूर्व था ।

डॉ अभय प्रकाश जैन

सांगानेर में चार दिन

नरेन्द्र प्रकाश जैन, सम्पादक जैन गजट

राजस्थान का एक प्राचीन नगर सागानेर अपने विशाल कलात्मक जैन मन्दिरो के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ आठ मन्दिर है । इसमें सघीजी का मन्दिर बेजोड है । वह सात मजिला है किन्तु दिखती है केवल दो ही मंजिले । पाँच मजिलें नीचे जमीन मे है आज मे हजार-बारह सौ वर्ष पूर्व जिस महाभाग ने यह मन्दिर बनवाया उसने पाचवी मजिल में भी कुछ रत्न प्रतिमाये विराजमान कर दी । वहा तक जाने के लिये एक छोटा-सा रास्ता है । झुककर, बेठकर या कहीं कूद-कूदकर वह रास्ता पार करना पडता है । किन्तु आम यात्री आज तक नीचे गया ही नही। कहा जाता है कि केवल सिद्धि सन्यासी ही वहां तक जा सकते हैं । इसके पीछे क्या रहस्य है । अथवा मन्दिर-निर्माता का क्या सोच रहा होगा । यह सब सोच का विषय है । वैसे सोध श्रद्धा के क्षेत्र मे अकिचित्कर है ।

यह तो निश्चित है कि उन मूर्तियो का अभिषेक-पूजन तभी हो पाता है, जब कोई सन्त उन्हे बाहर निकालकर लाते हैं शेष अवधि मे वे अनिभिषिक्त ही रहती हैं ।

इस बार पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का यहा पदार्पण हुआ उनकी प्रेरणा से यहां दिनाक 9, 10 एव 11 जून को एक विद्वत सगोष्ठी एवं 12, 13 एव 14 जून को एक विधान एवं भूगर्भ-स्थित इन मुनियों के प्रकटीकरण के आयोजन की घोषणा की गई । हमारे पास भी आमन्त्रण आया था। हमें यहा चार दिन रहने का अवसर मिला । इस सबके यहाँ ज्ञान और श्रद्धा के सगम मे स्नान किया।

विद्वतसंगोष्ठी

डॉ शीतलचन्द जैन, जयपुर

स्व आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज (आचार्य श्री विद्यासागरजी के दीक्षागुरु) इस सदी के एक उत्कृष्ट साहित्यस्रष्टा थे । उन्होंने संस्कृत एव हिन्दी भाषा के अनेक महाकाव्य, चरित्रप्रधान काव्य मुक्तक, काव्य आदि लिखे । साहित्य जगत

में उनका अच्छा समादर हुआ। उनकी रचनाओं के उक्ति-वैचित्र्य, रसपरिपाक, अलकार-छटा, प्रसाद-गुण आदि ने समीक्षको का मन मोह लिया। पहली बार उन्हें पढकर पण्डित हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री ने कहा था "इधर के पाच वर्षों में ऐसी सुन्दर और उत्कृष्ट काव्यरचना करने वाला अन्य कोई विद्वान जैन समाज मे नहीं हुआ है।" अन्य कुछ मनीषियो ने भी उनमें माघ और भारवि के दर्शन किए और उनकी प्रतिभा का लोहा माना।

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपनी अधिकाश रचनायें गृहस्थावस्था में लिखी। उस समय वह पण्डित भूरामलजी शास्त्री के नाम से जाने जाते थे। उनका व्यक्तित्व स्व-निर्मित था। जब वह मात्र दस वर्ष के थे तब उसके माता पिता का देहान्त हो गया था सबसे बडे भाई भी उनसे केवल दो ही वर्ष बडे थे। ऐसी स्थिति मे अपना दायित्व उन्हे स्वयं ही सभालना पडा और उन्होंने बखूबी उनका निर्वाह किया।

संगोष्ठी के निदेशक की कलम से

परम पूज्य मुनि 108 श्री सुधासागर जी महाराज का जब पदमपुरा क्षेत्र पर विहार हुआ उनके प्रवचन होने लगे तो वातावरण मे साहित्य सस्कृति एव इतिहास से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ सामने आने लगी। पूज्य मुनि श्री के सानिध्य में एक अखिल भारतीय स्तर के विद्वत सगोष्ठी आयोजित करने का निश्चय किया गया। और उस सगोष्ठी का मुझे निदेशक एव डॉ शीतलचन्द जी जैन को सयोजक मनोनीत किया। विद्वानो का निमन्त्रण जाने लगे, लेकिन स्थान एव निश्चित समय अभी तक अनिर्णित ही रहा। मुनि श्री का पदमपुरा से चित्रकूट कोलोनी सागानेर मे विहार हो गया। लेकिन गर्मी की भीषणता कम नहीं हो रही थी और वहाँ सगोष्ठी के उपयुक्त स्थान भी नही था। बाद मे जब सांगानेर टाऊन मे मुनि श्री का वहा के पचो के विशेष आग्रह से विहार हो गया। सागानेर का सघी जी का जैन मन्दिर मुनि श्री का विहार स्थल बना। मंदिर कमेटी के अध्यक्ष श्री गनकुमार जी पाड्या एव मत्री श्री निर्मलकुमार जी जैन के विशेष आग्रह एव उत्साह को देखते हुए वहाँ पर सगोष्ठी का आयोजित करने का मुनिश्री का आशीर्वाद एव सहमति प्राप्त हो गयी।

सगोष्ठी के लिये तत्काल अखिल भारतीय स्तर के 34 विद्वानो को निमन्त्रण भेजे गये। एक दो स्थान पर स्वय आयोजक डॉ शीतलचन्द जी को भी जाना पडा। दिनाक 9,10 11 जून को आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी महाराज का 21 वाँ समाधि दिवस एव अखिल भारतीय विद्वत सगोष्ठी का आयोजन रखा गया। सगोष्ठी के तत्काल पश्चात् मन्दिर के भूगर्भ स्थित एव देवशक्ति चैत्यालय को तीन दिन के लिए बाहर दर्शनार्थ रखने का निर्णय लिया गया, जिससे चैत्यालय के दर्शनार्थ हजारों की भीड आने लगी।

तीन दिवसीय विद्वत संगोष्ठी मे 24 विद्वानो ने भाग लिया और आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा लिखित साहित्य का समीक्षात्मक निबन्ध वाचन करके अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये। सस्कृत जगत के प्रख्यात विद्वान (1) डॉ मण्डन मिश्र, देहली, (2) डॉ शिवसागर त्रिपाठी जयपुर (3) डॉ जगन्नाथ जी पाठक, इलाहाबाद, (4) डॉ जयकुमार जैन, मुज्जफ्फरनगर (5) डॉ रमेशचन्द जैन, बिजनौर (6) डॉ श्रेयान्सकुमार जैन, बडौत (7) डॉ भागचन्द भास्कर, नागपुर (8) प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश फिरोजाबाद (9) डॉ प्रभाकर शास्त्री राज, वि वि जयपुर (10) डॉ प्रेमचन्द रावका, जयपुर (11) प मूलचन्द लुहाडिया किशनगढ (12) डॉ अशोक कुमार पिलानी (13) वैद्य प्रभुदयाल भिषगाचार्य जयपुर (14) डॉ प्रेमचन्द जैन जयपुर (15) डॉ अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर (16) डॉ अजित कुमार जैन आगरा (17) डॉ सीमा जैन, ललितपुर (18) कु नीता जैन ललितपुर (19) प सत्यन्धर कुमार सेठी, उज्जैन (20) पं मिलापचन्द शास्त्री, जयपुर (21) पं अनूप चन्द न्यायतीर्थ, जयपुर (22) श्रीमति नूतन जैन एवं (23) डॉ शीतलचन्द जैन, सयोजक, सगोष्ठी तथा डॉ कस्तूर चन्द कासलीवाल निदेशक, सगोष्ठी ने निबन्ध वाचन करके कितने ही अनछुए विषयों पर अपने विचार रखे। सागानेर में इस प्रकार की संगोष्ठी वहाँ के इतिहास में प्रथम बार हुई थी, इसलिये सगोष्ठी के आयोजन से चारो ओर प्रसन्नता छा गयी।

सगोष्ठी का एक और प्रमुख आकर्षण पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज का सानिध्य रहा। मुनि श्री पूरे समय संगोष्ठी में विराजते और अन्त में निबन्ध वाचकों के निष्कर्षों पर अपने विचार प्रकट करते थे। पूज्य मुनि श्री के विचार इतनी सधी हुई भाषा एवं शैली में होते थे कि जिन्हें सुनने के लिए श्रोतागण सदैव लालायित से रहते। पूज्यमुनि श्री दूसरे

प्रश्नो पर भी अपने विचार प्रकट करते । मुनि श्री के अतिरिक्त सघस्थ पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज एव पूज्य क्षुल्लक गंभीरसागर जी महाराज को पूर्णकालिक उपस्थिति एव सानिध्य ने भी सगोष्ठी को गरिमा प्रदान की तथा दोनो क्षुल्लकों ने भी संगोष्ठी मे अपने विचार प्रकट किये ।

सगोष्ठी में विद्वानो के अतिरिक्त भा दि जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी, कार्याध्यक्ष श्री चैनरूप जी बाकलीवाल डीमापुर ने भी भाग लिया । सगोष्ठी का समापन सत्र भी माननीय श्री बाकलीवाल जी की अध्यक्षता में सम्पन्न हुआ । अन्त मे सभी विद्वानो को शाल ओढाकर सम्मानित किया गया तथा प्रशस्तिपत्र भेंट किया गया । सगोष्ठी का आयोजन स्थानीय एव बाहर के जैन समाज को वर्षो तक याद रहेगा ।

डॉ कस्तूर चन्द कासलीवाल
निदेशक
विद्वत् सगोष्ठी सागानेर (जयपुर)

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी
सांगानेर का क्षेत्र परिचय

जयपुर नगर से 13 कि मी दक्षिण की ओर स्थित सागानेर नगर राजस्थान के प्राचीनतम नगरो मे प्रमुख स्थान है और इसी नगर की शोभा मे चार चाद लगाने वाला श्री दिगम्बर जैन मन्दिर संघीजी सागानेर का है जो प्राचीनतम स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करने वाला है । मन्दिर निमाण की निश्चित तिथि अभी शोध का विषय बना हुआ है लेकिन यह मन्दिर कई चरणो में बनाया गया था ओर वेदी के एक तोरण में सम्वत् 1011 के लेख के अनुसार अन्तिम चरण का मन्दिर निर्माण 10 वीं शताब्दी का माना जा सकता है ।

मन्दिर के उतग गगन चुम्बी आठ शिखरो को दूर से देखकर ही दर्शक को मन्दिर मे जिन बिम्बो के दर्शनो का जिज्ञासा पैदा होती है ओर वह खुजराहो के शिखरबद्ध मन्दिरो को स्मरण करा देता है तथा मन्दिर के निर्माताओ के प्रति श्रद्धा मे मस्तक झुकाने लगता है । दर्शक या पर्यटक मन्दिर के कलाकृतियो को बाहर से देखकर माउटआबू के देलवाडा मन्दिर के प्रवेश द्वारो को स्मृत किये बिना नहीं रहते । प्रथम द्वार के पहले चोक मे प्रवेश करते ही दानो तरफ तिबारे हैं जिनमे लाल पाषाण के आकर्षक तोरण द्वार है । छज्जो के नीचे स्तम्भो पर वाद्ययत्र बजाती नृत्य गान करती हुई किन्नर देवियाँ एव चंवर ढोलती देवागनाये दिखाई देती है । प्रथम चौक एव द्वितीय चौक मे जाने वाले दोनो ही प्रवेश द्वारो पर विभिन्न आकृतियो एवं मुद्राओ का सग्रह कलाकार की कलाज्ञान को स्वत ही उजागर करते है । अन्दर दूसरे चोक के प्रवेश द्वार के उत्तर की ओर बाहर की ढोला मारू का भी अकन है आठवीं दशवी शताब्दी तक के भीति चित्र हैं।

कलापूर्ण वेदी

निज मन्दिर मे प्रवेश करते ही चाक मे एक पाषाण की विशाल तीन शिखरो की वेदी बनी हुई है जिसके पाषाण में कमल पुष्प बेलें एव तीर्थंकर भगवानो के सिर पर जलाभिषेक करते हुए हाथो का शिल्प सोष्टव देखते ही बनता है। चवरी के स्तम्भो के बीच तारण द्वार एव छज्जों के नीचे नृत्य करती हुई अप्सराये हैं । वेदी के तीन शिखर एव गुम्बद की तक्षणकला अत्यधिक बारीक व नयनाभिराम है । वेदी के मध्य सप्तफणी भगवान् पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की प्रतिमा मनोज्ञ एव मनभावन है । इस प्रतिमा के अगल बगल मे भी दो पार्श्वनाथ भगवान् की ही प्रतिमाए हैं जिन पर सर्पों के फण पार्श्वनाथ भगवान् के चरणो की ओर झुके हुए है ।

मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान्

इसी चाक में चारो ओर फेरिया व तीन छोटे जिनालय है जिनमे अनेक प्रतिमाए विराजमान हैं तथा प्रतिमाओं पर अंकित लेख इतिहास की धरोहर है । वेदी के पीछे जिनालय मे मूलनायक प्रतिमा बिना चिन्ह व लेख के हैं जिन्हें आदिनाथ भगवान् के नाम से जाना जाता है । यह प्रतिमा पुरात्वेत्ताओ की जानकारी के अनुसार चार हजार वर्ष प्राचीन बताई गयी है जो चतुर्थ काल की प्रतिमा मानी जाती है ।

यह मन्दिर सात मंजिला है जिसके तलघर के मध्य में यक्ष देव द्वारा रक्षित भूगर्भ स्थित प्राचीन जिन चैत्याल्य विराजमान है । इसकी विशेषता है कि जिस स्थान पर यह विराजमान है वहाँ मात्र बालयती तपस्वी दिगम्बर साधु ही वहाँ पर अपनी साधना के बल पर प्रवेश कर सकते हैं । अन्य किसी ने वहाँ प्रवेश करने का साहस किया भी तो उसके दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं । इस चैत्यालय को निकालते समय निकालने वाले साधक को अपनी संकल्प शक्ति व्यक्त करनी पडती है कि इस चेत्याल्य को इतने दिन के लिए भूगर्भ से बाहर ऊपर श्रावको के दर्शनार्थ ले जा रहे हैं और अमुक दिन इतने बजे लाकर इस चैत्यालय को वापस यहा विराजमान कर दिया जावेगा। संकल्प समय के अन्दर ही इस चैत्यालय को अन्दर भूगर्भ में वापस ले जाना अनिवार्य होता है । इसमे विलम्ब करने पर अनेक प्रकार के अशुभ संकेत देखने में आते हैं । इस मन्दिर की यह सबसे बड़ी अतिशयता है एव प्राचीनता स्पष्ट होती है ।

मन्दिर के दर्शन हेतु श्रद्धालुजन तो आते ही हैं लेकिन सारे विश्व से बडी सख्या में प्रतिदिन पर्यटक मन्दिर की स्थापत्य कला को देखने के लिए आते है । कला को देखने के बाद जब अन्दर वेदी मे विराजमान जिन प्रतिमाओ की वीतरागता को देखते हैं तो अपनी नास्तिकता को तिलांजली देकर अपनी आस्तिकता की ओर सहज ही आकर्षित हो जाते हैं ।

इस मन्दिर की विशालता को देखते हुए साँगानेर में रहने वाले श्रृद्धालुओ के सम्बन्ध में जब हम इतिहास में खोज करते हैं तो ज्ञात होता है कि अतीत में यहाँ लगभग 700 जैन घरो की बस्ती थी। धीरे-धीरे काल की चपेट में आजीविका के अभाव मे यहाँ का समाज अन्यत्र स्थानो पर चला गया और यहाँ साँगानेर में कुल मात्र 7-8 घर ही शेष रह गये तब इतने बडे विशाल मन्दिर की व्यवस्था करना कठिन हो गया । परिणाम स्वरूप इस मन्दिर की दशा जीर्ण-शीर्ण हो गई। पुन पुण्य का योग आया और यहाँ दिगम्बर जैन समाज के आज लगभग 150 घर हैं । सभी श्रद्धालुओ की भावना है कि इस मन्दिर का विकास हो और दुनियाँ की दृष्टि मे यह अतिशय क्षेत्र जन कल्याण के लिए साधन बने । भारतीय सस्कृति की गोरव गाथा का पुन जीवित कर सकें । इस हेतु मन्दिर के जीर्णोद्धार के साथ-साथ यहा पर आने वाले यात्रियो के लिए धर्मशाला आदि अनेक सुविधाओ के जुटाने का प्रबन्ध कारिणी कमेटी ने सकल्प किया है ।

अत मन्दिर की निम्नांकित योजनाओ की सफल क्रियान्विती तथा मन्दिर जी के जीर्णोद्धार हेतु अपनी शक्ति को न छिपाते हुए उदार मन मे इस कलापूर्ण विख्यात मन्दिर के लिए अधिक से अधिक आर्थिक सहयोग देकर धर्मलाभ अर्जित करे ।

दार्शनिक सन्त ज्ञानसागर जी

(आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का 21 वां समाधि-दिवस एवं गोष्ठी का प्रथम सत्र)

मुनि श्री सुधासागरजी

मै सबसे पहले इस भूमि को साधुवाद देना चाहता हूँ जहा से हमारे वश का बीजारोपण हुआ था । जयपुर की पवित्र भूमि खानिया जी मे श्री ज्ञानसागर जी ने मुनि दीक्षा ली थी।

मुझे लगता है आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने बाल-अवस्था से ही मुनि बनने की भावना की थी, तभी तो गृहस्थ नहीं बने । वो बड़े दार्शनिक थे, वे जानते थे कि जीवन में गृहस्थ नहीं बनूंगा तभी मुनि बन सकूंगा ।

राजस्थान का ज्ञान का बादशाह जिन्होंने पूरा जीवन ज्ञानार्जन में और उसके प्रचर-प्रसार में लगा दिया, उनको शायद यह राजस्थान भी नहीं जानता होगा ।

सन्त होना सरल चीज है, दार्शनिक होना सरल चीज हैं किन्तु दार्शनिक सन्त होना बडा दुर्लभ है जा श्री ज्ञानसागर जी में देखने को मिलता है ।

श्री ज्ञानसागर जी ने "णाणस्स फलं उपेक्खा" कुन्दकुन्द के इस कथन में दिया है । ज्ञान का फल है- ख्याति-लाभ उसमे कोसो दूर रहे । 'णाणस्स फलं उपेक्खा' यह मंत्र है, इसको वो हमेशा जपने ही रहे । इस मंत्र को आज कोई नहीं फेरता जो कुन्दकुन्द ने दिया है इस मंत्र का क्या अनुभव है यह हमें इस सन्त म सीखना है जो आज से 21 वर्ष पूर्व में इस मंत्र को फेरनेवाला हुआ था ।

'घर आये नाग बामी पूजन जाय' इस युक्ति को यह राजस्थानवाले कर रहे हैं तभी तो जो इस भूमि का गौरव है ऐसे श्री ज्ञानसागर जी के साहित्य मे यह राजस्थान लाभ नहीं ले रहा है, जिस साहित्य ने भारतवर्ष को एक नया आयाम दिया है । उनके साहित्य का हम प्रचार प्रसार करते हैं, शिक्षण मे लाते हैं तो श्री ज्ञानसागर जी के पर कोई एहसास नहीं होगा । बल्कि हम उसमे उपकृत होगे ।

जातिवाद, समाजवाद आदि रूढियो को छोडने से, उनके साहित्य से लाभ जयपुर का ही नहीं होगा, अपितु सारा राजस्थान और भारतवर्ष उपकृत हो जायेगा ।

'जहा न जाए बैलगाडी वहां पर जाए मारवाडी'- पर ये कैसे मारवाडी है जो ऐसे व्यक्तित्व के कृतित्व को नहीं खोज पाए जिन्होने ज्ञान-साधना के साथ-साथ आत्म-साधना की है । उसी प्रकार विद्वानो को भी आत्मसाधना की ओर कदम बढाने हैं ।

यदि श्री ज्ञानसागर जी दीक्षा लेकर मुनि वेषधारण नहीं करते तो इस पंचमकाल मे हम जैसे लोगों का कौन मार्ग प्रशस्त करता ?

आज इस पचम काल मे भौतिकता की चकाचाध मे जब लोग हीन सहनन है और मोक्षमार्ग मे चलनेवालो की टाग पकडकर खीच रहे है ऐसी परिस्थिति मे हम जसे अज्ञानिया को यदि चलने का साहस हो पा रहा है तो इसका श्रेय किसको जाता है । एक श्री ज्ञानसागर जी को ।

श्रावक का आदर्श

(प्रवचन - मुनि श्री सुधासागरजी महाराज)

आज गोष्ठी का दूसरा सत्र चल रहा है । विभिन्न प्रकार के लेख बाचे गये जिनमे एक लेख सुदर्शनोदय पर भी था। यह सुदर्शनादय ग्रथ गृहस्थो के लिए बहुत शिक्षाप्रद है । गृहस्थ कैसा होना चाहिए उस आदर्श को प्रस्तुत करता है । उस सुदर्शन के चरित्र को चित्रित करते हुए कहा है कि एक गृहस्थ असयमी होकर भी विवेकवान व दृढसकल्पी है, कुमार्ग पर जाने के लिए हजारा निमित्त मिले तो गृहस्थ को कम से कम अष्टमी, चुतर्दशी के दिन आरम्भ-सारम्भ आदि व्यापार को छोडकर एकान्तवास मे आत्म-चिन्तनपूर्वक बिताना चाहिए और विपरीत निमित्त मिलने पर भी अपने सकल्प को नहीं छोडना चाहिए । सेठ सुदर्शन के जीवन मे तीन बार घोर विपत्ति आयी फिर भी वे अपनी सकल्प-शक्ति से च्युत नहीं हुए । एक बात तो अभया रानी विकारमय नाटकीय दृश्य प्रस्तुत करने के बाद भी सेठ सुदर्शन को स्वदार सतोष-व्रत से विचलित नहीं कर पायी । उसी अभया रानी के षडयत्र मे सेठ सुदर्शन को सूली पर चढाया गया तब भी वे अपने पूर्वोपाजित कर्मों का फल मानकर परिणामो मे समता रखते रहे परिणामस्वरूप सूली सिहासन मे परिवर्तित हो गई । दूसरा प्रसग भी वेश्या के द्वारा इसी प्रकार उपसर्ग का है ।

आज के इस लेख का सुनकर मुझे एक विशेष बात ध्यान आ रही है उसे सुन कर आप बुरा नहीं मानना, यदि मान भी जायेगे तो काई फर्क नही पडेगा । सत्य बात कहने मे भलाई और बुराई का विचार नहीं किया जाता । बात यह है कि आज लोग कहते हैं - हमे चतुर्थ-कालीन साधु के समान साधु मिलना चाहिये । यहां उन श्रावक बधुओ से मेरा कहना है कि उन श्रावको को भी चोथे काल जैसा श्रावक हाना चाहिये आज ऐसा कोन श्रावक है जो सेठ सुदर्शन के जैसे अष्टमी-चतुदशी को श्मशान मे जाकर ध्यान लगाता है और महान उपसर्ग आने पर भी विचलित नहीं होता । आप कहोगे की चतुर्थ काल के श्रावक के समान सहनन आज के श्रावको मे नहीं है ।

मुनि तो फिर भी चतुर्थ काल के मुनि के समान 50% साधनारत है लेकिन श्रावक सेठ सुदर्शन जैसे एक प्रतिशत भी नहीं । आज के विद्वान गद्दिया पर बेठकर मुनिया का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं लेकिन श्रावको का तुलनात्मक अध्ययन करके उन्हे उपदेश नहीं देते । यदि विद्वान लाग पूर्व आदर्श श्रावको का चरित्र-चित्रण वर्तमान श्रावको के समक्ष उपस्थित करने लग जाये तो समाज का कल्याण हो जाये । आज जो श्रावक पतित है, पतित हो गये हैं, वे पुन· सेठ सुदर्शन जैसे श्रावक बनकर मार्ग पर आकर अगर मुनि बन जाय तो मैं कहता हूँ कि उन मुनि की चर्या कितनी अतिशयकारी होगी

यह विचारणीय है, इसलिए सबसे पहले सुदर्शनोदय महाकाव्य से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि गृहस्थों को अपना आचार-विचार शुद्ध रखना चाहिए । इस विषय में वैसे तो बहुत कुछ कहना था लेकिन समय के अभाव के कारण विस्तार से नहीं कर रहा हूँ ।

दूसरा लेख दयोदय चम्पू काव्य के ऊपर बाँचा गया । इस काव्य मे एक ऐसे विचित्र जीव की घटना प्रदर्शित की गई है जो हिंसक से अहिंसक बनने पर संकट मे पड़ जाता है और बाद में अहिसा के प्रभाव से सकंटमुक्त हो जाता है । प्रथम तो यह दृश्य विचारणीय है कि लोग अपना पेट भरने के लिए कितने जीवों की हत्या करते हैं ? जैसे मृगसेन धीवर अपना एवं अपने परिवार का भोजन मछलियों को बनाता है लेकिन इसी कथानक के दूसरी और देखते हैं तो धीवर जैसी तुच्छ पर्याय में हिंसक मांसाहारी प्राणी सच्चे गुरु की देशनालब्धि का निमित्त मिलने पर अहिसा के नियमों को धारण करने के लिए सकल्पबद्ध हो जाता है । और जैसे ही वह नियम लेता है कि मैं अपने जाल में आयी हुई प्रथम मछली को नहीं मारूँगा वैसे ही परीक्षा की घड़ी भी आ जाती है । क्योंकि बिना परीक्षा के नियम प्रभावित नहीं होता । जिस प्रकार विद्यार्थी सालभर पढकर परीक्षा ना दे तो उसकी पढ़ाई प्रामाणिक नहीं होती उसी प्रकार धीवर के उस नियम ने उसी दिन परीक्षा का रूप ले लिया। वह जब भी जल में जाल डालता तब वही प्रथम मछली जाल मे आती है । शाम तक दूसरी मछली उसके जाल मे नहीं आती और वह निराश हो जाता है वह भूखा रहना पंसद कर लेता है किन्तु नियम नहीं तोडता । आज बडे-बडे उच्च कुलवाले धर्मात्मा लोग थोडी सी विपत्ति आने पर नियम को तोड देते, अच्छे-अच्छे लोग प्रभातकाल का भोजन भरपेट खा गये और रात्रिभोजन का त्याग होने पर भी शाम को खाना न मिलने पर उन्हे नियम तोडने के भाव आ जाते हैं और कुछ लोग तो नियम तोड देते हैं, इस प्रकार के लोगो को धीवर से शिक्षा लेनी चाहिये जो दिनभर का भूखा होने पर भी अपने नियम को तोडने का परिणाम नहीं कर रहा है लेकिन इतने मात्र से धर्म की परीक्षा पूरी नहीं हुई क्योंकि धर्म की परीक्षा बहुत कठिन होती है । इसमें अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है । जब वह धीवर खाली हाथ घर लौटता है तो पत्नी की प्रताडना झेलता है । पत्नि केवल उस को ही प्रताड़ित नहीं करती बल्कि जिस साधु से उसने नियम लिया उस साधु को भी नास्तिक कहकर अवमानना करती है। जब धीवर वेदों एवं उपनिषदो में वर्णित साधुओ की चर्या के अपने गुरु की चर्या की तुलना करके कहता है कि साधु का जैसा वर्णन वेदों में है वैसा ही तो यह साधु है । यहा विशेष बात यह देखने लायक है कि धीवर जैसे परिवार में भी वेदों का ज्ञान पाया जाता है कवि की दृष्टि रहने के कारण वह मरकर स्वर्ग जाता है यहा पर एक बात और विचारणीय है - एक दिन धीवर अपने परिवार के लिए भोजन की वस्तु नहीं लाया तो धीवरी ने उसे घर से निकाल दिया, यह ससार की बडी विचित्रता है । इसके बाद वह धीवरी जब वह धीवर को मरा हुआ देखती है तो बहुत पछताती है । इससे यहा यह सिद्ध होता है कि स्त्रिया अनर्थ करने के बाद पश्चाताप करती हैं, पहले नहीं । और दूसरी बात यह ध्यान में आती है कि एक परिवार में एक व्यक्ति भोगी, स्वार्थपूर्ण विचारधारा वाला है और एक व्यक्ति योगी, धर्मपरायण विचारवाला है, इन दोनो की स्वार्थपरता किस सीमा तक पहुंच सकती है- यह हमें इस प्रसग से शिक्षा मिलती है ।

ऐसे कथानक-काव्यों का समाज मे प्रचार-प्रसार होना चाहिए । आज व्यक्ति उपन्यास के माध्यम से कुसस्कारात्मक किताबें पढते हैं । परिवार के लोगो को चाहिए कि उन्हें ऐसे कुसंस्कारात्मक किताबों के बजाय ऐसी कुसंस्कारात्मकयुक्त किताबें पढते हैं । परिवार के लोगों को चाहिए कि उन्हें ऐसे कुसंस्कारात्मक किताबों के बजाय ऐसी सुस्कारात्मक किताबें पढने की प्रेरणा दें । और भी अन्य-अन्य लेख इस सत्र में बांचे गये लेकिन समयभाव के कारण एवं सरल होने के कारण उनकी विवेचना करने की कोई आवश्यकता नहीं है । लेकिन फिर भी एक दो लेखों पर मैं अति संक्षिप्त में कह देता हूँ ।

तीसरा लेख पशु-पक्षियों पर बाँचा गया । इस वीरोदय महाकाव्य में ही क्या जब भी कोई उपमा, उपमेय, को प्रासंगिक किया जाता है तो पशु-पक्षियों के नाम तो आ जाते हैं । वीरोदय महाकाव्य में पशु-पक्षियों का तो आलकारिक दृष्टि से प्रयोग किया ही गया है साथ में पशु-पक्षी मानव के लिए कितने उपकारी हैं और इस सृष्टि के सौंदर्य एवं पर्यावरण में कितने सहकारी हैं इसका भी वर्णन किया गया है । साथ में लेखक ने भगवान महावीर के सिद्धान्तों को भी प्रकट किया है कि मनुष्य का मात्र के लिए ही दया न दिखायें बल्कि पशु-पक्षियों के प्रति भी दया दिखायें, इनके भी सुख-दुख का ध्यान रखें, इनके साथ भी आत्मीयता का व्यवहार करें तभी मानव मानवता की कोटि में आ सकता है और महावीर के

अहिंसा धर्म का पालक हो सकता है क्योंकि मानव की आजीविका के साधन हैं पशु-पक्षी अत उनके जीवन का शोषण नहीं होना चाहिए बल्कि उनके जीवन का पोषण करते हुए उन्हे अपने कार्य मे सहायक बनाना चाहिए ।

इसी सत्र मे एक लेख ज्ञानसागरजी के साहित्य मे श्लेष प्रयोग पर बाँचा गया । श्लेष अलकार एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण अलंकार है । इस अलकार का सहारा लेकर कवि अपने कथा-प्रसग को तो प्रासगिक करता ही है साथ में अपनी विचारधारा को व्यक्त करने का मोका भी पा लेता है । जेसे ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने वीरोदय काव्य के अकलंक, समन्तभद्र, प्रभाचन्द्र आदि शब्द लेकर पर-प्रसग को तो व्यक्त किया ही है साथ मे दूसरा श्लेषात्मक अर्थ अपने श्रद्धेय आचार्यों को भी व्यक्त करता है ।

इसी प्रसग में एक लेख और बाँचा गया था । ज्ञानसागरजी महाराज का साहित्य इस अलकार से भरा पडा है । काव्य में अलंकारो से ओज गुण प्रसाद गुण प्रकट होता है । जिस प्रकार भोजन को मसाले आदि डालकर स्वादिष्ट बनाया जाता है उसी प्रकार काव्य मे रसों का पुट देकर कविता या काव्य को रूचिपूर्ण बनाया जाता है और अलकारो से सुसज्जित और व्यवस्थित किया जाता है । कमरे मे यत्र-तत्र वस्तुएँ बिखरी पडी हों तो अच्छी वस्तुए भी बुरी लगती है ओर उन्हीं वस्तुओ को यदि व्यवस्थित ढग से सजाकर रख दिया जाय तो उन वस्तुओ से ही उस स्थान की शोभा बढ जाती है ओर उन वस्तुओ की भी शोभा बढ जाती है । देखनेवाला भी आनन्द की अनुभूति करने लगता है और सोचता है कि यह सभ्य प्राणियो का घर है । इसी प्रकार कवि यदि अनुप्रास आदि अलकारो के बिना अपने भावो को प्रकट करेगा तो वह कविता श्रोताओ को रुचिकर नही होगी और वही कविता यदि रस अलकारो से सुसज्जित हो जाये तो श्रोताओ को आनन्द उत्पन्न करेगी और श्रोता कह उठेंगे वस मोर ।

काव्य-महाकाव्य रस और अलकारों के कारण ही विद्वानो के द्वारा समादरणीय हो जाता है ।

।। महावीर भगवान की जय ।।

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के नाम को उजागर किया है आचार्य जयसेन ने

प्रवचन - मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

तीसरा सत्र गोष्ठी का चल रहा है जिसमे कुछ लेख बाँचे गये हैं । उनमे मुखयरूप से समयसार पर चर्चा हुई थी । इसी विषय का आगे और स्पष्टीकरण के लिए हमे सबसे पहले कुन्दकुन्द स्वामी कोन थे, उनका युग कोनसा था- यह समझना होगा। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी इस अध्यात्मरसिक धरा पर दिगम्बर-परम्परा के मुख्य आचार्य थे । और इनका काल एक ऐसा काल था जहा पर अध्यात्मरूपी सिंहनी के दूध को पीतल के पात्रो मे दूहा जा रहा था । आप लोगो को ज्ञान होना चाहिए कि पीतल के पात्र मे सिहनी का दूध ठहर नहीं सकता । वह बर्तन मे छेद करता हुआ मिट्टी मे मिल जायेगा । तब आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने इस अध्यात्मरूपी सिहनी के दूध को धारण करने के लिए स्वर्णपात्र को ग्रहण करने की घोषणा की क्योंकि इनके काल मे भी दिगम्बर साधु शिथिलाचार ग्रहणकर वस्त्रादि ग्रहण करने के बाबजूद भी अपने आप को मुनि अथवा आत्मानुभवी कहने का दम भरने लगे थे । तब आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने इस अध्यात्मरूपी सिहनी के दूध को धारण करने के लिए स्वर्णपात्र को ग्रहण करने की घोषणा की क्योंकि इनके काल मे भी दिगम्बर साधु शिथिलाचार ग्रहणकर वस्त्रादि ग्रहण करने के बाबजूद भी अपने आप को मुनि अथवा आत्मानुभवी कहने का दम भरने लगे थे । तब कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा कि वस्त्रधारी को मुक्ति नहीं हो सकती चाहे तीर्थंकर ही क्यो न हो ओर उन्होंने समयसार में आत्मानुभव के सम्बन्ध मे कहा -

परमाणु मेत्तय पि हु रागादीण तु विज्जदे जस्स ।
ण वि सो जाणदि अप्पाणय तु सव्वागमधरो वि ।।201।।

अर्थात् परमाणुमात्र भी यदि राग की कणिका बैठी है तो वह आत्मा का अनुभव नहीं कर सकता तो फिर गृहस्थ परिग्रही को कुन्दकुन्द स्वामी के अनुसार आत्मा का अनुभव कैसे हो सकता है ! अर्थात नहीं हो सकता। अभिप्राय यह है कि बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह-त्याग के बिना आत्मा का अनुभव नहीं हो सकता ।

अर्थात् सभी संसारी जीव कर्म और कर्मफ-चेतना का अनुभव करते हैं । ज्ञान चेतना का अनुभव तो उन्हें ही होगा जो प्राणों के अतिक्रात हो गये अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी को ही ज्ञान चेतना का अनुभव होता है । अर्हन्त भगवान अभी प्राणो से अतिक्रान्त नहीं हुए इसलिये ज्ञान-चेतना के अधिकारी नहीं है अर्थात् अर्हन्त भगवान कारण समयसार में विद्यमान हैं और कार्य समयसार का आनन्द तो सिद्ध परमेष्ठी को ही आता है । अर्हन्त भगवान के अभी असिद्धत्व रूप औदयिक भाव भी बैठा है अत अनंत सुख भले ही ज्ञायक शक्ति के प्रकट हो जाने पर मिल गया लेकिन अव्याबाध सुख प्राप्त नहीं हुआ । इन सब बातो को देखने पर मालूम होता है कि आज लोग कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करके कितना अनर्थ निकाल रहे हैं। कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि परमाणु मात्र भी राग है तो आत्म का अनुभव नहीं कर सकेगा लेकिन आज लोगों का परमाणु मात्र भी राग का त्याग नहीं है फिर भी आज लोग आत्मा के अनुभव की बात करते हैं यह कैसी विचित्रि बात हुण्डावसर्पिणी काल में हो गयी है । परिग्रह के साथ आत्मा के अनुभव की बात करना कुन्दकुन्द स्वामी एवम् उनके शास्त्र के साथ बहुत बडा अन्याय है । जिस दिन इन स्वाध्यायी बन्धुओं को कुन्द-कुन्द स्वामी मिलेंगे उस दिन ये लोग उनकी फटकार सहन नहीं कर पायेंगे । लोग बडे गर्व से उनसे कहेंगे कि हमने आपके शास्त्रों का स्वाध्यायकर प्रमार-प्रचार किया तब कुन्दकुन्द स्वामी कहेंगे कि तुम लोगों ने बहुत बड़ा अनर्थ किया है । जिस प्रकार भरत चक्रवती चतुर्थ वर्ण की स्थापना करके आदिनाथ भगवान के समवशरण मे यह सोचकर गया था कि मैंने बहुत अच्छा कार्य किया हे, प्रभू मेरे इस कार्य की प्रशंसा करेंगे, लेकिन प्रभु ने कहा कि तुमने महाअनर्थ कर दिया, उसी प्रकार कुन्दकुन्द स्वामी कहेंगे कि तुमने हमारे शास्त्रों का प्रचार-प्रसार अनर्थ निकालकर किया है सो ठीक नहीं है तुम लोगो ने तो हमारे शास्त्र के वास्तविक हृदय को निकालकर मात्र मरे हुए शरीर का प्रचार-प्रसार किया है । हमारे समयसार का मूल कलेजा था कि परिग्रह के अभाव मे ही आत्मा का अनुभव होगा लेकिन तुम लोगों ने परीग्रह सद्भाव में भी आत्मा के अनुभव की चर्चा शुरु कर दी ।

बडा अनर्थ हुआ है इस बीसवीं शताब्दी में । हिन्दी मे तो अनर्थ किया ही है लेकिन मूल सस्कृत टीकाओ को भी विद्रूप कर दिया हे । प्रवचनसार की चारित्र चूलिका मे अमृतचन्द्र सूरी कहते हैं कि गृहस्थ को अशुद्ध को प्राप्त करने का अधिकार है और शुद्ध को नहीं (अशुद्ध अवकाशी अस्ति) इस बीसवीं शताब्दी के ग्रन्थो में हिन्दी प्रकाशको ने अशुद्ध के स्थान पर शुद्ध करके बड़ा अनर्थ किया है । आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के साहित्य को दो हजार सालो मे बडे उतार चढ़ाव देखने पड़े । एक हजार साल तक कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थों का यथावत वाचन हुआ । एक हजार साल के बाद आचार्य अमृतचन्द्र सूरी ने आत्मख्याति नामक एक टीका लिखी लेकिन इस टीका की कठिनता ने पाठकों को और सशय मे डाल दिया । पहला विकल्प तो समाज में यह हो गया कि कुन्दकुन्द की मूल गाथायें कितनी थी ? क्योंकि अमृतचन्द्रसूरी ने वास्तविक दिगम्बरत्व को प्रदर्शित करने वाली मूल गाथाओं को टीका का विषय नहीं बनाया बल्कि कुन्दकुन्द स्वामी की मूल गाथाओं को क्रम से भी अलग कर दिया । दूसरा विकल्प आता है कि अमृतचन्द्र सूरी ने टीका लिखते समय स्वयं का नाम तो उपाधि के साथ उल्लेख भी नही किया । इससे बडा अनर्थ होने जा रहा था । पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार की आत्मख्याति टीकाओं को स्वोपज्ञ टीका कहना शुरु कर दिया था, लोगों ने अर्थात् टीकासहित प्राकृत की मूल गाथाएँ अमृतचन्द्र सूरी की है, ऐसा कहना शुरु कर दिया था ।

उपर्युक्त दोनो अनर्थ से बचाने वाले आचार्य जयसेन स्वामी हैं । जयसेन स्वामी की टीका मिलने के बाद पाठकों के सारे संशय-विभ्रम दूर हो गये । विचारणीय बात है कि जयसेन स्वामी ने उन्हीं शास्त्रों की टीका की जिनकी टीका अमृतचन्द्र सूरी ने भी लिखी थी । लगता है जयसेन स्वामी की धारणा थी कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की मूल गाथाओ पर टीका लिखने को कोई आवश्यकता नहीं है बल्कि अमृतचन्द्र सूरी ने टीकाओं के माध्यम से मूल गाथाओं के अभिप्राय को पाठकों के लिए उलझा दिया है । उसे सुलझाने की विशेष आवश्यकता है । अमृतचन्द्र सूरी ने समयसार , पंचास्तिकाय, प्रवचनसार पर टीका, लिखीं इन्हीं तीन ग्रंथों पर जयसेन स्वामी ने भी तात्पर्यवृत्ति नाम की टाकी लिखी । अष्टपाहुड आदि

अन्य ग्रन्थो पर अमृतचन्द्र सूरी की टीका नहीं है तो उन पर जयसेन स्वामी ने भी टीका नहीं लिखी और जयसेन स्वामी न उन्हीं मुद्दों को विशेषरूप से उद्धत किया है जिनको अमृतचन्द्रसूरी ने छोड दिया था । आप ने टीका में बार बार प्रसंग समाप्त होने पर उल्लेख किया है कि कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा इतनी गाथायें लेना और अमृतचन्द्र सूरी के द्वारा इतनी बार-बार कुन्दकुन्द स्वामी का नाम लेने से सिद्ध होता है कि जयसेन स्वामी के समय में भी यह बात दृष्टिगोचर हो गयी थी । अमृतचन्द्र सूरी द्वारा कुन्दकुन्द का नाम नहीं लिया जाना किसी विशेष रहस्य की तरफ संकेत करता है और बार-बार यह कहना कि कुन्दकुन्द स्वामी के अनुसार इतनी गाथाएँ लेना, यह बात भी इस ओर संकेत करती है कि अमृतचन्द्रसूरी ने कुछ गाथाँए छोड दी हैं जिन्हे जयसेन स्वामी को उजागर करना पडा ओर कुन्दकुन्द स्वामी की स्त्री-मुक्ति-निषेध आदि सम्बन्धी गाथाओं को छोडने का रहस्य दृष्टिगोचर होता है-जो विद्वानो द्वारा विचारणीय है ।

इस प्रकार यदि जिनसेन स्वामी टीका नहीं लिखते तो उपर्यक्त ग्रन्थ कुन्दकुन्द स्वामी के हैं ये निर्णय आज करना कठिन हो जाता । ऐसी उपकारी टीका जो जनमानस के बीच पठनपाठन हेतु लाने के लिए आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने उसकी हिन्दी टीका की है । समयसार पर पूर्व मे की कई टीकाए लिखी गई लेकिन हिन्दी मे विशेषार्थ देकर गाथा के मूल अर्थ का लोप कर दिया है । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने कुन्दकुन्द की गाथा का अभिप्राय जयसेन स्वामी के अनुसार प्रासंगिक कर उलझे हुए प्रसगो को हिन्दी टीका मे सुलझाने का प्रयास किया है । विशेषार्थ के माध्यम से आज वर्तमान के प्रश्नों के उत्तर भी दिये हैं ।

अभी दूसरा लेख प्रवचनसार पर भी बाँचा । इस ग्रथ पर भी उपर्युक्त दोनो आचार्यों की टीकाएँ मिलती हैं और इन दोनो टीकाओ को आधार बनाकर कई विद्वानो ने हिन्दी टीकाये की हैं लेकिन उन हिन्दी टीकाओ मे विशेषार्थ के माध्यम से पाठकों को कुन्दकुन्द स्वामी के हृदय मे पृथक् कर दिया है । हालाकि कुछ विद्वानो ने समीचीन भाव भी प्रकट किये लेकिन पूर्णरूप से स्पष्ट करने का साहस नहीं कर पाये लेकिन आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने पूर्ण साहस के साथ कहा कि घडा बनने की चर्चा एव घडे के गुणो का वर्णन तो सब लोग कर लेते हैं और सुन लेते हैं लेकिन जब तक घडा बनाने के साधनो पर चर्चा और चिन्तन नहीं होगा तब तक घडे के शीतल जल को पीने का प्रयास करने का अर्थ बध्या के पुत्र की शादी के समान है ।

ज्ञानसागर महाराज ने प्रवचनसार की समस्त गाथाओ को युगल बनाकर साराशरूप मे अर्थ प्रतिपादित किया है । हालाकि साराश में भी कुछ ऐसे विषय विशेषरूप मे दिए हैं जो विषय विद्वानो के लिए विचारणीय हैं ।

कीचड़ में गिराना अधर्म और कीचड़ से उठाना धर्म

प्रवचन - मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

आज गोष्ठी का चतुर्थसत्र चल रहा है । आज जो आलेख बाँचे गये उन मे कुछ मुख्य तथ्य आलेखकर्ताओ ने समाज के सामने रखे । इसी के अन्तर्गत एक प्रश्न आया था कि जैन धर्म क्या जाति विशेष का धर्म है अथवा किसी वर्ण विशेष का धर्म है ओर इसी के अन्तर्गत एक प्रश्न और आया था कि जैन धर्म मे पापियो के लिए स्थान है या नहीं ? बड़ी ज्वलन्त समस्याओ से भरे हुए हैं ये प्रश्न आज के समय में । इन प्रश्नो को सुनते ही मुझे आचार्य ज्ञानसागर महाराज का वह कथन ध्यान मे आ रहा है कि पचम काल मे यह धर्म क्षत्रियो के पास न रहकर बनियो के पास चला गया है । इसलिए ऐसे प्रश्न होने लग गये अन्यथा जैन धर्म ऐसा महान पवित्र और विशाल धर्म है जिसमे प्राणिमात्र को स्थान दिया जाता है । जैन धर्म का तो मुख्य नारा भी यही है कि ''जैन धर्म किसका है- जो माने उसका है ।'' इस नारे से समस्त प्रश्नों का हल स्वत हो जाता है लेकिन फिर भी रूढिवादी परम्पराओ ओर धर्म को अपनी बपौती माननेवालो को इतने मात्र से सन्तुष्टि नहीं होती है । आज का धर्म तो जाति विशेष का धर्म हो गया लेकिन जैन धर्म मे जाति विशेष को कोई स्थान नहीं है । इसलिए पहला प्रश्न था कि जैन धर्म कोई जाति विशेष का है क्या ? इसका उत्तर यह है कि जैन कोई जाति नहीं है तो फिर जैन धर्म जाति विशेष का कैसे हो सकता है ? जैन शब्द गुणवाचक है, किसी भी जाति व वर्ण का व्यक्ति जैन धर्म के सिद्धान्तो को अपनाने के बाद जैन कहला सकता है । फिर जैन मंदिरों में शूद्रों के लिए प्रवेश वर्जित आचार्य शान्तिसागरजी के समय मे क्यों किया गया था ? ध्यान रखना कि क्षुद्रों के लिए जैन धर्म मे प्रवेश वर्जित था, है और

रहेगा कोई विकल्प नहीं है । तो आप लोग प्रश्न उठा सकते हो कि फिर जैन धर्म प्राणिमात्र का धर्म नहीं है । सो यह बात कहना ठीक नहीं है । क्योंकि जैन धर्म तो प्राणिमात्र का धर्म है । इस बात को समझने के लिए पहले यह समझना होगा कि क्षुद्र कौन है, कौन नहीं है ? शास्त्रों में क्षुद्र उसे कहा गया जो भक्ष्य के विचार से रहित हो, नैतिक सदाचार से दूर हो एवम् हिंसात्मक पतित कार्य करता हो ।

जैन धर्म जाति-कुल से, वर्ण-व्यवस्था से क्षुद्र नहीं मानता बल्कि कर्म एवं आचार पद्धति से वर्ण व्यवस्था को अंगीकार करता है । जिसके कर्म नीच हैं वह क्षुद्र है, जिसके कर्म उच्च हैं, वह उच्च है । यदि क्षुद्र कुल में जन्म हुआ व्यक्ति जैन धर्म के समस्त आचार-विचारों को ग्रहण कर लेता है एवम् क्षुद्र कुल-परम्परा से चले आये हुए निन्द कार्य त्याग कर देता है तो जैन धर्म कहता है कि वह क्षुल्लक-पद धारण कर सकता है । अत जैन धर्म प्राणिमात्र का धर्म होते हुए भी आचार-पद्धति को विशेष ध्यान में रखते हुए जीवों को स्थान देता है।

करणानुयोग की पद्धति के अनुसार तो मातग भी सम्यक्दर्शन का अधिकारी है क्यों कि वहां कहा गया कि संज्ञी पंचेन्द्रिय मनवाला भी सम्यक् दर्शन प्राप्त कर सकेगा और सम्यक्दर्शन की उत्पत्ति के जो कारण हैं वे कारण संज्ञी पचेन्द्रिय के लिए ही निमित्तभूत हैं, यहाँ पर जाति विशेष को कोई स्थान नहीं है । सम्यक्दर्शन के कारणों में जिनबिम्ब-दर्शन भी आया है, उस जिनबिम्ब-दर्शन का अधिकारी भी सज्ञी पचेन्द्रिय ही है । लेकिन सम्यक् दर्शन में जिनबिम्ब के दर्शन उसी के लिए निमित्त बनेंगे जिसके आचार-विचार शुद्ध हों इसलिए जैन धर्म को जाति विशेष का धर्म न कहकर के शुद्ध आचार-विचारवालों का धर्म कहा है चाहे वह किसी भी जाति-वर्ण का व्यक्ति क्यों न हो ।

दूसरा प्रश्न है-पापियो को जैन धर्म मे स्थान है या नहीं ? इसका सीधा सा उत्तर है कि जैन धर्म जैसा पवित्र धर्म पापियो के लिए हो ही नहीं सकता और पापी जीव कभी भी धर्म ग्रहण नहीं कर सकता । अर्थात् जैन धर्म में पापियों के लिए स्थान नहीं है । किन्तु पाप के त्यागने वाले के लिए स्थान है । इस रहस्य को बहुत सावधानी से समझना बन्धुओ, कोई पापी कहे कि मैं पाप करता जाऊँ फिर भी मैं धर्मात्मा कहलाऊँ यह बात उचित नहीं है लेकिन किसी जीव ने पाप कर लिया है और वह उस पाप को छोडकर धर्म-मार्ग में आना चाहता है तो ध्यान रखना ऐसे जीवों के लिए तो जैन धर्म का मूल सिद्धान्त पाप का समर्थन करना नहीं है पर यदि पापी पाप से उठना चाहता है तो उस जीव के घृणा नहीं करना अर्थात् किसी जीव को कीचड मे गिराना अथवा गिरने का सर्थन करना अधर्म है और यदि कोई कीचड में गिर गया हो तो उसे कीचड में से नहीं उठाना और भी बड़ा अधर्म है । कितना उदार है हमारा यह जैन धर्म । यह पाप का समर्थन करता नही पर पापियो के उद्धार के लिए हमेशा तत्पर रहता है । अजन चोर जैसे पापियों को भी पाप त्यागने के बाद शरण दी । जैन धर्म अतीत के पापों को नहीं देखता बल्कि वर्तमान के शुद्ध आचरण पद्धति पर ध्यान देता है। अतीत की तरफ देखा जाए तो प्रत्येक प्राणी का इतिहास काला है । आज समाज में बहुत कुरीतिया चल रही हैं कि किसी व्यक्ति से पूर्व में पाप हुआ या उसके पूर्वजों ने कोई पाप किया तो पाप का दण्ड ये समाज उनकी सतान को देती है, यह कितना बड़ा अनर्थ है । जबकि जैन धर्म में तो अपने-अपने पाप के फल का भोक्ता स्वयं ही है दूसरा नहीं ।

आज जितने लोग धर्म के ठेकेदार बने फिरते हैं यदि इनके परिवार की अथवा इनके आस-पास की, इनके सम्बन्धियों की गवेषणा की जाए तो ना जाने कितने गुप्त पापों में लिप्त पाये जाएंगे जो किसी गरीब व्यक्ति द्वारा पाप हो जाने पर एवं उसके द्वारा भविष्य में नहीं करने का संकल्प लेने पर भी उसके लिए धर्म का दरवाजा नहीं खोलते । उन लोगो की दलील होती है कि यदि हम पापियों को उठाऐंगे तो पापियों की संख्या बढ़ जाएगी क्योंकि पापी लोग समझेंगे-कितना ही पाप कर लो जैन धर्म प्रायश्चित कर लेने के पश्चात् शुद्ध कर देता है । पर ऐसी दलील युक्तियुक्त नहीं है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने बस चलते पापरूपी कीचड में नहीं गिरना चाहता। गिरने में कोई न कोई मजबूरी होती है । इसलिए उसे पुनः सम्भलने का मौका मिलना चाहिए । हां, यदि वह यह कहता है कि मैंने तो पाप किया ही नहीं तो उसका कहना गलत है, ऐसे व्यक्ति को धर्म में स्थान नहीं मिलना चाहिए ।

आपका समय हो रहा है अत. मैं यही कहना है कि जैन धर्म एकान्तवादी धर्म नहीं है इसलिए कब, कहां, क्यों, कैसे कार्य किया गया है इस विवक्षा को देखकर ही उसे हेय-उपादेय कहना चाहिए अर्थात् जैन धर्म को जाति-वर्णरूपी कोढ़ से ग्रस्त करके नहीं, जैन धर्म के मूल आचार-विचार पक्ष को प्रस्तुत करके उसके दरवाजे खुले रखने चाहिए और कोई पापी जीव प्रायश्चित लेकर, पापों को त्याग कर धर्म-मार्ग पर आना चाहता है तो

उसे गले लगाना चाहिए । लोक व्यवहार मे देखा जाता है कि कोई व्यक्ति कीचड मे गिरना और गिराना अच्छा नहीं मानते लेकिन कोई कीचड में गिर जाए, स्वय उठने में समर्थ न हो और लोग-बाग किनारे बैठकर तमाशा देखते रहें तो भी अच्छा नहीं माना जाता । इन सब बातो पर विचार करने के बाद मेरा निर्णय यही है कि कभी किसी को कीचड मे नहीं गिराना, कीचड में गिरने की सलाह नहीं देना और यदि कीचड में गिर गया हो और तडप रहा हो तो उस कीचड से उठाकर नहला धुलाकर अपने साथ ले लेना चाहिए । यही अभिप्राय आचार्य ज्ञानसागर महाराज का था और यही अभिप्राय महावीर का था तथा यही अभिप्राय हमारे सभी भारतीय धर्मों का है ।

जितना जाना उतना कहा नहीं

प्रवचन-मुनि सुधासागर जी महाराज

आज गोष्ठी का पाचवा सत्र हे । इसमें एक आलेख एक विचित्र कथा के सम्बन्ध में बाचा गया । जो धार्मिक वेश धारण करके दुनिया के लिए आदरणीय पद प्राप्त करता है लेकिन अपने से वह बगुला बना रहता है (परिणामो से बगुला बना रहता है) ।

वह रत्नो के लोभ के कारण जीवनभर की साधना एव यश-प्रतिष्ठा पानी में मिला देता हे इसलिए लाभ को पाप का बाप कहा है शास्त्रकारो ने । लोभ के कारण व्यक्ति अपने सगे-सम्बन्धियो की भी हत्या कर देता ओर अपने प्राण भी सकट मे डाल देता है इस कथा-प्रसग मे नारी का चातुर्य भी प्रदर्शित किया गया ह कि कभी-कभी नारी पुरुष से भी चतुर निकलती है और दूसरा इसी प्रसग के उपसहार में यह भी बताया है कि दुर्जन व्यक्ति सर्प के समान है, उसे कितना ही ताडित करो लेकिन मौका पाते ही वह जहर ही उगलेगा उसी प्रकार सत्यघोष दण्डित होने के बाद राजा से बैर बाध लेता है और भव-भव तक शत्रु बनकर बदला लेता रहता है। इम लेख मे यह भी चर्चा आई कि काव्य की परम्परा क्यो आवश्यक है ? काव्य लिखने में, पढने में, समझने मे कठिनता भी महसूस हाती है इसलिए काव्य के स्थान पर गद्य को महत्ता देनी चाहिए । इसका उत्तर बहुत अच्छी तरह से ध्यान मे आ रहा है, धवलाकार कहते हैं कि अर्थ अनन्त है, शब्द सीमित हे, इसलिए काव्य के माध्यम मे शब्दों का कम प्रयोग करके श्लेष आदि अलकारो के माध्यम से बहुत अर्थ ले लिया जाता है यह गद्य में सभव नहीं है । जैन दर्शन के अनुसार भगवान की अर्थरूप वाणी को गणधर परमेष्ठी ने पद्यरूप मे ही ग्रंथित किया है । पद्यरूप में कहने का अभिप्राय उनका यह था कि मै पूर्ण कहने मे समर्थ नहीं हूँ लेकिन पद्यात्मक प्रयोग करके पूर्ण अर्थ को तो प्रकट कर सकता हूँ । अल्प-कथन से पूर्णग्रहण करना ही पडता है, भगवान् जितना जानते हैं उसका अनंतवाँ भाग ही कह पाते हैं, जितना भगवान् कहते हैं उसका अनंतवा भाग ही गणधर परमेष्ठी पकड पाते हैं ओर जितना गणधर परमेष्ठी सुन पाते हैं उसका असंख्यात अथवा सख्यातवा भाग ही शब्दरूप बन पाता है ऐसी स्थिति में कितना अर्थरूप छूट गया हे, उस अर्थ को व्यक्ति करने के लिए काव्य की विद्या अपनाई गई । यहाँ यह चर्चा आई कि समुद्रदत्त चरित्र महाकाव्य के अन्तर्गत आ सकता है या नहीं ? तो सर्गादि की सामान्य विवक्षा मे देखें तो यह महाकाव्य को प्राप्त होता है । महाकाव्य के बहुतायत लक्षण समुद्रदत्तचरित्र मे विद्यमान हैं लेकिन फिर भी जयोदय व वीरोदय जैसे प्रौढ महाकाव्य की बराबरी नहीं कर सकता है लेकिन वर्तमान विवक्षा में देखते हैं तो इस काव्य से निम्न स्तर के काव्य भी आज महाकाव्य की सज्ञा पा रहे हैं । ऐसी दृष्टि से तो समुद्रदत्तचरित्र कहीं अधिक अच्छा है तथा इसे महाकाव्य कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं । आचार्य ज्ञानसागर महाराज के चार महाकाव्य हैं- जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, और भद्रोदय (समुद्रदत्तचरित्र) । समस्थ जैन-अजैन विद्वानो से मेरा कहना है कि ज्ञानसागर महाराज के इन चारों महाकाव्यों का समादर कर इन्हें शिरोधार्य करना चाहिए और नवनिर्मित विद्वानो को इनके पठन-पाठन के लिए प्रेरित करना चाहिए। यहाँ मडन मिश्र जैसे विद्वान बैठे हैं, इनको मैं विशेषरूप से निर्देशित करना चाहता हूँ कि सस्कृत महाविद्यालयो के कोर्स में एवं पी एच डी करने वाले छात्रो के लिए इन महाकाव्यो के गर्भित विषय की तरफ निर्देशित करना चाहिए तभी मुझे प्रसन्नता होगी कि आज भी कॉलेजो मे, विद्वानो में निष्पक्षता है ।

।। भगवान महावीर की जय ।।

एक-एक पुस्तक एक-एक रत्न है

प्रवचन मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

आज गोष्ठी का अन्तिम दिन है इसमें शेष लेखो का वाचन अति तीव्रगति से किया गया । भक्ति-सग्रह का एक ग्रथ भी आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने लिखा । आचार्य पूज्यपाद स्वामी और ज्ञानसागर जी महाराज के बाद किसी भी व्यक्ति ने संस्कृत में भक्तियो की रचना नहीं की । इन भक्तियों में पूज्यपाद स्वामी के भावों को बहुतायत से स्वीकार किया है लेकिन कुछ विशेष वर्णन भी किया गया है । हालांकि इस ग्रथ को अभी स्वयं मैंने भी पूर्णरूप से नहीं पढा इसलिए विशेषरूप से इस पर प्रकाश नहीं डाल सकूँगा ।

सम्यक्त्वसार शतक पर बडा महत्वपूर्ण लेख बाचा गया । इस ग्रथ में सम्यक् दर्शन के विषय को प्रासंगिक करते हुए वर्तमान स्वाध्यायी-बन्धुओं के बीच में जो विसवादित विषय है उनको भी बडे सरल और सहज ढग से प्रस्तुत किया गया है । जैसे-निमित्त और उपादान की प्रासगिकता को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि जितना महत्व उपादान का है उतना ही महत्व निमित्त का है । छ द्रव्यो का वर्णन, सात तत्वो में बध की विशेष व्यवस्था, काललब्धि आदि को भी बडे अच्छे ढग से इस ग्रथ मे दर्शाया गया है । द्रव्यलिगी मुनि को अधर्मात्मा कहते हुए अविरत सम्यक्दृष्टि को धर्मात्मा कहा है । इससे लेखक की गुणग्राहिता एव गुण-प्रियता प्रकट होती है ।

आत्माभिमुखी वृतिवाले के लिए तीन कषायो का अभाव हाना नितान्त आवश्यक है-लेखक ने ऐसा भाव व्यक्त किया है। इसलिए वर्तमान में कषाय की एक चौकडी के अभाव मे जो आत्मानुभव मानते हैं उन्हे विचार करने के लिए मौका दिया है । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने कहा है कि शुद्ध भाव ही भेद विज्ञान है जो अप्रमत्त भाव के स्थान से नीचे नहीं होता । शुद्धोपयोग की भूमिका मे आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने आचार्य वीरसेन स्वामी एव आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का अनुकरण करते हुए कहा कि रागांश का जब तक सद्भाव है तब तक शुद्धोपयोग संभव नहीं । और यह भी कहा है कि चारित्रमोहनीय के कारण सम्यक्दर्शन में हीनाधिकता होती रहती है । पुलाक आदि मुनियों का निरूपण भी आचार्य महाराज ने किया है । समय की कमी के कारण इस ग्रथ की विशेषताओ का हम उल्लेख नहीं हो तो इस ग्रथ को पढने के बाद मिथ्याशकाओ का निराकरण अवश्य ही हो जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की एक-एक पुस्तक एक-एक रत्न है। इन रत्नो की कीमत आकनी चाहिए । लेकिन क्या करे । हमारे समाज में बडे-बडे सरस्वती पुत्र हैं लेकिन वे उनके शास्त्रो को प्रकाशितकर समाज के बीच में नहीं ला रहे हैं, यह बडे खेद की बात है ।

आचार्य श्री के ग्रथो पर शोध करने वाले छात्रो के सामने सबसे बडी समस्या यह है कि उन्हें आचार्य ज्ञानसागर महाराज का सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाता । जो थोड़ा बहुत उपलब्ध होता भी है तो वह एक स्थान से न मिलने के कारण उन्हें उसके अध्ययन से वचित रहना पडता है । श्रीमानो और धीमानों की सगोष्ठी को मैं आदेश तो नहीं लेकिन उपदेश तो दे सकता हूँ कि निकट भविष्य में आचार्य ज्ञानसागर जी के साहित्य को एक स्थान मे प्रकाशित कर दिया जाये तो उन सरस्वती-पुत्र ने ये शास्त्र लिखकर हम पर जो उपकार किया है उसका कुछ अश तो हम उन ग्रंथों को प्रकाशित कर प्राप्त कर सकते हैं । साधु तो अपनी भावना एव वचन वर्गणाओ को ही प्रदर्शित कर सकता है उसे कार्यरूप देना गृहस्थो का ही काम है ।

हित-सम्पादक नामक ग्रथ पर भी एक संक्षिप्त लेख बांचा गया । यह एक अप्रकाशित ग्रंथ है। इस ग्रंथ की मूल पांडुलिपी (हस्तलिखित) को मैंने थोड़ा सा देखा था । बड़ा क्रान्तिकारी ग्रंथ है, इस ग्रथ में रूढिवादी और क्रियाकाण्डियों को सम्यक् मार्ग-दर्शन दिया गया है । जब यह ग्रथ प्रकाशित होकर समाज के बीच में आयेगा तो क्रियाकाण्डी और रूढ़िवादी व्यक्ति क्षुब्ध होंगे और जो जैन दर्शन के मूल को समझनेवाले होगें वे आनन्दित होंगे ।

आज तत्वार्थ सूत्र की टीका पर भी एक लेख बांचा गया । इस हिन्दी टीका मे षटखंडागम एवं वेद-वेदांगों को उद्धत करके इस ग्रंथ के सूत्रों के अभिप्राय को आचार्य ज्ञानसागर ने स्पष्ट किया है । और भी अन्य छोटे-छोटे लेख बांचे गये। लेकिन समायाभाव के कारण एव सुगम होने के कारण उनको प्रासगिक नहीं कर रहे हैं क्योंकि तीन घन्टों में बांचे गये लेखों के साराश एव समीक्षा के लिए 25-30 मिनिट ही तो शेष बचते हैं। तीन घण्टे में बाचे गये लेखो को 30 मिनिट में पूर्णरूप से समीक्षा करना कैसे संभव है ? अत. मैंने अति संक्षेप में मुख्य-मुख्य बिन्दुओं को यहाँ प्रासगिक करके प्रवचन का रूप दिया है । यहाँ विद्वानों के अलावा सामान्य जनता भी बैठी है जो इन लेखों का सारांश प्रवचन के रूप में सुनना चाहती है । इतने गहन विषयों को अल्प समय में प्रवचन का रूप देना कठिन तो होता है । ❑❑❑

दशलक्षण महापर्वराज पर्यूषण पर श्रावक-संस्कार शिविर

दिनांक 9.9.1994 से 18.9.1994 तक

एक सिंहावलोकन

लेखक श्री कैलाशचन्द पाटनी

अजमेर नगर का यह परम् सौभाग्य रहा कि इस वर्ष सन् 1994 मे ज्ञान-ध्यान-तप के सम्राट, प्रात स्मरणीय संत शिरोमणि आचार्य 108 श्री विद्यासागरजी महाराज के परम् शिष्य, तीर्थद्धारक आध्यात्मिक संत मुनि श्री सुधासागर जी महाराज वात्सल्य प्रेमी क्षुल्लक द्वय श्री गम्भीर सागरजी, क्षु श्री धैर्य सागरजी, स्नेह प्रेमी ब्रह्मचारी संजय जी का शुभ वर्षायोग सुसम्पन्न हो रहा है ।

परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज एव सघस्थ त्यागियो की मगलमयी प्रेरणा एव आशीर्वाद तथा उनके पावन सानिध्य में पावन धर्मस्थल "श्री सिद्धकूट चैत्यालय - सेठ साहब की नसिया अजमेर" के प्रागण में दिनाक 9-9-94 से 18-9-94 तक श्रावको को धर्म सयम के सस्कार सिखाने वाला दस दिवसीय "श्रावक सस्कार शिविर का आयोजन जैन सस्कृति के सर्वोत्कृष्ट पर्वराज पर्यूषण पर्व के पावन प्रसग पर आयोजित करने का अजमेर नगर की दिगम्बर जैन समाज को गोरव प्राप्त हुआ । ऐसा विशाल शिविर अजमेर ही नहीं वरन् उत्तरी भारत के जैन धर्म एव सस्कृति के इतिहास मे प्रथम बार आयोजित कर अजमेर नगर की दिगम्बर जैन समाज ने इस ओर अपना प्रथम स्थान अर्जित करने का गौरव प्राप्त किया ।

इस शिविर को आयोजित करने का निर्णय अगस्त 1994 के प्रथम सप्ताह में लिया गया । तदर्थ भारत के विभिन्न स्थानों से शिविरार्थियो को आमत्रित किया गया । शिविर की व्यवस्था हेतु यद्यपि पजीयन कराने की अंतिम तिथि दिनाक 31-8-1994 घोषित की गई थी किन्तु शिविरार्थियों की सुविधाओ एव उत्साह को देखते हुए शिविर में प्रविष्टि दिनांक 8-9-1994 तक चालू रखनी पड़ी । सभी क्षेत्रो से उत्साह जनक परिणाम आए । दिनांक 8-9-1994 की मध्य रात्रि तक शिवरार्थियों के आने का क्रम चलता रहा । दिनांक 9-9-1994 की प्रात तक शिविरार्थियों की सख्या 513 तक पहुँच गई ।

शिविरार्थियों के आवास, शिक्षण प्रशिक्षण के लिए तीन ग्रुप बनाए गए -

(1) आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप - 45 साल एव उससे ऊपर की आयु वालो के लिए ।
(2) आचार्य विद्यासागर ग्रुप - 30 साल से 45 साल की आयु वालों के लिए ।
(3) मुनि सुधासागर ग्रुप - 8 साल से 30 साल की आयु वालों के लिए ।

उक्त निर्धारित मापदण्ड के अनुसार आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप में 164 शिविरार्थी, आचार्य विद्यासागर ग्रुप में 185 शिविरार्थी तथा मुनि सुधासागर ग्रुप में 164 शिविरार्थियो की प्रविष्टि की गई ।

आवास व्यवस्था - शिवरार्थियो की आवास व्यवस्था श्री छोटा धड़ा नसियाँजी तथा सुप्रसिद्ध सेठ साहब के बंगले पर की गई । उक्त शिविरार्थियो में से आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप के शिविरार्थी छोटे धडे की नसियाँ जी स्थित "आचार्य धर्मसागर स्वाध्याय भवन" में तथा शेष दो ग्रुपो की आवास व्यवस्था सेठ साहब के बगले पर की गई ।

शिविर के सफल संचालन का भार बाल ब्रह्मचारी श्री अजित जी जैन "सौरई" को सौंपा गया जिनके निर्देशन में सभी शिविरार्थियों तथा अलग-अलग ग्रुप के शिवरार्थियो हेतु पाद्यक्रम निर्धारित किया गया तथा "संस्कार-

निधि" नाम की तीन पुस्तिकाओ का प्रकाशन करवाया गया । इन पुस्तिकाओं के प्रकाशन का आर्थिक भार श्रीमान् कपूरचन्दजी, मुकेशकुमारजी पाटनी ने वहन किया तथा उन्हीं के द्वारा दिनांक 9-9-1994 को विमोचन किया गया । इस उपलक्ष में आपने रु 11,111/- की राशि समिति को देने की स्वीकृति प्रदान की ।

सभी शिविरार्थियों की शिक्षण प्रशिक्षण व्यवस्था हेतु पृथक्-पृथक् विद्वत-जनों को शिक्षण का कार्य भार सौंपा गया । डॉ अजितकुमार जी जैन (प्राध्यापक सस्कृत विभाग-आगरा विश्वविद्यालय) ने आचार्य ज्ञानसागर ग्रुप, पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज ने आचार्य विद्यासागर ग्रुप तथा डाक्टर शीतलचन्दजी जैन (प्राचार्य संस्कृत महाविद्यालय जयपुर) ने मुनि सुधासागर ग्रुप को शिक्षण कराने की अनुकम्पा की ।

इस शिविर में 513 शिविरार्थियों ने अति उत्साहपूर्वक भाग लिया जिनमें लगभग 250 शिविरार्थी ललितपुर (उत्तरप्रदेश), 75 शिविरार्थी अशोक नगर तथा शेष शिविरार्थी अजमेर तथा समीपस्थ नगरो - मदनगंज किशनगढ़, नसीराबाद तथा अन्यग्रामों के थे । इन शिविरार्थियो में 11 वर्ष से 80 वर्ष की आयु के शिविरार्थी सम्मिलित हुए । इन शिविरार्थियो में सागर, जंरुआखेडा जैसीनगर, बेगमगंज, रायसेन, टीकमगढ, पलवल (हरियाणा) उदयपुर (राज) आदि स्थानो के भी सम्मिलित हुए ।

श्रावक-सस्कार शिविरार्थियो के लिए नियमावली

श्रावक संस्कार शिविर में सम्मिलित होने वाले सभी शिविरार्थियो के लिए दस दिन के लिए निम्नानुसार नियम घोषित किए गए -

१ दस दिन के लिये घर का पूर्णतया त्याग करना होगा -
२ चौबीस घंटे धोती दुपट्टा में रहना अनिवार्य होगा -
३ अपने पास पैसा अथवा सोने के आभूषण का त्याग रखना अर्थात धोती दुपट्टा पेन कापी पढने की धार्मिक पुस्तको के अलावा कोई सामग्री नहीं रखी जावेगी - बाहर के शिविरार्थीयों का पैसा आदि व अन्य सामान कमेटी के कार्यालय में जमा कराना जो दस दिन बाद सुरक्षित रुप से लौटा दिया जावेगा -
४ गृहस्थो से अथवा अपने परिवार जनो से मौनपूर्वक रहना होगा -
५ एलोपेथिक दवाईयो का त्याग रखना होगा -
६ गुरु भक्ति के बाद (रात्रि कक्षा को छोडकर) मौन धारण करना होगा (प्रार्थना भावना और कठस्थ के लिये उच्चारण कर सकते हो)
७ भोजन एक समय करना होगा - विशेष असमर्थ होने पर शाम को दूध पानी अथवा अल्पाहार ले सकते हो -
८ आहार के लिये मन्दिर से ही मौन लेकर जाना होगा और लौटकर मन्दिर में ही मौन खोलना होगा -
९ भोजन के लिये निमत्रण से सयोजक के कहे अनुसार निश्चित स्थान पर जाना होगा -
१० आहार में बिना इशारे के जो थाली में सामग्री परोसी जावे वह ग्रहण करनी होगी -
११ आहार को जाते समय रास्ते को देखते हुये चलेंगे - इधर उधर देखते हुये नहीं चलेंगे -
१२ सभी कार्यक्रमों में समय पर उपस्थित होना होगा -
१३. सभी कार्यक्रमों में दूसरी घंटी पर अवश्य उपस्थित होना होगा -
१४ दिन में एक बजे से २ बजे तक एवं रात्रि में १० बजे से प्रात ३.३० तक मौन से रहना होगा-
१५ स्नान व वस्त्र के धोने में किसी भी प्रकार के साबुन-सोडा आदि का प्रयोग नहीं किया जावेगा-
१६ उपरोक्त सारे कार्यक्रम नियमावली के अनुसार पालन करना होगा -
१७ उपरोक्त कार्यक्रमों का उल्लंघन करने पर उसे गुरु महाराज द्वारा उपवास आदि का प्रायश्चित स्वीकार करना होगा -
१८ उपरोक्त नियमों को व्यवस्थानुसार व्यवस्थापकों द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है और नया परिवर्तन करने की सूचना प्रतिदिन दे दी जावेगी -

१९ कुछ नियम प्रतिदिन पूज्य महाराज श्री एव ब्रह्मचारी जी द्वारा दिये जावेगे वे मान्य होंगे-
२० पूर्ण अनुशासन बनाये रखना होगा - अनुशासन भग करने पर उसे शिविर से बाहर किया जा सकता है -

सभी शिविरार्थियो ने पूर्णरुपेण अनुशासन मे रहकर उक्त नियमो का परिपूर्ण पालन कर शिविरो की परम्पराओ का सम्मान किया । एतदर्थ सभी शिविरार्थीगण कोटि-कोटि धन्यवाद के पात्र हैं ।

श्रावक सस्कार शिविर के दैनिक कार्यक्रम

इसी प्रकार श्रावक सस्कार शिविर मे भाग लेने वाले शिविरार्थियो हेतु निम्नानुसार दैनिक कार्यक्रम निर्धारित किया गया-

पहली घटी प्रात ३ ५० पर

पहली घटी प्रात ३ ५० पर जागकर उठते ही नौ बार णमोकार मत्र बोले -

दूसरी घंटी ३ ५५ पर तैयार होकर (प्रार्थना स्थल पर पहुँचना)

तीसरी घटी ४ बजे

तीसरी घटी पर प्रार्थना स्थल पर णमोकार मत्र सुप्रभात स्तोत्र एव णमोकार मत्र का जाप-

प्रात ४ ३० से शोच, स्नान एव शुद्ध धोती दुपट्टा पहन कर तैयार होना -

प्रात ५ ३० बजे पूज्य मुनि श्री के ध्यान स्थल पर पहुच कर ध्यान साधना करना
(सोनीजी की नसिया) -

प्रात ६ ३० बजे पूजन स्थल पर पहुच कर पूजन प्रारम्भ करना - प्रतिमा जी के अभिषेक मात्र ब्रह्मचारी जी करेगे और सभी शिविरार्थी अपने स्थान पर खडे हो कर एक दूसरे का हाथ लगा कर अभिषेक की क्रिया करेगे - पूजन विधि पूजन कराने वाले के अनुसार ही करनी होगी - अपनी ओर से कोई भी नई पूजन नहीं कर सकेगा -

प्रात ७ ४५ पर प्रवचन स्थल पर पहुच कर तत्वार्थ सूत्र का वाचन एव प्रवचन सुनने के लिये निर्धरित स्थान पर बेठना-

प्रात ९ ४५ पर सोनीजी की नसिया की छत पर पहुचना और वहाँ से गृहस्थ श्रावक के घर बताई हुई विधि के अनुसार आहार के लिये जाना - भोजन कर के सोनी जी की नसियां पर आना -

प्रात ११ ४५ पर सोनीजी की नसिया की छत पर पाडाल के नीचे सामायिक के लिये पहुचना-

मध्यान्ह १ बजे से २ बजे तक नसिया जी की ऊपर छत पर एव पहली मजिल की गेलेरी मे विश्राम करना -

मध्याह्न २ १५ बजे से कक्षा

कक्षा २ १५ सामान्य ज्ञान (भाग दो)
कक्षा ३ ०० द्रव्य-सग्रह (द्वितीय व तृतीय अधिकार) } पू मुनि श्री सुधासागरजी जी महाराज द्वारा

४ ३० बजे छोटे धडे की नसिया में जलपान ।

५ ३० बजे प्रतिक्रमण नसिया जी (सोनीजी की नसिया) की छत पर

६ १५ बजे भक्ति के लिये तैयार रहना - गुरु भक्ति गुरु स्तुति, सोनी जी की नसिया मे एव सायकालीन देव स्तुति के लिये छोटे धडे की नसिया मे जाना ।

६ ४५ बजे कक्षा - सामान्य ज्ञान भाग १ - सोनीजी की नसिया (ऊपर छत पर)

साय ८ बजे सामायिक - छोटे धडे की नसिया जी

रात्री ९ बजे - स्वय द्वारा (होम वर्क) पाठ आदि तैयार करना ।

रात्री ९ ४५ बजे - प्रार्थना - शयन-विश्राम ।

शिविरार्थियो का दैनिक कार्यक्रम प्रात 3 50 बजे पहली घटी के बजने के साथ ही प्रारम्भ हो जाता था । नौ बार णमोकार मत्र का जाप्य करने के साथ ही दूसरी घटी के बजने पर प्रार्थना स्थल पर प्रार्थना स्थल

पर णमोकार मंत्र, सुप्रभात स्तोत्र एवं णमोकार मंत्र का शिविरार्थी जाप्य करते थे'। इसके तत्पश्चात् प्रात 4 30 बजे से शौच, स्नान एव शुद्ध धोती दुपट्टा पहिन कर सेठ साहब की नसियाँ स्थित ध्यान स्थल, ध्यान साधना हेतु पहुँच जाते । उसके पश्चात् सम्पन्न होने वाले विभिन्न महत्वपूर्ण कार्यक्रमो का विवरण निम्नानुसार है -

(१) ध्यान साधना

सेठ साहब की नसियाँजी मे स्थित अयोध्या नगरी की छत पर ध्यान साधना का कार्यक्रम परम् पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज के पावन सानिध्य में नित्य प्रतिदिन प्रात ठीक 5.30 बजे से प्रारम्भ हो जाता था । जो एक घंटे तक चलता था।

अजमेर नगर के 92 फीट सबसे ऊँचे भवन की छत पर 513 श्वेत धोती दुपट्टा पहिने शिविरार्थीगण पक्तिबद्ध ध्यानस्थ पद्मासन मुद्रा में ब्राह्म मुहुर्त में परम् पूज्य 108 श्री सुधासागरजी महाराज के चरण सानिध्य में इस प्रकार शोभायमान होते थे मानो तीर्थकर भगवान् के समोवशरण मे लोकातिक देव भगवान् की दिव्य वाणी का पान कर रहे हो । तीर्थ तुल्य मनोहारी नसियाँजी के शीर्ष भाग पर परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज का प्रात कालीन सान्निध्य एव सदेश न केवल धवल धोती दुपट्टा धारण करने वाले शिविरार्थियो के लिए ही एक सुखद सदेश था वरन् सकल विश्व एव प्राणीमात्र को सत्य, अहिसा, करुणा, मेत्री का सदेश था जिसे प्रात कालीन सुगंधित मद-मद समीर सारे विश्व की दशो दिशाओं एव प्राणीमात्र तक पहुँचा रही थी । यह दृश्य बड़ा ही अलौकिक एव इस धार्मिक शिविर का एक महत्वपूर्ण भाग था । इस दृश्य में जिनको भी सम्मिलित होने अथवा देखने का सुअवसर प्राप्त हुआ, वे सभी भाग्यशाली थे ।

(२) जिनेन्द्र भगवान् की सामूहिक पूजा

शिविरार्थियो के लिए जिनेन्द्र भगवान् की सामूहिक पूजन की व्यवस्था श्री सिद्धकूट चैत्यालय - सेठ साहब की नसियाँ जी के गर्भगृह के ऊपर चारो ओर बारादरी पर की गई । चारों ओर टेन्ट और मेजे लगाई गई । पूजा सामग्री के धोने तथा नीचे से ऊपर पहुँचाने की व्यवस्था श्री जैन वीर दल के कार्यकर्ताओ द्वारा की गई । इस पूजन को सगीतमय बनाने का कार्य श्री दिगम्बर जैन सगीत मण्डल अजमेर द्वारा किया गया । पूजन जिनेन्द्र भगवान् के अभिषेक मे प्रारम्भ होती थी । पूजा का दृश्य किसी विशाल स्तर पर आयोजित होने वाले मण्डल विधान से कम नहीं था ।

(३) तत्त्वार्थ-सूत्र का वाचन एव पूज्य महाराज श्री का प्रवचन

परम् पूज्य मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज का दिनांक 16-7-1994 को अजमेर नगर में मागलिक पदार्पण हुआ तभी से सेठ साहब की नसियां जी में प्रात 8 बजे से 9.30 बजे तक अनवरत रूप से महाराज श्री के प्रवचनो का क्रम अनवरत रूप से मुनिराज श्री के विराजने तक चलता रहा । परम् पूज्य महाराज श्री के सारगर्भित, प्रभावक एवं हृदयस्पर्शी प्रवचनों का इतना जबरदस्त प्रभाव पडा कि न केवल दिगम्बर जैन समाज वरन् जैनेतर समाज तथा नगर के अनेक गणमान्य महानुभावो प्रवचनों का लाभ प्राप्त किया । प्रवचनो के प्रारम्भ होने के पूर्व से ही समस्त ज्ञान पिपासु अपने स्थान पर आकर बैठ जाते । नसियाँ जी के गर्भगृह तथा उसके चारों ओर के बरामदों, अयोध्यानगरी के नीचे का हाल तथा इसके पश्चिम की ओर खुली जगह, अयोध्यानगरी के ऊपर जाने की सीढियाँ, मुख्य नसियाँ जी की सीढ़ियाँ, मानस्तम्भ के चारों ओर सिंह द्वार तक तथा मुख्य नसियाँजी के पश्चिमी ओर खुली छत इस प्रकार खचाखच भर जाती थी कि पैर रखने को जगह नहीं बचती थी । प्रतिदिन दस हजार से अधिक श्रोताओं ने प्रवचन का लाभ लिया । श्री सिद्धकूट चैत्यालय टैम्पल ट्रस्ट की ओर से छह टी वी क्लोज सर्किट्स, सभी जगह बैठने हेतु दरियाँ तथा नसियाँजी के पश्चिमी ओर की छत पर शामियाना, माइक आदि की सुन्दरतम व्यवस्था की गई । ऐसा दृश्य पूर्व में कभी भी देखने को नहीं मिला । जो भी हो व्यवस्था इतनी अच्छे ढंग से की गई कि बरसात के समय भी किसी को किसी प्रकार की कठिनाई नहीं हुई।

ऐसा प्रवचन स्थल न केवल अजमेर वरन् उत्तरी भारत के किसी भी जिनालय मे उपलब्ध नहीं है । इसी स्थल पर पर्यूषण पर्व के दौरान तत्वार्थसूत्र का वाचन तथा मुनिराज श्री के दशलक्षण धर्म पर प्रवचन हुए ।

तत्वार्थसूत्र वाचन - अजमेर के इतिहास मे प्रथम बार उमास्वामी द्वारा विरचित जैनागम के प्राण, चारो अनुयोगो को गर्भित करने वाले ''तत्वार्थ सूत्रजी'' का अत्यत ही भक्ति पूर्वक प्रात 7 45 से 8 15 तक त्यागियों के श्रीमुख से वाचन हुआ।

पूज्य त्यागी वर्ग द्वारा अध्याय की पूर्णता पर विद्यमान सकल समाज एक स्वर व लय में ''उदक चंदन'' बोलकर जब पूर्ण अर्घ्य उच्चारण करने थे वह दृश्य देखते ही बनता था । परम् पूज्य महाराज श्री ने इन तत्तवार्थ सूत्र का महत्व दर्शाते हुए स्पष्ट उद्घोष किया कि अगर आप दिगम्बर जेन हैं तो आजीवन सदैव ही पर्वराज में इसी प्रकार तत्तवार्थ सूत्रजी का अवश्य ही वाचन कराकर अर्घ्य चढाने की परम्परा रखना चाहिए ।

श्रावक सस्कार शिविर के दौरान दस लक्षण धर्म पर मुनिराज श्री सुधासागर जी महाराज के सारगर्भित प्रवचन हुए । महाराज श्री के प्रवचनो से प्रभावित होकर दिनाक 14 9 94 को उत्तम सयम धर्म के दिवस पर उपस्थित विशाल जनसमूह ने निम्नांकित नियमो को जीवन भर पालन करने के व्रत लिए -

(1) रात्रि मे अन्न की वस्तु ग्रहण नहीं करेगे ।
(2) जीवन में नशे की वस्तु (गाजा, तम्बाकू, मद्यमास, भाग, बीडी, सिगरेट, गुटखा) का प्रयाग नहीं करेगें ।
(3) अण्डे मास शहद आदि अभक्ष्य वस्तुओ का सेवन नहीं करेगे ।
(4) न तो जुआ खेलेगे न लाटरी खरीदेगे न बेचेगे ।
(5) जिन टिकटो अथवा सिक्को पर अण्डे मछली आदि छपे हुए हैं ऐसे टिकटो एव सिक्को का उपयोग नहीं करेंगे ।
(6) समस्त प्रकार के ऐसे सौंदर्य प्रसाधन यथा लिपिस्टिक शेम्पू, क्रीम, पाउडर आदि वस्तुएँ जिसके कि निर्माण मे जीव हिंसा होती है, का प्रयाग नहीं करेगे ।
(7) चमडे के बेल्ट, जूते, बटवे जिसके बनाने मे जीव हिसा होती है, का प्रयोग नहीं करेगे ।

(४) शिविरार्थियों का आहार

शिविरार्थी श्रावको को बताई गई विधि के अनुसार आहार के लिए जाते थे । इस व्यवस्था के सुचारु रूप से सचालन हेतु दस-दस शिविरार्थियो का ग्रुप बनाया गया । अलग-अलग दिवसों पर अलग-अलग ग्रुप के शिविरार्थियो ने श्रावको के यहाँ आहार ग्रहण किया । जिन श्रावको के यहाँ शिविरार्थियो का आहार बनाया गया वे श्रावक धोती दुपटा पहिने नगे पाव अपने घर उन आर्वाटत शिविरार्थियो को अपने निवास स्थान ले जाते थे तथा पूरे शोधन के साथ शिविरार्थियो को आहार कराते थे। भाजन के समय शिविरार्थी मौन से भोजन ग्रहण करते थे। भोजन ग्रहण करने के पश्चात् श्रावक उन्हे वापिस सेठ साहब की नसियाँजी छोड़कर जाते थे । इस प्रकार सभी शिविरार्थियों की निर्-अन्तराय आहार व्यवस्था श्रावको के यहाँ चली । श्रावको मे शिविरार्थियों को आहार कराने की होड़ सी लगी रही ।

(५) शिक्षण कक्षाएँ

मध्याह्न 2 15 से 4 30 बजे प्रतिदिन शिविरार्थियो की सामूहिक कक्षा सेठ साहब की नसियाँ जी में पूजन स्थल पर हुई जिसमे परम् पूज्य श्री सुधासागर जी महाराज का सामान्य ज्ञान (भाग दो) तथा द्रव्य सग्रह (द्वितीय व तृतीय अधिकार) पर प्रवचन हुए । इसी समय विभिन्न शिविरार्थियों की शकाओं का समाधान भी महाराज श्री द्वारा किया गया ।

धैर्यसागर जी महाराज द्वारा पूजन स्थल पर एव मुनि सुधासागर ग्रुप की कक्षा डॉ शीतलचन्द जी जैन द्वारा अयोध्या नगरी की छत पर आयोजित की गई । इन कक्षाओ में सामान्य ज्ञान भाग एक का ज्ञान कराया गया।

सांध्यकालीन कक्षाएँ लगभग 8 बजे तक चलती थी । उसके पश्चात् निर्देशित कार्यक्रमानुसार शिविरार्थीगण अपने प्रवास स्थल पर पहुँच कर सामाजिक, पाठ्यक्रम की तैयारी, प्रार्थनादि एक विश्राम करते थे ।

(६) परीक्षा

शिविर में भाग लेने वाले शिविरार्थियों की पाठ्यक्रमानुसार दिनाक 17-9-94 को परीक्षा आयोजित की गई ।

(७) अन्य धर्म सभाएँ एव कार्यक्रम

शिविरार्थियो के लिए उक्त कार्यक्रमो के साथ-साथ दशलक्षण पर्व मे सभी श्रावकों के लिए विभिन्न धर्म सभाओ एव कार्य क्रमो का आयोजन हुआ जिनमे श्रावक बन्धुओं ने बडे ही उत्साह से भाग लेकर पुण्यार्जन किया। दशलक्षण पर्व के दौरान मध्याह्न 3 बजे से पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज के तत्त्वार्थ सूत्र पर प्रवचन हुए। इसी प्रकार सायकाल 7 बजे से क्षुल्लक गम्भीर सागर जी महाराज के कथानको के आधार पर प्रवचन तथा 8 बजे से ब्रह्मचारी सजय जी के दशलक्षण धर्म पर प्रवचन हुए । आपके प्रवचन अत्यत हृदयस्पर्शी थे ।

उक्त कार्यक्रमों के पश्चात् रात्रि के 8.30 बजे से निम्नाकित सास्कृतिक कार्यक्रमों का श्री सिद्धकूट चैत्यालय टैम्पल ट्रस्ट की ओर से आयोजन किया गया -

दिनाक	वार	कार्यक्रम
9-9-94	शुक्रवार	वाद-विवाद प्रतियोगिता-धर्म प्रभावना धन/ज्ञान से
10-9-94	शनिवार	भक्तामर स्तोत्र प्रतियोगिता
11-9-94	रविवार	क्विज प्रतियोगिता (महिला वर्ग)
12-9-94	सोमवार	भजन सध्या
13-9-94	मगलवार	अन्त्याक्षरी प्रतियोगिता
14-9-94	बुधवार	कथा-कथन प्रतियोगिता
15-9-94	गुरुवार	खुला प्रश्न मंच
16-9-94	शुक्रवार	बाल कवि सम्मेलन
17-9-94	शनिवार	आशु-भाषण (तात्कालिक भाषण) प्रतियोगिता
		(1) युवा पीढ़ी किस ओर
		(2) पराधीन सपने हूँ सुख नाहीं
		(3) हम और हमारा कर्त्तव्य
18-9-94	रविवार	जैन क्वीज टाइम (पुरुष वर्ग)

उक्त सास्कृतिक कार्यक्रमो का आयोजन अजमेर नगर में प्रथम बार हुआ जिसमे समाज के सभी वर्गों ने अति उत्साह पूर्वक भाग लिया । नई-नई प्रतिभाओ एव कार्यकर्त्ताओं को उक्त कार्यक्रमो मे भाग लेने का स्वर्णिम अवसर प्राप्त हुआ । प्रतियोगिता में भाग लेने वालों को श्री सिद्धकूट चैत्यालय टैम्पल ट्रस्ट के प्रबधक श्रेष्टि श्री निर्मलचन्दजी सोनी ने पुरस्कृत कर सम्मानित किया । इन कार्यक्रमों के निर्देशक ब्र सजय जी एव संयोजक श्री सुमतिचन्दजी जैन के अथक प्रयास अत्यन्त ही सराहनीय थे ।

❑ ❑ ❑

वर्षायोग स्थापना समारोह

राकेशकुमार गदिया 'बंटी' अजमेर

दिनाक २१-७-१९९४

दिनाक 21 जुलाई सन् 1994 को प्रभात की मगलमयी बेला मे परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज क्षुल्लक द्वय श्री गम्भीर सागरजी, धैर्यसागरजी एव ब्रह्म सजयजी ने शास्त्रोक्त विधि से सेठ साहब की नसियाँ जी में माननीय श्री देवेन्द्र भूषणजी गुप्ता जिलाधीश एव ओकार सिह जी लखावत अध्यक्ष नगर सुधार न्यास अजमेर के आतिथ्य तथा करीबन 25 हजार नर-नारिया की उपस्थिति मे अजमेर मे चातुर्मास स्थापित किया ।

वर्षा योग स्थापना के कार्यक्रम का शुभारम्भ श्री भागचन्द गदिया ने झडा रोहण एव दीप प्रज्वलन द्वारा किया । उसके बाद श्री राजेन्द्रकुमार जी जैन ढिलवारी द्वारा मगल कलश स्थापना का कार्य किया गया । श्री चिरजीलालजी गदिया ने आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के चित्र का अनावरण किया तथा श्री भागचन्द जी पहाडिया ने मुनि श्री शास्त्र भेंट किया । इसी क्रम मे श्री प्रकाचन्द जी जैन ने क्षुल्लक गम्भीरसागर जी को श्री जोगी जैन ने क्षुल्लक धैर्यसागर जी का तथा श्री छीतरमलजी गगवाल ने ब्रह्मचारी सजय कुमार जी शास्त्र भेंट किए ।

उपस्थित विशाल जन समुदाय का सबोधित करते हुए जिलाधीश श्री देवेन्द्र भूषण जी गुप्ता ने आशा व्यक्त की कि अजमेर जिले का जनसमुदाय चातुर्मास के दौरान महाराज श्री के सानिध्य मे धर्म प्रवृत्ति की ओर अग्रसर होगा तथा अहिसा - नैतिकता के मार्ग का अनुसरण कर आत्मोन्नति के साथ-साथ देश की स्थिरता एव एकता को मजबूत करेगा । जिलाधीश महादय ने प्रशासन की तरफ से स्थानीय जैन समाज का आश्वासन दिया कि महाराज श्री का चातुर्मास निर्विघ्न सम्पन्न होगा ।

दिगम्बर जैन समाज की ओर से चातुर्मास निर्विघ्न सुसम्पन्न हो इसे हेतु सर्व श्री प्रमोदचन्दजी सोनी भागचन्द जी गदिया कपूरचन्द जी जैन एव कुमुदचन्द जी सोनी ने श्रीफल भेट किया ।

चातुर्मास स्थापना सम्बन्धी समस्त क्रियाएँ डॉ शीतलचन्द जी जैन द्वारा की गई । इस अवसर पर डा साहब ने कहा कि अजमेर नगर मे यह चातुर्मास ऐतिहासिक होगा । चातुर्मास के दौरान आचार्य शातिसागर महाराज समाधि दिवस कवि सम्मेलन शाकाहार सम्मेलन तथा वीरोदय महाकाव्य पर सगोष्ठी आदि कार्यक्रम सुसम्पन्न होगे। अन्त मे मुनि श्री ने अपने मगल सदेश मे भी सभी श्रद्धालुओ को कहा कि भगवान् महावीर द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तो को स्वीकार व पालन करके न केवल हम बल्कि सारा विश्व सुख, शाति सतोष, प्रेम व भाई चारे का जीवन यापन कर सकता है ।

❑ ❑ ❑

इतना अवश्य जाने कि

यदि तू अधिक जाने तो इतना अवश्य जान कि
जैसी तेरी आत्मा है, वैसी ही दूसरे की भी है ।
जो बात तुझे बुरी लगती है, वह दूसरे को भी वैसी
ही लगती है ।

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

का त्रिदिवसीय

द्वादशम दीक्षा जयंती महोत्सव

दिनांक २२.९.९४ से २४.९.९४

अशोक बज, अजमेर

परम् पूज्य 108 श्री सुधासागर जी महाराज का त्रिदिवसीय द्वादश दीक्षा समारोह दिनांक 22 9-94 को बडा धडा नसियाँजी के विशाल प्रागण मे विशाल सुसज्जित खचाखच भरे हुए मंडप में श्रीमान् मदनलालजी गोधा बम्बई की अध्यक्षता मे मनाया गया। विशिष्ट अतिथि श्रेष्ठी रत्न श्री निर्मलकुमार सेठी (अध्यक्ष भारतवर्षीय दिगम्बर जेन महासभा) तथा समाज रत्न दानवीर श्रेष्ठी श्री शिखरचन्द जी पहाडिया बम्बई थे । आमत्रित मुख्य अतिथियो मे सर्व श्री कवरी लाल जी बोहरा (कालू) एव शीतलचन्द जी जेन (आनारा वाले) थे । सभी अतिथियों का विधिवत सामाजिक सम्मान शाल ओढाकर तथा मुनि श्री के चित्र भेंटकर माल्यार्पण के साथ किया गया ।

मुनि श्री की पूजन श्री प्रेमचन्द जी केलाचन्द जी गगवाल ने की । महासभा शताब्दी समारोह के कोषाध्यक्ष कुचामन निवासी श्री शिखरचन्द पहाडिया (बम्बई) भी इस अवसर पर उपस्थित थे । समाज की ओर से श्री भागचन्द गदिया ने शाल ओढाकर उनका अभिनन्दन किया । श्री पहाडिया ने आचार्य विद्यासागर जी के चित्र का भी अनावरण किया ।

शताब्दी समारोह ध्रुव फड व पाली जिला प्रकोष्ठ के अध्यक्ष आनन्दपुर कालू निवासी श्री कवरी लाल बोहरा का भी इस अवसर पर मैसर्स किरण बैटरी के सचालक श्री ज्ञानचन्द जैन ने माल्यार्पण कर स्वागत किया। श्री नवीन सौगानी के हाथो मुनि श्री सुधासागर के चित्र का अनावरण कार्य सम्पन्न हुआ । 'सल्लेखना दर्शन' पुस्तक का विमोचन बडा धडा पचायत के अध्यक्ष श्री विनय सोगानी द्वारा किया गया ।

श्री निर्मलचन्द जी सानी ने भी मुनि दीक्षा पर अपने विचार व्यक्त किये । एडवोकेट श्री कपूरचन्द जैन ने युवा कवि श्री पकज को व ललितपुर के मुन्नालाल शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य को श्री निहालचन्द जैन व कैलाशचन्द पाटनी ने माल्यार्पण कर शाल ओढाया ।

श्री नवीनकुमार जैन ने मुनि के चरणों में विनयांजलि गीत प्रस्तुत किया जिसकी अपार जन समूह ने मुक्त कंठ से प्रशसा व्यक्त की । इसी क्रम मे श्री नवरतमल पाटनी, ललितपुर के श्री पकज, अशोक नगर के विजय कुमार ने कविता के रूप मे अपने भाव व्यक्त किये जिन्हे सुनकर उपस्थित समूह ने करतल ध्वनि से उनका स्वागत किया । प्रोफेसर सुशील पाटनी ने भी मुनि श्री के प्रति अपने उदगार भजन के माध्यम से प्रस्तुत किए । इस अवसर पर श्री भागचन्दजी टीकमचन्दजी गदिया ने मुनि श्री की आरती की । समारोह का सचालन श्री शातिलालजी बडजात्या ने किया ।

इस अवसर पर विशिष्ट अतिथि के रूप में उपस्थित हुये भारत व दि जैन महासभा के केन्द्रीय अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार सेठी ने अपने सम्बोधन में दि जैन महासभा के शताब्दी समारोह के आयोजन मे अवगत कराया और कहा कि इस अवसर को अविस्मरणीय बनाने के लिए महासभा के चारित्र रथ के संचालन की योजना को क्रियान्वित करने का मानस बनाया है और इसके लिये अजमेर से वे इसका शुभारम्भ करना चाहते हैं ।

श्री सेठी ने कहा कि चारित्र रथ का उद्देश्य जैसा कि इसका नाम है श्रावको व अन्य मे जीवन को सयमित बनाने की भावना का प्रसारण करना है । जैन व अजैन जो भी जैन संस्कारो से जुडेंगे, त्याग करेगे उन्हें 'जैन वीर' की उपाधि से विभूषित किया जाएगा ।

श्री सेठी ने अवगत कराया कि महासभा के सदस्यो की ऐसी भावना है कि स्व सेठ श्री भागचन्द सोनी का महासभा को अनवरत सहयोग मिला, उन्हीं की नगरी जहाँ मुनि सुधासागर जी विराज रहे हैं, के मार्ग निर्देशन में रथ का मॉडल व उसके संचालन की रूपरेखा का निर्माण हो । समूचे भारत में रथ के द्वारा चारित्र की महिमा का प्रमार किया जाएगा । इस रथ के द्वारा राशि सकलित करने का कोई प्रयोजन नहीं है ।

ब्रह्मचारी श्री सजय जी द्वारा भी मुनि श्री के सम्मान मे विनयाजलि के दो शब्द व्यक्त किये गये ।

क्षुल्लक श्री धैर्यसागरजी ने अपनी भावाजलि में कहा कि मुनि श्री सुधासागरजी के गुणो की व्याख्या को दिनो में नहीं बाधा जा सकता सयमधारी के गुणो का गुणगान तो केवली भगवान् ही कर सकते हैं । इस मुद्रा में कितना आनन्द है यह तो मुनि श्री ही अवगत करवा सकते हैं ।

जबसे आपने यह मुद्रा धारण की है प्रतिदिन ही आप का दीक्षा दिवम है ।

सघस्थ क्षुल्लक श्री गभीरमागर ने दीक्षा दिवस पर अपने भाव इस प्रकार व्यक्त किये - 'सयम सयम सब काई कहे सयम धरे ना काय जो नर सयम को धरे सो नर से नारायण होय ।' आपने आगे कहा कि 'सयम से जिसकी रिश्तेदारी असयम से क्यो बात करेगा, फूलो से जिसकी साझेदारी काटा से क्यो बात करेगा ।'

मुनि श्री सुधासागर जी ने कहा कि गुरु कृपा के बिना कोई भी अपने जीवन मे इस मजिल तक नहीं पहुँच सकता जिसकी कि वह कामना करता है । गुरुवर श्री विद्यासगर की बदौलत ही उन्हे सम्यग् दर्शन की प्राप्ति हुई है और जीवन को मोक्ष मार्ग की ओर ले जाने का रास्ता आचार्य श्री विद्यासागर जी ने ही दिखाया था ।

आपने कहा कि आज का दिन गुरु कृपा का ही दिन है स्मरण आता है मुझे वह दिन जब मैंने मुनि दीक्षा ग्रहम की थी क्या परम् आलोकिक अनुभूति का दिन था, उम दिन के आनन्द का कोई पार नहीं । इस पचम काल की चकाचौंध मे ही मुझे यह दिन नमीब हुआ था जब में पूला नहीं समाया था । कई भवो मे कामना के बाद ऐसे सुखद समय की प्राप्ति होती है ।

आपने कहा कि गुरु वह शिल्पी है जो पत्थर मे मूर्ति के स्वरुप की अनुभूति करता है । गुरुवर आचार्य श्री विद्यासागरजी भी एक ऐसे ही दर्पण हैं जो जैमे भाव लेकर उनके सामने जाता है उन्हे वे वैसा ही दिखाई देते हैं । न जाने उन्होंने मुझ मे क्या देखा और पत्थर का मूर्ति का स्वरुप प्रदान कर जो आकार दिया । इससे निराकार के भी मुझे दर्शन हो गये ।

आचार्य विद्यासागरजी कहते हैं कि दिगम्बरत्व स्वय अतिशय है और जो दीक्षा लेता है वह तीर्थ बन जाता है ।

आपने कहा कि गुरु तो बीजारोपण किया करते है कैमी फमल उगाते हैं यह तो दीक्षार्थी जाने । समूचे भारत मे दिगम्बरत्व का डका पूजाने मे, दिगम्बर मुद्राओ के दर्शन का लाभ उपलब्ध करवाने मे आचार्य श्री विद्यासागरजी की बहुत बडी देन है ।

शाकाहार ही मनुष्य का आहार है

प्रस्तुति पवन गदिया

मुनि श्री दीक्षा दिवस के त्रिदिवसीय आयोजन के दूसरे दिन 23 सितम्बर को बडे धडे की नसियाँ के प्रागण मे 'शाकाहार' पर प्रवचन हुआ । मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने कहा कि शाकाहार ही मनुष्य का आहार है कोई भी जीव जन्म से व स्वभाव से मासाहारी नहीं होता लेकिन उसके बाद में डाले जाने वाले सस्कार ही उसे मासाहारी बनाते हैं ।

आपने कहा कि हमारे किसी धर्म में मांसाहार की बात नहीं कही गई, है लेकिन लोगों ने शास्त्रों में लिखी पक्तियों का गलत अर्थ लगाकर मांसहारी की प्रवृत्ति को बढ़ावा दिया है जो गलत है । जैन ब्राह्मण, वैष्णव तो मासाहारी कहलाते नहीं हैं लेकिन क्षत्रियों के लिये भी किसी शास्त्र में मासाहार की बात नहीं कही गई है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम जो सभी धर्मों के आदर्श है, ने क्षत्रिय होते हुये भी कभी मांसाहार नहीं किया । मांसाहार किसी भी दृष्टि से मनुष्य का आहार नहीं है, जो मांसाहारी होते हैं, वे भी पूर्ण रुप से बिना शाकाहार के नहीं रह सकते । इस संसार में हर प्राणी मात्र को जीने का हक है, अपनी उदरपूर्ति के लिये किसी का वध करके भक्षण किया तो ऐसे व्यक्तियों को नरक में जाने से कोई नहीं रोक सकता तथा आने वाले भव में ऐसी ही यातना का उन्हें भी शिकार होना है । प्रकृति के विरुद्ध किया गया कोई भी कार्य फलदायक नहीं हो सकता, इसलिये आदर्श जीवन के लिये हमें भारतीय धर्मों के आदर्श पुरुषों के जीवन का अनुसरण करना चाहिये ।

कार्यक्रम का संयोजन प्रो श्री सुशील पाटनी द्वारा किया गया । इस अवसर पर छोटा धड़ा पंचायत के मंत्री श्री घीसूलाल पाटनी ने शाकाहार साहित्य को वितरित करने के अलावा छोटा धडा नया धड़ा नसियाँ में लगाई गई प्रदर्शनियाँ आम नागरिको के आकर्षक का केन्द्र बनी हुई हैं ।

शाकाहार प्रदर्शनी में जैन जागृति एव श्री वीर क्लब ललितपुर द्वारा सजीव झाकियों का प्रदर्शन किया । श्री नरेन्द्र कुमार जेन उर्फ छोटू पहलवान ललितपुर के हैरद अग्रेज कारनामे दिखाए गए जिससे यह ज्ञात हो सके कि शाकाहारी किस प्रकार अपने पौरुष एवं बल द्वारा संयमित ढंग से कार्यकलाप कर सकते हैं । श्री विद्यासागर परिषद् ललितपुर, अहिसा मानव कल्याण अजमेर एव श्री कैलाशचन्दजी चौधरी भीलवाडा द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में भी विशेष चित्रो का प्रदर्शन किया गया ।

❑ ❑ ❑

ज्ञानमूर्ति आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के
साहित्य का प्रकाशन

प्रस्तुति . कपूरचन्द जैन एडवोकेट

परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज समघ पदमपुरा अतिशय क्षेत्र पर विराजमान थे । वहीं पर डॉ शीतलचन्द जी जैन प्राचार्य सँस्कृत महाविद्यालय जयपुर का दर्शनार्थ पधारना हुआ । महाराज श्री से डॉ शीतलचन्द जी जैन ने ज्ञानमूर्ति परम् पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज द्वारा विरचित विभिन्न महाकाव्यों एवं रचनाओं के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की तथा साथ ही उन महाकाव्यो एवं रचनाओं से सम्बन्धित सगोष्ठी आयोजित किये जाने हेतु निवेदन किया ताकि ऐसे साहित्य मनीषी आचार्य तथा उनके द्वारा विरचित महाकाव्यों एवं रचनाओं का भारत के विभिन्न विद्वानो तथा जनसाधारण को जानकारी प्राप्त हो सके ।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की समाधि दिनांक 1-6-74 को नसीराबाद में हुई । अत आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज के 21 वें समाधि दिवस पर पूज्य आचार्य श्री के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अखिल भारतीय विद्वत गोष्ठी आयोजित की जावे । और यह गोष्ठी आचार्य श्री ज्ञान सागर जी महाराज के समाधि दिवस की पावन बेला मे ही आचार्य श्री के नसीराबाद स्थित समाधि स्थल में आयोजित किया जाना प्रस्तावित किया गया ।

नसीराबाद की दिगम्बर जैन समाज भी इसके लिये तैयार थी किन्तु विधि की विडम्बना कुछ ओर ही थी । राजस्थान का आधा भाग रेगिस्तान एव वन रहित है । परम् पूज्य सुधासागर जी महाराज एवं ससंघस्थ त्यागियों

का अब तक विहार मध्य प्रदेश एव उत्तर प्रदेश प्रान्तो मे ही रहा है जहाँ चारो ओर शस्य श्यामला भूमि तथा प्रकृति का उदात्त कृपा के कारण वातावरण सदैव अनुकूल ही रहता है । ऐसे प्रान्तो मे निकल कर सभी त्यागियो का जून माह की प्रचड गर्मी मे इस प्रान्त के लिये - विहार न केवल श्रावको वरन् श्रमणो के लिये एक दुष्कर कार्य हे । और यही कारण सघस्थ त्यागियो के नसीराबाद की ओर विहार करने मे बाधक रहा ।

पदमपुरा के समीपस्थ सागानेर की दिगम्बर जन समाज ऐसे पावन अवसर को अपने हाथ से नहीं जाने का मानस बनाकर मुनिराज श्री सुधा सागर जी एव सघस्थ त्यागियों से सागानेर विहार करने तथा वही पर ज्ञानमूर्ति आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज द्वारा विरचित महाकाव्यो एव विभिन्न रचनाओ पर आधारित विद्वत गोष्ठी दिनाक 9 जून से 14 जून 94 का आयोजित किये जाने हेतु निवेदन कर दिया ।

त्रिदिवसीय सगोष्ठी की फलश्रुति पूज्य आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज कृतित्व का मूल्याकन जैन जैनेतर मनीषियो द्वारा किया जाना बहुत बडी उपलब्धि थी । सगोष्ठी समापन की पावन बेला मे विद्वत जनो की सम्पन्न हुई सभा मे विद्वत जना ने आचार्य ज्ञान सागर जी महाराज के द्वारा रचित सभी कृतियो को प्रकाशित कराये जाने का प्रस्ताव मुनि श्री के सम्मुख रखकर निवेदन किया कि इन उच्च कोटि की रचनाओ का प्रकाशन विद्वत जनो द्वारा कराया जावेगा ।

कहावत है कि विद्वान की भाषा विद्वान ही समझ सकता हे । विद्वतजनो की वेदना को मुनि श्री ने समझा। यद्यपि विद्वत जनो ने सभी कृतिया को प्रकाशित किये जाने का बीडा उठाया किन्तु मुनि श्री का आभास था कि उनके द्वारा न जाने कितने समय मे कृतिया का प्रकाशन सम्भव हो सकेगा । समय की तलाश थी अजमेर नगर में चातुर्मास निश्चित हुआ और इस दूरगामी महति योजना के बारे मे मुनि श्री ने समाज को अवगत कराया और देखते ही देखते ज्ञानमूर्ति आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की समस्त कृतियो के प्रकाशन की धर्म प्रेमी महानुभावो ने स्वीकृति प्रदान की ।

प्रकाशन का कार्य जुलाई मे प्रारम्भ हुआ और जिस गति मे प्रकाशन का कार्य हुआ उसका परिणाम यह निकला कि तीन माह मे 26 ग्रन्थो का प्रकाशन हो चुका और एक मुश्त दिनाक 15-10-94 को विद्वत गोष्ठी के समापन समारोह के अवसर पर उनका विमोचन किया गया ।

जिन महानुभावो ने ज्ञानमूर्ति आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के ग्रन्थो को प्रकाशित किये जाने मे अर्थ सहयोग प्रदान किया वह इस प्रकार हे ।

प.पू. आचार्य 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज के ग्रन्थो की सूचि

क्र स	पुस्तक का नाम	दातारो की सूची	प्रतियाँ
1	समयसार	श्री राजेन्द्रकुमार जी अशोककुमार जी केसरगज अजमेर	5000
2	प्रवचनसार	श्री ज्ञानचद जी जेन किरण बटरी वाले केसरगज अजमेर	2000
3	जयोदय पूर्वार्द्ध	श्री अशोककुमार जी पाटनी, R K मार्बल्स, मदनगज - किशनगढ	2000
4	जयोदय उत्तरार्द्ध	श्री अशोककुमार जी पाटनी, R K मार्बल्स, मदनगंज - किशनगढ	2000
5	श्री तत्त्वार्थ सूत्र	श्री नेमीचदजी रविन्द्र कुमारजी जेन केसरगंज श्री हजारीलाल जी सानी	1300 700

6	पवित्र मानव जीवन	श्री बंगालीमल जी सुभाषचन्द जी जैन दनगसिया केसरगंज, अजमेर	1000
		श्री नेमीचंदजी ताराचदजी सेठी, नसीराबाद	500
		श्री गुप्त दातार - मार्फत नोरतमल जी बोहरा, अजमेर	500
7	मानव धर्म	श्री गुमानमल जी सुशीलचंद जी लुहाडिया, नया बाजार, अजमेर	1000
		श्री रतनलालजी गगवाल अजमेर	500
		स्व श्री ताराचदजी की स्मृति में श्री मुकेश एव	
		श्री दिनेश पाटनी द्वारा, बैंक कॉलोनी, अजमेर	500
8	कर्त्तव्य पथ प्रदर्शन	श्री टीकमचदजी पूरनचदजी जैन सुथनिया केसरगज, अजमेर	1000
		श्री माणकचदजी सुभाषचदजी बड्जात्या आगरा गेट, अजमेर	500
		श्री विजयकुमार विनयकुमार अजमेरा द्वारा स्व पू पिताजी श्री शिखरचदजी	
		एव माताजी श्रीमति सरोजदेवी की स्मृति में	500
9	ऋषभ चरित्र	श्री राजेन्द्रकुमारजी सीमेट वाले	1000
10	सुदर्शनोदय	श्री राजेन्द्रकुमार जी ढिलवारी केसरगंज, अजमेर	2000
11	सचित्त विचार	गुप्त दातार	2000
12	स्वामी कुन्दकुन्द सनातन धर्म	श्री प्रफुल्लचद जी गदिया, अजमेर	2000
		जैन साडी एम्पोरियम, अजमेर	
13	सचित्त विवेचन	श्री बहादुरमल जी चौधरी, अजमेर	1000
		श्री पदमचन्दजी साहूला मदार गेट, अजमेर	500
		श्री गुप्त दातार हस्ते उमरावमलजी गगवाल, अजमेर	500
14	जैन विवाह सस्कार	श्री कमलकुमारजी बडजात्या, अजमेर	1000
		श्री गुप्त दातार मार्फत जयचंद जी केसरगज, अजमेर	1000
15	भाग्योदय (भाग्य परीक्षा)	श्रीमति सुशीला पाटनी धर्मपत्नी श्री अशोक कुमारजी पाटनी	
		R K मार्बल्स मदनगज - किशनगढ़	1000
		श्री नमीचंदजी विनोद कुमारजी प्रमोद कुमारजी बाकलीवाल, पीसागन	500
		श्री विवेक सागर जागृति मण्डल, नसीराबाद	500
16	हितोपदेश	श्री शांतिलाल जी, प्रकाशचन्द जी, सुशीलकुमार जी,	
		प्रदीपकुमार जी गदिया (सपरिवार) शान्ति निकेतन, ब्यावर	1000
		श्री दिगम्बर जैन जागृति महिला मण्डल अजमेर	500
		श्री शातिलालजी सुरेन्द्रकुमारजी गंगवाल, जेठाना वाले, अजमेर	500
17	श्री समुद्रदत्त चारित्र (भद्रोदय)	सु श्री श्रद्धा सुपुत्री श्री अजयकुमार जी दनगसिया	100
		श्री बाबूलालजी नरेन्द्रकुमारजी जैन दनगसिया, केसरगज	500
		श्रीमति मैनादेवी धर्मपत्नी श्रीमांगीलालजी पाटनी	
		महावीर इलेक्ट्रिक, खाईलैण्ड, अजमेर	500

18	दयोदय	श्री छगनलाल जी मदनलालजी गोधा, बम्बई	1000
		श्री नेमीचंदजी जितेन्द्रकुमारजी जैसवाल कोठी वाले, हाथी भाटा, अजमेर	500
		श्रीमति सुशीलादेवी सोगाणी धर्म पत्नी श्री शांतिलाल जी सोगाणी, नसीराबाद	500
19	वीरोदय	श्री गुप्त दातार	2000
20	मुनिमनोरजनाशीति	श्रीमति निर्मला पाण्ड्या, अजमेर	2000
21	भक्ति सग्रह	श्री सुभाषचन्द जी बोहरा बापूनगर, अजमेर	1000
		श्रीमति सरलादेवी धर्मपत्नी स्व श्री घेवरचदजी बाकलीवाल अजमेर	500
		श्री विमलचन्दजी अजीतकुमारजी टोकमगज, अजमेर	500
22	गुण सुन्दर वृत्तान्त	जैन युवा मेला समिति	1000
		श्री अनारदेवी धर्मपत्नी श्री नेमीचंद जी उन्नेरिया ब्ल्यूकेसल, अजमेर	500
		श्री सुगनचदजी अशोककुमारजी जैन सारोला वाले C/o नवीन इलेक्ट्रिकल्स, अजमेर	500
23	विवेकोदय	श्री जयकुमार जी महेन्द्र कुमार जी जैन केसरगज अजमेर	1000
24	सम्यक्त्वसारशतकम्	श्री प्रकाशचंद जी सुभाषचंद जी भागचंद जी दोसी मदनगज - किशनगढ	500
		श्री दुलीचन्द जी पदमचन्दजी, कैलाशचन्दजी गोधा, अजमेर	500
		श्री कैलाशचन्द जी पाटनी, आगरा गेट, अजमेर	500
		श्री माधोलालजी गदिया अजमेर	500
25	श्री शातिनाथ पूजा विधान		2000
26	हे ज्ञानदीप! आगम प्रणाम		1000

इस प्रकार इतने सारे ग्रन्थो का इतने कम समय मे एक साथ प्रकाशन एव विमोचन का उदाहरण अजमेर की जैन समाज ने प्रस्तुत कर भारत में जिनवाणी प्रकाशन मे सहयोग प्रदान किया वह वस्तुत मुनि श्री की प्रेरणा का प्रतिफल है । इससे अजमेर की जैन समाज की प्रतिष्ठा द्विगणित हुयी है । इस प्रकार इतने ग्रन्थों का एक साथ प्रकाशन एव विमोचन होना जैन धर्म एव संस्कृति के इतिहास मे अत्यन्त अलौकिक घटना है ।

"वीरोदय महाकाव्य" अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी

☆ डॉ श्रेयासकुमार जैन, बड़ौत ☆ डॉ अशोककुमार जैन, लाडनूं

राजस्थान प्रान्त की सुरम्य नगरी अजमेर में, राजस्थान के वरद् सरस्वती पुत्र, सस्कृतज्ञ, महाकवि परम दार्शनिक परमपूज्य आचार्य श्री 108 श्री ज्ञानसागरजी महाराज के साहित्य जगत् में अवदान का मूल्याकन करने हेतु, "वीरोदय" महाकाव्य पर एक अखिल भारतीय विद्वत् संगोष्ठी परमपूज्य संत शिरोमणि आ विद्यासागरजी महाराज के शिष्य आध्यात्मिक संत श्री 108 सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षुल्लक श्री 105 गंभीरसागरजी महाराज एवं धैर्यसागरजी महाराज के पुनीत सान्निध्य में, सोनीजी की नसियां में दि 13, 14 एवं 15 अक्टूबर, 94 तक आयोजित की गई । इस महान ज्ञानयज्ञ में देश के 40 मूर्धन्य विद्वानों ने अपनी उपस्थित एवं आलेख पाठ के माध्यम से "वीरोदय महाकाव्य" के विभिन्न पक्षों पर प्रकाश डालकर संगोष्ठी को गरिमामय बनाया ।

संगोष्ठी के कुल 8 सत्र सम्पन्न हुए, जिनका विवरण इस प्रकार है -

प्रथम सत्र

दिनाक 13 अक्टूबर को प्रात 7 बजे परमपूज्य गुरुवर श्री सुधासागरजी महाराज एव पू क्षुल्लकद्वय के मंगल सान्निध्य मे ब्र बहिनों द्वारा मगलाचार के उपरान्त परम मुनिभक्ति उदारमना श्रेष्ठी श्री राजेन्द्रकुमार दनगसिया (राजभवन वाले अजमेर) द्वारा मगलकलश की स्थापना एवं उनके सुपुत्र श्री अजयकुमार जैन ने पू आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के चित्र का अनावरण किया। श्रीमति कान्ता आहूजा (कुलपति अजमेर विश्वविद्यालय) ने दीप प्रज्जवलित कर सगोष्ठी का उद्घाटन किया गया । चारों अनुयोगों की शास्त्रों के स्थापना क्रमश सर्वश्री राजेन्द्रकुमार, अजयकुमार, विजयकुमार एवं श्री निर्मलकुमारजी सानी ने की । श्री रवीन्द्रकुमार जैन द्वारा मंगल-गीत के प्रस्तुतीकरण के बाद समागत सभी विद्वानों का पुष्पहार, श्री फल एव बैज के माध्यम से स्वागत किया गया । इसी अवसर पर सांगानेर में सम्पन्न संगोष्ठी के आलेखो की सग्राहिका- "आचार्य ज्ञानसागर की साहित्य साधना" कृति का विमोचन श्री राजेन्दकुमार जैन ने किया । पं विश्वनाथ मिश्र (लाडनूं) की अध्यक्षता में सर्वप्रथम युवा मनीषी डॉ अशोकुमार जैन (प्रवक्ता जैन विद्या विभाग जैन, विश्वभारती संस्थान, लाडनू) ने "वीरोदय" महाकाव्य मे वर्णित जैन न्याय शास्त्रीय मीमांसा" विषय पर अपना सारगर्भित आलेख प्रस्तुत किया । पं महेन्द्रकुमार " महेश" ने पू ज्ञानसागरजी के व्यक्तित्व-कृतित्व पर "संस्कृत सत्रोम में " प्रस्तुत किया ।

अध्यक्ष एवं मुख्य अतिथि के सम्बोधन के उपरान्त परमपूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ने अपने मंगल आशीर्वाद देते हुए कहा है कि यह संगोष्ठी पू ज्ञानसागरजी महाराज की महानता के प्रति एक लघु विनयाजलि है हमें, उनके महाकाव्य "वीरोदय" में वर्णित साहित्य साधना को आदर्शता का रुप देना है ।

मुख्य अतिथि डॉ कान्ता आहूजा ने "वीरोदय" को विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखवाने हेतु आश्वासन दिया ।

:: द्वितीय सर्ग ::

दि 13 अक्टूबर को दोपहर 1 बजे सगोष्ठी का द्वितीय सत्र डॉ उदयचंद जैन के मंगलाचरण एवं डॉ श्री रंजनसूरिदेव (उपनिदेशक, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद, पटना) की अध्यक्षता एवं डॉ जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) के संयोजन में डॉ अजितकुमार जैन (आगरा) ने "वीरोदय" महाकाव्य में कथोपकथन", डॉ प्रेमचंद रावका (जयपुर) ने "वीरोदय महाकाव्य में वर्णित नीतितत्व, पं विश्वनाथ मिश्र (लाडनूं) ने "वीरोदय का व्याकरणगत वैशिष्ट्य डॉ भागचन्द "भास्कर" (नागपुर) ने "वीरोदय में प्रतिपादित भूगोल -खगोल" तथा डॉ. शीतलचंद जैन (जयपुर) ने "वीरोदय की अवान्तर कथाओं का सामाजिक अध्ययन" विषय पर शोध पत्रों का वाचन किया । अध्यक्षीय

सम्बोधन के बाद पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज ने मगल आशीर्वाद देते हुए सभी शोध पत्रो पर समीक्षात्मक दृष्टिकोण एव समाधान दिया ।

तृतीय सत्र

इसी दिन साय 7 बजे से डॉ सुदर्शनलाल जैन (अध्यक्ष- सस्कृत विभाग, काशी हिन्दू वि वि वाराणसी) की अध्यक्षता एवं प अरुणकुमार जैन (ब्यावर) के सयोजकत्व मे डॉ कस्तूरचद कासलीवाल ने "आचार्य ज्ञानसागर व्यक्तित्व एव कृतित्व" डॉ कैलाशपति "पाडेय (गोरखपुर) ने "वीरोदय का महाकाव्यत्व" एव डॉ अभयप्रकाश जैन ने "वीरोदय का संगीत पक्ष " विषय पर शोध पत्रो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य डॉ जैन ने दिया।

चतुर्थ सत्र

दिनाक 14 अक्टूबर, 94 को प्रात डॉ रतनचद जैन (अध्यक्ष प्राकृत एव भाषा विज्ञान विभाग भोपाल विश्वविद्यालय) की अध्यक्षता एव डॉ अशोकुमार जेन (लाडनू) के सयोजन मे सम्पन्न हुई । इस सत्र मे प्राचार्य निहालचंदजी (बीना) ने "वीरोदय महाकाव्य एव पर्यावरण ' डॉ रमेशचद जैन (बिजनोर) ने "वीरोदय मे उल्लिखित आचार्य तथा डॉ जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर) मे "वीरोदय का मूल स्रोत उत्तर पुराण की महावीर कथा" विषय पर शोध पत्र का वाचन किया । इसी सत्र मे महावीर विकलाग सहायता समिति अजमेर की ओर से 10 विकलागो को ट्रायसाईकिल, श्रवणयत्र तथा कृत्रिम पैर प्रदान किए गए । सभी विकलागो ने आजीवन अडा,मास शराब, तम्बाखू, गुटका आदि से रहित व्यसनमुक्त जीवन जीने की शपथ ली । इस अवसर पर मुख्य अतिथिके रूप मे पधारे श्री जी एल गुप्ता (अतिरिक्त कलेक्टर, अजमेर) एव श्री उदयलाल काठारी एव युवराजजी कासलीवाल ने उक्तकार्य की सराहना की तथा पू मुनि श्री के चरणों मे विनयाजलि अर्पित की । पूज्य मुनि श्री ने इस दान कार्य की भूरि -भूरि प्रशसा करते हुए कहा कि जिसने पैरों का दान किया है, वह कभी लगडा नहीं होगा, जिसने श्रवणयत्र प्रदान किए हैं वह कभी बहरा नहीं होगा आदि - आदि कर्म सिद्धान्त के आधार पर समीक्षात्मक विश्लेषण किया।

पचम सत्र

दि 14 अक्टूबर को दोपहर 1 बजे से डॉ भागीरथप्रसाद वागीश, शास्त्री (निदेशक अनुसधान विभाग डॉ सम्पूर्णानन्द सस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी) की अध्यक्षता एव प्राचार्य डॉ शीतलचद जेन (जयपुर)के सयाजन में सम्पन्न इस पचम सत्र में डॉ शिवसागर त्रिपाठी (जयपुर) ने "वीरोदय में राष्ट्र चिन्तन" डॉ श्रीयासकुमार सिघई ने "वीरोदय मे उल्लेखित पौराणिक व्यक्तित्व" प उत्तमचद "राकेश" (ललितपुर) ने वीरोदय में वर्णित प्रकृति" डॉ सीमा जैन (ललितपुर) ने "वीरोदय में प्रतिपादित महावीर साधना" डॉ एस के पाण्डेय (बडौत) ने "वीरोदय मे रस वैशिष्ट्य" डॉ रतनचद जैन (भोपाल) ने "वीरादय का शैली वैज्ञानिक अध्ययन", डॉ आराधना जैन "स्वतत्र" (गजबासौदा) ने "वीरोदय मे नारीवर्णन" एव डॉ सुपार्श्वकुमार जैन बडौत) ने "वीरोदय मे प्रतिपादित समाज एव अर्थव्यवस्था" विषय पर शोध लेख का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य के उपरान्त पू मुनि श्री ने "वीरादय पर पढे गए आलेखों के विषय में अपना मन्तव्य दिया ।

षष्ट सत्र ·

इसी दिन साय 7 बजे डॉ भागचन्द "भास्कर" (नागपुर) एव डॉ रमेशचंद जैन (बिजनौर) के संयोजन में सम्पन्न इस रात्रिकालीन सत्र मे डॉ जगन्नाथ पाठक (इलाहाबाद) ने "वीरोदय का कलापक्ष एव कथ्य",डॉ सुदर्शनलाल जैन (वारणसी) ने "वीरोदय का मृतुवर्णन" डॉ सुरेन्द्रकुमार जैन "भारती" (बुरहानपुर) ने "वीरोदय मे आगत जैनेतर प्रसंग", डॉ कमलेश कुमार जैन (वारणसी) ने वीरोदय में अलंकार एवं छन्दो योजना" एवं डॉ, उदयचंद जैन (उदयपुर) ने "वीरोदय में प्रयुक्त प्राकृत शब्द " विषय पर शोध पत्र का वाचन किया ।

· सप्तम सत्र ·

दिनांक 15 अक्टूबर को प्रात 7 बजे से सप्तम सत्र डॉ रमेशचंदजी जैन (अध्यक्ष संस्कृत विभाग, वर्द्धमान कालेज, बिजनौर, उ प्र) की अध्यक्षता प सुमतिचन्द्र शास्त्री (मौरेना) के मुख्यातिथ्य एवं डॉ कमलेशकुमार जैन (वाराणसी) के संयोजन में सम्पन्न हुआ । पं निहालचद जैन प्राचार्य (बीना) के द्वारा मगलाचरण करने के उपरान्त

डॉ. प्रेमसुमन जैन (उदयपुर) नें प्राकृत में वर्णित ''महावीर कथा एव वीरोदय'', डॉ श्रेयांसकुमार जैन ने ''वीरोदय का आध्यात्मिक एवं सैद्धान्तिक वैभव'', डॉ वागीश शास्त्री (वाराणसी) ने शब्दकौषीय परिप्रेक्ष्य में ''वीरोदय की समालोचना'', डॉ फूलचंद प्रेमी (वाराणसी) ने ''वीरोदय की प्रस्तावना का रस वैशिष्ट्य'' डॉ एव श्री रंजनसूरिदेव (पटना) ने ''वीरोदय में वर्णित पशु-पक्षी एव पर्यावरण विषय पर शोध पत्रो का वाचन किया । मुख्य अतिथि एव अध्यक्षजी ने अपने वक्तव्य दिए । पू मुनिश्री ने अपना समीक्षात्मक मंगल आशीर्वाद दिया ।

. अष्टम् सत्र ..

इसी दिन दोपहर 2 बजे, डॉ प्रेमसुमन जैन (उदयपुर) की अध्यक्षता एव डॉ श्रेयास कुमार जैन (बडौत) के सयोजन मे सम्पन्न इस अष्टम समापन सत्र में डॉ अशोककुमार जैन (लाडनूं) के द्वारा मगलाचरण पाठ के उपरान्त डॉ कमेलश जैन (वाराणसी) ने ''वीरोदय की दार्शनिक एव पारिभाषिक शब्दावली का परिभाषिक विश्लेषण'', डॉ गुलाबचदजी (अजमेर) ने ''वीरोदय काव्य की त्रैकालिक अवस्थाओ का प्रासंगिक चित्रण'', पूर्व प्राचार्य श्री निहालचद जैन (अजमेर) ने ''वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वीरोदय महाकाव्य का सन्देश'' एव प अरुणकुमार जैन (ब्यावर) ने ''वीरोदय काव्य मे आगत दार्शिनिक शब्दाब्ली'' विषय पर शोधपत्रो का वाचन किया ।

मम्पूर्ण मत्र की उपलब्धियो पर डॉ वागीश शास्त्री एव डॉ श्रीरजन सूरिदेव ने प्रकाश डालते हुए इस मगोष्ठी को इतिहास में अद्वितीय निरुपित किया । इस अवसर पर पू ज्ञानसागरजी महाराज की पुन. प्रकाशित 16 कृतियो का डॉ वागीश शास्त्री ने करतल ध्वनि के बीच पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के आर्शीवाद से विमोचन किया। उल्लेखनीय है कि पू ज्ञानसागरजी कृत सम्पूर्ण साहित्य का प्रकाशन अजमेर नगर के दानवीरो द्वारा किया जा रहा हे ।

समापन से पूर्व ममागत सभी विद्वानों का सम्मान अजमेर समाज की ओर मे किया गया । अजमेर समाज की ओर से ही संगोष्ठी के अर्थप्रदाता श्रीमान् राजेन्द्रकुमार जी जैन (दनगसिया) का अभिनदन पत्र, श्री फल पुष्पधर आदि से मम्मान किया गया । अभिनदन पत्र का वाचन श्री निर्मलकुमार सोनी ने किया ।

विद्वत गोष्ठी मे लिए गए निर्णय

मगाष्ठी के अतिम सत्र मे पूर्व पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के सानिध्य में विद्वानो की अन्तरंग गोष्ठी मे निम्न लिखित निर्णय लिए गए -

(1) पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज कृत साहित्य को विभिन्न विश्वविद्यालयो के पाठ्यक्रमो मे रखवाया जाए

(2) पूज्य ज्ञानसागरजी महाराज के साहित्य पर शोध कार्य करने वाले छात्रो को छात्रवृति दी जाए ।

(3) ''सुदर्शनोदय एवं भद्रोदय महाकाव्यो पर जनवरी माह के अतिम मप्ताह में अखिल भारतीय विद्वत् सगोष्ठी आयोजित की जाए ।

(4) ''वीरोदय काव्य के अहिंसा एव अनेकान्त के संबंधित सर्गो का छात्र जनोपयोगी संस्करण तैयार कर प्रकाशित किया जाए। इस कार्य की सम्पन्नता हेतु डॉ शिवसागर त्रिपाठी (जयपुर) एव डॉ जयकुमार जैन (मुजफ्फरनगर) को नियुक्त किया गया।

(5) पू ज्ञानसागर जी महाराज कृत संस्कृत साहित्य का एक शब्द कोष डॉ रमेशचन्द्र जैन बिजनौर के निर्देशन मे तैयार किया जाए ।

(6) पू ज्ञानसागरजी महाराज कृत संस्कृत साहित्य का ''पारिभाषिक शब्दकोष'' निर्माण किया जाए । इस कार्य को प अरूण कुमार शास्त्री, ब्यावर सम्पन्न करेंगे ।

(7) समुद्रदत्त चरित (भद्रोदय) को अन्वय, सस्कृत टीका, व्याख्या लेखन हेतु डॉ श्री कान्त पाण्डेय (बडौत) ने सहमति प्रदान की ।

उक्त कार्यों की सम्पन्नता हेतु पू मुनि श्री सुधासागर जी महाराज ने सभी विद्वानों को अपना मंगल आशीर्वाद प्रदान किया और सतत श्रुत सेवा करने की प्रेरणा दी ।

दिगम्बर जैन समिति, अजमेर

वीरोदय महाकाव्य की सैद्धान्तिक विशेषताओं का समीक्षात्मक अध्ययन

मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

जैन दर्शनानुसार हुण्डावसर्पिणी काल के अतिम शासक तीर्थंकर भगवान महावीर हुये । भगवान् महावीर के सिद्धान्तों को भारतवर्ष के समस्त बुद्धिजीवियों ने जीवन को सुखमय बनाने के लिए अनिवार्य बताया । भगवान् महावीर के जीवन चरित्र एव सिद्धान्तों को प्राचीन आचार्यों ने अपने-अपने समय पर प्रदर्शित कर समाज एवं व्यक्ति को कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग पर लगाया। इसी शृखला मे इस युग के अर्थात चौदहवीं शताब्दी के बाद प्रथम महाकाव्यकार उद्‌भट विद्वान आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने अपनी पूर्व अवस्था (ब्रह्मचारी भूरामल) के समय भगवान् महावीर के जीवन चरित्र एव उनके सिद्धान्तों को वर्तमान परिप्रेक्ष्य में किस प्रकार से गुणग्राही होना चाहिए इस दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखकर वीरोदय महाकाव्य में जन-जन के लिए कल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है । इस महाकाव्य ने जहाँ महावीर के सिद्धान्तों को यथार्थ रूप में प्रकट करने का कार्य किया है वहीं दिगम्बर धर्म मे सैकडों वर्षों से महाकाव्य के रूप में साहित्य साधना की पूर्ति भी इस महाकाव्य की रचना से हुई है। अन्य सम्प्रदाय के साहित्य प्रेमी ये कहने लगे थे कि जैन मुनियों एवं श्रावकों मे चरित्र की साधना तो है लेकिन साहित्य की साधना दिगम्बरों के पास नहीं है । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने चरित्र एव तपस्या की मूर्ति बनकर साहित्य साधना के मन्दिर का भी निर्माण किया है । इस मदिर में शिखर और कलशारोहण के रुप मे जयोदय एव वीरोदय महाकाव्य को स्थापित किया है । आचार्य ज्ञानसागर जी की इस साहित्य साधना ने जैनियो के मस्तक ऊँचे कर दिये एव दिगम्बर अनुयायियो को आदर्शता भी प्रदान की कि जैन दर्शनावलम्बी जहाँ सयम एव चरित्र की साधना करने मे समर्थ हैं, वहीं पर साहित्य साधना करने में भी पीछे नहीं हैं। चौदहवीं- पद्रहवीं शताब्दी के बाद प्रथम आचार्य है । जिन्होंने सस्कृत में महाकाव्यों को लिखकर खोई हुई साहित्य साधना को उजागर कर दिया। आचार्य ज्ञानसागर महाराज के साहित्य को पढ़ने से प्रतीत होता है कि इनकी साहित्यि के विचारधारा भगवान् महावीर जैसी क्रान्तिकारी थी अर्थात् आचार्य ज्ञानसागर क्रान्तिकारी विचार धारा के प्रतीत होते है । लगभग पचास साल पूर्व प्राचीन जीवन शैली में जीने वाले व्यक्तित्व की ज्ञान प्रतिभा इक्कीसवीं सदी के जनमानस को प्रभावित कर रही है । यह आश्चर्य की बात है । आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने महावीर के उस सिद्धान्त को विशेष रूप से प्रचारित किया है जो सिद्धान्त कहता है कि घृणा पाप से करो पापी से नहीं। आचार्य महाराज चरित्र को जीवन का अनिवार्य अग मानते है साथ ही दार्शनिक एव वैज्ञानिक ढग से जीवन शैली जीने का सदेश भी देते हैं। वीरोदय महाकाव्य चारित्रिक दार्शनिक, वैज्ञानिक एव साहित्यिक महाकाव्य है । इस महाकाव्य की कुछ विशेष विशेषताए दृष्टव्य है । जो ज्ञान जिज्ञासु मनीषियों के लिए ऊहा-पोह करके सत्य एव स्वच्छ मार्ग को प्रशस्त करने का अवसर प्रदान करती है ।

इस लेख मे मात्र उन्हीं सैद्धान्तिक विशेषताओं को आलेखित किया जा रहा है । जो इस काव्य में असाधारण रुप से वर्णित है । छद अलकार व्याकरण आदि विशेषताओं को आलेख में नहीं लिया है ।

मगलाचरण

वीरोदय महाकाव्यकार ने मंगलाचरण करते हुए कहा है कि जिनेन्द्र देव की सेवा का फल मुझे एवम् वीरोदय महाकाव्य के पाठको श्रोताओं को मेवा की उपलब्धि करायेगा । मेवा में भी विशेष रुप से कवि ने द्राक्ष के समान स्वादिष्ट एवं हृदय को आह्लाद उत्पन्न करने वाली जिनेन्द्र देव की सेवा का फल बताया है लेखक की भावना है कि जिनेन्द्र देव की सेवा के फलस्वरूप मुझे इस महाकाव्य की रचना करने में किंचित् मात्र श्रम नहीं करना पडेगा ।

दूसरे श्लोक में मगलाचरण करते हुए नाभि पुत्र को महोदय शब्द से सम्बोधित किया तथा उन्हें कामारि घोषित कर अपने सिद्धान्तो का समर्थक कहा है अर्थात् अपनी विचार धारा के अनुकूल माना है । क्योंकि लेखक स्वयं कामारि थे अर्थात् बाल ब्रह्मचारी थे । इसलिए लेखक ने अपनी कामारिता की पुष्टि करते हुए कहा कि मैं

ही कामारि नहीं बल्कि नाभि पुत्र भी कामारि थे इसी के आगे तीसरे श्लोक में चन्द्रप्रभु की बाह्य कान्ति का वर्णन करते हुए उसको संसार के अंधकार का विनाशक माना गया है तथा चौथे श्लोक में पार्श्वनाथ भगवान् के प्रति जनमानस को प्रभावित होने की बात कही है । कि भो - मानुष! कहां भटकते हो पार्श्व प्रभु सी उत्तम निधि को प्राप्त कर अपने जीवन को आनन्दमय बनाओ और कहा है कि पार्श्व रूपी पारस से अपने जीवन रूपी लोहे को स्वर्णमय बनाने का प्रयास करो । आगे वीर भगवान् के नाम में विरोधाभास अलंकार द्वारा वीर नाम का निषेध करते हुए कहा है कि हे वीर भगवान् आप वीर नहीं थे, अबीर थे । क्योंकि अबीर का अर्थ गुलाल है और गुलाल को लोग आनन्द के समय मस्तक पर धारण करते हैं उसी प्रकार जनमानस आपको आनन्द के लिए या आनन्द के समय मस्तक पर धारण करते हैं इसीलिए आप वीर नहीं अबीर है व्याख्या में अबीर का अर्थ अभय देने वाला लेना चाहिये ईश्वर नहीं । यदि विष्णु रूपी ईश्वर लेते हैं तो वीर प्रभु को विष्णु के सदृश कहना उपयुक्त नहीं है । इसी प्रसंग में कवि ने मीर, अमीर एव नेक आदि फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है । लेकिन शब्द व्युत्पत्तिक करने पर सस्कृत निष्ठ अर्थ को व्यक्त करते हैं ।

इसी क्रम को आगे बढाते हुए गुरुओं का स्मरण विघ्नों को दूर करने में कारण बने इस रूप में गुरु को याद किया है। यहां पर हिन्दी व्याख्या के विशेषार्थ में ज्ञानान्द का अर्थ ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द को गुरु के रूप में स्मरण कराया है' सो ये बात मेरी दृष्टि में श्लोक के साथ सगति को प्राप्त नहीं होती क्योंकि श्लोक में गुरु के जो विशेषण बताए हैं, वह दिगम्बर मुनि में ही घटित होते हैं एक गृहस्थ में नहीं । श्लोक के अन्दर ज्ञान शब्द के साथ तृतीया विभक्ति का प्रयोग करके चकार का प्रयोग किया गया है। बाद में आनन्द शब्द आया है अत ज्ञान शब्द की विभक्ति एवं चकार शब्द की अभिव्यक्ति तथा तीसरे चरण में गुरु शब्द के साथ षष्टी के बहुवचन का प्रयोग किसी ब्रह्मचारी ज्ञानानन्द का नाम नहीं प्रकट करती है बल्कि इसका अर्थ तो यह निकलता है कि ज्ञान के द्वारा जो आनन्द को प्राप्त हुए हैं, ऐसे ब्रह्मपथ पर चलने वाले गुरुओ को अपने विघ्नों का हरण कर्ता मानता हू अर्थात यहा एक गुरु को स्मरण न करके गुरुजनों का स्मरण किया है।

मगलाचरण गत श्लोको मे कुछ अन्य विशेषताए भी दृष्टिगोचर हुई है जैसे चौबीस भगवानो मे से मात्र ऋषभ देव, चन्द्रप्रभु, पार्श्वदेव, वीर प्रभु का ही स्मरण किया है। लगता है लेखक को उपरोक्त भगवान् विशेष अराध्य के रुप मे इष्ट थे। क्षयोपशम सम्यग्दर्शन की दशा में ऐसा परिणाम आना सम्भव है और उपरोक्त चार भगवानों मे भी मात्र चन्द्रप्रभु को ही नमस्कार किया है। अन्य तीन भगवानों के नाम तो स्मरण किये हैं लेकिन स्मरण के साथ नमस्कार, वन्दन, अभिनन्दन आदि अर्चनीय शब्दों का प्रयोग लेखक ने नहीं किया है। तीसरे श्लोक में चन्द्रप्रभु भगवान के लिए नमस्कार शब्द का प्रयोग किया है । लगता है लेखक ने दार्शनिक होने के नाते समन्तभद्र स्वामी की प्रवृत्ति का अनुकरण किया है। क्योंकि समन्तभद्र स्वामी ने पूर्व सात तीर्थंकरों की स्तुति तो की लेकिन नमस्कार चन्द्रप्रभु भगवान् को ही स्तुति-रचना के समय किया।

रुढिवादी शब्दों की शब्द व्यजंना एव अलकारिक प्रतिभा के परम्परागत नामानुकुलता से हटकर विरोधी गुणात्मक शक्ति को प्रकट करते हुए वीर भगवान् के व्यक्तित्व को विस्तृत किया है। सम्पूर्ण मगलाचरण में लेखक ने स्वहित की भावना के साथ साथ जनमानस के कल्याण की भावना भी प्रकट की है। इस भावाभिव्यक्ति से पूर्णता सिद्ध होता है कि कवि ने कविता का जो मुख्य लक्षण है, स्वान्त सुखाय पर हिताय को ध्यान में रखकर वीरोदय महाकाव्य लिखा है ।

लघुता एवं लोकप्रियता

कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए कहा है कि गणधर द्वारा भी जिन वीर प्रभु का वर्णन न किया जा सका हो उनका वर्णन करने का साहस मैं कर रहा हूं अर्थात जल में पड़े हुए चन्द्र बिम्ब को बालक के समान उठाने का प्रयास कर रहा हूँ। इस लघुता को प्रदर्शित करते हुए भी लेखक अपनी इच्छा शक्ति को प्रकट कर रहे हैं कि मैं असमर्थ तो हूं लेकिन यदि गुरुजन मेरे सहायक हों तो मैं असमर्थ होकर भी समर्थ हो जाऊंगा । जैसे बालक स्वयं चलने में समर्थ नहीं है लेकिन अगर पिता की उंगली का सहारा मिल जाए तो वह भी चलने में समर्थ हो जाता है

। यहां कवि के अहंकार एवं ज्ञानमद का अभाव प्रतीत होता है और गुरू की असीम शक्ति पर विश्वास प्रतिभासित होता है। इस प्रकार कवि ने अपनी लघुता प्रकट की लेकिन अपनी कृति को लोकप्रिय बताते हुए कहा है कि यह काव्य प्रकाश और अधकार के बीच के सध्याकाल की लालिमा के समान आह्लाद के देने वाला होगा यहां कवि का यह अभिप्राय भी प्रकट होता है कि काव्य सदोष भी नहीं हे कि इसे अधकार की उपमा दी जा सके लेकिन सम्पूर्ण गुण वैभव सम्पन्न भी नहीं है कि उसे दिन की उपमा दी जा सके। लेकिन सध्या का उभयदृश्य जिस प्रकार प्रकाशमय नहीं होता एव पूर्ण अन्धकार मय भी नहीं होता फिर भी सध्याकाल की लालिमा मन को आनन्द प्रदान करने वाली होती है ।

उसी प्रकार यह काव्य पाठक को आनन्द प्रदान करेगा। इस श्लोक मे कवि ने अपने चातुर्य से अभाव एवं सद्भाव मे पडी हुई अपनी कृति को लोक प्रियता से अलकृत कर दिया इससे कवि का कवित्व चमत्कृत हो उठा है। काव्य की श्रेष्ठता बताते हुए कवि ने कहा है कि अमृत का पान करते हुए भी देवता मानवता को प्राप्त नहीं कर पाये क्योंकि वे काव्यरूपी रसायन का पान नहीं करते हैं। अत जो काव्य रूपी रसायन का पान नहीं करते हैं वस्तुत वे ही मानवता के अधिकारी हे । कवि ने अपना मत प्रकट किया है कि काव्य भी स्वर्ग भूमि है क्योंकि जो वस्तु स्वर्ग मे होती हे वे सब काव्य मे वर्णित होती है। कवि ने विद्वाना के सामने अपनी अल्पज्ञता एव काव्य की लघुता व्यक्त करते हुए यह भी कहा हे कि मुझे व्याकरण का बोध नहीं है। अलकार एव छदो को भी नहीं जानता लेकिन 27-28 वे श्लोक मे कवि ने स्वय अपनी कविता का आर्या भार्या के समान सर्वगुण सम्पन्नता की घोषणा की है।

इन सब उपरोक्त बातों को पढने के बाद लगता है कि कवि ने विद्वानो एव अपने आदर्शो का आदर कर अपनी अल्पज्ञता प्रकट करते हुए भी अपनी ज्ञान शक्ति पर विश्वास प्रकट कर कहा हे कि प्रस्तुत कृति उच्च कोटि की है ।

इस प्रकार की भावाभिव्यक्ति करना सम्यग्ज्ञानी का लक्षण होता है होना ही चाहिए। यह लक्षण आचार्य ज्ञानसागर में विद्यमान था ।

अभिप्राय

कवि ने अपने इस काव्य को लिखने का अभिप्राय प्रकट किया है कि मेरे काव्य के नायक की महानता मेरे जीवन में अवतरित हो जावे और मेरे द्वारा उल्लेखित तुच्छ शब्द वीर प्रभु के चरित्र मे चिह्नित हो जाने के कारण अतिशयता को प्राप्त हो जावेंगे । यहाँ कवि ने उपादान की तुच्छता होने पर भी शुद्ध निमित्त के मिलने पर तुच्छ उपादान भी महानता को प्राप्त हो जाता है। ऐसा वर्णन किया है।

कर्तृत्ववाद एव अन्य सम्प्रदाय की छाप

कवि के इस काव्य को पढने के बाद मुझे प्रतीत होता है कि कवि अन्य सम्प्रदायों मे सृष्टी के सम्बंध तथाकथित विषय वस्तु की जनश्रुतियों से प्रभावित हुआ है । क्योंकि 15 वें श्लोक का अर्थ यदि शब्दार्थ रूप में ले लिया जाय तो स्पष्ट रूप से ईश्वर कर्तत्ववाद प्रकट होता है । कहा है कि साधु जनों का निर्माण करते समय विधाता के हाथ से कुछ कण नीचे गिर जाने के कारण ससार मे अन्य सुगन्धित अच्छी वस्तुऐं निर्मित हो गई हैं। कवि का भाव है कि विधाता को साधु का निर्माण करने के बाद किसी अन्य अच्छी वस्तु का निर्माण की आवश्यकता नहीं थी। ऐसा अर्थ जो हिन्दी व्याख्या में निकाला गया है सो यह जैन दर्शन के मुख्य सिद्धान्त अकर्तृत्व वाद को समाप्त करने की पूरी सभावना रखता है । कवि ने ऐसा वर्णन किस अभिप्राय को लेकर किया होगा, यह बात स्वातन्त्र्य है विचारणीय है इस महाकाव्य के नायक वीर प्रभु हैं । जिनका मूल सिद्धान्त वास्तु स्वातन्त्र्य है ।

अत हिन्दी व्याख्या के कथित अर्थ को यदि यथावत् ले लिया जावे तो इस काव्य के मूल नायक के भी सिद्धान्त का खण्डन हो जाता है लेकिन काव्य तो अपने मूल नायक के सिद्धानेतों को सुरक्षित रखता है । अत इन सब बातों को ध्यान मे रखते गुए मेरी दृष्टि से इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार से निकलना चाहिये

कि विधाता का अर्थ कर्ता अर्थात आत्मा (उपादान) और 'विधि' का अर्थ कर्म, और 'कर' का अर्थ करण लेना। अर्थात आत्मारूपी विधाता ने कर्म रुपी विधि से (सामग्री) साधना रूपी करण से अपनी साधुता का निर्माण किया हैं और जब आत्मा साधन का उपयोग करते समय थोड़ी सी चूक जाती है तो उस चूक को संसारी प्राणी अन्यथा ग्रहण कर लेते हैं। अर्थात पुण्य का योग अन्य दुर्जन व्यक्ति के पास भी देखा जाता है । इसका भावार्थ इस प्रकार से लेना चाहिए कि सच्चा साधु अपनी उपादान शक्ति एवं कर्म रूपी करण से अपन साधुपने का निर्माण करता है लेकिन कभी, असाधु भी कुछ गुणों को ग्रहण कर यह कहता है कि इस साधु में यह गुण नहीं है । मेरे पास है। सो यह साधु की चूक के कारण ही असाधुआ में भी अच्छाई की विशेषता देखने मे आ गई ।

इस काव्य में और भी अन्य स्थानों पर अन्य दर्शन के सिद्धान्तों को प्रकट किया है जो महावीर के सिद्धान्तो से विपरीत बैठते हैं। जैसे सर्ग दो में यह कहा है कि यह पृथ्वी नागराज के सिर पर रखी हुई है कहीं नागराज, राजा सिद्धार्थ के गुणों को सुनकर ईर्ष्या के कारण भी सिर न धुनने लग जाये क्योंकि नागराज के सिर धुनने से उस पर आश्रित पृथ्वी उलट-पुलट हो जावेगी इसलिए विधाता ने सर्प के कान नहीं बनाये इस श्लोक की ममम्त विषय वस्तु काव्य के नायक वीर प्रभु के मिद्धान्त से मेल नहीं खाती है क्योंकि जैन दर्शन के अनुसार पृथ्वी शेषनाग के आधीन नहीं है और दूसरी बात सर्प तो पचेन्द्रिय जाति वाला है, अत सर्प के कान होते हैं। मेरे अभिप्राय से इस श्लोक को महावीर के सिद्धान्तो से न जोडकर अर्थात् वस्तु स्थितिरूप न स्वीकार करके एक लाकाक्ति के रूप मे ग्रहण करना चाहिए और लोकोक्तियो मे काल्पनिकता सम्भव है । मेरे लिए तो ऐसा लगता है कि लेखक अलकारा की विधा मे इतने मगन हो गये कि उन्हें यह भी ध्यान नहीं रहा कि हमारे महाकाव्य के चरित्र नायक महावीर हैं। और उनके सिद्धात क्या है । कभी-कभी लोकोक्तियाँ अथवा किंवदन्तियाँ जन मानस में ऐमा स्थायी स्थान प्राप्त कर लेती हैं कि सहज रूप से मूल सिद्धान्त तो गौण हो जाता है और किंवदन्तियाँ मुख्य रूप मे प्रकट हो जाती हैं। ऐसा ही कुछ लिखते समय कवि के साथ भी घटा है और प्रथम सर्ग के 18वें श्लाक मे कहा हे कि विधाता तुमने जो दोष देखने वाले पिशुनो को उत्पन्न किया है मो यह तुम्हारी पटुता ही है क्योंकि इसमे साधु की साधुता सफल होती है क्योंकि अंधकार न हो तो सूर्य का महत्व प्रभावक नहीं होता हैं।

इस प्रकार सर्ग 7 मे भो आकाशगगा का उल्लेख कवि ने किया है इसका वर्णन भी जैन शास्त्रो मे नहीं मिलता है ऐसी और भी अन्य स्थानो पर अन्य सम्प्रदाय के शास्त्रो में कथित विषय वस्तु को उपमा-उपमेय भाव के रूप में लाया गया है जिसे जैन दर्शन के मूल सिद्धान्तों से नहीं जोड़ा जा सकता है इन उपरोक्त कथन के सम्बन्ध में कवि का क्या अभिप्राय रहा यह तो हम नहीं कह सकते लेकिन पाठको को इस महाकाव्य को पढते समय इस काव्य के नायक वीर प्रभु के मूल सिद्धान्तो को ध्यान में रखकर इन श्लोको के अर्थ निकालना चाहिये। यदि अर्थ न निकले तो इसे लाकोक्ति या किवदन्ती के रूप में स्वीकार करना चाहिए।

गुण ग्रहणता

कवि ने दुर्जन के प्रति भी उपकारी भाव प्रकट किया है कहा है कि यदि खल लोग मेरे काव्य में कोई दोष निकालते हैं तो अच्छा ही है, दोष निकालने के बाद मेरा काव्य निर्दोष हो जायेगा। जैसे निस्सार भूत खली को भी यदि गाय खा लेती है तो उसका दूध और बढ जाता हैं । यहा कवि की महानता प्रकट होती है कि दुर्जन लोग दोषग्राही होने पर भी उपेक्षा के पात्र नहीं हैं।

दुर्जन और सज्जन

कवि ने दुर्जनों और सज्जनों करते हुए कहा है, कि दुर्जन उलूक (उल्लू) के समान हैं। जिस प्रकार प्रकाश सारी दुनियाँ को अच्छा लगता है लेकिन उल्लू प्रकाश को देखकर खेद खिन्न हो जाता है । उसी प्रकार सद्गुणी को देखकर सारे संसार के भले लोग प्रसन्नचित्त होते हैं लेकिन खल (दुर्जन) खेदखिन्न होता हुआ क्रोधित होता है । दुर्जन को उलूक की संज्ञा देते हुए अंधकार प्रिय बताया हे और सज्जनों को गुण रूप प्रकाश प्रिय कहा हैं

श्रद्धेय आचार्य

कवि ने अपने काव्य में कुछ आचार्यों के नामआलेखित किये हैं जैसे - भद्रबाहु स्वामी का नाम स्मरण करते हुए कहा है कि भद्रबाहु तक जैन धर्म के अनुयायियों की स्थिति एक रूप रही है । पुन इन्हीं के काल में दो धाराओं में परिणत हो गयी।

भद्रबाहु के चरणो का भ्रमर के समान चन्द्रगुप्त को भी प्रासंगिक किया है लेखक ने समन्तभद्र आचार्य को श्लेषात्मक रूप से उल्लेखित करते हुए कहा है कि मेरी यह कविता समीचीन है, भद्र है, लेकिन दूसरा अर्थ अपने श्रद्धेय आचार्य को भी प्रकट कर रहा है कि उत्तम कविता तो समन्तभद्र आचार्य कर सकते हैं हम तो नाम मात्र के कवि हैं। इस प्रकार अपने श्रद्धेय आचार्य का नाम स्मरण कर उनके समक्ष अपनी लघुता प्रकट की है इसी प्रकार अकलंक स्वामी का भी वीरोदय काव्य मे स्मरण किया गया है । प्रथम अध्याय मे अकलक शब्द का प्रासगिक अर्थ लिया गया है कि मेरी कविता कलक से रहित अकलक को प्रतिपादित करती है और दूसरे अर्थ में अकलंक स्वामी का नाम पर प्रकट होता है इसी प्रकार प्रभाचन्द्र आचार्य को भी प्रासगिक कर कवि लिखते हैं कि चन्द्रमा की प्रभा मे कुमुद जिस प्रकार विकसित होता है उसी प्रकार से आपके हृदय रूपी कुमुद को कविता रूपी चन्द्रमा की प्रभा प्रफुल्लित करेगी यहाँ भी दूसरा अर्थ प्रभाचन्द्र आचार्य के नाम को प्रकट करता है '

उपरोक्त दोनो आचार्यों का संयुक्त अर्थ इस प्रकार प्रकट होता है कि जिस प्रकार चन्द्रमा की चन्द्रिका कलक रहित होती है कुमुदो को विकसित करती है ओर संसार के अन्धकार को दूर करती हैं उसी प्रकार प्रभाचन्द्र आचार्य के न्याय कुमुद चन्द्र ग्रन्थ रूप सुन्दर वाणी अकलक देव के दार्शनिक अर्थ को प्रकाशित करती हैं ससार में हर्ष को बढाती हैं लोगों के अज्ञान को दूर करती हैं ऐसी वाणी सदा जयवन्त रहे ।

कवि ने पूज्यपाद आचार्य का भी तीसरे सर्ग में नाम स्मरण किया है कि पूज्यपाद आचार्य ने मनुष्य के लिए मृत्व सज्ञा दी लेकिन राजा सिद्धार्थ ने स्वर्णादि जड पदार्थों को मृत् के रूप मे गिना अर्थात मिट्टी के रूप मे गिना ।

15 वें सर्ग मे शुभ चन्द्र सिद्धान्ति देव का नाम स्मरण करते हुए कहा है कि जैन धर्म को मानने वाली सत्यरस नागार्जुन की धर्मपत्नि जायिकव्वे शुभचन्द्र सिद्धान्त देव की शिष्या थी सर्ग 15वें के 42वें श्लोक में पद्मनन्दी सिद्धान्ति देव का नाम स्मरण करते हुए कहा है कि इनकी शिष्या कदम्बराज कीर्ति देव की आर्गा मालला थी'।

नेमिचन्द्र - सिद्धान्त चक्रवर्ती का नाम स्मरण करते हुए कवि ने कहा है, कि चामुण्ड राय उनकी पत्नि एव माता ये तीनों इनके सेवक थे 15वें सर्ग के 46वें श्लोक में प्रभाचन्द्र सिद्धान्त देव का भी नाम स्मरण किया हैं।

वीर प्रभु रूपी चन्द्रोदय

कवि ने वीरोदय काव्य के प्रथम सर्ग में इस भूतल की आज से 25सौ वर्ष पूर्व की दर्दनाक एव दयनीय बीभत्स स्थिति का वर्णन किया है जो हृदय विदारक है कि धर्म के नाम पर लोग पशुओ की बलि यज्ञ में देने लगे थे और यहाँ तक की नरबलि भी यज्ञों की आहुति बन चुकी थी। सबसे बडा अनर्थ लेखक ने यह बताया कि लोग रसना एव शिश्न इन्द्रिय के वशीभूत होकर वेद वाक्यो के हिंसात्मक एवं व्याभिचारात्मक अनर्थ अर्थ निकालकर लोगो को कुमार्ग की और ले जाते हुए धर्मान्धता मे आच्छादित करने लगे थे। धर्म के नाम पर हिंसा ने पिशाचता का रूप धारण कर लिया था लोग जगदम्बा के सामने अपने पुत्रों का भी गलभंजन करने में नहीं हिचकते थे, इस दुष्कृत्य को दृष्टि में रखकर लेखक ने कहा है कि पृथ्वी का हृदय भी विदारकता को प्राप्त हो गया था इसलिए बार-बार भूकम्प आने से पृथ्वी फट जाती थी मानो इस हिंसात्मक दर्दनाक घटनाओं के प्रति संवेदना प्रकट कर रही हो। कवि का अभिप्राय है कि 2500 साल पूर्व भी भूकम्प की बहुलता के मूल कारण ये हिंसात्मक तांडव नृत्य ही थे। जातीय मदान्धता भी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। इस प्रकार अनेक बिभत्स चित्रों का चित्रण करते हुए इस सर्ग के अन्तिम श्लोक में कहा है कि ऐसी अक्षत्रियोचित निन्दनीय अन्धकार की व्याप्तता के समय पर वीर प्रभु रूप महान चन्द्र का उदय हुआ ।

कवि का परिचय कवि की लेखनी से

कवि ने प्रत्येक सर्ग की समाप्ति पर सर्गों की श्लोक संख्या के अलावा प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक नया श्लोक लिखकर अपना स्वयं का परिचय इस प्रकार से दिया है कि श्रीमान् श्रेष्ठी चतुर्भुज एवं घृतवरी देवी से उत्पन्न हुए वाणीभूषण वर्णी (बालब्रह्मचारी) पण्डित भूरामल ने इस वीरोदय नामक महाकाव्य को रचा है । यहाँ लेखक ने अपने नाम के आगे स्वय अपनी लेखनी से वाणी भूषण उपाधि लगाई इससे लगता है कि कवि की वाक्‌पटुता इतनी प्रसिद्ध थी कि लोग उन्हें मूल नाम से न पुकार कर वाणी भूषण नाम से पुकारते होंगे। यहां पुकारने का अर्थ उनके नाम के आगे वाणीभूषण शब्द प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया और उपाधि भी सहज/सरल प्रसिद्ध उपनाम बन गई होगी इसी कारण से लेखक को स्वयं अपने नाम के आगे उपाधि लगाने में संकोच नहीं हुआ अर्थात यह नाम से भी अधिक प्रभावकारी हो गई थी। जैसा नेमिचन्द आचार्य का नाम लेते ही पता नहीं चलता कि ये कौन से नेद्रचन्द्र आचार्य हैं पर सिद्धान्त चक्रवर्ती कहते ही पता चलता है कि यही गोम्मटेश बाहुबली की प्रतिष्ठा कराने वाले चामुण्डराव के गुरू थे ।

जम्बूद्वीप

कवि ने द्वितीय सर्ग में जम्बूद्वीप का वर्णन अलकारिक ढग से प्रस्तुत किया है । मेरू पर्वत की ऊँचाई को ध्यान में रखते हुए कहा कि मेरू पर्वत मानों हाथ उठाते हुए कह रहा है कि चारित्र धारण करो मोक्ष तुम्हें सरलता से मिल जायेगा । यहा लेखक की चारित्र अनुरागता प्रकट होती है, क्योंकि अनादि अनिधन जडरूप पर्वत से भी चारित्र की महानता की उद्घोषणा करा दी । जम्बूद्वीप के सात खण्डों को सात तत्त्वों की उपमा दी है और जिस प्रकार सात तत्त्वो मे सुचतुर तथा हर्ष को प्राप्त करने वाला जीव तत्व प्रधान है । उसी प्रकार इन सात क्षेत्रो में जम्बूद्वीप की दक्षिण दिशा में अतिसमृद्ध भरत क्षेत्र है'

जम्बूद्वीप के सात खण्डो मे भरत क्षेत्र को महान कहने का अभिप्राय लेखक का मेरी दृष्टि से यह रहा होगा कि लेखक भरत क्षेत्र का था इसलिये जननी और जन्मभूमि की प्रशंसा हमेशा करना चाहिये इसी बात को ध्यान मे रखकर लेखक ने भारतवर्ष को जीव तत्व के समान प्रधान कहा । अथवा दूसरा कारण यह भी हो सकता है कि महाकाव्य के मूलनायक भी कर्म एव साधना स्थली भारतवर्ष होने के कारण भारत वर्ष को प्रधान कहा है । वैसे तो जम्बूद्वीप के सात क्षेत्रों में विदेह क्षेत्र महान है। जम्बूद्वीप के धनुष के समान बताकर हिमालय पर्वत को उसकी डोरी के समान कहा है । जैन अन्य शास्त्रो मे हिमालय शब्द जम्बूद्वीप के 6 महा पर्वतों के नामों मे नहीं आया । हिमवन् पर्वत तो आया है । यह हिमालय शब्द हिमवन् पर्वत के अपरनाम के रूप में प्रयुक्त किया गया है ।

कुण्डनपुर एव राजा सिद्धार्थ

भारत क्षेत्र के आर्य खण्ड में विदेह नाम के देश में कुण्डनपुर नामक नगर बताया है जिसे महावीर की जन्मस्थली सिद्ध किया है लेकिन वर्तमान परिप्रेक्ष्य में विदेह क्षेत्र किसे कहा जाए, कहा पर कुण्डनपुर का अस्तित्व माना जाय ऐसा कोई संकेत यहाँ नहीं है । डॉ नेमीचन्द ज्योतिषाचार्य ने तो विदेह क्षेत्र का अर्थ वैशाली लिया है और कुण्डनपुर को वर्तमान में वैशाली के पास वसाढ अथवा बासकुण्ड नामक स्थान बतलाया है ।

लेकिन वीरोदयकार ने अपने ग्रंथ में इन प्राचीन नामों को कहां पर माना जाय इस सम्बन्ध में कोई भी संकेत नहीं दिया है । इसी दूसरे सर्ग में कुण्डनपुर के वैभव का वर्णन करते हुए कहा है कि ऐसे नगर की महान व्यवस्थित रचना से जनमानस को शिक्षा लेनी चाहिए । कुण्डनपुर के नगर के प्रासादों का वर्णन करते हुए उस नगर के मध्य में चैत्यालय का भी वर्णन किया है ।

इससे यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि कवि की दृष्टि से चतुर्थ काल में महावीर के जन्म स्थान कुण्डनपुर के मध्य में चैत्यालय स्थित थे ।

इसी प्रसंग को प्रासंगिक करते हुए कवि ने कहा है कि भोग रूपी कीचड़ के मध्य कमल के विकसित हो जाने से कीचड़ की दुर्गंधि कमल की सुगंधि में परिणत हो जाती है । अर्थात् कुण्डनपुर नगरी के भोग विलासिता में डूबे हुए लोगों को चैत्यालय की शरण कमल के समान जीवन को सुगंधमय बना देती है । अर्थात् अर्थ और

काम पुरुषार्थ के साथ यदि व्यक्ति धर्म पुरुषार्थ भी करता जावे तो कीचड में होकर भी व्यक्ति अपना जीवन कमल जैसा सुन्दर सुगंधित, सुभाषित बना सकता है ।

इस नगर में कुछ वस्तुओ का अभाव भी था लेकिन उन अभावो को कवि ने इस प्रकार प्रकट किया है कि उन वस्तुओ का उन स्थान पर उस समय अभाव होना ही नगर की महानता का प्रदर्शित करता है ।

कुण्डनपुर के शासक का नाम तीसरे सर्ग मे सिद्धार्थ बताया है । ओर राजा सिद्धार्थ के गुणो का वर्णन करते हुए कहा है कि यह सिद्धार्थ राजा त्रिवर्ग मे तो निष्णात था और चतुर्थ वर्ग को प्राप्त करने की जिज्ञासा रखता था, । इसके उदाहरण मे कहा है कि मानो राजा कवर्ग, चवर्ग, टवर्ग को यदि कर चुका है ओर पवर्ग को याद करने की कोशिश कर रहा है। अर्थात् अर्थ काम धर्म पुरुषार्थ तो भलीभाति करता हे ओर मोक्ष पुरूषार्थ को प्राप्त करने की कोशिश करता है । यहा कवि का अभिप्राय है कि मनुष्य गृहस्थ को तीन पुरुषार्थों को निरन्तर करते रहना चाहिए और चौथा मोक्ष पुरुषार्थ करने की हमेशा जिज्ञासा बनाए रखना चाहिए ।

इसी सर्ग मे राजा सिद्धार्थ की रानी का नाम त्रिशला न बताकर प्रियकारिणी नाम बताया गया है ।

गर्भावतरण व कलिकाल

भगवान् महावीर के गर्भावतरण वर्षा ऋतु मे आषाढ मास की शुक्ल पक्ष की षष्ठी तिथि मे बताया है। इसके बाद गर्भावतरण के 6 माह पूर्व रत्नवृष्टि आदि अन्य क्रियाओ के सम्बन्ध मे लेखक ने कोई संकेत नहीं किया है । चतुर्थ सर्ग का हिन्दी व्याख्या मे कलिकाल के लक्षणो को व्यक्त किया हे । हालांकि मूल श्लोक मे कलिकाल शब्द नही आया है । लेकिन हिन्दी और संस्कृत व्याख्या मे उपमा के रूप मे कलिकाल शब्द प्रयोग किया है । कलिकाल मे प्राय लोग मूर्ख होते है और पाप के कारण सन्मार्ग का लोप कर देते हैं । इस कलिकाल की विचित्रता है कि वर्षाकाल के समय मेंढको के समान उछल-कूद करने वाले वक्ता दृष्टिगोचर होने लगते हैं। और यथार्थ वक्ता अल्पभाग मे कभी-कभी कहीं कही पर दृष्टिगोचर होते है ।

जैसे वर्षा ऋतु मे कोयल मौन धारण कर लेती है । उसी प्रकार कलिकाल मे सज्जन लोग दोष रूपी कीचड को देखकर मौन धारण कर लेते है । आगे इसी सर्ग मे सोलह स्वप्नो का चर्चा रानी के मुख मे न कहलवाकर रानी के द्वारा देखे गये स्वप्नो का राजा ने अपने निमित्त ज्ञान से जानकर स्वत उनकी गणना एव फल बतलाये है । इनके फलो के वर्णन मे भी महापुराण वर्धमान चरित आदि पुराणो मे भिन्नता है । लगता है लेखक ने वर्तमान समय को दृष्टि मे रखते हुए अपनी बुद्धि बल मे युक्तियुक्त एव दार्शनिक ढग मे प्रस्तुत किये ।

गर्भावतरण के इसी प्रसग मे रानी की प्रशसा करते हुए राजा सिद्धार्थ कहते है तुम्हारी आज की चेष्टाएं आप्त मीमांसा के समान समीचीनता अथात भद्रता को लिए हुए निष्कलक हो रही है जो निष्कलक चेष्टाओ के धारी तीर्थंकर प्रभु के आगमन की ही प्रतीक है । इसमे समतभद्र की आप्त मीमासा एव अकलक स्वामी के द्वारा आप्तमीमासा के ऊपर अष्टशती के ग्रथ का भी उपमा के रूप मे प्रस्तुत किया है । इससे लगता है कि कवि को दार्शनिक आचार्य एव दार्शनिक ग्रथ बडे प्रिय थे तभी तो राजा सिद्धार्थ के द्वारा अपनी प्रियकारिणी रानी के लिए प्रशसा के रूप में उपमेय किये हैं । श्लेषरूप में देवियो द्वारा तीर्थंकरो की माता से जो प्रश्न प्रस्तुत किये वह भी लेखक ने वर्तमान आधुनिक शैली को ध्यान मे रखते हुए किये गये है क्योकि उन प्रश्नो मे बीसवीं शताब्दी की ज्वलत समस्याओ को अभिव्यक्त किया है और उनके उत्तर भी माता के द्वारा आधुनिक शैली मे दिलवाये हैं, जिससे पाठक वर्तमान समस्याओ से निवृत्त हो सके ।

देवियां

इसी प्रसग मे आगत देवियो के सम्बन्ध मे बडो विचित्र बात प्रस्तुत की है कि जैसे ही वह देवियां माता की सेवा के लिए प्रस्तुत होती हैं तो प्रियकारिणी माता मुख मे श्रीदेवी को धारण कर लेती है, नेत्रों में ह्री मन में धृति, कुचों मे कीर्ति, कार्य सम्पादन मे बुद्धि, धर्मकार्य मे लक्ष्मी को धारण कर उनकी सेवा स्वीकार करती है ।

यह प्रसग विचारणीय है कि अगों पर स्थापना करने का अर्थ क्या लिया जाय । छठें सर्ग में तीर्थंकर की माता का अलकारिक वर्णन किया गया है ।

ऐरावत हाथी

ऐरावत हाथी का उल्लेख करते हुए एक विशेष आश्चर्यकारी बात उल्लेखित की कि ऐरावत हाथी के ऊपर सौधर्म इन्द्र भगवान् महावीर को अभिषेक हेतु पर्वत पर ले जा रहा था । वह ऐरावत हाथी जिस समय ज्योतिषमण्डल में से प्रवेश कर रहा था उस समय उसने सूर्य को कमल समझ कर अपनी सुण्डा में उठा लिया । उठाते ही सूर्य की उष्णता से वह त्रसित हो गया और उसे झिडक दिया ।

यह दृश्य देवताओ के लिए हसी का विषय बन गया । लेकिन यह विषय जैनागम के अनुसार इष्ट प्रतीत नहीं होता हास्य अलंकार को ही मात्र प्रकट करता है क्योंकि जैन शास्त्रानुसार सूर्यमण्डल को कोई भी उठा नहीं सकता और न ही उसकी गति रोकी जा सकती है । दूसरी बात ऐरावत हाथी देवरूप एक विक्रिया होती है फिर उसे कमल समझ कर उठा लेना यह भी विषय विचारणीय है और इसी प्रसंग में श्री जी को ऐरावत हाथी के सिर पर बेठाया गया है सो यह भी नायक को हाथी के सिर पर बेठाना प्रशस्त कला नहीं मानी जा सकती । क्योंकि सिर पर तो महावत ही बेठता है, मुख्य अधिष्ठाता तो हाथी की पीठ पर सिहासन आरूढ़ होता है ।

अभिषेक एव नामकरण

अभिषेक के प्रसग में लेखक ने बड़ी विचित्र बात अलकारिक ढग से प्रस्तुत की है कि क्षीर सागर वृद्ध हो जाने कारण से वह स्वय अभिषेक को नहीं आ सका इसलिए देवता लोग मानो कलशो मे अभिषेक के लिए क्षीरसागर को उठाकर लाये हैं ।

भगवान् के अभिषेक के महत्त्व के सम्बन्ध मे कहा है कि जल के अभिषेक करने से भगवान् पवित्र नही होते बल्कि वह जल भगवान का स्पर्श पाकर पवित्र हो जाता है । और देखा भी जाता है कि जो जल मस्तक पर धारण करने योग्य नहीं था लेकिन प्रभु का स्पर्श करके वह जल आता है तो वही जल गन्धोदक का रूप लेकर भक्तो के द्वारा मस्तिष्क पर धारण कर लिया जाता है । अभिषेक के पूर्व जल स्वच्छ कहा जा सकता है पवित्र नहीं । अभिषेक के बाद ही जल पवित्र माना जाता है । यह श्लोक वर्तमान मे तथाकथित विद्वानो के लिए शिक्षाप्रद है जो यह मानते हैं कि प्रतिमाओ का अभिषेक नही प्रक्षाल होना चाहिए और प्रक्षाल सफाई के लिए किया जाता है और सफाई के लिए जो काम मे लिया जाता है वह गन्धोदक की संज्ञा न पाकर गन्दे जल की सज्ञा पा जाता है । पहली बात तो यह है कि प्रक्षाल शब्द जैन ग्रन्थो मे नहीं मिलता है अभिषेक शब्द पाया जाता है ।

दूसरी बात प्रतिमा की सफाई हेतु अभिषेक नहीं किया जाता है क्योंकि स्वर्गों मे अकृत्रिम प्रतिमाओं का अभिषेक भी देवताओ द्वारा किया जाता है यहां विचारणीय बात है कि स्वर्गों मे कौनसी धूल से प्रतिमाए गन्दी होती है जो अभिषेक आवश्यक बताया गया है । इन सब बातो को ध्यान मे रखते हुए कवि ने स्पष्ट कर दिया कि भगवान् का अभिषेक जल मे पवित्रता लाने के लिए और जल की पवित्रता से अपने जीवन को पवित्र बनाने के लिए अभिषेक की क्रिया की जाती है । इसी अभिषेक के प्रसंग में महसा शब्द का हिन्दी व्याख्या में इस प्रकार अर्थ निकाला गया कि भगवान् के ऊपर 1008 कलश एक साथ ढोले गये थे ।

यहा यह बात विचारणीय है कि 1008 कलश एक साथ ढाले गये थे या क्रम से एक के बाद एक ढोले गये थे। हालाकि मूल मे भी एक साथ का भाव निकलता है, क्योंकि कहा है कि इन्द्र 1008 भुजाओ से अभिषेक किया ।

इस प्रकार सौधर्म इन्द्र वर्द्धमान बालक का अभिषेक करके कुण्डनपुर लाकर राजा सिद्धार्थ को सौंपता है उस समय राजा सिद्धार्थ बालक का नामकरण वर्द्धमान करते हैं । कहीं-कहीं अन्य शास्त्रों में भगवान् का नामकरण

सौधर्म इन्द्र करता है। ऐसा उल्लेख मिलता है ।

कुबेर

आठवें सर्ग में कुबेर के लिए देवेन्द्र का कोषाध्यक्ष कहा है ।

युवावस्था एव विवाह अवस्था

इसी सर्ग मे कहा है कि महावीर की युवावस्था देखकर राजा सिद्धार्थ ने महावीर के समक्ष विवाह का प्रस्ताव रखा इस विवाह के प्रस्ताव को महावीर ने बडे तर्क पूर्ण उत्तर देकर अस्वीकार कर दिया ।

इसी प्रसग मे एक विशेष बात कही है जो विचारणीय है कि भगवान् महावीर विवाह प्रस्ताव ठुकराते हुए कहते हैं कि मैं अकेला ही ब्रह्मचर्य व्रत धारण नहीं कर रहा हूँ । बल्कि मुझसे पूर्व पार्श्वनाथ, ब्राह्मीसुन्दरी एव भीष्म पितामह भी बाल ब्रह्मचारी हुए हैं ।

इन आदर्श पुरुषो का नाम तीर्थंकर द्वारा स्मरण कराना एक विशेष बात है क्योंकि तीर्थंकर किसी आदर्श पुरुष का नाम स्मरण कर अनुकरण नहीं करते ।

महावीर का आत्म चिन्तन एव वैराग्य

विवाह के प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए महावीर आत्म चिन्तन करते हैं जिसमे मुख्य रूप से इस जगत् मे व्याप्त मूढताओ पर विचार करते हैं कि जगदम्बा बकरे की बलि से प्रसन्न होती है ऐसा धूर्त लोग कहते हैं । इस पर महावीर विचारते है कि ये जगदम्बा को तो ये लोग जगत् की मा मानते है, तो बकरा जगत् का प्राणी होने के कारण जगदम्बा का बेटा हुआ और जब मा ही पुत्र का खून पीने लग जाए तो समझ लेना चाहिए कि रात्रि मे सूर्य का उदय होना सम्भव है ।

इस प्रकार पच पापो से इस पृथ्वी को वेष्टित देखकर महावीर सविग्न एव विरक्त हो जाते हैं । आगे दसवें सर्ग मे दीक्षा के प्रसगो को प्रासगिक किया गया है जिसमे एक विशेष बात कही गई है कि दीक्षा के बाद देव प्रभु के जीवन मे अनेक रोमाचकारी दर्दनाक घटनाए घटी है । मात्र इतना ही कहकर छोड दिया । उन घटनाओ या उसर्गों का वर्णन लेखक ने नहीं किया ।

तपस्या पूर्वभवो का वर्णन

दीक्षा के बाद भगवान् महावीर अवधिज्ञान से अपने पूर्व का भव जानते हैं और उन्हीं के सबध मे चिन्तन करने लग जाते हैं ।।[3] यह बात विशेष विचारणीय है क्योकि अन्य शास्त्रो मे दीक्षा के बाद मात्र आत्म चिन्तन करते हैं न कि अपने पूर्व भवो का स्मरण करते हैं ।

आगे तपस्या का वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि भगवान एक मास दो मास, तीन मास, चार मास, छह मास का उपवास करते थे ।

ऐसे मासो उपवास करने का वर्णन श्वेताम्बर ग्रन्थों मे ही मिलता है, दिगम्बर ग्रथो मे नहीं । दिगम्बर ग्रन्थों मे तो मात्र तीर्थंकर की दीक्षा के बाद ही पारणा का उल्लेख मिलता है ।

केवलज्ञान एवं इन्द्रभूति समर्पण

12 वर्ष के बाद भगवान् महावीर को केवल ज्ञान हुआ उसके बाद प्रभामण्डल का उल्लेख करते हुए हिन्दी व्याख्या मे प्रभा मण्डल का अर्थ मुख मण्डल का तेज लिया है । जिसमें देखने वालों के भवभवान्तर दृष्टिगोचर होते हैं । लेकिन सुनने मे तो यह आया है कि भगवान् के सिर के पीछे भामण्डल रहता है, उसमें भवभवान्तर दिखते हैं ।

भगवान् को केवलज्ञान होने के बाद समवशरण की विभूति एव वैभव के सबंध में लोगों द्वारा प्रशसा

सुनकर इन्द्रभूति विचार करता है कि मैं इतना बड़ा ज्ञानी वेद वेदागों को जानने वाला हूँ फिर भी मुझे आज तक इस प्रकार वेदांगों की विभूति प्राप्त नहीं हुई । ऐसा विचार करता हुआ सोचता है कि चलो मैं स्वयं उस विभूति प्राप्त करने के कारणो को देखता हूँ और वह स्वयं ही समवशरण की ओर चल देता है ।

वीरोदय महाकाव्य का यह विषय विद्वानो के लिए विशेष विचारणीय है कि क्योंकि दिगम्बर परम्परा में अन्य शास्त्रकारो ने भगवान् महावीर को केवलज्ञान हो जाने के बाद 66 दिन तक दिव्यध्वनि नहीं खिरी तब इन्द्र ने विप्र का भेष बनाकर पांच अस्तिकाय छ द्रव्य, साततत्व आदि सम्बन्धी प्रश्न को लेकर इन्द्रभूति के आश्रय में आता है और विनय पूर्वक इन्द्रभूति से यह प्रश्न पूछते हुए कहता है कि आप मेरे गुरु के इस प्रश्न का उत्तर दीजिए, तब इन्द्रभूति उत्तर देने में असमर्थ होने के कारण अहंकारपूर्वक इस प्रश्न का उत्तर तुम्हारे गुरू को ही दूंगा ।

इस प्रकार इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति को समवशरण में लाया गया था । लेकिन लेखक ने 66 दिन तक दिव्य ध्वनि नही खिरने का उल्लेख नहीं किया है और न ही इन्द्र द्वारा इन्द्रभूति को लाने के प्रसंग का उल्लेख किया है । इन्द्रभूति के समवशरण पर स्वत आने पर जैसे ही इन्द्रभूति ने समवशरण की विभूति को देखा । आश्चर्यकित रह गया और अपने ज्ञान को मिथ्याज्ञान विचारता हुआ सम्यग्ज्ञान की ओर स्वत प्रभावित होने लगा । भगवान् से कहता है कि हे भगवान् मुझे सद्ज्ञान देने की दया करो । ऐसा कहते हुए इन्द्रभूति भगवान् के चरणो में गिर पडा ।

यह विषय भी अन्य शास्त्रों से हटकर प्रस्तुत किया गया है जो विचारणीय है क्योंकि अन्य शास्त्रो में तो इन्द्रभृति गोतम मानस्तम्भ को देखते ही अहकार से रहित और मिथ्यात्व से रहित हो गया था । लेखक ने यहा इन्द्रभूति को भगवान् के चरणा में गिरना बताया है सो यह बात भी अन्य शास्त्रों में नहीं मिलती है । अन्य दिगम्बर शास्त्रो मे इस प्रकार कहा है कि इन्द्रभूति समवशरण में पहुँचते ही दीक्षा ग्रहण करता है बाद में भगवान् महावीर का उपदेश होता है । लेकिन लेखक ने भगवान् के उपदेश के बाद गौतम को दीक्षा का प्रसंग बताया है ।

अन्य गणधर

चौदहवे स्वर्ग में ''गणधरो का वर्णन जन्म स्थान उनके माता-पिता आदि का वर्णन संक्षेप मे बडे अच्छे ढग से किया है ।

महावीर की परम्परा मे दीक्षित राजाओ का काल

भगवान् महावीर स्वामी के केवलज्ञान के बाद और निर्वाण के बाद अनेक राजाओं ने दीक्षा ली । जिनमें मुख्य निम्न प्रकार है -

राजाश्रेणिक, दधिवाहन नाम का राजा, पद्मावती रानी, वैशाली नरेश, चेटक, काशी नरेश शंख, हस्तिनापुर के महाराज शिव कोटि वर्ष देश के स्वामी चिलाति, दशार्ण देश के नरेश, वीतमयपुर का नरेश उद्दायन व उनकी रानी प्रभावती, कौशाम्बी नरेश सतानिक और उसकी रानी पद्मावती, उज्जयिनीका राजा प्रद्योत रानी शिवादेवी, जीवन्धर स्वामी, अर्हद्दादास के पुत्र जम्बुकुमार, विद्युच्चोर आदि 500 साथी, सूर्यवंशी राजा दशरथ, रानी सुप्रभा, (यहां सूर्यवशी राजा दशरथ राम के पिता नहीं लेना क्योंकि राम के पिता तो मुनि सुव्रतनाथ के समय में हुए) प्रसन्नजित राजा मल्लिका देवी, दार्कवाहन नरेश की रानी अभय देवी, उष्ट्र देश के नरेश यम, रानी धनवती । इस प्रकार भगवान् महावीर के समय से लेकर एक हजार वर्ष तक राजाओ द्वारा जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करने का उल्लेख मिलता है। उसके बाद भी कुछ अन्य राजाओ व रानियों को जैन धर्म अंगीकार करने की बात की है जैसे कलिंग नरेश खारवेल महारानी सिहयशा देवी, इक्ष्वाकुवशी राजा पद्म की पत्नी धनवती, चन्द्रगुप्त मौर्य उनकी रानी सुषमादेवी, मैसूर नरेश एव उनकी राज पत्नियां पल्लव नरेश की पुत्री एव मरुवर्मा प्रदेश के राजा की रानी कदाच्छी, निर्गुन्द देश के राजा परंलूर एवं उनकी रानी ने लोक तिलक नामका जिनालय बनवाया था ।

नागार्जुन की पत्नी जाकियव्वे जो शुभचन्द सिद्धान्त देव की शिष्या थी, चामुण्डराय, एवं उनकी पत्नी और माता जी नेमिचन्द सिद्धान्त चक्रवर्ती कि सेवक थे, वीर बल्लाल, अचल देवी, कदम्बराज कीर्ति देव की भार्या मालला पद्मनन्दि देव की उपासिका थी, पल्लव राज काडुवेदी की चट्टला नाम की रानी परम साधु भक्त थी उसने एक जिन मंदिर भी बनवाया, गंगहेमाण्डि की रानी चट्टलदेवी भारइसेगटय की पत्नी माचिकव्वे । विष्णु वर्धन राजा की

रानी शांतलादेवी प्रभाचन्द सिद्धान्त देव की शिष्या बनी शान्तला देवी की पुत्री हरियब्बरसी जिन्होंने विक्रम की 12 वीं शताब्दी मे एक जिनालय बनाया जिसका शिखर मणिमाणिक्य से सुशोभित था, जयमणि, सैनापति गगराज और उनकी पत्नी लक्ष्मीमति, चौहान वसी कीर्तिपाल एव रानी महीबला, परमारवशी राजा धरावश की रानी शृगार देवी, इस प्रकार से अनेक राजवशो द्वारा जैन धम का प्रचार प्रसार होता रहा ।

शाकाहार

सोलहवे सर्ग मे लेखक ने मानव मात्र के लिए नीतिप्रद शिक्षा देते हुए शाकाहार एव मांसाहार के गुण दोषों का वर्णन किया है । इसी प्रसग को प्रासगिक करते हुए कवि ने शाकाहार के समर्थन मे मासाहार की कुतर्कणाओं का उत्तर तर्क बुद्धि से दिया है । मासाहारी लोग कहते हैं कि उसी घास से मास बनता है उसी घास से दूध, तो फिर शाकाहारी लोग मास छोडकर दूध क्या पीते हैं और जब दूध पीते है तो मास खाने मे क्या बाधा है? इसके उत्तर मे लेखक ने बडा अच्छा समाधान किया है कि जिस घास से मास बनता है उसी घास से तो गोबर भी बनता है फिर मासाहारी लोग मास मात्र क्यो खाते हैं गोबर भी क्यो नही खाते । इससे ज्ञात होता है कि प्राणिजनित वस्तुओं मे जो पवित्र होती है वह ग्राह्य है अपवित्र नहीं । अत शाकपत्र और दूध ग्राह्य है, मास और गोबर आदि ग्राह्य नही है ।

महावीर का सदेश

सत्रहवे सर्ग मे महावीर के नैतिक सदेशो का वर्णन किया गया है ।

षट्काल

भरत क्षेत्र के षट्कालो का वर्णन करते हुए दूसरे काल को सतयुग नाम से एव तीसरे काल को त्रेतायुग नाम से प्रासंगिक किया है सो यह नाम सज्ञा वैष्णव सम्प्रदाय मे मिलती है । जैन शास्त्रो मे यह नामावली दृष्टिगोचर नहीं होती ।

चतुर्थ वर्ण

चतुर्थ वर्ण के सम्बन्ध मे लेखक ने कहा है कि ऋषभदेव के सौ पुत्रो मे से ज्येष्ठ पुत्र भरत चक्रवर्ती ने अपनी प्रजा मे से धर्मामृत पान करने वाले लोगो मे यज्ञोपवीत सूत से चिह्नित कर ब्राह्मण सज्ञा प्रदान की यद्यपि यह कार्य ऋषभदेव की दृष्टि मे ठीक नहीं था किन्तु भरत चक्रवर्ती ने प्रमाद के वशीभूत होकर यह कार्य किया ।

इस वर्ण की स्थापना के बाद भगवान् शीतलनाथ के समय तक ब्राह्मण वर्ण धार्मिक कर्त्तव्यो का निर्वाह करता रहा। उसके बाद इस वर्ग ने अप्रशस्त हिसात्मक प्रथाओ को स्वीकार कर मनमाने हिसात्मक क्रिया काण्डों का प्रचार प्रसार प्रारम्भ कर दिया ।

इसी सर्ग मे मुनिसुव्रतनाथ भगवान् के समय इसी वर्ण के धारी लोगो मे पर्वत नाम का व्यक्ति हुआ जिसे अज का अर्थ बकरा करके यज्ञो मे बकरे को आहुति देना शुरू कर दिया ।

इस प्रकार से हिसात्मक यज्ञाहुतिया इस चतुर्थ वर्ग द्वारा दी जाने लगी ।

दयानन्द सरस्वती

वेद मंत्रो के अर्थ ब्राह्मण द्वारा हिसापरक निकालने वाली परम्पराओ को दयानन्द सरस्वती ने गलत बताकर उन वेद मत्रो के अर्थ अहिसा परक निकालकर जीवो के ऊपर महान उपकार किया ।

सापेक्षवाद

सापेक्षवाद कथन का उल्लेख करते हुए लेखक ने कहा है कि दूध की प्रकृति भिन्न होती है जो आम शक्ति को बढाती है लेकिन वही दूध दही बन जाने पर भिन्न प्रकृति को लेकर आम को नष्ट करता है । विष्टा मनुष्य के लिए अभक्ष्य और हेय होता है किन्तु वही सुअर के लिए भक्ष्य और उपादेय होता है । इससे सिद्ध होता है कि दुनियाँ में एक ही वस्तु सत् भी है और असत् भी है भिन्न-भिन्न अपेक्षा से । जैसे एक लकीर (रेखा) न छोटी है न बडी है लेकिन उसी के नीचे एक दूसरी रेखा खींच देने पर छोटी बड़ी हो जाती है ।

स्याद्वाद अन्य मतावलम्बियों की दृष्टि में

भगवान् महावीर के स्याद्वाद कथन को पतंजलि महर्षि ने भी अपने भाष्य में स्वीकार किया है तथा मीमासक अनुयायी कुमारिल भट्ट ने स्याद्वाद को ग्रहण किया है इस कथन से लगता है कि आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने अन्य शास्त्रों का भी अध्ययन किया था ।

सचित्ताचित्त अग्नि

अग्नि का विवरण देते हुए कहा है कि काष्ठ, कोयला, बिजली, दीपक आदि की तो लौ सचित्त अग्नि है और जो अग्नि भोज्य पदार्थों में प्रवेश हो जाती है वह अचित्त अग्नि है । अचित्त अग्नि का उपयोग सुतपस्वी जनों को करना चाहिए । अचित्त यह प्रसग विचारणीय है कि सुतपस्वी जन अचित्त अग्नि का प्रयोग कैसे करेगें और अचित्त अग्नि के जो लक्षण बतलाये हैं ऐसा अक्षण अन्य कहीं शास्त्रों मे दृष्टिगोचर नहीं हुआ ।

इसी उन्नीसवें सर्ग मे स्याद्वाद अनेकान्त एव छ द्रव्य आदि का दार्शनिक ढंग से वर्णन किया गया है।

सर्वज्ञ सिद्धि

सर्वज्ञ सिद्धि करते हुए कवि ने कहा है कि जब छद्मस्थ व्यक्ति भी अपने स्मृतिज्ञान के माध्यम से कुछ-कुछ त्रिकाल विषयो को जान लेता है तो फिर केवली भगवान् को जानने में क्या बाधा है । आगे कहा है कि बाह्यसाधन के अभाव मे केवली भगवान् कैसे जान सकते हैं तो लेखक ने कहा है कि प्रकाश आदि बाह्य साधनो के बिना बिल्ली ओर उल्लू आदि पदार्थ देख लेते हैं । फिर केवली भगवान् को बाह्य साधनो के बिना देखने में क्या बाधा है ।

काल दोष (पचम काल)

लेखक ने काल दोष की महिमा बताते हुए कहा है कि वीर प्रभु का निर्दोष और विज्ञान संतुलित जिनधर्म का उपदेश जगत् के प्राणियो के लिए हितकारी था लेकिन महावीर के अनुयायियों ने बुद्धि की अल्पता एवं विस्मरण शीलता के कारण अन्यथा रूप से प्रचारित कर दिया । यह कलिकाल की विशेषता है ।[2] और इसी प्रसग मे यह बात भी उल्लेखित की है कि भद्रबाहुस्वामी तक जैन धर्म की परम्परा एकरूप रही उसके बाद दिगम्बर और श्वेताम्बर दो धाराओ मे विभक्त हो गयी ।

श्रुत केवली भद्रबाहु के समय 12 वर्ष के अकाल का उल्लेख करते हुए कवि ने कहा है कि भद्रबाहु स्वामी तो दक्षिण चले गये लेकिन स्थूलभद्र आदि मुनि उस दुर्भिक्ष के प्रभाव के कारण पतित हो गये और वीर वाणी को मनगढत अर्थ प्रकट कर सगृहीत कर लिया जो लोग भद्रबाहु के यथार्थ अभिप्राय जानते थे उन लोगो ने स्थूलभद्र के द्वारा सग्रहीत वचनों को सदोष बताते हुए संशोधित करने को कहा लेकिन स्थूलभद्र ने सशोधित नहीं किया और दिगम्बर वेष को छोडकर वस्त्र अंगीकार करते हुए भी अपने आप को मुनि मानने लगे । इसी शिथिलाचार का समर्थन करते हुए स्थूलभद्र के 500 वर्ष के बाद देवर्धिगणी ने द्वादशांग के नामों को लेकर बारह शास्त्र रचकर स्थूलभद्र की धारणा का समर्थन कर दिया ।

दिगम्बरो ने भी भद्रबाहु स्वामी के बाद महावीर के मार्ग पर स्थिर रहने का भरपूर प्रयास किया लेकिन कालदोष के कारण एवं श्वेताम्बरीय परम्परा की शिथिलता की निकटता के कारण तथा हीन शक्ति के कारण दिगम्बर साधु भी जगलों को छोडकर नगरो मे रहने लगे यह कलिकाल की महिमा है । इस बात को आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने स्पष्ट किया है कि दिगम्बर साधुओं में जो हीनता आयी यह मजबूरी के कारण आई ।

चन्द्रगुप्त

चन्द्रगुप्त का उल्लेख 22 वे सर्ग के 12 वें श्लोकों में करते हुए जैन धर्म का अनुयायी बताया और उसके पुत्र बिन्दुसार, तत्पुत्र, अशोक, तत्पुत्र सम्प्रति, आदि शेष राजाओं के काल तक अहिंसा धर्म की प्रधानता बनी रही । उसके बाद राजा एवं प्रजा में भिन्न-भिन्न मतावलम्बी हो गये और यज्ञों में पशु पति तथा नर बलि तक को भी स्थान मिलने लगा ।

विक्रमादित्य

जैन वैदिक परम्पराओ का परिवर्तन इस प्रकार की हिंसात्मक यज्ञाहुति एव सम्प्रदाय विद्वेषता को देखकर समन्वय बैठा। इस समन्वय पद्धति में जैन की अहिंसात्मक प्रवृति को वैष्णवों ने अगीकार कर यज्ञो में पशु बलि देना बंद कर दिया । दिगम्बरो मे यज्ञ आदिक व्यतर देवी-देवताओ की पूजन का संस्कार वैदिक परम्पराओ से आ गया । लेखक का मानना है कि देवी-देवताओं की पूजा वैदिक परम्परा से है । इस प्रकार की आदान प्रदान की पद्धति में जैन धर्म एक जाति प्रधान धर्म बन गया ।।' और गृहस्थो और मुनियों मे गणगच्छ आदि प्रकट हो गये और अहकार के वशीभूत होकर एक दूसरे की आम्नायो को ग्लानि भाव से देखने लगे । बाह्य आडम्बरो के कारण आतरिक धर्म वस्तु को भूल गये । कितने गृहस्थ प्रतिमा पूजा का निषेध करने लगे और कितने ही लोग मुनियों को मूर्तिपूजन आवश्यक बताने लगे ।

कितने लोग वीतरागी प्रतिमाओ को वस्त्रादिक पहनाना आवश्यक मानने लगे । कितने ही लोग मूर्ति आदि का अभिषेक करना अनावश्यक बतलाने लगे ।

कई लोग अग्नि से सीझे बिना ही पत्र को अचित्त मानने लगे । कई लोग साधु के अलावा किसी की जीवन की रक्षा करना पाप हे ऐसा बतलाने लगे । इन सब बातो पर लेखक ने खेद प्रकट करते हुए कहा कि यह कलिकाल का ही प्रताप है ।

जैन धर्म क्षत्रियो का है

लेखक ने जैन धर्म के स्वामी का वर्णन करते हुए कहा है कि यह जैन धर्म क्षत्रियो के द्वारा धारण करने योग्य है लेकिन इस कलिकाल मे यह जैन धर्म व्यापार करने वाले वैश्यो के हाथ मे पहुच गया है इसलिए धर्म में भी वणिक्वृत्ति आ गयी है । वणिक् वृत्ति की स्थिति बताते हुए कहा है कि अपनी अपनी जुदी दुकान लगाना ओर चलाना ही जिनका मुख्य कार्य हे ऐसी स्थिति मे धर्म मे गणगच्छ पथ आदि भेद पडना कोई आश्चर्य की बात नहीं हे ।

पचम काल मे भी धर्म

उपरोक्त बातो की हीनता बताते हुए कवि ने कहा हे कि अपनी विपरीतताओ के बावजूद भी भगवान् महावीर के सच्चे अनुयायी आज भी पाये जाते हैं जो जितेन्द्रिय हे जिनका जीवन दूसरो के लिए दुखदायी नही है बल्कि सबका कल्याण करने वाला है ।

इस प्रकार से आज पचमकाल मे भी धर्म और धर्मात्माओ को अस्तित्व भी लेखक ने सिद्ध किया है।

ग्रन्थकार की भावना

इस ग्रन्थ का उपसहार करते हुए लेखक ने लिखा है कि मेरा यह ग्रथ मृदुता रहित, कटुता पूर्ण होने से सौम्यता का उल्लंघन तो कर रहा है लेकिन संतोषजनक सूर्य भी कमल को प्रफुल्लित करने का कारण बनता है । उसी प्रकार यह ग्रथ सज्जन लोगो का प्रफुल्लित करने मे कारण बनेगा, ऐसा मेरा विश्वास हे । मै तो रसोइया के समान वस्तु का निर्माता हूँ । स्वाद कैसा है यह तो खाने वाले पाठक ही निर्णय करेगे ।

लेखक ने यह भावना भाई है कि मेरा यह मन अहकार रहित होकर अरिहत एव मुनियो को नमस्कार करता रहे । इस लेख मे लेखक ने अपनी साधु भक्ति प्रकट की है ।।' शासक लोग प्रजा को उपद्रवो मे रहित करते रहे । समय पर वृष्टि हो, विद्वानो का मन सदा काव्य पढने मे लगा रहे, जैन धर्म का सर्वत्र प्रचार-प्रसार हो, वीरोदय की नीतिया प्राणी मात्र के लिए कल्याणकारी हो ।

इस प्रकार से अत में सर्गानुसार अपना परिचय देते हुए इस महाकाव्य को पूर्ण किया ।

परम् पूज्य मुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज

।। महावीर भगवान की जय ।।

संगोष्ठी प्रतिवेदन

राजस्थान की धर्मप्राण नगरी ब्यावर में श्रेसेठ रामस्वरूप चम्पालालजी की नसियाँ में परमपूज्य सन्तशिरोमणी आचार्य विद्यासागरजी महाराज के सुशिष्य परमपूज्य 108 सुधासागरजी महाराज, पूज्य क्षु गंभीरसागरजी महाराज एवं पूज्य क्षु धैर्य सागरजी महाराज के पावन सान्निध्य में दिनाङ्क 22, 23, 24 जनवरी 1995 को आचार्य ज्ञानसागर राष्ट्रीय सङ्गोष्ठी का भव्य आयोजन हुआ, जिसमें आचार्य श्री द्वारा विरचित सुदर्शनोदय, समुद्रदत्तचरित एवं दयोदयचम्पू इन तीन काव्यो के विविध पक्षो पर भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध दो दर्जन से भी अधिक विद्वानों ने शोधपत्र वाचन एव चर्चा-परिचार्चा के माध्यम ने समोजोपयोगी जिनागम प्रतिपादित तथ्यो को प्रस्तुत किया । इस सङ्गोष्ठी में सात सत्रों की समायोजन हुई जिनका सक्षिप्त विवरण इस प्रकार है ।

प्रथम सत्र

मगोष्ठी का प्रथम सत्र दिनाङ्क 22 10 95 को प्रात 8 बजे से पूज्य मुनिश्री एवं क्षुल्लक द्वय के सान्निध्य में डॉ अशाककुमार जैन लाडनू के मगलाचरम से प्रारभ हुआ । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ शीतलचन्द जैन जयपुर ने की तथा मंयाजन के दायित्व का निर्वाह प अरुणकुमार जैन शास्त्री ब्यावर ने किया व मंगल कलश की स्थापना उदारभना श्रीमान् मूलचन्दजी पहाडिया, ज्ञानदीप प्रज्वलन श्री चिरजीलालजी पहाडिया तथा चारित्र चक्रवर्ती आचार्य ज्ञानसागरजी महागज के चित्र का अनावरण उद्भत विद्वान् डॉ श्री रजन सूरिदेव पटना के द्वारा किया गया । सगोष्ठी की उपयोगिता के सम्बन्ध मे सगोष्ठी के सयोजक डॉ जयकुमार जेन एव प अरुण कुमार जैन शास्त्री ने वक्तव्य दिया तथा समागत विद्वानो का अभिनन्दन किया । अन्त मे परमपूज्य मुनिवर सुधासागरजी महाराज के मंगलमयी प्रवचन हुए तथा जिनवाणी की स्तुति के साथ सत्र का ममापन हुआ ।

द्वितीय सत्र

द्वितीय सत्र का प्रारंभ अपराह्न 1 30 बजे से ससघ मुनिश्री के पावन सान्निध्य में डॉ कमलेश कुमार जैन वाराणसी के मगलाचरम से हुआ । इम सत्र की अध्यक्षता प्रख्यात मनीषी डॉ. त्रिपाठी उज्जैन ने तथा सयोजन डॉ कपूरचन्द जैन खतोली ने किया । सर्वप्रथम श्रीमती प्रेमकान्ता, श्रीमती मुन्नी सुश्री नीरु ने संस्कृत मे रचित स्वागत मान तथा डॉ सुशील पाटनी अजमेर ने हिन्दी में रचित स्वागतगीत द्वारा अतिथि मनीषियों का स्वागत किया । आयोजक समिति की ओर मे श्री धर्मचन्दजी मोदी ब्यावर ने स्वागत वक्तव्य दिया । इसके बाद डॉ जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर ने अभ्यागत विद्वानो का परिचय दिया तथा दि जैन समिति के सदस्यों वं समाज के गणमान्य महानुभावों ने विद्वानों का हार्दिक स्वागत किया। इस सत्र में डॉ शीतल चन्द जैन जयपुर ने "सुदर्शनोजय एवं दयोदय में अणुव्रत विवेचन" डॉ कमलेश कुमार जैन वाराणसी ने 'सुदर्शनोदय का महाकाव्यत्त्व' डॉ रमेशचन्द, जैन बिजनौर 'सुदर्शनोदय का काव्यात्मक वैशिष्ट्य' विषय पर शोधपत्रो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य में डॉ त्रिपाठी ने पठित शोधपत्रों की समीक्षा का हमारी दृष्टि में मुदर्शन का द्वय हृदय में दया का उद्य तथा आचरण में समुद्रदत्त चरित्र के नायक भद्रोमित्र आ जाये, यही गोष्ठी की सफलता होगी । अन्त में पूज्य मुनिश्री सुधासगर जी महाराज का मंगल प्रवचन हुआ।

तृतीय सत्र

23 01 95 को प्रात 8 बजे ससंघ मुनि की के पावन सान्निध्य में डॉ कपूरचन्द जैन खतौली के मंगलाचरण से प्रारम्भ हुआ । इस सत्र की अध्यक्ष प्राचार्य निहालचन्द जैन बीना ने तथा संयोजन युवा विद्वान् डॉ सुरेन्द्र भारती बुरहानपुर ने किया। ज्ञानदीप का प्रज्वलन डॉ डी सी सोगानी साहब ने किया । इस सत्र मे डॉ जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर ने 'लघुत्रयी में प्रतिपादित सामाजिक जीवन' डॉ अशोककुमार जैन लाडनू ने 'सुदर्शनचरित्र सम्बन्धी साहित्य एवं सुदर्शणचरित्र तथा सुदर्शनोदय का तुलनात्मक अध्यक्ष और डॉ कोकिला सेठी जयपुर ने 'लघत्रयी में नारीपात्रों का वैशिष्ट्य' विषय पर शोधपत्रों का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य में प्राचार्य निहालचन्दजी ने सत्र में पठित आलेखों की समीक्षा की। अन्त में पूज्य महाराज श्री का मांगलिक प्रवचन हुआ, जिसमें हमें दहेज जैसी ज्वलन्त समस्या के निराकरण हेतु संकल्पित होने की प्रेरणा मिली ।

चतुर्थ सत्र

दिनाङ्क 23 01 95 को ससघ मुनिश्री के सान्निध्य में चतुर्थसत्र का प्रारभ श्री कमल जैन रावका के मगलाचरण से हुआ एवं दीप प्रज्वलन श्री सुशीलचद जी सा बाकलीवाल ने किया । इस सत्र की अध्यक्षता मूर्धन्य विद्वान् डॉ रमेशचन्द जैन बिजनौर तथा संयोजन डॉ कमलेशकुमार जैन वाराणमी ने किया । इस सत्र में प्राचार्य निहालचन्द जैन बीना ने विश्व की ज्वलन्त समस्याए लघुत्रयी के परिप्रेक्ष्य में 'डॉ श्रेयाम्सकुमार जेन बडौत ने 'लघुत्रयी में सैद्धान्ति अनुशीलन' तथा डॉ, फलूचन्द प्रेमी से सुमुद्रदत्तचरित में प्रतिपादित श्रावकाचार' विषया पर शोध अलेखो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य में त्याग की महिमा बताते हुए डॉ रमेशचन्धर जैन सम मे पठित शोध-पत्रो की रसी की । दतनन्तर पूज्य सुधासागर जी महाराज के मगलमयी प्रवचन के साथ सत्र का समापन हुआ ।

पंचम् सत्र

दिनाक 23/01/95 को रात्रि मे 7 बजे से पञ्चन सत्र डा सुरेन्द्र भारती के मगलाचारण से प्रारभ हुआ । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ फूलचन्ध प्रेमी वाराणमी ने तथा संयोजन डॉ श्रेयासकुमार जेन बडौत के किया । इस सत्र में डॉ श्रीकान्त पाण्डेय बडौत ने 'दयोदयचम्पू का काव्यगत वैशिष्टय' यावा विद्वान डॉ सन्तोषकुमार जैन सीकर ने 'लघुत्रयी में जैनेतर प्रसग डॉ भागचन्द जैन भास्कर ने 'लघुत्रयी में प्रतिपादि भारतीय सस्कृति तथा डॉ कपूरचन्ध जेन खतोली ने 'सस्कृत जैन चम्पूकाव्य और दयोदयचम्पू' विषयो पर शाधपत्रो का वाचन किया । अध्यक्षीय वक्तव्य मे डॉ प्रेमी ने सोध आलेखो की समीक्षा करते हुए युवा विद्वानों की समस्याओ के निराकरण हेतु समाज का आहवान किया ।

षष्ठ सत्र

दिनाक 24/1/95 को प्रात 8 बजे से पूज्य मुनिश्री एव क्षुल्लकद्वय के पाव मासान्निध्य में षष्ठ सत्र का प्रारभ डॉ श्रेयासकुमार जैन के मगलाचरण से हुआ ।

मगंलद्वीप प्रज्वलन श्री अशोककुमार जी पहाडिया ने किया । इस सत्र की अध्यक्षता डॉ भागचन्द जेन भास्कर नागपुर ने की तथा सयोजन डॉ अशोक कुमार जैन लाडनू ने किया । इस सत्र मे डॉ सुरेन्द्र भारती बरहानपुर ने 'सदर्शनोदय की पात्रयोजना वहतकाव्य के ममुद्रदत्त डॉ श्रीरजनसूरिदेव पटना ने 'लघुत्रयी शब्दालंकार' विषयों पर अपनेसारगर्भित आलेखो को प्रस्तुत किया । सुधामागर जी महाराज के मगलमयी प्रवचन हुये । उन्होंने सबको वर्तमान सुधारने की प्रेरणा दी । क्योंकि अतीत नें तो सबमे कालिमा थी ।

समापन सत्र

दिनांक 24/1/95 को अपराहण 1 30 बजे से समापन सत्र का प्रारम्भ श्री धर्मचद मोदीके मगलाचरण मे हुआ। मगलदीप प्रज्वलन श्री मान् प्रीतमकुञ्जी देवेन्द्रकुञ्जी फागीवाला ने किया । इससत्र की अध्यक्षता डॉ श्रीरगसूरि पटना तथा सयोजन दोनों सगोष्ठी सयोजको ने किया । इस सत्रमें श्री पं अरुणकुमार शास्त्रीने अपना शोधपत्र 'सुदर्शनोदय में दार्शनिक विवेचन प्रस्तुत किया तथा श्री पच मूलचन्द जी लुहाडिया सा किशनगढ ने समुद्रदत्त जी के मौलिक तत्त्व विवेचन पर अपना वक्तव्य दिया ।

चर्चा परिचर्चा

चर्चा परिचर्चा मे श्री के सी सागानी श्री मुकुन्दशरण उपाध्याय श्री धर्मचन्द जी मोदी, श्री महावीर प्रसादजी अजमेरा जोधपुर, श्री सुरेश चन्ध पारीक श्री मूलचन्द सा लुहाडिया श्री घेवरचन्द जी ब्यावर, श्री प दयाशकर जी शास्त्री श्रीकान्त जी रावका श्री मित्रसेन लिगार कला श्री हीरालाल कोठारी अजमेर आदि प्रबुद्ध मनीषियों ने भाग लेकर उस सगोष्ठी की गरिमा बढाई हवे सब धन्यावाद के सुपात्र हैं ।

स्मारिका प्रकाशन में श्री प प्रकाशचन्द्र जैन स्मृति निधि (ट्रस्ट) के ट्रस्टी श्री रानीवालासा श्री सजकु जी बडजात्या सा श्री शान्तिलाल जी गदिया सा और श्री कैसाशचंद जी सा सोगानी महानुभावों मे अथवा की जो उदारता दिखाई है, वस्तुत, वह स्तुता है ।

1 आयोजक संस्था दि जैन समिति के अध्यक्ष श्री सेठ सज्जनकुमार सा रानीवाला महामन्त्री श्री कैलाशचंद जी सा बडजात्या मन्त्री श्री कमलकुमार जी सा रावका समारोह सयजक श्री धर्मचंद जी सा मोदी समात्र पदाधिकारी एवं सदस्यो

2 अर्थसौजन्य श्री पं प्रकाशचन्द्र जैन स्मृति निधि (ट्रस्ट)के संस्थापक ट्रस्टी श्री मान् सज्जनकुमार जी रानीवाला, श्री राजकुमार जी बडजात्या श्री शान्तिलाल जी गदिया और कैलाशचद जी सा सोगानी

3 भोजन व्यवस्था - श्री ताराचन्द जी सा बडजात्या परिवार

4 मच व्यवस्था-श्री कमलकुमार जैन रावंका

व्यवस्था सहयोगी (5) श्री राजन्द्र जी गगवाल श्री घनश्याम जी जैन

(6) श्री सुशील जैन, श्री (7) सन्तोष कासलीवाल टीटू

❑ ❑ ❑

सत्र-समीक्षण

(संगोष्ठी में प्रथम सत्र पर पू. मुनिवर श्री द्वारा प्रवचन एवं चर्चा समाधान)

पू. मुनिप्रवर श्री सुधासागरजी महाराज

आज गोष्ठी का प्रथम सत्र प्रारम्भ चल रहा है, जिसमें राजस्थान के शाहशाह के कृतित्व को विद्वान अपनी प्रतिभा से समाज के सामने उद्घाटित करेगें। एक राजनीतिक बादशाह होता है, जो अपनी राजनीति से साम दण्ड भेद नीतियो से रणनीति तैयार कर एवं पर का सहार करता हुआ तलवार के भय से दूसरो को झुकाता है, लेकिन एक होता है ज्ञान का बादशाह, जो साहित्य के बल पर स्व और पर के अनुशासन को मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्य का अर्थ यह होता है कि जिसमें स्व और पर का हित निहित हो। आचार्य ज्ञानसागर (महाकवि भूरामल) ऐसे ही "शब्द - साहित्य" के बादशाह थे, जिनकी लेखनी के इशारे पर शब्द नर्तन करते थे और शरणागत हो उनकी ज्ञान -प्रतिभा के अनुसार अनुचरण करते हुए काव्यगत विषय में यथा -स्थान सहजता से विराजमान हो जाते थे। इसलिये इनकी कृतियों मे जहाँ साहितयिक दुरुहता दृष्टिगोचर होती हैं, वहीं सरल शब्दो का प्रयोग, अर्थ के गम्भीर्य को सहजता से पाठक को अवगत करा देता है। इनकी कृतियीं मे ओज, प्रसाद और माधुर्य गुण पाठक को पदे पदे दृष्टिगोचर होती है तथा रजो, एवम् तमो गुण की हेयता तथा सत्ता गुण की उपादेयता उपंसहार में नियम से दृष्टिगोचर होती हैं।

भोग और योग की सगति को एक साथ स्थापित करना एक म्यान में दो तलवारो की स्थापना जैसा असम्भव प्रतीत होता है। भोगी व्यक्ति की शब्द साधना चोतना शून्य होती है।

वे तो कागजी घोडो पर, मात्र पुस्तकीय ज्ञान को आधार लेकर दौडते हैं। लेकिन जब वही शब्द एक योगी की जीवन्त साधना से साधित होते हैं, तब अनुभव के रस में पड़ कर शब्द पर्याय अचेतन होते हुए भी चित् चमत्कार रूप परिणत होकर पर को माधुर्यता का रसास्वादन कराते है। जैसे पद दलित मृत्तिका कुशल कुम्हार की हस्त दक्षता से / संयोग से मंगलकलश का रूप धारण कर मानव के उत्तमांग पर विराजमान होने की योग्यता से अंलकृत हो जाती है।

महाकवि भी एक योगी थे, उन्होंने साहित्य साधना के साधक बनने के लिये आजीवन बाल ब्रह्मचर्य व्रत को अंगीकार किया था, और उन्होंने अपनी सारी ऊर्जा को साहित्य साधना में परिवर्तित करके समाज के सामने 24 शास्त्रों का प्रकाश पुज प्रस्फुटित किया। सन् 1947 पर राष्ट्रीय पक्ष की दृष्टि से विचार करते हैं तो इसी सन् में हमारा भारत देश परतन्त्रता पाश से मुक्त होकर स्वतंत्रता को प्राप्त हुआ था और इसी सन् में महाकवि

ने ज्ञान साधना को महायज्ञ के रूप मे प्रतिष्ठित करने हेतु जैन दर्शनानुसार सप्तम प्रतिमा अर्थात ब्रह्मचर्य प्रतिमा को अंगीकार कर इन्द्रियों की दासता से मुक्त होकर आत्मिक स्वतंत्रता को प्राप्त किया था । इस स्वतंत्रता के प्राप्ति के बाद आत्मा कहीं स्वतंत्रता की आड में स्वच्छन्द विचरण न करने लग जाय इसलिये आप श्री ने अपने जीवन को साहित्य सृजन (विधान) की सीमाओं के तहत अपने जीवन को प्रवाहित करने का उपक्रम चलाया । जैसे देश स्वतन्त्र होने के बाद देश में स्वच्छन्दता व अराजकता न फैल पाये, इसलिये विधान तैयार किया गया, जिसका प्रतीक गणतंत्र दिवस (संविधान दिवस) हैं । स्वतन्त्रता दिवस अलग वस्तु हैं, और उस स्वतन्त्रता की रक्षा के लिये गणतंत्र दिवस एक प्रहरी के रूप मे माना जाता है । उसी प्रकार महाकवि ने ब्रह्मचर्य व्रत लेकर स्वतन्त्रता हासिल करने के बाद इस स्वतन्त्रता की रक्षा करने हेतु 4-4 महाकाव्य संस्कृत हिन्दी काव्य रचकर एवम् पूर्वाचार्य प्रणीत अनेक ग्रन्थो को अनुदित एव सम्पादित करके अपने जीवन को गणतंत्र मय बनाया । इसी के परिणाम स्वरूप आगे जाकर उन्होंने दिगम्बरत्व जैसे असिधारा व्रत को धारण कर अन्त में आगमानुकूल 6 मास 10 दिवस की सल्लेखना क्रमश एव अन्त में चार दिनो तक चतुर्विध आहार का त्यागकर कषाय एवं काय को कृश करते हुये समीचीन रूप से आत्मा का लेखन शोधन करके समाधि को प्राप्त किया । जैन शास्त्रो मे कहा है कि जो सल्लेखना पूर्वक मरण करता है, वो 2-3 भव या अधिक से अधिक 7-8 भव धारण कर नियम से शुद्धत्व/सिद्धत्व रूप शाश्वत पद को प्राप्त कर लेता है ।

साहित्य शब्द का यदि शाब्दिक अर्थ दृष्टि में रखते हैं, तो आचार्य ज्ञानसागर ने चैतन्य और जड रूप शब्द 2 प्रकार से साहित्य का सृजन किया और दोनो प्रकार के साहित्य से प्राणी मात्र के कल्याण का मार्ग प्रशस्त हुआ है । चैतन्य कृति से तो सभी परिचित है, जिन्हे आचार्य विद्यासागर ने नाम से जाना जाता है, महाकवि ने इस चैतन्य कृति को रचकर इस कलिकाल रूपी अमावस्या की निशा मे मानो चन्द्रमा को उदित कर दिया है। इस कृति की रचना से समाज का कितना बडा उपकार हुआ है । इसका वर्णन कहा नहीं जा सकता । मैं जो आज आपकी समाज में रत्नत्रय को धारण करके बैठा हूँ, सो यह इन्हीं महाकवि द्वारा सृजित चैतन्य कृति से प्रसूत कृति हूँ ।

अचेतन काव्यों के सम्बन्ध में तो विद्वान लोग आपको इन 3 दिनो मे बतायेंगे कि महाकवि के ग्रन्थों से कितना बडा उद्धार/उपकार हुआ है ।

जब मैंने महाकवि का साहित्य पढा, तब एक विकल्प मेरे मन मे आया, कि इतने बडे महान साहित्यकार के कृतित्व का इतने वर्षों तक आदर क्यो नहीं हुआ समाज और विद्वानो ने इसका प्रचार प्रसार क्यों नहीं किया। मैं तो यही मानता हूँ कि भारत एव भारतवासीयों का यह स्वभाव है कि ये महान व्यक्ति के मरणोर्परात उसके नाम को पद्म भूषण या भारत रत्न जैसी उपाधियों से विभूषित करते हैं ।

दूसरी मिशाल जैन इतिहास में देखने को मिलती है कि कुन्द-कुन्द स्वामी जब हुए उस समय उनका इतना प्रभाव नहीं था , और कुन्द-कुन्द स्वमी को लगभग 1000 वर्षों तक किसी ने भी उनको समझने का प्रयास नहीं किया, और न ही किसी ने उसके साहित्य को सिर पर उठाकर उसके अर्थ गाम्भीर्य को भव्य जीवों के लिए प्रचारित प्रसारित किया । तदुपरान्त 1000 साल के बाद अमृतचन्द सूरि एव जयसेन स्वामी ने उनके साहित्य सागर मे गोते लगाकर रत्नों को निकला तथा आत्म ख्याति एव तात्पर्य वृत्ति नाम की टीकाओं की डोरी के माध्यम मे इनकी गाथाओं रूपी रत्नो से गुथित कर हार बनाकर भव्य मुमुक्षु जीवो को पहिनाकर उनके आध्यात्मिक जीवन को अलंकृत करते हुए इस जगत् में अध्यात्म का ध्वजारोहण कर कुन्द-कुन्द के व्यक्तित्व को "कुन्द-कुन्द आम्नाय" के रूप में स्थापित किया । आज वर्तमान में कुन्द-कुन्द का इतना महत्त्व ज्ञात हो रहा है कि हर दिगम्बर अपने आप को कुन्द-कुन्द आम्नायानुसार कहकर गौरवान्वितता का अनुभव करता है । ऐसी ही कुछ स्थिति महाकवि के सम्बन्ध में भी प्रतीत होती है । जिस समय इन्होंने काव्यों की रचना की, उस समय समाज ने इन काव्यों का कोई बहुमान नहीं किया, और न ही उनके जीवन काल में विद्वानों ने उनके साहित्य को मंथन करने का प्रयास

किया, उनके मरणोपरांत आज कई वर्षों बाद विद्वान लोग इनके साहित्य सागर में से रत्न निकालने के लिए प्रयासरत हैं । पचासो विद्वानों से विगत 3 गोष्ठियो में (सांगानेर, अजमेर, ब्यावर) सैकड़ो लेख लिखने के बावजूद भी यही महसूस कर रहे हैं कि इनके साहित्य सागर में तो इतने रत्न भरे हैं, कि ऐसी गोष्ठियाँ यदि कई वर्षों तक निरन्तर चलती रहे तो भी पूर्ण खजाना नहीं निकाला जा सकता । जिन 3 ग्रन्थो पर लघुत्रयी नाम से गोष्ठी की जा रही है । इस सम्बन्ध में डॉ रंजन सूरि जी का कहना है कि यह लघुत्रयी नहीं, यह तो बृहत्त्रयी है । वस्तुत सत्य ही है कि ज्ञान सागर के साहित्य में नवीन शब्दो का प्रयोग एवं शब्द प्रयोग की कला के माध्यम से कथा वस्तु को काव्यत्व के रूप मे प्रस्तुत करने में शब्द साधना के चमत्कार को प्राप्त करने में सिद्ध साधकता को प्राप्त होते हैं ।

आचार्य ज्ञानसागर (ब्र भूरामल) समन्तभद्र स्वामी की विचारधारा का अनुकरण करते हुए प्रतीत होते हैं, प्राय लेखक ने अपने काव्यों मे कहीं न कहीं किसी न किसी रुप में समन्द्रभद्र को जरुर याद किया है। जिस प्रकार समन्तभद्र स्वामी ने आदर्श गुणो को धारण करने वाले निम्न जाति के जीवो को ही प्रासगिक करके पतितो को भी उदार करने का मार्ग प्रशस्त किया । जैसे सम्यग्दर्शनादि गुणो मे अञ्जन, चोर, शूकर, आदि-2, इसी प्रकार आ, ज्ञानसागर महाराज की विचारधारा थी कि शुद्र कुल में जन्म लेने से कोई शुद्र नहीं हो जाता है । और उच्च कुल मे जन्म लेने से कोई उच्च नहीं हो जाता। उच्चता और नीचता तो आचरण पर आधारित होती है ।

लघुत्रयीं मे ही देखिए उच्चवर्णी राज्य श्रेष्ठी गुणपाल सेठ अधर्मी सिद्ध होता है । वहीं दूसरी और दयोदय मे मृगसेन जेमा नीचगोत्री धीवर अहिसा व्रत को धारण कर प्रशमा का पात्र बनता हैं । सुदर्शनोदय महाकाव्य मे मनारमा का जीव पूर्व भव में धोबिन (रजक) की पर्याय में क्षुल्लिका के व्रत को धारण करती है, और भी अन्य उदाहरण महाकवि ने प्रस्तुत किये है जैसे ब्राह्मण कुल मे उत्पन्न कपिला ब्राह्मणी एव राज्यकलोत्पन्न अभयारानी अपने दुष्कृत्यो के कारण दुनिया मे निन्दा का पात्र बनती हुई दुर्गति को प्राप्त होती है दुनिया में जो भी गत्यागति होती हे, वह अच्छे ओर बुरे आचरण के अनुसार होती हे । अर्थात् जिसका आचरण अच्छा हैं, वह उच्च कुलीन माना जायेगा, जिसका आचरण खराब है, वह नीच कुलीन माना जायेगा ।

जेन शास्त्रों एव वैष्णव शास्त्रो को पढने के बाद भी यही प्रतीत होता है कि वर्ण व्यवस्था जो हमारे भारत वर्ष में बनाई गयी थी वह आचरण के आधार पर बनाई गयी थी ' जन्मना जायते शुद्र '' गीता का यह वाक्य इसी बात को सिद्ध करता है । आज जो वर्ण के अहंकार में आकर, धर्म का बंटवारा कर देशमे जो सांप्रदायिकता की दीवारे उठाई जा रही है । यह प्राचीन ऋषिमनीषीयो एव, शास्त्रो की भावना पर कुठाराघात ही है । आज देखा जाता है कि ब्राह्मण अपने आप को वैष्णव धर्म का ही अधिकारी मानने लगे और वैश्य वर्ण में उत्पन्न वैश्य अपने आप को जैन धर्म का अधिकारी मानने लगे । कहा जाता है कि ब्राह्मणों को जैन शास्त्रो ने उच्च स्थान नहीं दिया, तो मैं कहना चाहूँगा कि महापुराण में स्पष्ट कहा गया है कि तीनो वर्षों में ब्राह्मण वर्ण उच्च हैं, ओर पूज्य की कोटि में आता है। वहा पर यह भी हिदायत दी है, कि मात्र ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होने से प्रशसनीय नहीं हैं । बल्कि किसी भी कुल में व किसी भी वर्ण में जन्म लेने वाला व्यक्ति यदि अपने जीवन में अहिसा,सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, व्रत एवं 3 गुण 4 शिक्षाव्रत इन 12 व्रतो को धारण कर लेता है, वही यथार्थ ब्राह्मण हैं । ऐसा ब्राह्मण उच्चता को कोटि में आता हैं

इससे सिद्ध होता है कि जैन शास्त्रो में चारों वर्णों को आचरण शुद्धि के आधार पर जैनत्व से चिह्नि किया जा सकता है अर्थात उन्हें जैन कहा जा सकता है । जैन कोई जाति नहीं हैं बल्कि त्याग तपस्या के बल पर संसार की मूर्च्छा और वासनाओं को पराजित करने वाली साधक दशा का नाम है ।

दयोदय में महाकवि ने मृगसेन धीवर एवं धीवरण को वेदों का ज्ञाता सिद्ध करके उन पतितों का कितना बड़ा उद्धार किया है, जिन पतितों के कानों में यदि वेदों के शब्द अनायास पड जाते थे तो वेदों पर अधिकार करने वाले धर्म के ठेकेदारों द्वारा लोहा पिघला कर कानों में डाला जाता था, ऐसे धीवर भी वेदों के ज्ञाता होते

हैं यह बात लेखक ने सिद्ध करके अपनी भारतीय सस्कृति की विशालता को प्रदर्शित करते हुए अहंकारवादिता एवं कूपमण्डूकता को नष्ट किया है ये तीनो ग्रथ वस्तुत प्रत्येक श्रावक को पठनीय हैं ।

द्वितीय सत्र समीक्षण

संगोष्ठी के द्वितीय सत्र पर पूज्य मुनिवर श्री द्वरा प्रवचन एवम् चर्चा समाधान

- पू मुनिवर्य श्री सुधासागर जी महाराज

आज गोष्ठी का दूसरा सत्र चल रहा है । इस सत्र मे पहला लेख सुदर्शनोदय महाकाव्य एव दयादय चम्पू में अणुव्रत विवेचना पर वाँचा गया अणुव्रत का अर्थ होता है छोटा व्रत- इसके दो भेद हैं -एक शाब्दिक दूसरा रूढ़।

शाब्दिक का अर्थ - जैसे (दयोदय मे) मृगसेन धीवर ने सम्पूर्ण सकल्पी हिसा का त्याग न करके मात्र जाल मे जो प्रथम मछली के प्राणो की रक्षा का सकल्प किया था ।

दूसरा रुढ अर्थ है कि जेन शास्त्रानुसार चरणानुयोग ग्रन्थो मे पच पापो का स्थूलता पूर्वक त्याग करना अणुव्रत कहते है

(1) अहिसाणुव्रत का अर्थ है कि सकल्पी हिसा का त्याग करना । अर्थात् अहिसाणुव्रत धारी सकल्प पूर्वक त्रस जीवो की विराधना तो करेगा ही नहीं, बल्कि निष्प्रयोजन स्थावर हिसा भी नही करेगा ।
(2) सत्याणुव्रती हमेशा सत्य बोलने का प्रयास करता हैं उसमें भी ऐसा सत्य नहीं बोलता जिससे दूसरे जीवो के जीवन एव आजीविका का विनाश हो ।
(3) अचौर्याणुव्रती बिना दी हुई दूसरे की वस्तु को ग्रहण नहीं करता ।
(4) ब्रह्मचर्याणुव्रतधारी अपनी पत्नी को छोडकर ससार की समस्त स्त्री को मा- बहिन एव पुत्री के समान मानता है ।

अपरिग्रह अणुव्रतधारी दसों प्रकार के परिग्रहो को सीमित कर इच्छाओ को सीमित करता हैं ।

इन पाचा अणुव्रतो को धारण करने वाले को आगम मे अणुव्रती कहा जाता है अथवा इन्हीं पाँच अणुव्रतों के साथ तीन गुणव्रत-दिग्व्रत, देशव्रत अनर्थदण्डव्रत तथा चार शिक्षाव्रत-सामायिक प्रोषधोपवास भोगोपयाग, अतिथि सम्विभाग को मिला देने पर बारहव्रतो को अगीकार करने वाले को अणुव्रती कहा जाता हैं, अथवा इन बारह व्रतों सहित क्रमश सामयिक प्रोषधोपवास, सचित्त त्याग, दिवा मैथुन त्याग, ब्रह्मचर्य, आरम्भ त्याग, अनुमति त्याग, परिग्रह त्याग एव उद्दिष्ट भोजन का त्याग रूप प्रतिमा धारण करता हैं, वह अणुव्रती कहलाता है, अथवा करणानुयोग की विवक्षा मे दूसरी प्रतिमा से लेकर ग्यारहवीं प्रतिमा तक ऐलक क्षुल्लक क्षुल्लिका एव आर्यिका भी आ जाती हैं । आर्यिकाओं को उपचार से महाव्रती की संज्ञा प्राप्त होने के बावजूद भी पचमगुण स्थान ही इनका रहता है तथा प्रत्याख्यानवरणी कषाय का वेदन आर्यिका को क्षुल्लक, ऐलक के समान होता है परिग्रह (साडी) के सद्भाव होने से ।

उपरोक्त समस्त प्रकार के (ऐलक क्षुल्लक को छोडकर) अणुव्रतों की रूपरेखा इस लघुत्रयी में प्रतिपादन की गई है । जहा तक ग्यारह प्रतिमाओं का सवाल हैं, तो लेखक ने मुनि सुदर्शन द्वारा देवदत्ता वेश्या को उपदेश के रूप में ग्यारह प्रतिमाओ को स्पष्ट वर्णन है जिसे लेख वाचक को अपने लेख मे दर्शाते हुए "सुदर्शनोदय मे वर्णित ग्यारह प्रतिमाओं का स्वरूप एव आगम में वर्णित प्रतिमाओ के स्वरूप में क्या अन्तर है" यह बताना चाहिए था । क्योंकि इसमे अन्तर हैं । समयाभाव के कारण में अपने प्रवचनो में इस अन्तर को अभी प्रदर्शित नहीं कर पा रहा हू । मात्र संकेत लेख-वाचक को दे रहा हूँ ।

सुदर्शनोदय मे दो बार पचाणुव्रतो का वर्णन आया है । सुदर्शन के पिता जब दीक्षा लेते हैं उस समय सुदर्शन भी दीक्षा लेने का भाव करता है । लेकिन मुनिराज से कहता है कि मेरा मन इस मनोरमा के परस्पर प्रेम में रमा हुआ है । तब वही मुनिराज सुदर्शन और मनोरमा के परस्पर प्रेम के कारण पूर्व भावो का संस्कार बताते हुए उनके पूर्व भावो का वर्णन करते हैं । इन्हीं भावो के वर्णन में मनोरमा का जीव जब धोबिन की पर्याय में था, तब आर्यिका की सगति से क्षुल्लिका बन कर पचाणुव्रत की पालना करता है । पचाणुव्रत का वर्णन यहाँ

पर किया गया है तथा यही मुनिराज जब पूर्व भावो को बताने के बाद दम्पति को पँचाणुव्रत का उपदेश देते हैं, तब भी काव्य में पंचाणुव्रतो का वर्णन कहा पर किया हैं । इन दोनों प्रसंगो में वर्णित अणुव्रतों में परस्पर अन्तर है । इस अन्तर के लिये लेखवाचक को अपने लेख में दर्शाना चाहिये था तथा अभी प्रश्न आया था, सुदर्शन के जीवन में मात्र ब्रह्मचर्याणुव्रत (स्वदार संतोष रुप) सो ऐसी बात नहीं है । सुदर्शनोदय काव्य में स्पष्ट कहा है कि पचाणुव्रत का उपदेश मुनिराज से से सुनकर दम्पती ने ॐ कह कर उन कथित समस्त व्रतों को स्वीकार किया था । हा, सुदर्शन को या किसी भी पात्र को स्पष्ट रूप से गुणव्रत या शिक्षाव्रतो को ग्रहण करते हुए नहीं दिखाया है । अष्टमी चतुर्दशी को जरूर सुदर्शन प्रोषधोपवास पूर्वक श्मशान में जरूर प्रतिमा योग धारण करता था। इस आचरण के परिशेष न्याय से निर्णय कर सकते हैं कि सुदर्शन 12 व्रतो का धारी था ।

इसी प्रसग मे विचारणीय विषय है कि इस काव्य में क्षुल्लिका को मात्र एक साडी का तथा एक भोजन पात्र रखने का विधान किया है । साडी के अलावा अलग से एक और दुपट्टा रखने का विधान नहीं किया है। लेकिन वर्तमान में क्षुल्लिकाए दुपट्टा रखतीं हैं । एक प्रसग सैद्धातिक यह कि क्षुल्लिका द्वारा पचाणुव्रत लेने के बाद भी उसके सम्यग्दर्शन सहिता, पचमगुण स्थान रूप भाव-व्रत नहीं था क्योंकि क्षुल्लिका मरण कर स्त्री पर्याय में (मनोरमा के रूप में) जन्मती हे और सम्यग्दृष्टि स्त्री पर्याय मे नहीं जन्मता । क्षुल्लिका को तो देवपर्याय का ही बध होना चाहिए था। मनुष्यायु का का बध कैसे हो गया। भले ही भाव-व्रत नहीं थे । द्रव्य व्रतो के साथ भी देवायु का ही बध होता है। यदि किसी जीव को पहले से आयु का बंध हो जावे तो उसके व्रत लेने के परिणाम नहीं होते । यह विषय विचारणीय है । वाचक का इस शोधपूर्ण विषय के सबन्ध मे भी लेख मे सकेंत करना चाहिये था ।

एक प्रश्न अभी द्विदल के सबन्ध मे आया था इसका अभिप्राय जो मैंने, गुरुमुख से सुना है, उसी के अनुसार बताता हूँ ।

दही एव छाछ के साथ दो दल वाले अनाजों का मिश्रण करके भक्षण करना अभक्ष्य माना गया है । सुदर्शनोदय मे भी जो प्रसग आया है । वहा मूल श्लोक मे कच्चा दूध एव दही के साथ द्विदल बताया है ऐसे द्विदल का मुख मे लालारस मे सयोग हो जाने पर त्रस जीवो की उत्पत्ति होती हैं ।

इस प्रकार इस काव्य मे और भी अनेक छोटे-छोटे नियमों को गृहस्थ के लिए पालन करने के सकेत किया है ।

दूसरा लेख सुदर्शनोदय का काव्यात्मक वैशिष्ट्य पर वाँचा गया है, इस लेख में वाचक को स्पष्ट करना चाहिये कि काव्यात्मक वेशिष्ट्य से उनका अभिप्राय क्या है । वाचक ने काव्य गत सभी वषियों को अपने लेख में गर्भित कर लिया है । जिससे यह लेख काव्यात्मक वैशिष्ट्य को मुख्यता नहीं दे पाया है । इस लेख को सुनने के बाद ऐसा लगा जैसे काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा हो । समीक्षात्मक अध्ययन मे सभी पहलुओ पर प्रकाश डाला जाता हे । काव्यात्मक वैशिष्ट्य में तो काव्य की जो आत्मा हैं उसे प्रकट किया जाता है । अर्थात काव्य की विधानुसार अग अंगीभाव का वैशिष्ट्य प्रदर्शित होना चाहिये । अन्य समस्त विषयों को ले लेने से शीर्षक के अनुसार लेख की गरिमा मे ह्रासता दृष्टिगोचर होती है । वैसे लेखान्तर्गत विषयवस्तु प्रामाणिक एवं परिश्रम साध्य एव विद्वत्ता पूर्ण है ।

तीसरा लेख सुदर्शनोदय का महाकाव्यत्व पर वाँचा गया- लेखक ने सुदर्शनोदय का महाकाव्य के कथित लक्षणों के आधार पर इस काव्य को महाकाव्य सिद्ध किया है । जिस पर एक शंका की गई थी कि क्या सुदर्शनोदय में महाकाव्य के सम्पूर्ण लक्षण हैं, तो -संबन्ध में मैं कहना चाहूगा कि काव्य के समस्त लक्षण उसमें विद्यमान हैं । इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार से है कि महाकाव्य के लक्षणों के सबन्ध में मतैक्य नहीं है किसी ने महाकाव्य के लक्षण उन्तालीस गिनाये हैं तो किसी ने अठारह गिनाये । एक नीति है कि जहा पांच साहित्यकार एकत्रित होते हैं वहा 6 परिभाषायें बनती हैं । अब यहाँ विचारणीय विषय है कि किस परिभाषा को प्रमाणित माना जावे तो फिर उन सभी परिभाषाओं को एकत्रित कर औसत निकाल जाता है कि किस किस बात पर सभी सहमत हैं उसे मूलाधार मान लिया जाता है तथा जो भिन्नता पाई जाती है । उक्त संबन्ध में कहा जाता है कि यह अमुक व्यक्ति का मत है ।

अत: कहना होगा कि यदि लक्षणों के औसत को ध्यान मे रखकर सुदर्शनोदय को देखते हैं तो सम्पूर्ण लक्षण उसमें हैं। और यदि किसी विशिष्ट साहित्यकार के लक्षणो को लेकर अध्ययन करते हैं तो दुनिया में आज तक ऐसा महाकाव्य नहीं लिखा गया है । जिसमें सभी लक्षण एक साथ घटित होते हो ।

तृतीय सत्र समीक्षण
(संगोष्ठी के तृतीय सत्र पर मुनि श्री द्वारा प्रवचन चर्चाओ का समाधान)

- पू मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

आज गोष्ठी का तीसरा सत्र चल रहा है इसमे लघुत्रयी मे सामाजिक जीवन पर लेख वाचा गया है । इस लेख के विषय मे ज्ञात होता है कि कवि साहित्यकार बाद मे होता है, सबसे पहले तो वह सामाजिक व्यक्ति होता है । प्रत्येक कवि किसी न किसी सामाजिक विचार धारा या परिस्थिति से जुडा रहता हैं । लेखनी में भी वह प्रभाव आता है जैसे कवि राजस्थान का होने के कारण से बाल विवाह जैसी सामाजिक कुरीति से व्यथित था तभी महाकवि ने स्पष्ट शब्दो मे कहा है कि कुमार अवस्था का उल्लघन करने पर ही कन्या को विवाह के योग्य मानी गई है तथा विवाह के पूर्व वर की परीक्षा करने का सकेत दिया है । लेख वाचक ने लघुत्रयी मे जो आश्रम व्यवस्था का जिक्र किया है वह मात्र इसी सबन्ध मे आया है । शेष कहीं भी आश्रम व्यवस्था के प्रति लेखक की उत्सुकता आश्रम शब्द के प्रति पाठको का दृष्टिगोचर नही होती है । अस्तु ।

वास्तविक कवि वही है, जो सामायिक पर्यावरण मे सवेदित हो उसके परिणामो एव दुष्परिणामो को प्रकट करे जैसे लघुत्रयी कार सामाजिक युवा शक्ति की अकर्मण्यता का अर्थात् परधनापेक्षी होकर जीवन जीने वाले वैश्य पुत्रो को ललकारते हुए यहाँ तक कह दिया कि अपने पिता के धनाश्रित होना वैश्य पुत्रों को शोभा नही देता जो दूसरो के टुकडो पर अपना पेट पालता है, वह श्वान के समान है तो मैं इसी प्रसग पर आपको आज की ज्वलंत दानवी समस्या दहेज के सबन्ध मे कहना चाहता हू कि अपनी स्त्री के पिता की सम्पत्ति दहेज के रूप हडपने वाले तो मेरी दृष्टि में सुअर के समान हैं । ठीक ही है पिता की सम्पत्ति पर तो कानून अधिकार भी है फिर भी लेखक श्वान की उपमा दे रहे है फिर ससुर की सम्पत्ति पर तो कानूनन भी नियामक अधिकार नही है बल्कि दहेज लेने वाला कानूनन अपराधी है। ऐसे व्यक्ति का सूअर के समान कहने में अतिशयोक्ति नहीं होगी । आज दहेज दानव हमारे समाज में अपने पेरों से मध्य वर्ग की गरीब कन्याओं को गद कर आत्म हत्या करने को मजबूर कर रहा है । कई बहुओ को इसी दहेज मे कारण जिन्दा जला दिया जाता है । ध्यान रखना चाहिये जिस दहेज को तुमने लिया है वह आपके ऊपर ऋण है उसे चुकाना पडेगा । बैल, नोकर आदि बन कर चुकाना पडेगा । एक डाकू वह जो छुपकर रात मे डाका डालता है लेकिन यह तो महान डाकू है जो दिन दहाडे दहेज माग कर लूट लेता हैं, दहेज एक बिगडा हुआ शब्द है । मूल शब्द देहज अर्थात् जो देहज से उत्पन्न वस्तु (कन्या) को देता है, वह दहेज है । कहने का अर्थ है कि दहेज का लेने का अर्थ है दहेज से विवाह किया है न की देहज से । आज सभी नियम करो कि दहेज नही लेगे तथा पर सम्पत्ति के आश्रित नहीं रहेगे ।

खून पसीने की मिलेगी तो खायेगे नहीं तो यारो हम भूखे ही सो जायेगे ।

इस पक्ति को ध्यान में रखते हुए अर्थ पुरुषार्थ करने का प्रयास करना चाहिये । इस प्रकार सामाजिक जीवन के सबन्ध मे ओर भी अनेक बाते लघुत्रयी मे हैं ।

दूसरा लेख इस सत्र मे जैन शास्त्रोमे वर्णित सुदशन कथा एव सुदर्शनोदय पर वाचा गया । इस सबन्ध मे मैं यही कहना चाहूगा कि प्रत्येक कवि किसी कथा को जब व्यक्त करता है तो द्रव्य क्षेत्रकाल भाव को ध्यान में रखता है । आज से हजार साल पहले लिखने वाले किसी लेखक की जीवन एव सामाजिक शैली जिस प्रकार की थी वह आज की शैली से भिन्न होगी ही होगी । इस भिन्नता के साथ लेखक कथा को परिवर्तित न करे तो कथाकार रूढिक माना जायेगा तथा वह कथा तात्कालिक समाज के दोषो को निकलने में कारण नहीं बन पायेगी। अत कुछ परिवर्तन जरूरी और विचारणीय हो जाते हैं । ऐसे परिवर्तन लघुत्रयी में है । जैसे मृगसेन धीवर एवं घटा धीवरनी से वेदो के संबन्ध में परस्पर कथोपकथन करना, वैश्या एवं अभयारानी द्वारा सैद्धान्तिक विषय को काम शास्त्र का उपमेय बनाना आदि विषय कवि की स्वतन्त्र चिंतन धारा को प्रभावित करते हैं । सामाजिक धर्म

के ठेकेदारो के ज्ञानमद की मिथ्या अहंकारिता पर चोट पहुचाते हैं । इसके बाद लेख वांचा गया था लघुत्रयी ने नारी पात्रों का वैशिष्ट्य नारी अनादि काल से चर्चा का विषय रही है । लघुत्रयी के अध्ययन से पता चलता है कि इसमे नारी की विशेष नाटकीय भूमिका आलेखित है । समुद्रदत्त चरित्र में नारी कौशल को प्रदर्शित किया गया हे कि राजा जिस कार्य में समर्थ नहीं हो पाया उस कार्य में रानी अपना बुद्धि विक्षिप्त के कारण लुटे हुए भद्र मित्र के रत्नों का वापिस दिलवा देती हे । यहा यह दलील गलत सिद्ध होती है कि नारी की अक्ल चोटी में होती हैं । समुद्र दत्त चरित्र पढते समय तो ऐसा लगता है कि नारी के अक्ल तो चोटी की होती है । विष को विषा बनाने वाली नारी इसी काव्य में अपनी बुद्धि से चमत्कृत होती है बुद्धि कौशल का लेकिन दयोदय के उस प्रसंग को पढने पर यह दलील सत्यार्थ का रूप ले लेती है ।

दयोदय चम्पू मे नारी के बिना विचारे निर्णय लेने के दुष्परिणामो को बताया गया है । नारी के क्रोध की तीव्रता उसको विवेक के स्तर से नीचे गिरा देती है । ठोकर खाकर पश्चाताप करना नारी का स्वभाव है । ऐसी बात का ध्यान मे रखकर ही कहा ह कि नारी की अक्ल चोटी में होती है ।

घण्टा धीवरी पति द्वारा मछली मारकर न लाने का कारण उसकी मजबूरी जानकर भी उसे घर से बाहर निकाल देती है जिसमे मृगसेन धीवर को खण्डहर देवकुल मे धर्मशाला में रात्रि व्यतीत करनी पडती ह । परिणाम स्वरूप उसका सर्प डसने से मरण हो जाता ह । बाद मे धीवरनी अपने अविवेक पर पश्चाताप करती है तथा पति के अहिंसा व्रत का अनुकरण करती हुई उसकी भी उसी सर्प के डसने से मृत्यु हो जाती हे । यदि पहले ही थोडा सा विवेक से काम लेती तो शायद पति तथा स्वय को अकाल मरण से बचा सकती थी ।

सुदर्शनोदय मे नारी को तीव्रकामवासना का चित्रण दृष्टिगत होता है । जैन सिद्धान्त मे भी पुरुष की काम वासना घास की अग्नि के समान क्षणिक कही है लेकिन स्त्री की काम वासना कपडे की अग्नि के समान दीर्घकाल तक निरन्तर अन्दर ही अन्दर सुलगती रहती ह बाहर मे सीधी सादी सरल दिखती हैं, लेकिन नारी के अन्दर काम वासना रूपी गरल का सागर हिलोरें भरता रहता है ।

कुन्दकुन्द स्वामी ने भी स्त्री को स्वभाव से माया चारी कहा है मुहावरा भी इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध है कि "स्त्रियश्च चरित्र पुरुषस्य भाग्य देवो न जानाति कुतो मनुष्य" । यह मुहावरा सुदर्शनोदय मे वर्णित नारियों पर पूर्ण रूप से लागू होता ह । अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए कपिला ब्राह्मणी एव अभयारानी, स्वादर सतोष व्रतधारी सुदर्शन का अपने तिरिया चरित्र मे फसा कर अपनी काम वासना की पूर्ति करना चाहती ह लेकिन अपने षडयत्र मे सफलता हासिल नहीं कर पाती है, मुहंकाला ओर हो जाता हे । इस प्रसग से त्रिया चरित्र फेलाने वाली स्त्रियो को सबक सीखना चाहिए । देवदत्ता वेश्या तो सुदर्शन मुनि को अपनी काम वासना की पूर्ति के लिए पड़गाहन जैसी पवित्र क्रिया से त्रिया चरित्र को चरितार्थ करना चाहती है । स्त्री जब किसी के प्रति मोहित होती है तो उसक चरणों की धूल बनने को तैयार हा जाती है ।

लेकिन जब उसकी इच्छा की पूर्ति नहीं होती है तो अपने प्रेमी का सिर तक काटने को तेयार हो जाती है जैसे अभयारानी सुदर्शन पर मोहित थी अपना प्यार प्रदर्शित कर रही थी लेकिन जब अपनी काम वासना की पूर्ति नही हुई ता वही रानी उसे त्रियाचरित्र फैला फैलाकर शूली पर चढवा देती है । इन सब प्रसंगो को सुनकर जनमानस का शिक्षा लेना चाहिए कि किसी पुरुष को स्त्री के मोहपाश में नही फसना चाहिए । न ही किसी स्त्री को पर पुरुष पर मोहित होना चाहिए ।

चतुर्थ सत्र समीक्षण

सगोष्ठी के चतुर्थ सत्र पर मुनि श्री द्वारा प्रवचन एवं चर्चा समाधान

- पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

चतुर्थ सत्र में विश्व की ज्वलंत समस्याएं लघुत्रयी के परिप्रेक्ष्य में वांचा गया । इस विषय को ध्यान में रखकर जब लघुत्रयी को पढ़ते है तो ऐसा लगता है कि मानो ये तीनों काव्य विश्व की ज्वलत समस्याओ को सामने रखकर ही उन्हें सुलझाने के लिए ही कवि ने रचना की हो । बेरोजगारी समस्याओं को कितनी सरलता से सुलझा दिया कि प्रत्येक पुरुष परिश्रम करके धनार्जन करना चाहिए । आज देश में चोरियां होती है एक दूसरे

के धन को डकार जाते हैं पर धन हरण के दुष्ट परिणाम सत्यघोष के जीवन चरित्र को प्रस्तुत करके दिखाया । आज हर व्यक्ति अपने स्वार्थ एव अहम् के लिए सगो की भी हत्या करने की घटनाए प्रतिदिन देखने को मिलती हैं । इसका समाधान गुणपाल सेठ की जीवन लीला का दर्दनाक दृश्य प्रस्तुत करके ऐसे निर्दयी व्यक्तियो पर हिदायत है । इसी प्रकार हिंसा झूठ चोरी कुशील (बलात्कार) परिग्रह इन पापो की समस्यो से समाज जकडा हुआ हैं । इनका निराकरण करने के लिए इन काव्यो मे इनके दुष्परिणामो को व्यक्त कर इनसे दूर रहने को कहा है । वाचक को इन पच पापों के निराकरण के उपाय अपने लेख मे दर्शाना चाहिए थे ।

वाचक ने एड्स की तरफ तो सकेत किया ही है कि यदि सुदर्शन के चरित्र का सारा विश्व अनुसरण कर ले तो एड्स जैसा महारोग दुनिया मे पलायन हो सकता है । इसी प्रकार साम्प्रदायिकता के विद्रोह का समाधान करते हुए कहा है दयोदय में कि लोग कहते दिगम्बर मुनि का स्वरूप बताकर साम्प्रदायिकता की भडकती आग में मानो पानी डाल दिया गया है।

दूसरा लेख लघुत्रयी मे सैद्धान्तिक अनुशीलन विषय पर था । सैद्धान्तिक विषयो को पूर्ण रूप से लिपिबद्ध नही किया बल्कि जो इस लेख के विषय नही थे उसे अति विस्तार मे ले लिया गया है । उन विषयो ने लेख के शीर्षक का अनुसरण नहीं किया है जिससे लेखक की गौरवता मे किन्चित् न्यूनता आ गई है ।

लघु त्रयी में सैद्धान्तिक विषय प्रचुर मात्रा मे है । जैसे द्रव्य सिद्धि सर्वज्ञ का स्वरूप कर्म सिद्धान्त अनेकान्त स्याद्वाद, निमित्त, उपादान सृष्टि कर्ता अकर्ता, ईश्वर सिद्धि आदि इनमे से वाचक ने अपने लेख मे कुछ का तो लिया ही नहीं है ।

उपासना पद्धति एव आचार पद्धति को लेख मे विस्तार कर दिया गया है, जो वाचक का विषय ही नही था। अत वाचक को अपने लेख मे उन महत्त्वपूर्ण सैद्धान्तिक विषयो को और जोड देना चाहिए जो छूट गये हैं ।

तीसरा लेख समुद्र दत्त चरित्र में प्रतिपादित श्रावकाचार पर प्रस्तुत किया गया समुद्रदत्त चरित्र मे कहीं भी पात्रो को सकल्प पूर्वक व्रतो को ग्रहण करते हुए नही दिखाया गया है जैसा कि दयोदय एव सुदर्शनोदय मे दिखाया गया है । भद्र मित्र को सत्यवादी निर्लोभी स्वधन सतोषी एव दानशील स्वभाव वाला बताया है । यह पचाणुव्रतधारी था कि नहीं इसका कोई उल्लेख नहीं है । लेख वाचक ने जो 6 आवश्यक गिनाये हैं इनका वर्णन कृति मे गृहस्थ के कर्तव्य के रूप मे स्पष्ट नही आये है । काव्यकार के कुछ पात्रो को इस ढग से प्रस्तुत किया है कि उस समय के कुछ लोग स्वभावत अपना कर्तव्य मानकर नैतिकता के नाते 6 आवश्यक आदि व्रतो का पालन करते थे ।

मुनि सिह चन्द्र के उपदेश से प्रभावित अशनिघोष हाथी जरूर व्रत अगीकार करते दिखाया है उसे एक माह के उपवास के बाद पारणा करते हुए बताया गया है । आर्यिका रामदत्त राजापूर्ण चन्द्र को सम्बोधित करती है, तब वह पूर्ण चन्द्र दानशील एव अर्हत् भक्ति मे प्रवृत्त होता है ।

चक्रपुर के पुरवासी स्वभाव को गृहस्थोचित शीलादि व्रतो को पालन करने वाले बताया गया । इस काव्य के पठनपाठन से यह शिक्षा लेना चाहिए कि एक ग्रहस्थ स्वभावत नैतिकता के नाते अपना जीवन यापन करना चाहिए।

पचम एव षष्ठ सत्र समीक्षण

(सगोष्ठी के पंचम एव षष्ठ सत्र पर मुनि श्री के प्रवचन एव चर्चा समाधान)

- पू मुनि श्री सुधासागर जी महाराज

आज दो सत्रो का एक साथ समीक्षण करना है क्योकि रात्रि के सत्र मे मैं उपस्थित नहीं था दिगम्बर साधु रात्रि में मौन पूर्वक एक ही स्थान पर रहते हैं । स्थान से स्थानान्तरित नहीं होते । अत मै अपने निर्धारित स्थान पर बैठे बैठे ही सुन रहा था । एक वाचक द्वारा दयोदय का काव्यात्मक वैशिष्ट्य विषय को व्यक्त करते

हुए कहा था कि दयोदय चम्पू का मूल भाव अहिंसा है । इसलिये इसका नाम अहिसोदय होना चाहिए । इस सबध में यही कहना चाहूँगा कि अहिंसा कोई भाव नहीं है । अहिंसा तो क्रिया है । दया भाव है । इसलिये काव्य का अगी भाव दया है कथा की रोचकता भी एक मुनिराज के अन्दर दया जागने पर अहिसा का उपदेश देते है, यहाँ जो अहिंसा का उपदेश दिया है वह दयाभाव के कारण दिया है, दयाभाव से रहित अहिसा अहिसा नहीं मानी जाती, दयाभाव वाले से यदि हिंसा भी हो जाती है फिर भी अहिंसक माना जाता है जैसे आपरेशन करते समय डॉ से कोई मर गया तो भी डॉ को मारने वाला नहीं कहा जाता क्योंकि उसने ऑपरेशन बचाने के लिए किया था । भय एव मोह आदि मे हिंसा नहीं करना अहिंसा नहीं है । बिल्ली अपने बच्चे का पालन उन्हीं पंजो से करती है जिन पजो मे वह चूहे को मारती है बच्चा की हिंसा नहीं करते हुए भी उसे धर्म शास्त्रों मे अहिसक नहीं कहा । इसी प्रकार भयादि के साथ लगा लेना।

दयोदय चम्पू काव्य में खलनायक गुण सेठ को दयाविरोधी निर्दयी बताया है, स्वयं हिंसा नहीं करता है लेकिन निर्दयता के कारण काव्य नायक निरपराधी होकर भी निष्प्रयोजन उसके प्रति विनाशक भाव रख कर निर्दयता की चरम सीमा भी पार कर जाता है ।

इन समस्त कथोपकथनो से सिद्ध होता है कि काव्य अगीभाव दया है इसलिये इसका दयोदय नाम उपयुक्त है । दूसरा लेख लघुत्रयी मे भारतीय सस्कृति पर प्रस्तुत किया गया । जिसे सुन कर श्रुताओं को अनेक शकायें हुई। लेख इस बात को स्पष्ट नही किया गया कि इस लेख मे कि सस्कृति के नाम से क्या-क्या विषय लिया जा रहा । वेदो मे दिगम्बर मुनि की सिद्धि अर्हत की सिद्धि लेखान्तर्गत आप्रासंगिक मानी जावेगी इस विषय को यदि वैदिक सस्कृति की सिद्धि के लिए ले लिया जाता तो भी अश रूप में प्रासगिक माना जाता । भारतीय सस्कृति का विषय लघुत्रयी मे आमूलचूल भरा है यह लेख पूर्ण रूप से संशोधित होना चाहिए । दूसरी मुख्य शका भी कि वेश्या क्या आहार या पडगाहन कर सकती है। इस बात को लेखवाचक के प्रस्तुत करने के ढग से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वेश्या द्वारा मुनियो को आहार दान देने की संस्कृति उस समय थी जिसे काव्य में दर्शाया गया है । काव्यगत इस विषय को पुन वाचक को अच्छी तरह पढना चाहिए वहा वेश्या के पडगाहन छल पूर्वक किया है । वेश्या का छद्म वेष श्राविका का था । अत श्रोताओ को स्पष्ट जान लेना चाहिए कि वेश्या द्वारा दान क्रिया का समर्थन इस काव्य मे नहीं है । काव्य में ही क्या किसी भी जैन ग्रन्थो मे नहीं है । वेश्यावृत्ति छोड देने पर अथात् यह निन्द्य कार्य छोड़ देने पर तो वेश्या आर्यिका भी बन जाती है । लेख वाचक इसे भारतीय सस्कृति की परम्परा कहना चाहिए था कि वेश्या यदि वेश्यावृत्ति छोड देती है तो आर्यिका जैसे पूज्य पद को प्राप्त करने का अधिकार रखती है । जैसे देवदत्ता वेश्या द्वारा आर्यिका दीक्षा लेने का उल्लेख सुदर्शनोदय एव दयोदय चम्पू मे वसन्तसेना वेश्या का आर्यिका दीक्षा लेना बताया है ।

एक और प्रश्न आया था कि उस समय सूतक की परम्परा नही थी क्या ? क्योकि सुदर्शन के जन्म पर उसका पिता वृषभदत्त जन मदिर जाकर अभिषेक पूजन करता है । इस सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है कि सूतक व्यवस्था एक सामाजिक व्यवस्था है जो समय समय पर लुप्त एवं प्रगट होती रहती है वर्तमान में जो सूतक की परम्परा चल रही है उसे स्वीकार करना चाहिए, इससे पवित्रता बनी रहती है । जिनसेन स्वामी ने महापुराण में 53 क्रियाओं के वर्णन में कहा है कि सन्तान उत्पत्ति के 12 वें दिन अर्हन्त भगवान की पूजन करके परिवार वालों को बच्चे का नामकरण सस्कार करना चाहिए अत सूतक की वर्तमान परम्परा को संस्कृति तो नहीं कहा जा सकता लेकिन एक मर्यादित अच्छी परम्परा जरूर कहा जा सकता है ।

तीसरा लेख लघुत्रयी में जैनेतर प्रसग पर बाचा गया । जयसेन स्वामी ने कहा है कि किसी विषय को समझने एव समझाने के लिए शब्दार्थ, आगमार्थ, नयार्थ मतार्थ, एवं भावार्थ में चार विधायें आवश्यक हैं । ये चारों सिद्धान्तो का ज्ञाता लेखक था महाकवि की प्रत्येक कृति में मत मतान्तर की सापेक्षता दृष्टि गोचर होती है इस में लेखक की साम्प्रादायिक निरपेक्षता भी परिलक्षित होती है । वहीं पर लेखक की निर्भीकता निष्पक्षता का स्पष्ट दर्शन होता है । अर्हत मत को एवं दिगम्बरत्व को वेद बाह्य कहने वालों की मिथ्या धारणा का निराकरण किया है । अर्थात् वेदों द्वारा अर्हत मत एवं दिगम्बर को वेद में भी उच्चता की प्रामाणिकता प्रदान कर सम्यङ् मार्ग के रास्ते में आये हुये साम्प्रदायिकता के काँटे साफ कर दिये हैं ।

तीसरा लेख संस्कृत जैन चम्पू काव्यों मे दयोदय चम्पू का वैशिष्ट्य प्रस्तुत किया है । वाचक ने सभी चम्पूओ का अलग-अलग परिचय दिया हे । लेकिन यदि वहीं पर दयादय चम्पू का प्रत्येक चम्पू के साथ तुलनात्मक वैशिष्ट्य प्रस्तुत करते जाते तो अति श्रेष्ठ हाता अत इस लेख को व्यवस्थित करके प्रकाशित किया जावे ।

आज प्रभात कालीन सत्र मे बाँचे गये लेख वाचको की अति परिश्रम साध्यता को प्रगट करते हैं। सुदर्शनोदय की पात्र योजन एव लघुत्रयी का भाषागत वैशिष्ट्य तथा लघुत्रयी मे शब्दालकार ये तीनो लेख पूर्ण प्रामाणिक और अपने शीर्षक के अनुसार पूर्ण विषय को सिद्ध करने वाले सिद्ध होते हैं । तीन दिन से बन रहे इस मन्दिर पर आज इन तीनो लेखो ने कलशारोहण कर दिया है ।

समापन सत्र समीक्षण

(सगोष्ठी के समान सत्र पर पू मुनि द्वारा प्रवचन एव चर्चा समाधान)

पू मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

समापन सत्र आज चल रहा है इसमे सुदर्शनोदय मे दार्शनिक विवेचन पर गोष्ठी सयोजक प अरुण कुमार शास्त्री द्वारा अपने लेख का साराश बाँचा गया । महाकवि दार्शनिक तो थे ही उनके ग्रन्थो मे पदे पदे दार्शनिकता परिलक्षित हाती है ।

इस गोष्ठी मे बाँचे गये लेख खाजपूर्ण थे सभी विद्वानो ने बहुत परिश्रम करके अपनी ज्ञान प्रतिभा का परिचय दिया है। इसी प्रकार यदि विद्वान महाकवि के ग्रन्था मे गोता लगाते रहे ता नियम मे अलौकिक निधिया को इन ग्रन्थो से निकाल कर साहित्य जगत को एक अमूल्य खजाना इन गोष्ठिया के माध्यम से साप सकेगे । इस गाष्ठी मे कुछ नये-नये युवा प्रतिभाओ ने भी अपनी प्रतिभा को उजागर किया हैं ।

आज इस गोष्ठी के दोरान एक बात कहना चाहूगा ब्यावर वालो से की अनेक नगर ऐसे हैं जा विद्वान् का पाने के लिए तरसते हैं । ब्यावर का तो बहुत बडा सौभाग्य है कि अरुण कुमार जैसा युवा विद्वान जिसका हिन्दी सस्कृत एव अग्रेजी भाषाओ पर व्याकरणात्मक एव साहित्यक अधिकार है । बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न विद्वान यहाँ पर स्थाई रूप से रह रहा है । लेकिन मै आप लागा का दुर्भाग्य ही मानगा कि ऐसे विद्वान का ये समाज ज्ञानाजन के रूप मे उपयोग नहीं कर पा रहा है । मेरी एव विद्वानो की भावना है कि ब्यावर गाष्ठी की ब्यावर वालो का स्थाई उपलब्धि तभी मानी जावेगी जब युवा एव प्रौढ लागो की पाठशाला यहा चालू कर दी जावे । अन्य स्थानो पर हम कह नहीं पाते क्या कि विद्वान कहा से लाये । विद्वान मिल भी जावे लेकिन विद्वान का समाज उपयुक्त वेतनमान नहीं दे पाती है। लोग कहते है कि आज विद्वान नहीं है मै कहता हूँ कि विद्वान का वेतनमान यदि ये समाज सरकार के अनुसार देने लग जावे ता विद्वानो की कमी नही रहेगी । प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति मजबूर होकर सरकार की नाकरी करता है । ये विद्वान आपके सामने बैठे है यदि सरकारी नाकरी नहीं कर रहे होते ता आपकी समाज क्या इनके परिवार का भरण पाषण के योग्य वेतन दे सकती थी । नहीं अत आप लोग अच्छा वेतन देकर उनके पारिवारिक धनाभाव की पूर्ति करके उनमे ज्ञानार्जन करो । धार्मिक ज्ञान के बिना लौकिक ज्ञान नकटी के शृगार के समान है महत्त्व हीन प्रतीत होता है । अत धार्मिक ज्ञान बडाओ । ज्ञान प्राप्त करने के लिये अतीत मे अकलक निष्कलक जैसे जवान बालको ने प्राणा की आहुति देकर ज्ञानार्जन करने का प्रयास किया था । ऐसा इतिहास हम सब का विदित है ।

इस गाष्ठी मे आ ज्ञानसागर जी के साहित्य के सम्बन्ध मे जो विद्वानो नें निर्णय लिया है कि भारत के मूर्धन्य विद्वाना से लगभग पचास विषयो पर अलग-अलग 200-300 पृष्ठो के शोधात्मक लेख लिखाये जावे। यह बहुत सराहनीय कार्य है । इस कार्य के लिए मेरा साधुवाद और जो समाज ने महाकवि भूरामल का स्मारक बनाने का निर्णय लिया है तथा आज समस्त विद्वान एव दातार उसका शिलान्यास करने जा रहे हैं । उसके लिए भी मेरा आर्शिवाद ।

[महावीर भगवान की जय]

❑ ❑ ❑

गौरवर्ण, समानुपातिक देहयष्टि, नयनाभिरागी तेजस्वी मुखमण्डल, गाम्भीर्य मुस्कान बिखेरती पारदर्शी आँखें, दमकता उन्नत ललाट एक सम्पूर्ण साधुत्व को सहेजे एक अमृतमय व्यक्तित्व ।

अतीत के झरोखों से अनागत के दर्शन

ईसुखारा'- बीना-सागर रेल्वे लाइन का एक छोटा रेल्वे स्टेशन आज पू सुधासागरजी के नाम से जुडकर वदनीय हो गया है । बुन्देलखण्ड की माटी ने न केवल विद्वानों को सृजा है, वरन संतों की महान परम्परा को भी अक्षुण्ण बनाये रखा है। ईसुखारा एक अतिशय क्षेत्र भी है जिसने पू सुधासागरजी को जन्म देकर इसे वंदनीय दर्शनीय बना दिया । स्टेशन के आते ही यात्रियों को 'सुधासागरजी का नाम मुखरित हो जाता है ।

21 अगस्त 1958 मोक्षसप्तमी को जन्मा बालक जयकुमार- श्रीमती शांतिदेवी की कोख को धन्य कर गया । पिता श्री रूपचंद जैन ने क्या यह सोचा होगा कि 'जय' की शिला पर बैठकर एक दिन मेरा बेटा, विश्रुत मनोज्ञ मुनि बनेगा । हरिसिह गौर विश्वविद्यालय सागर (म प्र) से बी काम की लौकिक शिक्षा आपके परिचय अक्षत का एक कण है। लेकिन इसी शिक्षा ने साधना व सयम की आलौकिक-शिक्षा के लिए एक-पृष्ठ भूमि दी, वह भला कैसे अकिंचित्कर हो सकती है ।

जब पू आचार्य 108 श्री विद्यासागर म सिद्धक्षेत्र नैनागिरी ने अपूर्वज्ञान का मंगल प्रसाद, अभीष्ट-जनों को मुक्त हस्त से बाँट रहे थे, 10 जन, 1980 की वह काल-लब्धि आत्म-चितेरे-जयकुमार के लिए, आत्म उपलब्धि का प्रथम सोपान बन गई। उस दिन ब्र जयकुमार ने उत्कृष्ट श्रावक का क्षुल्लक व्रत को अगीकार कर श्री 105 क्षु परमसागर के रूप मे सस्कारित हुए 'विद्यासागर' के सागर तट पर आपने अवगाहन करते हुए अपनी क्षुल्लक साधना को परिष्कृत किया ओर शीघ्र ही सागर मे 15 अप्रैल 82 को ऐलक दीक्षा ग्रहण की ।

सस्कार का बीज-साधना की भूमि मे- वटवृक्ष की ओर

आचार्य विद्यासागर की यश सुरभि दिगदिगंत में व्याप्त हो चुकी थी । पूरा सघ श्री सम्मेदशिखरजी' की यात्रा पर बिहार प्रान्त की ओर अभिमुख हुआ था । ईसरी (रेल्वे स्टेशन - पार्श्वनाथ) सम्मेदाचल यात्रा का प्रथम पड़ाव है जिसका नाम आते ही पू सन्त गणेशवर्णी की पुण्य स्मृति बरवस आ जाती है, जहा वर्णी जी की समाधि स्थली है। इसी पवित्र स्थली पर ऐ. परमसागर जी ने, देह के वसन ही नहीं वरन वासना के वसन उतारकर ''दिगम्बर मुनि दीक्षा'' अपने गुरु पू आचार्य विद्यासागर जी से प्राप्त की ओर महाव्रत की सयम साधना मे सकल्पित हुए । 25 सित 83 का दीक्षा दिवस आपके जीवन रूपान्तरण का 'अमृत दिवस' (सुधा-दिवस) बन गया । गुरुवर्य ने दीक्षित मुनिश्री को नए नाम से सस्कारित कर श्री 108 मुनिश्री सुधासागर म सम्बोधित किया - जैसे 'सुधा' नाम धन्य हो गया है इस सत से जुडकर ।

दीक्षा की चिरन्तनता-ज्ञान की ओर

मुनि दीक्षा, वीतरागी आत्मसाधना के लिए एक प्रबल निमित्त है, निमित्त को कौन झुठला सकता है ? निमित्त उपादान की अभिव्यक्ति बनता है । निमित्त आकाश देता है । उपादान को पैर पसारने के लिए सत बनना केवल इसी जन्म की साधना नहीं होती, इसके पीछे कई जन्मो की साधना होती है । वह अतीत की साधना, वर्तमान के सस्कार बनते हैं, उन संस्कारो को प्राण देता है-दीक्षा मंत्र । 'गुरु' के सम्बल के बिना उपादान भी निरुपाय बना रहता है । 'गुरु-अनुकम्पा' में जीवन की सिद्धिया विराजती है । गुरु के वरदहस्त ने ''सुधासागर'' के हाथो में सुधा का घट थमा दिया ।

यह महान् संत -हिन्दी / संस्कृत/ प्राकृत-अपभ्रंश ओर अग्रेजी भाषाओ की पीठ पर चढ़कर वैदुष्य की बहुआयामी दिशाओं में द्रुतगति से बढने लगा । वे आगम व अध्यात्म से साथ -दर्शन /इतिहास/न्याय/ सिद्धान्त/ व्याकरण/ मनोविज्ञान/ और योग विद्याओं में पारंगत होने लगे । ज्ञान क्षयोपशम की प्रबलता-स्वाध्याय से कहीं

अधिक जीवन की तप साधना ओर ध्यान योग से कहीं ज्यादा प्राप्त होती है । मुनिश्री ''ब्रह्मचर्य'' की अखण्ड साधना के आलोक में गहन गूढ शास्त्रों में डूबकर आध्यात्म के मोती चुनने लगे ।

जैन संस्कृति के रक्षक-तीर्थक्षेत्रो के जीर्णोद्धारक

तीर्थ- जैन संस्कृति के शिलालेख हैं । बुन्देलखण्ड के जैनतीर्थों का बिखरा हुआ पुरातात्विक वैभव जीर्णोद्धार के अभीप्सित है । मुनि सुधासागर जी के नाम पुरातत्व की सम्पदा से युक्त ''देवगढ'' के जीर्णोद्धार के साथ जुड़ गया है ।

यद्यपि मुनि- किसी वस्तु का कर्ता नहीं होता, न होना चाहिए परन्तु श्रावको की भावना को साकार करने मे आशीर्वाद देने मे कृपण भी नहीं बनता । साधु परिग्रह से रहित होता है- परन्तु समाज से जुडा रहता है समाज के कल्याण की भावना मे उसकी साधना का एक पल्लू जुडा होता है । मुनिश्री ने श्रावको के धार्मिक महोत्सवो को अपनी साधना के मगल- अर्घ्य द्वारा सफलता के हिमालय तक अवश्य पहुचाया ।

'गजरथ महोत्सवा' मे नये कीर्तिमान स्थापित करने मे आपका व्यक्तित्व अद्‌भुत रहा । मेरा अनुभव है 1989 बीना मे होने वाले पचकल्याणक महोत्सव मे मुनिश्री का दिशा- निर्देशन आपके बहुआयामी व्यक्तित्व का एक हिस्सा था ।

वक्तृत्व मे सम्मोहन

शब्द या भाषा मे बडी शक्ति होती है । सतो का मुख कमल के समान तथा वाणी ''कमल सौरभ'' के समान होती है । लेकिन प्रभावक वाणी का वरदान-सबको प्राप्त नहीं होता । आगम व आध्यात्म मे जनमानस को आदोलित कर देना, वाणी का वैशिष्ट्य होता है । मुनिश्री मे अभिव्यक्ति की विशिष्ट कला है । वाणी मे इस सिद्धि है । चाहे शीर्ष राजनेता हो या शीर्ष प्रशासनिक-अधिकारी चाहे सत-समागम हो या विद्वानो की सगोष्ठी अपनी वाणी माधुर्य से सभी का प्रभावित किये बिना नहीं रहते/प्रतीको/बिम्ब-विधानो/सटीक-उदाहरणो से आगमानुसार प्रतिपाद्य वस्तु को प्रस्तुत करने की कला मुनिश्री मे विद्यमान है। अपने जीवन के अनुभवो को प्रवचन के साथ जोडकर उसमे प्राण फूकना आपकी तात्कालिक तीक्ष्ण-बुद्धि का कोशल है ।

साहित्य से सृजेता

दार्शनिक होना बडी बात है । सत होना उससे भी बडी बात है, लेकिन दार्शनिक सत होना बहुत बडी बात है । मुनिश्री सुधासागर एक दार्शनिक संत है मौलिक चिंतन आपकी थाती है ।

मुनिश्री की कृतिया

'आध्यात्मिक पनघट 'अध सोपान', 'जीवन एक चुनौती', 'सल्लेखना' आदि आपके चिन्तनशील प्रवचनो के सकलन हैं। 'प्रवचन' वह चिरन्तन धारा है, जिसमे अन्तस् विशुद्ध बनता है । साहित्य सृजन में ये कृतिया मुनिश्री के सशक्त हस्ताक्षर हैं ।

''मुनिश्री का मुखरित मौन'' -एक काव्य कृति ने काव्य विधा को छुआ है । साधना की अतल गहराईयों में पैठकर जो शब्द जन्म लेते हैं वे शब्दातीत-अनुभव की वेदी पर विराजमान होकर काव्य रुप में स्पन्दित होते हैं । अन्तर्यात्रा के लिए प्रेरित ऐसे अनुभवजन्य शब्द- मुनिश्री की कलम की नोक से सिरजे हैं वे हैं ''विरागभावना'' मा मुझे मत मारो '' सीप के मोती'' 'अमृत-भारती' आदि । ये सभी कृतिया मुनि श्री की साहित्यिक प्रतिभा के उज्ज्वल -पृष्ठ हैं ।

गुरू णा गुरु के प्रति श्रद्धावनत आगम-पुरुष

मुनि श्री की साधना का एक दूसरा पहलू 'राजस्थान' की 'आगम यात्रा' के पुनीत-प्रसंग पर प्रगट हुआ

है । आगरा से जयपुर महावीरजी की ओर गमन करते हुए अपने गुरुवर्य आ विद्यासागरजी के गुरु प पू आचार्य ज्ञानसागरजी, स्मृति पटल पर उतर आये । उनके विस्मृत होते संस्कृत-काव्य ग्रन्थों एवं अन्य हिन्दी ग्रन्थों (जिनकी संख्या लगभग 22 है) के पुनर्प्रकाशन के लिए तथा उन महाकाव्यों में अभिप्रेत आगम रहस्यों को उद्घाटित करने के लिए विविध साहित्यिक पक्षों के परिप्रेक्ष्य में न केवल स्वयं स्वाध्याय करने का मन बनाया वरन देश के विशिष्ट जैन विद्वानों, संस्कृत-साहित्य विदों के साथ बैठकर विचार विमर्श किया ।

तत्सम्बन्धी विद्वत् संगोष्ठियों में शोध लेखो का वाचन स समीक्षात्मक अध्ययन के द्वारा आचार्य ज्ञानसागर के अथाह ज्ञान से सम्पूरित साहित्य का पुनरवलोकन किया ।

लौकिकता में जैसे नाती- बब्बा से पिता की अपेक्षा ज्यादा लगाव रखता है । इस संतपुरुष ने अध्यात्म के दादा-आचार्य ज्ञानसागर को इस प्रकार सच्ची श्रद्धाञ्जली अर्पित की । सौंगानेर के प्राचीन अतिशय पूर्ण मदिरो के तल गृहो से चैत्यालय (जो यक्ष रक्षित हैं) को बाहर दर्शन हेतु लाकर अपनी चमत्कारिक योग साधना का प्रभाव दिखाया । यह घटना मई 94 की है ।

मुनिश्री का सहज स्वभाव

मुनिश्री सुधासागर जी एक संवेदनशील संत-पुरुष हैं । करुण की निर्झरणी- आपके अन्तस में सतत प्रवाहमान रहती है। मानवतावादी दृष्टिकोण के प्रबल समर्थक आप मे असहाय व अपगों के प्रति एक सहज कारुणिक समवेदना है । विद्वानो एव गुणी जनो के प्रति वात्सल्य भाव -आपकी एक सहजता है। आप में बालक की निश्छलता युवा की सकल्प कर्मठता ओर ज्ञान की प्रौढ़ता विद्यमान हैं ।

प्रवचन प्रभा के ज्योति पुरुष

आपके आध्यात्मिक प्रवचन- श्रावको / जन मानस के अन्तस्तल में सीधे प्रवेश कर चेतना को झंकृत करने वाले हाते हैं वाणी में मिसरी सा मीठापन एक विशिष्ट सम्प्रेषता लिए होती है । शिक्षण शिविरों के माध्यम से धार्मिक चेतना का संचार करना आपके वैदुष्य का ही प्रभाव हैं । आपके मंगल-प्रवचन ''जीवन -अनुभूति'' से अनुस्यूत रहते हैं ।

जब आप मुस्कान भरी मुद्रा ऊपर उठाते हैं तो लगता है आपका रोम-रोम हँस रहा है । क्रोध तरसता है आपके पास आने को, माया सकुचाई हुई दूर खडी रहती है ।

''संत हस - गुन गहहिं पय, परिहरि वारि विकार''

के आप साक्षात् पुण्यात्मा हैं ।

युगीन -सन्दर्भों के अन्वेषक

आप ऐसे धर्म की पुकार के लिए खडे हैं तो विद्रूप हिंसा की बाढ़ को रोक सके ओर समाज के वैमनस्य, तनाव तथा असुंतुलन को मिटाकर सूखते वात्सल्य को, प्रेम की सलिल धारा में रुपान्तरित कर सके । इस दिशा में मुनि श्री का संकल्प अटूट है । अट्ठाइस मूल गुणों के रत्नों को अपनी साधना के किरीट में जड़ाए मुक्ति आकांक्षा की अन्तर्यात्रा पर बढ़ते हुए हे बालयोगी ! तुम्हें इस अकिञ्चन लेखक का शत-शत प्रणाम निवेदित है ।

पं. निहालचंद जैन, प्राचार्य
शास उ मा. वि 3 के समाने
बीना (म. प्र) 170113

□ □ □

मुनि श्री सुधासागरजी महाराज के प्रवचनो मे से सकलित निति वाक्य

सुधासिन्धु के अनमोल मोती

प्रस्तुति भरतकुमार बड़जात्या

- साधु हृदय का कच्चा (कोमल) होता है और राजा कान का कच्चा होता है ।
- धार्मिक कार्यों में विघ्न डालने पर नि काचित कर्मों का बध होता है ।
- शत्रु को मारने मे नही, उसको दुख देने मे शत्रु को आनद आता हैं ।
- असयम के साथ सम्यग्दर्शन अनर्थ करा देता है और सयम के साथ सम्यग्दर्शन कर्मों का क्षय करा देता है ।
- मान कषाय मे दूसरे को अपमानित करने के भाव होते हैं।
- दूसरे को कमजोर और अपने को बडा मानने वाला अहंकारी सबसे ज्यादा कमजोर होता है ।
- दो अहकारी मिलने पर कुश्ती चालु हो जाती है ।
- दो ज्ञानी मिलते है तो ज्ञान के रहस्य खुलते हैं।
- धोखे से प्राप्त ज्ञान कल्याणकारी नहीं होता ।
- अहंकारी के सामने उसकी तारीफ कर दें तो वह आपके सामने पानी भरने लग जायेगा ।
- ऊट का अहकार पहाड़ के निकट नष्ट होता है ।
- चाय अदर के ज्ञानतंतुओ का विनाश कर देती है ।
- धर्म नीति में सबको साथ लेकर चलते है, राजनीति में दूसरे को मिटाने का भाव होता है ।
- अहंकार की चोटी पर चलने वाला अवश्य नीचे गिरेगा।
- भोग निर्जरा का कारण नहीं है, योग निर्जरा का कारण है।
- संत वह है जिसके पास शब्द नहीं अनुभव है ।
- पांच परमेष्ठी का राग यदि आग है तो पाच पापो का राग भी आग है ।
- पूजा तब तक करनी है जब तक पूज्य नही बन जाओ।
- प्रशसा की भट्टी में अच्छे-अच्छे पिघल जाते हैं।
- सब जीवों को अपने जैसा मानो यही मैत्री है।
- सीमित व्यक्तियों को अपना मानना मोह है।
- साधु सारी दुनिया को अपना मानते हैं और निर्मोही कहलाते हैं ।
- पर घात सो घात परन्तु आत्महत्या महाघात है ।
- भोगी मुनि से निर्मोही गृहस्थ अच्छा है ।
- निषेध भी आकर्षक का कारण बनता है ।
- मेरे द्वारा कोई दुखी न हो जाय ऐसी भावना वाला धर्मात्मा है । मेरे द्वारा कोई सुखी न हो जाय, ऐसी भावना वाला पापात्मा है ।
- सम्यक दृष्टि भिखारी को भिखारी नही कहता वह कहता है कि इसमे भी केवलज्ञानी होने की शक्ति है ।
- दूसरे की निदा से नीच गोत्र का बध होता है ।
- वैद्य यदि जहर भी दे देवे तो ले लेना लेकिन जो वैद्य नहीं है वह अमृत कहकर भी देवे तो ग्रहण मत करना। क्योंकि कभी अमृत भी मार देता हैं ।
- जो कल पर टालता है उसका कल कभी नहीं आता है।
- भविष्य को जानने वाला काल विजेता है ।
- अधर्म व पाप को कल के लिये टाल दो तो कल्याण हो जायेगा ।
- भगवान् ने जो जाना उस पर श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है ।
- भगवान् ने जो कहा उस पर चलना सम्यग्चारित्र हैं।
- जब मौत का समय मालूम नहीं तो हर पल जागरुक रहना पड़ेगा ।
- भीख मागने वाला फिर भी स्वाभिमानी हो सकता है पर नौकरी करने वाला कभी स्वाभिमानी नहीं हो सकता।
- जिसको दुनिया की कोई ताकत नहीं झुका पाती उसे कर्म झुका देते हैं ।
- महत्वाकांक्षी वर्तमान सुख से भी वंचित हो जाता है।
- वह जिसने ब्रह्म मुहुर्त को बिगाड लिया उसने सारा दिन ही बिगाड लिया ।

एक अमृतमय व्यक्तित्व : मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

Designed by "PRESS"
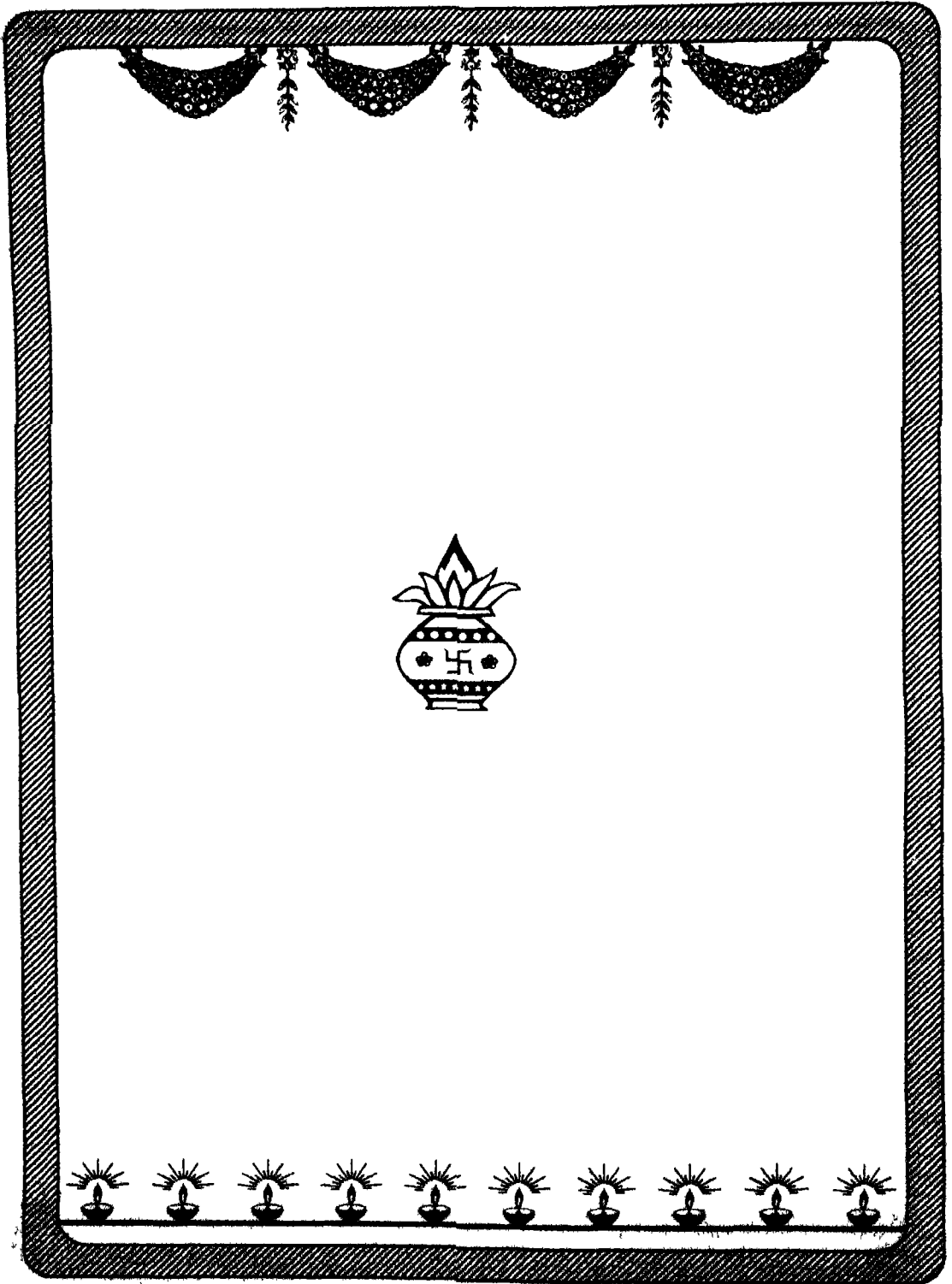
- जिसके पास कुछ धन है उसको मखमल की गद्दी पर भी नींद नहीं आती।
- धन साधु की साधना में बाधक है ।
- अनजाने रास्ते पर जो पहले स्वयं चले वह धर्म नेता है और अनजाने रास्ते पर दूसरों को आगे कर दे वह राज नेता है।
- मंदिर बनता है धन से लेकिन पूजा होती है मन से।
- जो आज पापी है वह पुण्यात्मा भी हो सकता है ।
- इसीलिये पापी से नहीं पाप से घृणा करो ।
- जहा क्या पता ? वहां सब लापता ।
- जो गुणवानो से अपनी पूजा करवाता है वह अगले भव में लूला लंगडा होता है ।
- यदि नरक जाना है तो निर्माल्य खाना शुरु कर दो।
- धर्म करने मे तो आकुलता करो पर धर्म में आकुलता न करो। मजबूरी का नाम मार्ग नहीं है ।
- पथ मे अहकार है पथ मे सदभाव है। पथ के अहकार मे धर्म नही है ।
- जो आता है वह जाता है जो शाश्वत है वह न आता है न जाता है ।
- दूसरे की टाग वही खीचता है जो स्वय लगडा होता है। सा बका एक लिखा (हाँ) और सो लिखा एक लखा ।
- साधु स्वय के लिये निर्दय होता है लेकिन दूसरे के लिये दयालू है ।
- साधु नारियल की तरह बाहर से कठोर व अदर से मुलायम होता है ।
- जो जैसा है, वह दुनिया को वैसी ही मानता है ।
- पर के लिए नीर बह जाय तो वह नीर नहीं मोती है। स्वय की पीर पर नीर बह जाय तो वह कायरता है ।
- परकी पीर पर आंसू न आवे तो वे आखे नहीं नारियल के दो छेद हैं ।
- अपनी किस्मत को अपने ज्ञान के द्वारा ज्ञेय रुप बनाओ। पुण्य के उदय में रावण मुस्कराता है आर पाप के उदय में राम मुस्कराता है ।
- जो उपकार को भूल जाते है वह धर्म करता हुआ भी दुर्गति का कारण हो जाता है ।
- कर्मफल बता रहा है कि तुमने अतीत मे क्या बोया था ?
- वर्तमान में जो जैसा कर रहे है उसका भविष्य वैसा ही है ।
- जिसने यह श्रद्धान कर लिया कि "यह भी जायेगा" वह कभी नहीं घबरायेगा ।
- न पुण्य क्रिया हेय है न पाप क्रिया उपादेय है ।
- शरीर के साथ जेलर एव जेली का व्यवहार मत करो, इसके साथ तो मालिक और नौकर का व्यवहार करना चाहिये यही भारतीय सभ्यता है ।
- गृहस्थ धर्मात्मा रुपी वृक्ष की जड़ है ।
- पाप करना छोड़ा नहीं और पुण्य करना छोड़ दिया तो डूब जाओगे ।
- पांचों इंद्रियों का भोगी ,भेद विज्ञानी नहीं है ।
- जिसने अपने आपको अपनी आंख से देखना शुरु कर दिया वह संयमी है ।
- दुनियां को पापी कहना सरल है पर अपने आपको अज्ञानी पापी, दुष्टात्मा कहना कठिन है ।
- ज्ञान के साथ संयम सोने में सुहागा के समान है ।
- जो छोड देता है वह शिव है, जब दूसरे छुडाते है वह शव है ।
- जो वस्तुए जीवन मे आवश्यक नहीं है उन्हें छोड दो।
- बिना प्रयोजन अपनी प्रवृति से जो हिंसा होती है उससे पाप कर्म ज्यादा बंधते हैं ।
- मुनि को मुनिपने का अहकार नहीं आना चाहिये ।
- जिस शरीर को बनाने में तुम मिट गये जिंदगी बरबाद कर दी, वह भी साथ नहीं देता । जिसे सगा माना वही दगा दे गया ।
- जितना-जितना पर पदार्थों से मोह छूटता जाता है, उतना-उतना व्यक्ति सुखी होता चला जाता है ।
- पहले मन में विकार आएगा बाद में इंद्रिया विकारी होगी। दुखी को दुखिया मिल जाय तो आधा दुख दूर हो जाता है ।
- राजनेता जिस सीढी से ऊपर चढता है उसे चढने के बाद उसे लात मार कर गिरा देता है ताकि उसके जरिये दूसरा ऊपर ना चढ सके। धर्मात्मा जिस सीढ़ी से ऊपर चढ़ता है तो उसे और मजबूत कर देता है ताकि दूसरा भी आसानी से ऊपर चढ़ सके ।
- उपादान की शक्ति तो अन्तकाल से बैठी है, जब तक सच्चा निमित्त नहीं मिलेगा तब तक शक्ति जागेगी नहीं ।
- डूबते को सहारा मिल जाये तो आनद का क्या पार ?
- अतिशय भगवान् में नहीं भक्त के मस्तिष्क में होता है ।

- मंत्र पर विश्वास हो तो विद्यासिद्ध हो जाती है ।
- विदेशों में भारत की पहिचान धन से नहीं आध्यात्मिकता से है ।
- दान धर्म नहीं, त्याग का साधन है ।
- वस्तु की कीमत नहीं है उसकी उपयोगिता की कीमत है ।
- आप लखपति (धनपति) नहीं धन के गुलाम हैं ।
- चर्चा के साथ अर्चा को जीवन मे अपनाना होगा ।
- जिसको मृत्यु की आहट सुनाई देगी, वह सब कुछ छोडने को तैयार हो जायेगा ।
- जातिभाई पर प्रहार करने वाला श्वान होता है वीर नहीं ।
- तुम्हारे पहले भी दुनिया थी तुम्हारे बाद भी दुनिया रहेगी।
- मुमुक्षु वही है जिसकी ड्रेस व एड्रेस एक हो ।
- सरल रेखा को खीचना सरल नही होता ।
- ज्ञानी को कर्म बधते नही, अज्ञानी के कर्म कटते नहीं।
- निष्कपट व्यक्ति नगे बालकवत् होता है ।
- रागी व्यक्ति वीतरागता मे भी राग देखता है और वीतरागी राग मे भी वीतरागता देखता है। जसे दुर्योधन का कोई निष्कपट नही मिला ओर युधिष्ठिर का कोई कपटी नहीं मिला ।
- शरीर मे भगवान् दिख जावे तब वह मंदिर है वर्ना वह तो मल का पिटारा है ।
- गोली चूक जाय पर बोली नहीं चूकती है। गोली एक जीव को मारती है पर बोली अनेक जीवो को मार सकती है।
- भव भव की निधि गुरु के माध्यम से प्रकट हो जाती है। दिगम्बर मुद्रा जवानी मे दिख जाय तो यह (उपादान कृत) चित चमत्कार है ।
- आत्म साधना ब्रह्म विद्या है जो गुरु के बिना प्राप्त नहीं हो सकती ।
- मांसाहारी कभी मासाहारी का मांस नहीं खाता , शाकाहारी का मास खाता है। क्योंकि मासाहारी के मास में जहर पैदा हो जाता हैं।
- जब परिणमन निश्चित है तो आकुलता की क्या आवश्यकता है ।
- जड-जड को ही काटता है। जड चेतन को काट दे ऐसी शक्ति जड के पास नही है ।
- परघात पुण्य के उदय मे होता है। स्वय का घात पाप के उदय मे होता है ।
- धर्म पुरुषार्थ बीज है। अर्थ पुरुषार्थ एव काम पुरुषार्थ फल है ।
- जो मानने लग गये व तर गये जो जानने मे लग गये भटकते रहे ।
- पथ के व्यामोह ने दुनिया को बरबाद किया पथ का व्यामोह करिये ।
- जो मंदिर कल्याण के कारण थे वे पथ के कारण अहकार के कारण बन गये ।
- साधु का पथ की दृष्टि से देखा पथ की दृष्टि से देखोगे तो धोखा खा जाओगे ।
- राग द्वेष के निमित्त मिले और अन्दर हलचल न होवे यही प्रशम भाव है ।
- जिसका नमक खाया यदि सकट की घडी मे उसके काम नही आए तो नमक हराम कहलाओगे ।
- परदेश जाने पर भी नारी का अनुराग रहे यही नारी की परीक्षा है और कगाली मे भी मित्र हाथ मिलाने आ जाय यही मित्र की परीक्षा है।
- निमित्तो के बीच म से स्वय हट जाना ही दीक्षा है।
- दूसरो को समझाना स्वय को उलझाना है । ससार से भयभीत होने पर ही मोक्ष मार्ग की ओर आओगे।

समर्पण की कोई भाषा - परिभाषा नही होती ।

सकलनकर्ता
भरतकुमार जैन (बड़जात्या)

❑❑❑